CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूर्योदय ।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल तथा अखिलभारतीय-धार्मिकाध्यात्मिक
संस्कृत-विश्वविद्यालयका मुखपत्र ।

हिन्दी-विशेषाङ्क

सनातनधर्म और हिन्दू संस्कृति का प्रचारक यह पत्र तीन भाषाओं में प्रकाशित होता है। इसका संस्कृत संस्करण प्रतिमास स्वतन्त्र प्रकाशित होता है। हिन्दी का यह विशेषाङ्क सद्विद्या-विस्तार, सनातनधर्म के अलौकिक गुप्त रहस्यों का प्रचार, हिन्दू जाति की अलौकिक संस्कृति को स्थायी रखने के अभिप्राय से और अनुकूल तथा प्रतिकूल व्यक्तियों के शङ्का-समाधान के लक्ष्य से विस्तृत आकार में पृथक् प्रकाशित होता है। श्रीभारतधर्ममहामण्डल के संरक्षकों, सब श्रेणी के सभ्यों, अखिल भारतीय धार्मिकाध्यात्मिक संस्कृतविश्वविद्यालय के सब परीक्षा-केन्द्रों तथा प्रान्तीय कार्यालयों को सब पत्र विना मूल्य भेजे जाते हैं। भारतखण्ड की नियमित कार्य करनेवाली सनातन-धर्म सभाओं तथा विद्योन्नतिकारी प्रतिष्ठानों तथा अन्य सब धर्मावलम्बियों की स्वदेशीय और विदेशीय संस्थाओं को भी, जो सत्य के अनुसन्धान में रत हों, इच्छा प्रगट करने पर यह पत्र विना मूल्य भेजा जाता है।

SURYODAYA

Organ of Shri Bharat Dharma Mahamandal and all-India Sanskrit and Spiritual University, Head office Mahamandal Buildings, Benares, published in three languages separately-Sanskrit, Hindi and English, in the interest of real education for the preservation of Hindu culture, spiritual education of humanity, national solidarity of the Hindus, social unity, spread of national language Hindi, propagation of esoteric literature of Hindu-India, religious education and sacred ideal of Brotherhood of men and Fatherhood of Almighty God.

For

Free DISTRIBUTION

Amongst religious and educational active institutions of India and abroad of all creeds seeking after truth, Leaders of Hindu community, centres of the All India Sanskrit and Spiritual University of India aud foreign Hindu colonies, patrons and supporters of Shri Bharat Dharma Mahamandal.

विक्रम संवत् २००५, कलिगताब्द ५०४९

Published by Shri Bharat Dharma Mahamandal, Head Office :—Benares.

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ तत् सत्।

पाठकवृन्द से सविनय निवेदन।

आजकल की राजनीतिक क्रान्ति, सामाजिक क्रान्ति, धार्मिक क्रान्ति और नास्तिकता के समय में राजा और प्रजा सबकी चित्तवृत्ति डाँवाडोल हो रही है। ऐसे आपत्काल में विज्ञ जनों के सत्परामर्श की अत्यन्त आवश्यकता है। इस कारण हिन्दी सूर्योदय का यह विशेषाङ्क प्रकाशित करने की आवश्यकता समझी गई है। श्रीभारतधर्म महामण्डल के प्रधान कार्यालय काशी में धार्मिकाध्यात्मिक संस्कृतविश्वविद्यालय, श्रीमहामण्डल उपदेशक महाविद्यालय, श्रीमहामण्डल शास्त्र प्रकाश विभाग के सम्बन्ध से जो पण्डित मण्डली का नियमित सहयोग रहता है और उस मण्डली में समय समय पर प्रश्नोत्तर के द्वारा और लेख के द्वारा जो जो विषय निर्णीत होकर एकत्र किये जाते हैं, उन सब अति उपकारी और जगत् हितकारी लेखों का संग्रह करके इस विशेषाङ्क में प्रकाशित किया गया है। आशा है कि श्री भगवान् विश्वनाथजी की कृपा से सब श्रेणी और सब अधिकार के पाठकवृन्द को यह लेखसमूह ज्ञानार्जन करने और कर्त्तव्याकर्त्तव्य निश्चय करने में सहायक होंगे।

सूर्योदय का यह विशेषाङ्क सभी बड़े-बड़े विद्यासम्बन्धी प्रतिष्ठानों, हिन्दू सामाजिक और धार्मिक सभाओं और देश के नेतृवृन्द की सेवा में पहुँचेगा। सब से विनीत निवेदन है कि वे अपने-अपने पुस्तकालयों में इसको सुरक्षित रखवावें और इसको आद्योपान्त पढ़कर लाभ उठावें। सूर्योदय का संस्कृत अङ्क प्रतिमास नियमित रूप से प्रकाशित होता है। उसका हिन्दी संस्करण और अंग्रेजी संस्करण ये दोनों अलग-अलग विशेषाङ्क रूप से प्रकाशित होते हैं। जिन सज्जनों की यह इच्छा हो कि ऐसे विशेषाङ्क उनकी सेवा में पहुँचा करें, वे कृपापूर्वक "कार्याध्यक्ष, सूर्योदय महामण्डल-भवन, जगतगंज बनारस" को सूचित करें।

इस कार्यालय से श्रीसूर्यग्रन्थमाला नामक ग्रन्थावली डबल क्राउन अठपेजी साइज में प्रकाशित होती है, जिसमें अनेक अप्रकाशित तथा अपूर्व ग्रन्थसमूह नियमित रूप से छप रहे हैं और दूसरी श्री दत्तात्रेय ग्रन्थमाला नामक ग्रन्थावली डबल क्राउन सोलह पेजी साइज में नियमित प्रकाशित होती है। इन दोनों ग्रन्थमालाओं में जिस श्रेणी के ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं, इस विशेषाङ्क में उनका दिग्दर्शन कराया गया है। इन दोनों ग्रन्थमालाओं के मिलने का नियम भी इस विशेषाङ्क में विस्तृत रूप से दिया गया है।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ओं तत्सत्।

सूर्योदय।

श्रीभारतधर्म महामण्डल का हिन्दी मासिक मुखपत्र।

विशेषांक सं० २००४।२००५ कलि गताब्द ५०४८।५०४९ ई० १९४७।१९४८

मङ्गलाचरण।

अविनयमपनय विष्णो दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम्।
भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः॥
सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः॥

आत्मनिवेदन।

देश काल, और राजानुशासन का प्रभाव सब पर पड़ता है। उन्हीं प्रभावों से प्रभावित होकर धार्मिक यह मासिक पत्र नियमित रूप से सेवा करने में असमर्थ रहा। इसके लिये क्षमा प्रार्थना है।

पिछली शताब्दी के अन्तिम भाग में हिन्दु-जाति और हिन्दुस्थान की सब प्रकार से रक्षा और उन्नति के शुभ अभिप्राय से जब अखिल भारतीय श्रीभारतधर्ममहामण्डलका आविर्भाव हुआ था, उसी समय से उसके मुखपत्र के प्रकाशन का कार्य भी आरम्भ हुआ। प्रथम अवस्था में मथुरापुरी से प्रत्येक ऋतु में एक संख्या निकला करती थी। तदनन्तर जब महामण्डलका कार्यालय मथुरापुरी से काशी में आया और उसका कार्य विस्तृत रूप से चलने लगा तो "श्री महामण्डल शास्त्रप्रकाश-समिति लिमिटेड" नाम से एक शास्त्रप्रकाश कार्यालय खोला गया। उससे आठ भाषाओं के आठ मासिक पत्र हजारों की संख्या में निकलते थे। उस समय संस्कृत-भाषा में जो पत्र निकलता था, उसका नाम "संस्कृत रत्नाकर" था और हिन्दी में जो मासिक पत्र निकलता था उसका नाम "निगमागम चन्द्रिका" ही रहा, जो पहिले मथुरापुरी से ऋतुपत्र रूप से प्रकाशित होता था। तदनन्तर हिन्दू जाति के दुर्भाग्य और काम करने वालों की स्वार्थपरता के कारण वह लिमिटेड कम्पनी फेल हो गयी तथा आठो भाषाओंमें निकलने वाले आठो मासिक पत्र भी बन्द हो गये। तत्पश्चात् धर्मसेवा देशसेवा और जातिसेवा के शुभ अभिप्राय से पुनः "भारतधर्म सिण्डिकेट लिमिटेड" नाम से एक दूसरी कम्पनी खोली गयी थी। उस समय साप्ताहिक रूप से कई पत्र निकलते थे और हिन्दी में एक दैनिक पत्र निकालने का भी विचार था। किन्तु हिन्दु जाति के दुर्भाग्य में परिवर्त्तन नहीं हुआ और कार्यकर्त्ताओंने अपनी स्वार्थपरता और विश्वासघात का परित्याग नहीं किया, इस कारण इस दूसरी कम्पनी की भी वही दशा हुई। इसी सन्धिकाल में "सूर्योदय" का जन्म हुआ जो पहिले संस्कृत भाषा में पाक्षिक रूप से प्रकाशित होता था। अनन्तर "सूर्योदय" तीन भाषाओं में निकलने लगा था। अब वही "सूर्योदय" दो संस्करणों में प्रकाशित हो रहा है, एक संस्कृत

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संस्करण और दूसरा हिन्दी-अंग्रेजी संस्करण। इन दोनों संस्करणों के साथ ही साथ दो स्वतन्त्र ग्रन्थमालाएँ भी प्रकाशित हो रही हैं। ये दोनों पुस्तकमालाएँ इस आशय से प्रकाशित हो रही हैं, जो हिन्दू जाति की शिक्षाशैली में उचित परिवर्त्तन करके उसकी अलौकिक संस्कृति और असाधारण ज्ञानगरिमा के प्रकाशन में सहायक होंगी और जिनके द्वारा हिन्दुजाति और हिन्दुस्थान ही नहीं, प्रत्युत पृथ्वी का समस्त जाति और देश का मङ्गल साधन हो सकेगा।

वर्त्तमान समय में साधारणतः पृथ्वी की सब सभ्य जातियों और विशेषतः हिन्दुजाति की जो अधःपतित दशा देखने में आती है, उसका प्रधान कारण यह है कि वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली में सायंटिफिक (वैज्ञानिक) शिक्षा का ही प्राधान्य रखा गया है और दार्शनिक शिक्षा का सम्बन्ध रखा ही नहीं गया है। प्रकृति के नाना स्वरूप की नकल करने को शिल्प कहते हैं। प्रकृति के विशेष विशेष विभागों पर जिस विद्या के द्वारा आधिपत्य किया जाय उसको विज्ञान (सायंस) कहते हैं तथा स्थूल प्राकृतिकराज्य से परे जिससे अन्तर्जगत् में क्रमशः उन्नति करते हुए अन्त में भगवच्चरणारविन्द में पहुँचा जाय, उसको दर्शनशास्त्र कहते हैं। जब तक दर्शन शास्त्र की चर्चा न बढायी जायगी और न उसकी व्यवस्थित शिक्षा ही दी जायगी, तब तक मनुष्यजाति यथार्थ शिक्षा का न तो लाभ उठा सकती है न सच्ची शान्ति प्राप्त कर सकती है और न उसका सर्वविध कल्याण ही हो सकता है।

दार्शनिक शिक्षा के विषय में पूज्यपाद महर्षियों का यह सिद्धान्त है कि नास्तिक दर्शनों का तीन श्रेणी में विभाग किया जा सकता है। प्रथम देहात्मवाद के नास्तिक दर्शन मत, दूसरे देहातिरिक्त आत्मवाद के नास्तिक दर्शनमत और तीसरे आत्मातिरिक्त शक्तिवाद के दर्शन मत,-जिसका पाश्चात्य जगत् में कहीं कहीं प्रचार देखा जाता है। तदनन्तर वैदिक आस्तिक दर्शनों का अधिकार प्राप्त होता है। इसके यथाक्रम सात ज्ञान भूमियों के अनुसार सात दर्शन-सिद्धान्त माने गये हैं। पहिली दो ज्ञानभूमियों के दो दर्शन शास्त्र इस समय उपलब्ध होते हैं, जो प्राचीन न्यायदर्शन और वैशेषिकदर्शन के नाम से विख्यात हैं और जो पदार्थवाद दर्शन कहाते हैं। अनन्तर सांख्य प्रवचनदर्शन का अधिकार प्रारम्भ होता है, जिसमें योगदर्शन और सांख्यदर्शन समझने योग्य हैं। तत्पश्चात् वेद के कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड और ज्ञान काण्ड के अनुसार यथाक्रम तीन मीमांसा दर्शन हैं, जिनमें कर्ममीमांसा दर्शन दो भागों में विभक्त है। प्रथम भरद्वाजदर्शन, जिसमें कर्म जगत् की विस्तृत मीमांसा है और दूसरा जैमिनिदर्शन जिसमें केवल वैदिक यज्ञ यागादि की मीमांसा है। वैदिक उपासना काण्ड के मीमांसादर्शन का नाम है—दैवी मीमांसादर्शन, उसमें भक्तितत्त्व का वर्णन तथा दैवी जगत् तथा शृङ्खला की मीमांसा है। इस दर्शन के आचार्य भगवान् महर्षि अङ्गिरा हैं। अन्तिम ज्ञानकाण्ड की मीमांसा के दर्शन का नाम ब्रह्म मीमांसा दर्शन अथवा वेदान्त दर्शन है, जिसके आचार्य भगवान् वेदव्यास हैं। इन सातों वैदिक दर्शनों के सूत्र ग्रन्थ संस्कृतवृत्ति और हिन्दी अनुवाद सहित पाठ्य पुस्तक रूप से डवलक्रौन सोलह पेजी साइज में 'श्रीदत्तात्रेय ग्रन्थ माला' में प्रकाशित हो रहे हैं। इसी ग्रन्थमाला में दर्शन शास्त्र को अच्छी तरह समझाने के उपयोगी अन्य ग्रन्थ भी क्रमशः प्रकाशित होंगे। दूसरी 'श्रीसूर्य ग्रन्थमाला' में जिसका आकार डवल क्रौन अठ पेजी होगा, श्रीभारतधर्म महामण्डल का पूर्व इतिहास तथा कार्यप्रणाली प्रकाशित होगी और अंग्रेजी भाषाभाषियों के लिये "हाउ पीस पासिबुल" अर्थात् जगत् में शान्ति कैसे स्थापन की जा सकती है. इसका विस्तारित गवेषण और विवेचन सहित एक अंग्रेजी भाषा की पुस्तक प्रकाशित हो रही है जो पृथ्वी की सब जातियों के लिये उपयोगी होगी। इस ग्रन्थमाला में और

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी इसी प्रकार के जगद्धितकारी और शिक्षा सुधार सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ प्रकाशित होंगे। सूर्योदय का संस्कृत संस्करण प्रतिमास नियमित प्रकाशित हो रही है। श्रीसूर्यग्रन्थमाला जो हिन्दी 'सूर्योदय' के साथ नियमित प्रकाशित हो रही है, उसमें एक परमावश्यकीय ग्रन्थ जिसका नाम 'श्रीदत्तात्रेय धर्ममीमांसा' है जो हिन्दी अनुवाद सहित नियमित प्रकाशित हो रहा है। इस ग्रन्थ के सब समेत चौवन अध्याय होंगे, जो तीन स्कन्धों में विभक्त होंगे। उसके पाँच अध्याय छप चुके हैं। प्रत्येक धर्मानुरागी विद्वान् गृहस्थ को इस ग्रन्थरत्न का संग्रह अवश्य करना चाहिये। साङ्गोपाङ्ग सनातनधर्म के रहस्य प्रकाशक ऐसा ग्रन्थ आजतक प्रकाशित नहीं हुआ है। अतः अपने माननीय पाठकों से निवेदन है कि वे स्वयं ऐसे ग्रन्थों तथा दोनों ग्रन्थमालाओं का अध्ययन करें तथा इन ग्रन्थमालाओं का प्रचार कर अन्य सज्जनों की ज्ञानवृद्धिमें सहायक हो, जिससे संसार का स्थायी मङ्गल हो सके।

आर्यसंस्कृति (१)

('आर्यसंस्कृति' शीर्षक लेख इस प्रकार नियमित रूपसे हिन्दुजाति के मंगलार्थ 'सूर्योदय' में प्रकाशित होंगे।)

(१ वृद्धपूजा। बड़ों की पूजा विधि जैसी आर्य जाति में पायी जाती है वैसी अन्य जातियों में नहीं पाई जाती है। वेद और शास्त्रों में वृद्ध सात प्रकार के माने गये हैं (१) ज्ञानवृद्ध, जो ज्ञान में बड़े हों। (२) तपो वृद्ध, जो तपः साधन में बड़े हों। (३) आश्रमवृद्ध, जैसे ब्रह्मचारी से गृहस्थ, गृहस्थ से वानप्रस्थ, वानप्रस्थ से संन्यासी वृद्ध समझे जाते हैं। (४) वर्णवृद्ध, जैसे शूद्र से वैश्य, वैश्य से क्षत्रिय, क्षत्रिय से ब्राह्मण वृद्ध समझे जाते हैं। (५) पर्य्याय वृद्ध, जैसे चाचा आयु में छोटा हो किन्तु पर्य्याय में बड़ा हो, वह प्रणाम करने योग्य है। (६) शील वृद्ध, जैसे राजा, राजपदधारी, समाजपति, पञ्चायत के मुखिया इत्यादि और (७) वयोवृद्ध, जो आयु में बड़े हों। ये सब यथायोग्य आदर और सम्मान के योग्य हैं। आदर और सम्मान प्रदर्शन के भी शास्त्रों में अनेक नियम पाये जाते हैं। जैसे यदि माता और पिता एक स्थान पर बैठे हों तो पहले माता को प्रणाम करना चाहिए, पीछे पिता को। भगवान् मनुने कहा है कि जो वृद्धों का सम्मान और आदर करते हैं, उनकी आयु, विद्या, यश और बल ये चार बढ़ते हैं। इन्हीं सब कारणों से आर्य संस्कृति एकाकार की पक्षपातिनी नहीं है।

(२) स्त्रीजाति तथा पुरुषजाति का अधिकारभेद। आर्यसंस्कृति में पुरुषजाति और स्त्रीजाति दोनों का अधिकार अलग अलग माना गया है, दोनों के धर्म की भित्ति अलग अलग मानी गयी है। दोनों के आचार अलग अलग माने गये हैं तथा दोनों की शिक्षादीक्षा प्रणाली में भी रात और दिन का सा अन्तर माना गया है। वेद और पुराणादि शास्त्र तथा वैदिकदर्शन के अनुसार बीज का अधिकार पुरुष का माना गया है और भूमि का अधिकार स्त्री का माना गया है। उत्तम बीज होने पर भी जैसे क्षेत्र की शुद्धि परमावश्यक है, उसी प्रकार हिन्दु संस्कृति में स्त्रीजाति की शुद्धि पर पूरा ध्यान रखा गया है। आर्यजाति के प्रधान धर्मों में पुरुषधर्म यज्ञ प्रधान और नारीधर्म तपःप्रधान है। स्त्री और पुरुष इन दोनों के आचार में बहुत कुछ भेद माना गया है। धर्मानुकूल शारीरिक व्यापार को आचार कहते हैं। स्त्री और पुरुष इन दोनों के आचार में उनके धर्मानुसार भेद होने के कारण आर्य जाति के पुरुषों की रहन सहन में जितना स्वातन्त्र्य है,

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उतना स्वातन्त्र्य स्त्रियों की रहन सहन में नहीं रक्खा गया है। रहने के निवास में भी अन्तःपुर अलग ही रखा जाता है। पुरुषों के लिये जैसा ब्रह्मचर्यादि पालन का नियम है वैसा स्त्रियों के लिये नहीं हैं। पुरुषों के लिये षोडशसंस्कार का नियम है, किन्तु स्त्रियों के लिये केवल विवाह संस्कार की ही प्रधानता रखी गयी है। जैसे इस समय मनुष्य समाज में स्त्री पुरुषों को समान शिक्षा दी जा रही है, यह आर्यसंस्कृति के विपरीत है। जिस मनुष्यजाति में स्त्री और पुरुष को समान अधिकार दिया जाता है, वह जाति अधिक दिनों तक सुरक्षित नहीं रह सकती। यही सब आर्य संस्कृति के कुछ उदाहरण हैं, जिस पर सब को विचार पूर्वक ध्यान देना चाहिये।

सनातनधर्म व्यवस्था (१)

(हिन्दुजातिके कल्याणार्थ सनातनधर्मके जटिल प्रश्नों पर श्रीभारतधर्ममहामण्डलके विद्वज्जनों की व्यवस्था इस शीर्षक में नियमित प्रकाशित होंगी।)

(१) हलग्रहण विचार। ब्राह्मण और क्षत्रिय जाति के लिये वर्त्तमान समय में हल चलाना उचित है कि नहीं, इसकी मीमांसा होना अत्यावश्यक है। प्रथम तो भारतद्वीप कृषि प्रधान देश है। दूसरा वर्त्तमान राजनीतिक परिस्थिति के अनुसार कृषि के विषय में अनेक असुविधायें उपस्थित हैं, तीसरा भारतखण्ड के सभी प्रान्तों में प्राचीन वर्णाश्रम मर्यादा के अनुसार ब्राह्मण और क्षत्रिय जाति के लोग हलग्रहण नहीं करते। इस में सामाजिक बाधायें भी होती रहती हैं। अतः इस विषय पर शास्त्रज्ञ बुध जनों की ओर से प्रकाश डालने की बड़ी आवश्यकता है। पूज्यपाद महर्षियों ने ऐसे समय के लिये ही निम्नलिखित आज्ञायें दी हैं। भगवान् मनु ने कहा है—

अजीवंस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा।
जीवेत् क्षत्रियधर्मेण स ह्यस्य प्रत्यनन्तरः॥
उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथं स्यादिति चेद्भवेत्।
कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम्॥

अर्थात् अपने कर्त्तव्य से यदि ब्राह्मण अपना जीवन निर्वाह न कर सके तो वह क्षत्रियधर्म को अपना सकता है। क्योंकि वह उसके लिये निकटतम है। यदि कोई ब्राह्मण, ब्राह्मण या क्षत्रिय इन दोनों के कर्मों से जीवन निर्वाह न कर सके तो वह कृषि गोरक्षा आदि से जीवन निर्वाह कर सकता है। "कलौ पाराशरः स्मृतः" इस आज्ञा के अनुसार कलिकाल में एकमात्र आदरणीय पराशरस्मृति भी ब्राह्मणों के कृषि कर्म करने का समर्थन करती है। यथा—

"षट्कर्मसहितो विप्रः कृषिकर्म च कारयेत्"

अर्थात् षट्कर्म परायण ब्राह्मण स्वयं भी कृषिकर्म कर सकता है। पराशरने और भी कहा है—

स्वयं कृष्टे तथा क्षेत्रे धान्यैश्च स्वयमर्जितैः।
निर्वपेत् पञ्चयज्ञांश्च क्रतुदीक्षां च कारयेत्॥

अर्थात् स्वयं जोते हुए खेत में स्वयम् उपार्जित अन्न से ब्राह्मणों को पञ्चयज्ञ और यज्ञदीक्षा का सम्पादन करना उचित है। जब आजकल शूद्रधर्म से भी अनेक ब्राह्मण जीवन निर्वाह करते हैं तो हलग्रहण तो वैश्यधर्म है। इस से जीविका निर्वाह करना इस आपत्कालमें कथमपि अनुचित नहीं हो सकता। इस सिद्धान्त पर हिन्दुजाति के नेतृवृन्द ध्यान दें और जहां कहीं इस में असुविधा उत्पन्न हो, उसे दूर करें। सब धर्मव्यवस्थाओं की सप्रमाण शास्त्रीयव्यवस्था संस्कृत 'सूर्योदय' में द्रष्टव्य है।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(२) बलपूर्वक म्लेच्छ बनाये गये हिन्दुओं का पुनः संस्कार । अपवित्र मांस भक्षण, बलात्कार मैथुन, कलमापाठ, आदि किसी उपाय से भी बलपूर्वक म्लेच्छ गुण्डों द्वारा दूषित हिन्दुनरनारियों की जाति या धर्म का परिवर्तन नहीं हो सकता। ऐसे आर्यपुरुष और महिलाओं का सब प्रकार से उद्धार कर उनके पाप और सन्ताप की शान्ति के लिये मन्त्रपाठ के सहित सविधि गंगास्नान द्वारा, जहां गंगा न हों वहां गंगास्मरण गंगाजल का आचमन, 'गंगे च यमुने चैव' इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित नित्य प्रवाहशील किसी नदी के जल में स्नान, समन्त्रक पञ्चगव्यपान, अथवा ब्राह्मणके चरणस्पृष्ट जल से अभिषेक द्वारा, या "हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे' हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे" इस विष्णुतारक मन्त्र के जपपूर्वक, या 'शिवे दुर्गे' शिवे दुर्गे दुर्गे दुर्गे शिवे शिवे शिवे कालि शिवे कालि कालि कालि शिवे शिवे' इत्यादि देवी तारक मन्त्र पूर्वक भगवन्नाम स्मरण से, इनमें से किसी एक से शुद्ध कर उन्हें पूर्ववत् समाज में स्थान देना शास्त्र-सम्मत है। बलपूर्वक म्लेच्छों से गर्भवती स्त्रियों को प्रसव के अनन्तर शास्त्रीय व्रत अथवा तदनुकूल दानादिके द्वारा शुद्धकर पूर्ववत् समाज में स्थान देना उचित है। उनसे प्रसूत सन्तति को धर्मपूतजाति में स्थान देना चाहिये। धर्मपूत जाति का विवरण आगे दिया जायगा। पञ्चगव्यपान का मन्त्र यह है—"यत् त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मामके' प्राशनं पञ्चगव्यस्य दहत्वग्निरिवेन्धनम्"। इसकी विस्तारित शास्त्रीय व्यवस्था 'सूर्योदय' संस्कृत संस्करणमें द्रष्टव्य है।

राजनीतिप्रसंग (१)

(१) राष्ट्रभाषा । युक्तप्रान्तीय सरकार ने यह मन्तव्य निश्चय किया है, कि राजकीय भाषा अंग्रेजी और उर्दू की जगह हिन्दी की जाय और युक्तप्रान्तीय राजकीय लिपि, देवनागरी की जाय। यह बहुत ही शुभ कार्य है। इसके द्वारा प्रजा में आत्मबल बढ़ेगा और शासकों को दैवी कृपा की प्राप्ति होगी।

(२) राष्ट्रध्वज में चक्र । कांग्रेस गवर्मेंएट ने अपनी राजकीय ध्वजा पर चक्र का चिन्ह देना निश्चय किया है। हमारे शास्त्रों में धर्म अर्थ काम मोक्ष रूपी चतुर्वर्ग में धर्म का चिन्ह चक्र को माना गया है। बौद्ध धर्मावलम्बी सम्राट् अशोक के नाम से यह चिन्ह लिया गया है। प्रतापशाली सम्राट् अशोक उस समय के देश काल पात्र के अनुसार बौद्ध धर्ममें दीक्षित होजाने पर भी वे सिद्धान्ततः सनातनधर्मावलम्बी ही थे और ब्राह्मणों का समुचित समादर किया करते थे। उनकी मनोवृत्ति भारतखण्ड की प्राचीन संस्कृति के अनुकूल थी। इस कारण उन्होंने सनातनधर्म के अनुसार धर्मचिन्ह को ही अपनी राजकीय ध्वजा और पताका में स्थान दिया था। परन्तु इस समय जो चिन्ह शिलालेखों से संग्रह किया गया है, इसमें कुछ पार्थक्य है। श्रीभारतधर्ममहामण्डल की तिरङ्गा ध्वजा जो सत्त्व रज तम इन तीनों गुणों का द्योतक श्वेत लाल कृष्ण इन—तीन रङ्गों से युक्त श्रीभगवान् हनुमानजी के मन्दिर पर सुशोभित है, उसपर धर्मचिन्ह रूप से जो शास्त्रोक्त चक्र रहता है, इसमें और राष्ट्रीय चक्र में भेद इतना है कि इस चक्र के चारो ओर सहस्र किरणों के चिन्ह हैं, चक्रके भीतर समष्टि व्यष्टि अर्थात् ब्रह्माण्ड और पिण्ड के द्योतक षट्कोण यन्त्र है और मध्य में प्रणव है। यही वेद और शास्त्रोक्त चक्र का प्रतीक है। अस्तु, कालान्तर में राष्ट्रिय चक्र अपने पूर्वरूप को धारण कर ले तो अतिशय शुभ होगा।

(३) नेतृवृन्दों को सत्परामर्श । वर्तमान

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समय में भारतद्वीप (हिन्दुस्तान) की जो भयानक दुःख-जनक परिस्थिति है वैसी दशा भारत द्वीप में पहले कभी नहीं हुई थी। विधर्मी विद्वेष, हिन्दु स्त्रियोंपर बलात्कार, हिन्दु बालक बालिकाओं और अनाथ वृद्ध स्त्री पुरुषों को देखते ही मार डालना, दलपूर्वक धर्मान्तर करा देना, गाँव का गाँव जलाकर भस्मीभूत कर देना इत्यादि अत्याचार असहनीय है। अत्याचारी लोग न ईश्वर के अस्तित्व को मानते हैं और न कर्म के फलाफल को मानते हैं। ऐसी अराजकता, धर्महीनता और अत्याचार की दशा दयालु भगवान् के लिए असहनीय होगी इसमें संदेह नहीं। सभी लोग इस बात को समझ गये हैं कि कुटिल भेदनीति से प्रजा को आपस में लड़ा कर राजशासन करने की बृटिश जाति की जो प्रणाली है वही भारत-खण्ड के वर्तमान संकट का कारण है।

अपनी युवावस्था में बृटिश जाति ने जो अमार्जनीय भूलें की हैं उनकी घोर प्रतिक्रिया साथ ही साथ आरम्भ है। कर्म के विषय में वैदिक दर्शन शास्त्रों का यह सिद्धान्त है कि ब्रह्मप्रकृति में और कर्म में अभेद है। ब्रह्म स्वभाव का त्याग करा कर जो शक्ति भूतोत्पत्ति का कारण बनती है, वैदिकदर्शन और श्रीमद्भगवद्गीता आदि शास्त्रों में उस शक्ति का नाम कर्म है। वेद के मीमांसा दर्शन ने यह प्रमाणित किया है कि कर्म-शक्ति से ही प्रकृति में कम्पन होता है इसी कारण कोई कोई अवैदिक दर्शन कर्म को ही जगत् का कर्ता मानते हैं। जगत् की तथा जीवमात्र की सृष्टि कर्म के अधीन है। किसी व्यक्ति या किसी मनुष्य जाति के उत्थान और पतन का कारण कर्म ही है। जिस श्रेणी का कर्म होता है उसी श्रेणी की प्रतिक्रिया होती है। यदि कोई मनुष्य या मनुष्यजाति धन का दुरुपयोग करेगी तो वह मनुष्य जन्मान्तर में और वह जाति समयान्तर में निर्धन और दरिद्र हो जायगी। यदि कोई मनुष्य जाति या व्यक्ति दशविध हिंसा में से किसी प्रकार की हिंसा करेगी किसी को दुःख पहुंचावेगी तो जन्मान्तर में वह व्यक्ति उसी मारे जाने वाले और दुःखी किये जाने वाले व्यक्ति के द्वारा दुःख प्राप्त करेगी और वह मनुष्य जाति उसी प्रकार से समयान्तर में अन्य मनुष्य जाति से उसी श्रेणी के दुःख को प्राप्त करेगी। यह कर्म विज्ञान का मौलिक रहस्य है। सर्वशक्तिमान् भगवान्, उनके नियुक्त किये हुए देवपदधारी और उनके नियम से परिचालित दैवी श्रृङ्खला तथा कर्म की अलङ्घनीय शक्ति सत्य है। ईश्वरीय नियम के विरुद्ध कुटिल तथा प्रजा की दुःखदायी राजनीति की विफलता होना निश्चित है। कर्मभूमि भारतवर्ष (भूमण्डल) के उत्तमाङ्गरूपी धर्म और मोक्ष की भूमि भारतद्वीप (हिन्दुस्तान) को भेद नीति के द्वारा छिन्न भिन्न करके बहुत दिनों तक रखना भी ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध और असम्भव है। इन पवित्र सिद्धान्तों को बृटिश जाति, मुसलमान नेतृवृन्द, और अन्यान्य नेतृवृन्दों को सदा ध्यान में रखना चाहिए।

गोरक्षा।

(भारत को स्वाधीनता मिलते ही श्रीभारत-धर्ममहामण्डल मन्त्रिसभा में तारीख २१-८-४७ को स्वीकृत इस मन्तव्य की यह निम्न प्रकाशित प्रतिलिपि है, जो मन्तव्य भारतखण्ड के नेतृवृन्द, शासकवृन्द, राजे महाराजे, भूमिपति, धनपति प्रभृति सब विशिष्ट सज्जनों के पास रजिष्टरीद्वारा भेजी गयी है।) "हिन्दु जाति के सबसे प्राचीन अखिल भारतीय सनातनधर्म-महासभा-श्रीभारत धर्ममहामण्डल, श्रीमान् को इस शुभ अवसर पर बधाई देता है और श्रीमान् के लिये श्रीभगवान्से प्रार्थना करता हुआ विनीत निवेदन करता है कि भारतखण्ड के मंगल के लिये इस शुभ समय पर

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गोवध बन्द करके धर्म और यश प्राप्त करें और साथ साथ श्रीभगवान् की कृपा के अधिकारी हों। इस सम्बन्ध में यह निवेदन करना अनुचित न होगा कि सदासे ही हिन्दुस्तान भर में गोवध नहीं होता था। बौद्ध शासन के समय में राजा और प्रजा के प्रायः बौद्ध धर्मावलम्बन करने पर भी गोरक्षा को वे परम धर्म समझते थे। मुसलमान बादशाहों के शासनकाल में, पठान बादशाहों के राज्य में, समय समय पर गोरक्षा के लिये आज्ञा दी जाती थी। मुसलमान साम्राज्य में सम्राट् अकबर ने इस नियम को और भी दृढ़ करने के लिये गोहत्या के अपराध में प्राणदण्ड देने का नियम घोषित किया था। तत्पश्चात् सम्राट् जहांगिर से लेकर सम्राट् शाह आलम तक इस नियम के पालन करने का प्रमाण इतिहास में मिलता है। अमीर हबीबुल्ला अफगानिस्तान नरेशने अफगानिस्तानमें गोहत्या निवारण की आज्ञा दी थी। वस्तुतः बृटिश साम्राज्य से ही गोहत्या का पाप इस पुण्य भूमि भारतखण्ड में बढ़ता रहा है। अतः श्रीमहामण्डल-मन्त्रिसभा विशेष रूप से प्रार्थना करती है कि इस गोहत्या-निवारण प्रस्ताव को शीघ्र कार्यान्वित किया जाय। इस अपूर्व अवसर पर श्रीमान् की गोहत्या निवारण की आज्ञा सर्वजनप्रिय होगी, तथा देश और प्रजा का सब तरह से मंगल होगा'।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल और उसके प्रकाशन विभाग के नियम।

(१) श्रीभारतधर्ममहामण्डल ने सदा से अपने संरक्षक और सदस्य सदस्याओं से नियमित धन लेने का अनिवार्य नियम नहीं रखा है।

(२) जो देना चाहें, उनके लिये सहायता के नियम निम्नलिखित हैं। यथा—कम से कम दो रुपया, पांच रुपया, दस रुपया, पचास रुपया और सौ रुपया। विशिष्ट संरक्षकगण जिन्होंने दानपत्र लिखा है, वे सौ रुपया साल से अधिक भी दिया करते हैं।

(३) श्रीभारतधर्ममहामण्डल से सूर्योदय' नामक जो मासिक पत्र हिन्दीभाषा और संस्कृत-भाषा में अलग अलग प्रकाशित होता है, प्रत्येक का २) दो रुपया वार्षिक शुल्क है।

(४) जो स्त्री या पुरुष कम से कम दो रुपया साल नियमित वार्षिक सहायता देते हैं, उनको दोनों संस्करणों में से एक, जिसको वे चाहेंगे, विना मूल्य दिया जायगा। ऐसे सदस्य और सदस्या अखिल भारतीय धार्मिकाध्यात्मिकसंस्कृत-विश्वविद्यालय के सहयोगी सभ्य और सभ्या भी समझे जायँगे, वे इस सदस्यता से यथोचित लाभ भी उठा सकेंगे। जो सज्जन कम से कम प्रतिवर्ष दस रुपये की वार्षिक सहायता अग्रिम देंगे, उनको श्रीसूर्यग्रन्थमाला जो डबल क्राउन अठपेजी साइज में प्रकाशित होती है, नियमित मिला करेगी। इस ग्रन्थमाला में संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं के अप्रकाशित और अमूल्य ग्रन्थ समूह नियमित प्रकाशित होते हैं।

(५)—जो सभ्य या सभ्या प्रतिवर्ष अग्रिम सहायता कम से कम पन्द्रह रुपया या इससे अधिक भेजा करेंगे, उनको श्रीसूर्यग्रन्थमाला के अतिरिक्त 'श्रीदत्तात्रेय ग्रन्थमाला' जो डबलक्रौन सोलह पेजी आकार में छप रही है और जिसमें हिन्दी अनुवाद सहित नाना श्रेणी के दार्शनिक ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं वह माला भी विना मूल्य पहुँचा करेगी।

(६—सूर्योदय में मूल्य लेकर विज्ञापन छापने का कोई नियम नहीं है। परन्तु जो ब्राह्मण विद्वान् अथवा अन्य धर्मसेवी सज्जन अपनी आजीविका तथा धर्मसेवा सम्बन्धी विज्ञापन छपवाना चाहेंगे अथवा जो प्रतिष्ठान या सज्जन ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता छपवाना चाहेंगे,

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऐसी श्रेणी के विज्ञापन श्री महामण्डल मन्त्रिसभा की आज्ञा से विना मूल्य छापे जायेंगे।

मन्त्री—शास्त्रप्रकाशविभाग, श्री भारतधर्म-महामण्डल, जगत्गंज, बनारस।

बङ्गालमें धर्मरक्षा का प्रयत्न।

(श्रीमहामण्डल के बङ्गाल प्रान्तीय मन्त्री धर्मालंकार महोपदेशक श्रीयुत डाक्टर बसन्त कुमार चटर्जी एम० ए० महाशय ने 'हिन्दुओं के प्रति निवेदन' बंगाक्षर में मुद्रित भेजा है। जिसका अनुवाद हिन्दु जनता के उपकारार्थ प्रकाशित किया जाता है) कुछ दिनों से हिन्दुओं के वीच जाति-विभाग के विरुद्ध आन्दोलन चल रहा है। वर्त्तमान समय के कुछ प्रसिद्ध नेताओं ने घोषणा की है कि हिन्दू समाज से जाति विभाग को हटा देना ही हम लोगों का लक्ष्य है। इस सम्बन्ध में हम लोगों का विचार है कि जाति विभाग को हटा देने से हिन्दू समाज को बड़ी हानि का सामना करना पड़ेगा। जाति विभाग और हिन्दू धर्म इन दोनों का आपस में ऐसा घनिष्ट सम्बन्ध है कि जाति विभाग को विनष्ट करने का तात्पर्य हिन्दू धर्म को ही विनष्ट करना है। इसलिये धर्म हीन समाज में जो जो हानियाँ जहाँ तक हो सकती हैं वैसे भी जाति विभाग के विनष्ट होने से हिन्दू समाज को भोगनी पड़ेगी—इस बात की पूर्ण संभावना है। जो लोग समाज का इस प्रकार संस्कार करना चाहते हैं वे लोग समाज के हितैषी होने पर भी पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से तथा योग्य गुरु से हिन्दूशास्त्र के ग्रन्थों को न पढ़ने के कारण हिन्दू समाज-पद्धति के उद्देश्य और भित्ति के समझने के सम्बन्ध में भारी भ्रम में पड़े हुए हैं। समाज को समृद्धिशाली बनाना, समाज के भिन्न-भिन्न श्रेणी के लोगों में परस्पर प्रीति बन्धन को स्थापित करना, समाज के अन्तर्गत सभी व्यक्ति जिससे अपने जीवन को शान्ति पूर्ण और पवित्र बना सकें तथा धर्म संचय करके पारलौकिक कल्याण साधन में भी समर्थ होवें—ये ही जाति विभाग के उद्देश्य हैं। हम लोगों का विश्वास है जाति विभाग की व्यवस्था से ये सभी उद्देश्य सिद्ध होते हैं; इन उद्देश्यों की सिद्धि के लिये इससे बढ़कर दूसरी व्यवस्था नहीं हो सकती। इस विश्वास का कारण यह है—यह व्यवस्था किसी मनुष्य के द्वारा नहीं बनाई गई है। जाति विभाग या वर्णाश्रम व्यवस्था के सृष्टि कर्त्ता स्वयं ईश्वर हैं। वेद, उपनिषद्, गीता, श्रीमद्भागवत, विष्णु पुराण आदि धर्मग्रन्थों में यही बात कही गई है।*

---

*(१) चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः—गीता ४—१३

गुण विभाग एवं कर्त्तव्य विभाग द्वारा मैंने चारो वर्णो की सृष्टि की है।

(२) ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् एकमेव तदेकं सत् न व्यभवत् तच्छ्रेयो रूपमत्यसृजत् क्षत्रम् इत्यादि—बृहदारण्यक उपनिषद् १-४-११

सबसे पहले केवल ब्राह्मण जाति थी, वह अकेले उन्नति करने में असमर्थ हुई, तब उसे श्रेयोरूप क्षत्रिय जाति की सृष्टि हुई, उससे भी उन्नति नहीं हुई तब शूद्र जाति की सृष्टि हुई।

(३) ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः इत्यादि ऋग्वेद संहिता १०-१०-१२

(विराट् पुरुष के) मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय जंघा से वैश्य और पैर से शूद्र की सृष्टि हुई।

(४) मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह।
चत्वारो जज्ञिरे वर्णाः गुणैर्विप्रादयः पृथक्॥
श्रीमद्भागवत ११-५-२

ईश्वर के मुख, बाहु, जंघा और पैर से आश्रम सहित चारो वर्णों की सृष्टि हुई, उनके सभी गुण अलग-अलग हैं।

(५) वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्।
विष्णुराराध्यते पुंसां नान्यत्तत्तोषकारणम्॥
वि० पु० ३-८-९

वर्णाश्रम विहित आचार के द्वारा परम पुरुष की आराधना की जाती है। उनको संतुष्ट करने के लिये दूसरा उपाय नहीं।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जाति विभाग के सम्बन्ध में गीता में भगवान् ने कहा है 'गुणकर्मविभागशः'। इसी कारण से कुछ लोग कहते हैं कि जन्म के अनुसार जाति विभाग गीता को अभिप्रेत नहीं, प्रत्येक व्यक्ति के गुण और कर्म का विचार करके जाति निर्णय करना उचित है; किन्तु यह बात सत्य नहीं। जन्म के अनुसार ही जाति का विभाग गीता को अभिप्रेत है। प्रत्येक व्यक्ति के गुण और कर्म का विचार करके उसकी जाति का निर्णय संभव नहीं और इस प्रकार की व्यवस्था कभी भी प्रचलित नहीं थी। किसी व्यक्ति का प्रकृत गुण क्या है यह जानना कठिन है। और गुण में परिवर्त्तन भी हुआ करता है, आज जो व्यक्ति अच्छा है कल वह बुरा भी हो सकता है। कर्म का परिवर्त्तन होता है, इसलिये गुण और कर्म के अनुसार जाति का निर्णय करने में अव्यवस्था निश्चित है। दूसरी बात यह भी है कि किसी व्यक्ति का गुण ब्राह्मण के समान और कर्म क्षत्रिय के समान हो सकता है—ऐसे व्यक्ति की जाति का निर्णय कैसे होगा? जन्म के बाद एक महीने के भीतर ही नामकरण होता है, ब्राह्मण के नाम के साथ शर्मा जोड़ा जाता है और क्षत्रिय के नाम के साथ वर्मा जोड़ा जाता है, इसी समय उसके गुण और कर्म का विचार करना संभव नहीं। कर्म के अनुसार जाति का निर्णय करने से द्रोण, कृप और अश्वत्थामा क्षत्रिय समझे जाते। किन्तु ये लोग ब्राह्मण थे, इसका कारण जन्म के अनुसार जाति का निर्णय है। विश्वामित्र क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुए थे इस लिये जन्म के अनुसार वह क्षत्रिय थे, बाद में अनेको वर्षों तक असाधारण तपस्या के फलस्वरूप वह ब्राह्मण हो गये थे। इसका कारण तपस्या की अलौकिक शक्ति है।

'गुणकर्मविभागशः' इसमें कर्म शब्द का अर्थ कर्त्तव्य कर्म है। कर्मविभाग शब्द का अर्थ कर्त्तव्य कर्म का विभाग है। सत्व, रज और तम ये ही तीन गुण हैं। पूर्वजन्मकृत कर्म के फल स्वरूप इन गुणों में तारतम्य के अनुसार ब्राह्मणादि वंशों में जन्म होता है। यही गुणविभाग है। भिन्न-भिन्न वर्णों के भिन्न-भिन्न कर्त्तव्य कर्म बताये गये हैं। यही कर्म विभाग है। इसी प्रकार के गुण विभाग और कर्म विभाग के द्वारा चारोवर्णों की सृष्टि स्वयं भगवान् ने की है।

कुछ लोग कहते हैं कि ब्राह्मण ने जब अपनी शास्त्रविदित जीविका को छोड़ दिया है तब जाति विभाग की रक्षा करना उचित नहीं। अर्थात् ब्राह्मण ने जब कर्म के बारे में शास्त्रविहित नियम का उल्लंघन किया है, तब विवाह के सम्बन्ध में भी उसे शास्त्रविहित नियम का उल्लंघन करना उचित है। किन्तु यह बात युक्ति संगत नहीं है। कोई भी व्यक्ति एक अन्याय का कार्य कर चुका है तो वह दूसरा भी अन्याय का कार्य करे ऐसा उचित नहीं, इस प्रकार का विचार अश्रद्धेय है। प्राचीन काल में भी अनेक ब्राह्मणों ने अन्य जाति की जीविका का अवलम्बन किया था। शास्त्र में भी आपत्काल में भिन्नवृत्ति के अवलम्बन की बात कही गई है। आजकल भी बहुत से देहाती ग्रामों के अनेकों ब्राह्मण याजन (यज्ञ कराना) आदि कार्यों के द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं। उनके अतिरिक्त लोहार, कोहार, जुलाहा, धोबी, नाई आदि जाति के लोग अधिकांश स्थानों में अपने पूर्व पुरुषों के व्यवसाय का ही अनुसरण करते हैं। इसलिये वर्णानुसार कर्म की व्यवस्था आजकल पूर्ण रूप से विनष्ट हो गई है ऐसा कहना सत्य नहीं है। कर्म के स्वरूप में कभी-कभी कुछ न कुछ परिवर्त्तन हो जाया करता है। किसी व्यवसाय का मूल उद्देश्य सुरक्षित रहे और उसके स्वरूप में कुछ परिवर्त्तन हो जाय, तो उस व्यवसाय का विनाश हो गया, ऐसा कहना सत्य नहीं। जो ब्राह्मण अन्य जातियों की जीविका को अपनाचुके हैं वे भी सन्ध्या, तर्पण, श्राद्ध, सदाचार प्रभृति कामों को करके वर्णाश्रमधर्म की मर्यादा का संरक्षण कर सकते हैं और बहुत से लोग करते भी हैं।

बहुत लोग हिन्दूशास्त्र को इसलिये दोषी ठहराते हैं कि इसमें शूद्रोंको वेद पढ़ने की आज्ञा

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नहीं दी गई है। किन्तु वेदोंको पढ़कर उनके सच्चे अर्थोंको समझना बहुत कठिन है। वेदों के सच्चे अर्थ के सर्वसाधारण में प्रचार के लिये ऋषियों ने रामायण, महाभारत, पुराण आदि ग्रन्थों की रचना की थी। इस प्रकार वैदिक धर्म के तत्त्वका सर्व साधारण में जैसा प्रचार इस देश में किया गया है वैसा किसी भी देश में किसी धर्म के तत्त्व का साधारण लोगों में प्रचार नहीं किया गया है। वेद का गलती अर्थ करने से समाज की हानि हो सकती है; इस प्रकार समाज की हानि न हो इसलिये वेदपाठ में अधिकार की बात कही गई है। समुचित पात्र न मिलने पर अर्थात् अयोग्य पात्र को अधिकार देने से भलाई की अपेक्षा हानि अधिक होती है—इस बात को पाश्चात्य विद्वान् लोग भी स्वीकार करते हैं।

वर्णाश्रमव्यवस्था ब्राह्मणों के स्वार्थ की रक्षा के लिये की गई है—ऐसा विचारना भूल है। जिस जीविकाके द्वारा अधिक धन मिल सकता है वह (वाणिज्य) वैश्य को दी गई है। जिस जीविका के द्वारा लोगों पर प्रभुत्व जमाया जाता है वह (युद्ध की जीविका) क्षत्रिय को दी गई है। ब्राह्मण की जीविका—पुरोहिताई, पाठशालाओं में पढ़ाना और दानशील, सदाचारी मनुष्य कुछ देना चाहे तो उसको लेना, है। इससे धनकी प्राप्ति बहुत कम होती है। वर्णाश्रम व्यवस्था ब्राह्मणों के स्वार्थ की रक्षाको प्रगट नहीं करती।

सभी समाजों में श्रमविभाग किया गया है। कुछ लोग पुरोहिताई करते हैं कुछ लोग युद्ध करते हैं, कुछ लोग वाणिज्य (व्यवसाय) करते हैं, कुछ लोग परिश्रम का काम करते हैं। हिन्दू धर्म में यह श्रमविभाग जन्म के अनुसार बताया गया है। पुत्र अपने बाप दादों की विशेषता को प्राप्त करता है, पिता की जीविका में शिक्षित होने के लिये उसको सुयोग प्राप्त रहता है. इसलिये जोविकाको भी जन्मानुसारी रखना उचित है। हिन्दू-धर्म के अनुसार जो मनुष्य जिस वर्ण में उत्पन्न हुआ है उसको अपने वर्णविहित कार्यों को करने के लिये स्वाभाविक सुविधाएँ प्राप्त रहती हैं और उसी कर्म के द्वारा वह समाज की सेवा करे—यही ईश्वर की इच्छा है। जन्म का होना कोई आकस्मिक बात नहीं है। पूर्व जन्मों के कर्म के अनुसार ही जन्म का निश्चय होता है।

इसी वर्णव्यवस्था के फल स्वरूप हिन्दू समाज में व्यास, वाल्मीकि और वसिष्ठ के समान आदर्श ब्राह्मण; श्रीरामचन्द्र, भीष्म और अर्जुन के समान आदर्श राजा और योद्धा, एलोरा और कोणार्क के मन्दिर निर्माताओं तथा ढाका के मसलिन बनाने वालों के समान उत्तम कारीगर और शान्त, पवित्र तथा धर्मभाव से भूषित जनसाधारण उत्पन्न हुए हैं। इनके सम्बन्ध में महात्मा गांधी जीने इस प्रकार कहा है—I ask you to accept the testimony of Sir Thomas Munro and I confirm that testimony that the masses of India are more cultured than any in the world अर्थात् मैं आप लोगों को इस सम्बन्ध में सर टामस मुनरो को साक्षी मानने के लिये अनुरोध करता हूँ और मैं भी इस साक्षीपन का समर्थन करता हूँ कि भारत के साधारण मनुष्य अन्य देश के साधारण मनुष्यों की अपेक्षा अधिक सभ्य हैं। (सन् १९२१ में मद्रास के समुद्र तट पर दी हुई वक्तृता)।

जातिविभाग यदि हानिकर होता तो हिन्दुओं की अपेक्षा भारत के अन्य धर्मावलम्बी (जिनमें जातिविभाग नहीं है) अधिक उन्नतिशील होते। किन्तु देखा जाता है कि भारत में विद्या, बुद्धि, कारीगरी और व्यवस्था आदि सभी विषयोंमें हिन्दुओंने ही श्रेष्ठ स्थान को ग्रहण किया है। युद्ध क्षेत्र में भी हिन्दुओंने ही अधिक कुशलता दिखाई है। क्योंकि गत महासमर में जिन भारतीय सैनिकों ने 'विक्टोरिया क्रास' पाया है, उनमें सैकड़े पीछे ९० हिन्दू हैं। हिन्दुओंके साथ अंग्रेजों और जर्मनों की तुलना करना उचित नहीं होगा; क्योंकि इतने दिनों तक भारत पराधीन था, भारतीयोंको विज्ञान में उन्नति करने के लिये

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बृटिश सरकार ने यथेष्ट उद्योग नहीं किया, किन्तु इंग्लैंड, जर्मनी आदि देशोंकी सरकारें अपने देशके लोगोंको कारीगरी और विज्ञान में उन्नति करने के लिये यथेष्ठ उद्योग करती रही हैं। भारत के भिन्न भिन्न धर्मावलम्बी एकही सरकार के शासन में एकही अवस्था में रहते हैं, केवल उनके धर्म और सामाजिक नियमोंमें भेद है। एकही अवस्था के भीतर रह कर भी हिन्दुओंने अन्य धर्मावलम्बियों की अपेक्षा अधिक उन्नति की है। इस बातको देखने से समझना होगा कि हिन्दुओं की धर्म और समाजसम्बन्धी व्यवस्थाएँ उन्नतिके लिये अधिक उपयोगी हैं। विज्ञान और वाणिज्य में पाश्चात्य लोग अधिक उन्नत हैं तौभी धर्म, नीति और चरित्र के विषय में भारतीय ही अधिक उन्नत हैं। साधारण मनुष्यों के चरित्र से सम्बन्ध रखने वाली गांधीजी और सर टामस मुनरो की बात ऊपर उद्धृत हो चुकी है। भूदेव मुखोपाध्याय, राम मोहनराय, प्रमथनाथ वसु तथा कुछ अन्य पाश्चात्य लेखक भी इस सम्बन्धमें साक्षीपन देते हैं। धार्मिक संसार के श्रेष्ठ व्यक्तियों में भारतीय ही सबसे आगे गिने जाते हैं। रामकृष्ण परमहंस, भास्करानन्द, तैलङ्ग स्वामी, विजय कृष्ण गोस्वामी, समर्थ रामदास, काठिया बाबाजी, विज्ञानाचार्य रमण—इनके साथ तुलना के योग्य एक भी व्यक्ति आजकल पाश्चात्य देशमें नहीं है।

किसी भी समाज में सभी व्यक्तियों का समान अधिकार नहीं होता। विचारक (जज) और अपराधी इन दोनों का अधिकार कभी भी एकसा नहीं हो सकता। अपने अपने कर्मके अनुसार अधिकार को प्राप्त करना ही समुचित नियम है। साधारण रूपसे सभी समाजों में अधिकार का निर्णय इस जन्म में किये हुए कामों के अनुसार होता है, किन्तु पहले के किये हुए सभी कामों के अनुसार अधिकार का निर्णय किया जाय, तो किसी प्रकार के दोषकी संभावना नहीं रहती। पहले के किये हुए सभी कामों के भीतर पूर्वजन्म कृत कर्म भी है। हिन्दूधर्म में इस जन्म तथा पूर्व जन्म दोनों ही पर विचार करके तो अधिकार का निर्णय किया जाता है। इस लिये हिन्दू धर्म का निर्णय निर्दोष है। इसमें आपत्ति हो नहीं सकती है। पूर्व जन्म को स्वीकार न करने से कोई व्यक्ति स्वस्थ शरीर लेकर जन्मता है, कोई रोगी शरीर लेकर जन्मता है—इसका कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया जा सकता। जीवन की सभी घटनाओं पर ठीकतौर से विचार कर लेने पर ईसाई दर्शन, इस्लामी दर्शन और हिन्दू दर्शन का विश्लेषण करने से किस की व्याख्या अच्छी है यह मालूम हो जाता है। कर्मफल और पूर्वजन्मवाद इन पर विश्वास न करने से संसार की बहुतसी घटनाओं की कुछ भी मीमांसा (ठीक विचार) नहीं की जा सकती। जन्मको एक आकस्मिक घटना कहना सर्वशक्तिमान् न्यायपरायण ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार करना है। यदि कहा जाय कि आत्माकी कभी भी उत्पत्ति नहीं होती; क्योंकि जिसकी उत्पत्ति होती है उसका विनाश होता है। पूर्व जन्म के अस्तित्व में यह भी एक प्रमाण है। इसके अतिरिक्त कोई व्यक्ति पूर्व जन्म की बातों को स्मरण करके जो कुछ कहे, जाँच ने पर वे बातें सत्य सावित हुई हैं। वेद में लिखा है—पूर्व जन्म में किये हुए उत्तम कर्मका फल इस जन्म में उत्तम वर्ण में जन्म लेना है और नीच कर्म का फल नीच वर्ण में जन्म लेना है। (६)। दोनों का अधिकार भिन्न होने पर भी नीच वर्ण का व्यक्ति ईश्वर को पाही नहीं सकता सो बात नहीं। पूर्णरूपसे ईश्वर की शरण में जाने से नीच वर्णका व्यक्ति भी ईश्वर को अवश्यही प्राप्त कर सकता है। गीता में श्री भगवान् इसी बातको कह गये

(६) रमणीयचरणा रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा वैश्ययोनिं वा। कपूयचरणाः कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा शूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा ? (छान्दोग्य उपनिषद् ५-१०-७)

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हैं (७)। बल्कि उच्च वर्णकी अपेक्षा नीच वर्ण का व्यक्ति ईश्वर को आसानी से प्राप्त कर सकता है। क्योंकि उत्तम वर्ण के लिये सदाचार आदिकी विधि है।

जो लोग उतम कर्म करते हैं वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि योनियों में जन्मते हैं, जो लोग नीच कर्म करते हैं वे चांडाल आदि नीच योनियों में जन्मते हैं। शरणापन्न होने पर निम्नवर्णका व्यक्ति भी ईश्वरका लाभ कर सकता है। (७) गीता में भगवान ने कहा है कि, निम्नवर्ण के लिये ईश्वर-लाभ करना अपेक्षाकृत सहज है। क्योंकि उच्चवर्ण के लिये सदाचारादिका जितना विधिनिषेध है उतना नीच वर्ण के लिये नहीं। इसीलिये व्यास-देवने कहा है—'शूद्रा धन्याः'—शूद्र धन्य हैं; क्योकि वे अपेक्षा कृत सहज उपाय से ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं। ब्राह्मणोंको अनेक नियमों के अनुसार चलना पड़ता है।

श्रीकृष्ण जी गीता में कह गये हैं कि प्रत्येक मनुष्य अपने वर्ण के लिये विहित कर्म को करके ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। (८) जातिविभाग को न मानने से प्रजा वर्णसंकर हो जाती है। ऐसा करने से सिद्धिलाभ के लिये ईश्वर द्वारा बताये हुए स्वाभाविक उपायको नष्ट करना होगा। जातिविभागके फलस्वरूप हिन्दूलोग बेकार समस्याको हल करनेमें समर्थ हुए थे। पाश्चात्य समाज में बेकारसमस्या सर्वदा अशान्तिको उत्पन्न करती है।

हिन्दू समाज में भिन्न-भिन्न जातियाँ भिन्न-भिन्न काम करती हैं, सभी समाजरूपी एक शरीरका अपनेको भिन्न-भिन्न अंग समझती हैं, इसलिये सभी श्रेणियोंमें एकताका ज्ञान वर्त्तमान रहता है। भिन्न-भिन्न जातियोंके बीच संघर्ष नहीं होता है। पाश्चात्य समाज में धनिकों और श्रमिकोंके बीच संघर्ष सदा लगा रहता है।

पाश्चात्य देशमें धनके अनुसार श्रेणीका विभाग होता है। धनी और गरीब एक साथ भोजन नहीं करते। भारत में एक लखपति ब्राह्मण और दरिद्र ब्राह्मण एक साथ भोजन करते हैं, समाजके कामों में समान स्थान पाते हैं। इस प्रकार भारत में धनके प्रभावको रोका जाता है। पाश्चात्य समाज में धनीका स्थान ऊँचा है, इसीलिये सबके जीवनका लक्ष्य धन ही हो जाता है। भारत में दरिद्र और निरक्षर सभी जानते हैं कि धनप्राप्ति होना जीवनका लक्ष्य नहीं हो सकता, ईश्वर प्राप्ति ही जीवनका प्रधान लक्ष्य है। भारतमें जातिभेद जबतक पूर्ण-रूपसे वर्त्तमान था तबतक भारतमें सुखशान्ति और समृद्धिका साम्राज्य था। किसी भी जाति अथवा श्रेणाका दूसरी जाति अथवा श्रेणी के साथ संघर्ष नहीं हुआ। हर एक जाति अपने अपने जातीय व्यवसायमें ध्यान देकर लगी रहती थी इसलिये दूध, घी, और अन्य भोजन सामग्री तथा वस्त्र आदि अधिक मात्रा में उत्पन्न होते थे। महीनेमें २) दो रुपये खर्च करनेसे एक व्यक्तिको प्रथमश्रेणीका भोजन मिल जाता था। जातिभेद नष्ट होनेके कारण जुलाहा, चमार, ग्वाला, नाऊ तथा अन्यलोगोंके जातीय व्यवसायोंमें दूसरे सभी लोग हस्तक्षेप करने लग गये। इसलिये ये सब जातीय व्यवसाय नष्ट हो गये हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि जिन्होंने नष्ट किया और जिनका व्यवसाय नष्ट हुआ इन दोनों में से कोई भी सुखी न रह सका। जातिभेदयुक्त भारत में जो सुख-शान्ति थी उसका परिचय रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में तथा मेगास्थेनीज, फाहिआन,

(७) मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः। स्त्रियो वैश्यास्तथाशूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥ गीता ९-३२

हे अर्जुन! जिन्होंने पूर्वजन्मके पापके कारण नीच जाति में जन्म ग्रहण किया है वे लोग अथवा स्त्री, वैश्य और शूद्र ये सभी मेरा आश्रय लेकर मुक्तिको प्राप्त करते हैं।

(८) स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
गीता १८-४५

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हुएन सैङ् आदि विदेशी यात्रियोंके विस्तृत लेखों में पाया जाता है। जातिभेदरहित पाश्चात्य देशों में वैसी सुखशान्ति कभी भी नहीं थी। वैसी सुख शान्ति भारतमें ही क्यों थी अन्य देशों में वह क्यों नहीं थी। हिन्दूधर्मकी अंगस्वरूप समाज-शृङ्खला अर्थात् जाति भेद ही उसका प्रधान कारण है—ऐसा कहना होगा।

इधर कई वर्षोंसे पाश्चात्य देश युद्ध द्वारा संपूर्ण संसारके सामने मलिनता, दुर्नीति, हत्या और लूटपाट की प्रवृत्तिका परिचय दे रहा है। इससे यह बात स्वयं स्पष्टरूपसे विदित हो जाती है कि उनकी जीवन पद्धति, समाजपद्धति तथा व्यक्तिगत जीवनकी जड़में मनुष्यत्व और देवत्व को विनष्ट करने वाली कोई वस्तु अवश्य है। हिन्दू संस्कृति के मूलमन्त्रको जाननेके लिये पाश्चात्यदेशके समाजतत्त्ववेत्ता लोग भी अब उत्कंठित हो रहे हैं। जन्मानुसार जातिविभाग भारतीय समाजपद्धिति तथा व्यक्तिगत जीवनका एक मूलसूत्र है। जो लोग इसको परित्याग करके वर्णसंकर सृष्टि के प्रचार और मूल आधारको बिगाड़नेकी सलाह देते हैं वे भारतीय भावपद्धति और जीवनपद्धतिके मूल में कुठाराघात करके भारतीय सृष्टिका विनाश उपस्थित करेंगे। हो सकता है कि वे लोग अज्ञानवश इस बातको न समझते हों। पूर्णरूपसे वैज्ञानिकढङ्ग तथा युक्तिवाद से भी इसका विश्लेषण किया जाय तौभी सबके कल्याणकी अभिलाषा रखने वाले भारतीय ऋषियों का यह विधान (नियम) सबप्रकारसे समर्थित होगा। अतः हमलोग आशा और विश्वास करते हैं कि भारतीय सभी मनुष्य परिणामको न विचारनेवाले पाश्चात्य मोहमुग्ध राजनीतिक नेताओं तथा पाश्चात्य भावप्रवाहसे दूषित समाजसुधारकोंकी दुश्चेष्टाओंको अस्वीकार करेंगे। कोई कोई पाश्चात्य लेखक अज्ञान और विद्वेषके अधीन होकर इस जातिविभागकी निन्दा अवश्य कर गये हैं किन्तु जो पाश्चात्य विद्वान् इसके असली मर्म (रहस्य) को समझ चुके हैं वे इसकी बड़ी प्रशंसा कर गये हैं।

भारत बन्धु Sir Henry cotton ने लिखा है:—The caste system of India far from being the source of all troubles which can be traced in Hindu society has rendered the most important service in the past and still continues to sustain order and solidarity.

"जाति विभाग की प्रथा हिन्दू समाज में किसी प्रकार की बुराई का कारण तो है ही नहीं, इसने बीते समय में बहुत कल्याण का काम किया है और अब भी कर रही है"

Sydney Low ने लिखा है:—There is no doubt that the caste system is the main cause of the fundamental stability and contentment by which Indian society has been braced for centuries against the shocks of politics and cataclysms of nature.

भारतीय समाज बहुकालव्यापी राजनीतिक आघातों और प्राकृतिक दुर्घटनाओं का सामना करके भी यथोचित स्थिरता और शान्ति कायम रखने में समर्थ हुआ है इसका प्रधान कारण जातिभेद प्रथा है"

Dr. Annie Besant ने लिखा है:—It is not well to destroy the stately edifice built by the Rishis which has weathered many a storm and given a safe shelter to a myriad generations. Chaldea, Persia, Egypt, Greece, and Rome have perished mighty as once they were........ India which was their contemporary has outlived them all. And this marvellous endurance while primarily due to her profound spirituality is partly due also to the stability given her by her caste system.

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"ऋषियों ने जिस विशाल सौध (महल) को बनाया था और जो अनेकों आँधियों का सामना करके खड़ा है और जो सैकड़ों पीढ़ियों से हिन्दूसमाज को आश्रय देता आया है उसको विनष्ट कर देना उचित नहीं है। खालड़िया, पारस, मिश्र, ग्रीस और रोम आदि का ध्वंस हो गया है, यद्यपि ये देश किसी समय शक्तिशाली थे। भारत उनका समकालीन होते हुए भी उनके बाद बहुत दिनों से जीवित है। इस असाधारण जीवनी शक्ति का प्रधान कारण भारत की आध्यात्मिकता है। इसकी स्थितिशीलता का एक कारण जातिभेद की प्रथा भी है"।

"भारत जो असभ्यता के गढ़े में गिरा नहीं और पृथिवी की अधिकांश जातियाँ जब असभ्य थीं उस समय भारत शिल्प और विज्ञान में चरम उन्नति को प्राप्त कर चुका था, इसका प्रधान कारण भारतवासियों का विभिन्न जातियों में विभाग ही था"।

Abbe Dubois ने लिखा है:—It is simply and solely due to the distribution of the people into caste that India did not lapse into a state of barbarism and that she preserved and perfected the arts and sciences of civilization while most other peoples of the earth remained in a state of barbarism.

V. A. Smith, Dr. Hutton, S. C. Hill आदि लेखकों के द्वारा भी इस जातिभेद की प्रशंसा की गई है।

श्री महादेवानन्द गिरि मण्डलेश्वर
महंथ भोलागिरि आश्रम, हरिद्वार।
श्री जगन्नाथ आश्रम, महंथ, तारकेश्वर।
श्री स्वामी मोहनानन्द (देवघर)।
श्रीस्वामी प्रत्यगात्मानन्द।

महामहोपाध्याय श्रीचण्डीदास न्याय तर्कतीर्थ, नवद्वीप, सभापति बङ्गीय ब्राह्मण सभा।

महामहोपाध्याय श्रीदुर्गाचरण सांख्यवेदान्ततीर्थ, सभापति वङ्गीयवर्णाश्रम स्वराज्य संघ।

महामहोपाध्याय श्रीयोगेन्द्रनाथ तर्क वेदान्त तीर्थ, सह सभापति वङ्गीय ब्राह्मण सभा।

महामहोपाध्याय श्रीकालीपद तर्काचार्य।
अध्यापक, गवर्नमेंट संस्कृत कालेज कलकत्ता।
श्रीकालीपद शास्त्री, संपादक कलकत्ता
पण्डित सभा।

श्रीचण्डीचरण तर्कतीर्थ, अध्यापक शिवकुमार भवन, कलकत्ता।

श्रीहरेन्द्रचन्द्र स्मृतितीर्थ, धर्मशास्त्राध्यापक गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, टोल विभाग, कलकत्ता।

श्रीअशोकनाथ शास्त्री एम० ए० अध्यापक कलकत्ता विश्वविद्यालय।

श्री श्रीजीव न्यायतीर्थ, अध्यक्ष भट्टपल्ली संस्कृत विद्यालय।

महाराजा श्रीयोगीन्द्रनाथ राय, नाटौर।
महाराजाधिराज श्रीउदयचाँद महातप,
वर्द्धमान।
राजा श्री भूपेन्द्र नारायण सिंह, नसिपुर।
राजा श्री कमलारंजन राय, काशिमबाजार।
राजा श्री प्रफुल्लनाथ ठाकुर, कलकत्ता।
राजा श्रीधीरेन्द्र नारायण राय, लालगोला।
श्रीशरदिन्दु नारायण राय, दिनाजपुर।
श्रीशिवशेखरेश्वर राय, ताहिरपुर।
श्रीयोगेशचन्द्र चौधुरी, हेमनगर, मैमनसिंह।
श्रीसुरेन्द्र नारायण सिंह, नेहालिया।
श्रीहीरालाल चक्रवर्ती, वकील, हाईकोर्ट।
श्रीनरेन्द्र नाथ सेठ, ऐडवोकेट।
श्रीमती अनुरूपा देवी।

श्रीदेवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय संपादक बङ्गीय हिन्दू महासभा।

श्री विनोद गोपाल मुखोपाध्याय, वाकलिया हाउस, खिदिरपुर।

डा० श्री नलिनी रंजन सेनगुप्त M. D.

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

डा० श्री सातकौड़ी मुखोपाध्याय M.A.,Ph.D.
Head of deptt. of Sanskrit,
Calcutta University.
डा० श्री नलिनी कान्त ब्रह्म,
Senior Professor of Philosophy,
Presidency College.
डा० श्री श्रीकुमार वन्द्योपाध्याय
M. A. Ph. D.
Head of the dept. of Bengali
Calcutta University.
श्रीशरच्चन्द्र सांख्यवेदान्ततीर्थ
सहकारी सभापति, वङ्गीय ब्राह्मण सभा।
श्री नलिनीमोहन लाहिड़ी ।
श्रीअर्द्धेन्द्र कुमार गङ्गोपाध्याय ।
श्रीफणीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, सम्पादक,
भारतवर्ष ।

श्रीहरिनाथ भट्टाचार्य, सम्पादक वङ्गवासी ।
श्री सत्येन्द्रनाथ सेन Ex M. L. A.
(Central).
संस्कृताध्यापक सिटी कालेज, कलकत्ता
सम्पादक वङ्गीय वर्णाश्रम स्वराज्यसंघ ।
श्री तारकचन्द्र राय Retired District
Magistrate.
श्री विजय विहारी मुखोपाध्याय
Retired Director of Land Records.
श्री वसन्तकुमार चट्टोपाध्याय
Retired Accountant General
प्रधान मन्त्री अखिल भारतवर्षीय
वर्णाश्रम स्वराज्य संघ ।
श्री अविनाश चन्द्र मजुमदार
Retired Translator to Govt. of
Bengal.

वर्ण-व्यवस्थाका रहस्य ।

(श्रीभारतधर्ममहामण्डलकी मन्त्रिसभाकी बैठक २२ जनवरी सन् ४८ को हुई जिसमें निम्नलिखित मन्तव्य स्वीकृत हुए—)

१—काशीसे प्रकाशित होनेवाले दैनिक "संसार" के पौष शुक्ला दशमी २१।१।४८ के अङ्क में 'जन्मना नहीं, कर्मणा वर्णव्यवस्था' 'काशीके पण्डितोंकी व्यवस्था' शीर्षक समाचार पढ़ा गया। अनेक विचारके वाद सर्वसम्मतिसे निश्चय हुआ कि काशीके विज्ञ सम्मानित विद्वानोंने कभी ऐसा निश्चय नहीं किया है। लोभ, मोह या भय आदिके वशीभूत होकर क्वचित् आजकलके पण्डित नामधारी ऐसा कर सकते हैं। परन्तु शास्त्रज्ञाता कोई विद्वान् ऐसा कदापि नहीं कर सकता। 'संसार' पत्रने किसी भी विद्वान्‌का नाम नहीं दिया है इससे और भी भ्रम फैलने की सम्भावना है। वर्णाश्रमधर्मी हिंदू जातिके विशेष धर्मके जो प्रधान सोलह अङ्ग हैं, उनमें जन्मना वर्णव्यवस्था और स्त्रियोंमें सतीत्व संस्कार यह सबकी मूल भित्ति है। इन दोनोंके नाश करनेमें जिनका कुछ भी उद्योग होगा, वे वेदशास्त्रानभिज्ञ हैं तथा हिंदूधर्म के शत्रु हैं, इसमें कोई भी सन्देह नहीं। पूज्यपाद महर्षियोंने सब शास्त्रोंमें एकमत होकर यह सिद्ध किया है कि सृष्टिके आदिकाल में त्रिगुणके अनुसार वर्णधर्मकी व्यवस्था बाँधी गयी है तथा उन्हीं तीन गुणोंके अनुसार उन वर्णोंके कर्मोंका भी निर्धारण किया गया है। वेदके मीमांसा शास्त्रने दार्शनिक युक्तिसे यह सिद्ध किया है कि वर्णधर्ममें ज्ञानके द्वारा आध्यात्मिक शुद्धि, कर्मके द्वारा आधिदैविक शुद्धि और रजोवीर्यमूलक स्थूल देह द्वारा आधिभौतिक शुद्धि होती है और साथ ही साथ यह भी सिद्ध किया है कि पिताके वीर्य और माताके रज द्वारा त्रिगुण और त्रिभाव इन दोनोंका आकर्षण होता है। अतः जन्मका प्राधान्य वर्णधर्ममें है इसमें सन्देह नहीं। इस-

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लिए यह सर्वसम्मतिसे निश्चय हुआ कि अपने धर्मपर विश्वास करनेवाले सब वर्णोंको कर्मणा वर्णके सिद्धान्तका सर्वथा बहिष्कार करना चाहिये तथा जन्मना जाति व्यवस्थाको, जो पूर्व परम्परासे चली आ रही है, यथावत् मानना चाहिये, और इस सिद्धांतपर यदि कहींसे बाधा उपस्थित हो तो इसको तन मन-धनसे दूर करना चाहिये।

२—इस समय कुशिक्षा, कुसंग, कुशासन और कालधर्मके प्रभावसे वर्णधर्ममें बाहर और भीतर अनेक दुर्बलताएँ दिखायी पड़ रही हैं। इससे किसीको अधीर होनेकी आवश्यकता नहीं क्योंकि मीमांसा शास्त्रका यह सिद्धांत है कि जैसे एक ही आमका बीज प्रतिकूल देश और काल तथा वातावरणके प्रभावसे कहीं खट्टा फल देता है, कहीं उसके फलमें कीड़े पड़ने लगते हैं और कहीं वृक्ष न होकर लताके रूपमें परिणत हो जाता है; और जब वही बीज अनुकूल देश और वातावरण पाता है तब मीठा दोषरहित फल देता है। मीमांसाशास्त्रमें वर्णसंकर प्रजाके विषयमें अश्वतर अर्थात् खच्चरका उदाहरण दिया गया है। अश्वा माता और गर्दभ पिता इन दोके संयोगसे खच्चरकी उत्पत्ति होती है। खच्चरकी सृष्टि आगे नहीं बढ़ती। इससे मीमांसाशास्त्रने यह तात्पर्य निकाला है कि जिस जातिमें रजोवीर्य शुद्धिमूलक जन्मना वर्णव्यवस्था है वह जाति चिरजीविनी होती है, और जहां नहीं है वह जाति नष्ट हो जाती है। यही कारण है कि हिंदू जाति सैकड़ों आघात सहकर अबतक जिवित है और भविष्यमें जीवित रहेगी और प्रतिकूल वातावरण के हटनेपर तथा अनुकूल वातावरणके उदय होनेपर वर्णधर्म पुनः अपने स्वाभाविक रूप में दिखाई देने लगेगा। जैसे एक ग्रहकी दशामें दूसरे ग्रहकी अन्तर्दशा उपस्थित होती है। उसी प्रकार एक युगमें भी अन्य युगोंका प्रभाव बीच बीचमें हुआ करता है। कलियुगकी आयु ४३२००० वर्ष है। इसमें अभीतक केवल ५०४८ वर्ष ही बीते हैं। आगे सत्य, त्रेता आदि युगोंकी अन्तर्दशामें अच्छे समयका उदय अवश्य होगा। किसीको अधीर होनेकी आवश्यकता नहीं।

भारतमें सच्चा प्रजातन्त्र स्थापित हो।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल का निश्चय।

(१८ दिसम्बर सन् १९४७ को श्रीभारतधर्ममहामण्डल की मन्त्रिसभा में कई महत्वपूर्ण बातें निश्चित हुईं। सार्वजनिक उपयोगिता के विचार से यहाँ चौथा निश्चय प्रकाशित किया जाता है। अखबारों में कांग्रेस के नेतृवृन्दों की विशेषतः माननीय नेहरूजी की संक्षिप्त कार्यनीति प्रकाशित हुई है, उस सम्बन्ध में श्रीभारतधर्ममहामण्डल की मन्त्रिसभा अपनी सम्मति प्रकाशित करना उचित समझती है।)

(क) राजशक्ति और प्रजाशक्ति—वैदिक-दर्शनशास्त्र का यह सिद्धान्त है कि रजोगुण आकर्षणमूलक है और तमोगुण विकर्षणमूलक है और दोनों का जहाँ समन्वय होता है वहाँ सत्त्वगुणमूलक धर्म का उदय होता है। यही धर्मशक्ति ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी से लेकर जड़ और चेतनात्मक सारे विश्व को धारण करती है, इसी कारण इसको धर्म कहते हैं। राजनीति में यही धर्मशक्ति यदि यथावत् रूप से प्रयुक्त होती है तो राज्य का सम्यक् मङ्गल होता है। राज्य में भी दो शक्तियाँ हैं—यथा राजशक्ति और प्रजाशक्ति। जहाँ दोनों का ठीक मेल रहता है वहीं रामराज्य का उदय होता है। भगवान् रामचन्द्र के राज्य में राजशक्ति और प्रजाशक्ति का पूर्ण समन्वय था। वाल्मीकीयरामायण

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसका मुक्तकण्ठ से प्रमाण दे रहा है कि भगवान् रामचन्द्र के राज्य में राजशक्ति और प्रजाशक्ति का पूर्ण समन्वय था। इसका पूर्ण अनुकरण होना तो इस समय कठिन ही है। किन्तु उसका कुछ अंश भी जिस राज्य में प्रकट होता है वहाँ अवश्य ही सब प्रकार से मङ्गल होता है। इस समय राजाओं की ऐसी अवनति हुई है कि जिससे राजतन्त्रशासन का एक बार ही अभाव पृथ्वी पर हो रहा है। जहाँ कहीं नियन्त्रित राजशासन-प्रणाली प्रचलित है और प्रजा की मण्डली द्वारा राजशासन और प्रजाशासन दोनों का समन्वय होता रहता है, जैसा कि कुछ दिनों तक वृटिश जाति में था, वहाँ अवश्य मङ्गल होता है। वृटिश राज्य ऐसा समृद्धिशाली था कि अन्य राष्ट्र उससे डरते थे और उस राज्य में भगवान् सूर्य कभी भी अस्त नहीं होते थे। काल की दुर्दमनीय गति से और अपने कर्मों के फल से वृटिश जाति अत्यन्त दुर्बल हो गयी है। राजतन्त्रशासन हिन्दुस्तान में पुनः इस समय प्रचलित नहीं हो सकता। इस कारण प्रजातन्त्रशासन (डिमोक्रेसी) का ही प्रचार भारतखण्ड में होने से राजशक्ति और प्रजाशक्ति दोनों में समन्वय भी होगा और कल्याण भी होगा।

(ख) धर्ममें हस्तक्षेप न हो—भारतखण्ड की वर्तमान राजनीति के परिचालन में नेतृवृन्दों को सजग होकर ध्यान देना अवश्य चाहिये। राजनीति का दायरा वहीं तक रखा जाय जहाँ तक प्रजा का उत्तम शासन हो, उसको पूर्ण न्याय प्राप्त हो, प्रजा को सब प्रकार से शान्ति और सुख की प्राप्ति हो। प्रजा को अच्छी शिक्षा मिले। परन्तु उस अच्छी शिक्षा के प्रचलन में पुरुष-शिक्षा और नारी-शिक्षा का अलग अलग प्रबन्ध रहे, क्योंकि भगवान् ने उनको अलग अलग बनाया है। राज्य की रक्षा के लिए सेना आदि का उत्तम आयोजन हो। प्रत्येक व्यक्ति का एक एक वोट हो, जिससे सब लोग यह अनुभव कर सकें कि हम प्रजातन्त्र के अंग हैं। राज्यशासन-व्यवस्था निरपेक्ष हो, जिससे किसी को पक्षपात का सन्देह भी न हो सके। परन्तु दूसरी ओर चाहे बड़े समूह का धर्म हो, चाहे छोटे समूह का, राजनीति के बहाने किसी के धर्म में अथवा धार्मिक आचरणों में किसी प्रकार से भी हस्तक्षेप न किया जाय। जैसे हिन्दू धर्म के अनुसार देव-मन्दिरों में पूर्वपरम्परा के अनुसार जैसी व्यवस्था है, राजनीति के बहाने उसमें बाधा पहुंचाकर देवापराध करना अत्यन्त अनुचित होगा। हिन्दुशास्त्र में शुद्धाशुद्ध विवेक का अधिकार इतना विस्तृत है कि हमारी माताएँ, बहिनें और कन्यायें भी थोड़े समय के लिए अस्पृश्य हो जाती हैं। हिन्दू शुद्धाशुद्ध विवेक के अनुसार सब अंग समान होने पर भी नाभि से नीचे और नाभि से ऊपर में बहुत अन्तर माना जाता है और उनमें स्पर्शास्पर्श विवेक माना जाता है। इस प्रकार के स्पर्शास्पर्श विवेक को नेतृवृन्दों को हटाने के लिये अनुचित प्रयत्न नहीं करना चाहिए। राजनीतिक नेतृवृन्द केवल इतना कह सकते हैं कि राज्य के राजनीतिक दायरे के अन्दर जो कार्य होंगे, उनमें स्पर्शास्पर्श विवेक या शुद्धाशुद्ध विवेक तथा जाति भेद नहीं रखा जाय। ऐसा होने से राजनीतिक अनुशासन में बाधा नहीं होगी और किसी धर्म-सम्प्रदाय पर अत्याचार नहीं होगा। देश में सुख-शान्ति की अभिवृद्धि होगी।

सनातन धर्म व्यवस्था (२)

(३) यवनादिविधर्मियों का हिन्दुधर्म में प्रवेश पर विचार—भारतीय क्षत्रिय ही आर्यावर्त से बाहर जाकर ब्राह्मणों के सम्पर्काभाव से अनार्य बन गये हैं। जिस प्रकार प्राचीन काल में प्रायश्चित्तादि द्वारा अनार्यों का आर्यधर्म में प्रवेश हुआ था, वैसा इस समय भी होना चाहिये। मनुस्मृति, महाभारत और भविष्यपुराण के अनेक प्रमाण इस विषय में सूर्योदय वृश्चिक

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संक्रान्ति के संस्कृत संस्करण में उद्धृत हैं। जिनके भावार्थ ये हैं—"भारतखण्ड के भीतर तथा बाहर जो पौण्ड्र, औण्ड्र, द्राविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद और खश प्रभृति जातियाँ हैं, ब्राह्मणों से सम्पर्क हट जाने के कारण धीरे धीरे पतित हो गयी हैं।" (मनु के दशमाध्याय के ये वचन हैं) इसी आशय के वाक्य महाभारत के अनुशासन पर्व में भी आये हैं। और पुनः इसी प्रसङ्ग में महाभारत के अनुशासन पर्व में इस आशय के प्रश्न वचन हैं कि—"आर्यों द्वारा शुद्ध किये गये विधर्मी लोग कौन धर्माचार किस प्रकार करेंगे" इसके उत्तर में वहाँ ही कहा गया है कि, "माता पिता की शुश्रूषा, आचार्य गुरु एवं आश्रमवासी साधु संन्यासी गण की सेवा, पुराण धर्मशास्त्रों में कहे गये हिन्दू आचार विचारों का पालन करना, पुण्यपर्वों में दान देना, अपने कल्याणार्थ अधिकारोचित यागानुष्ठान कर उसकी दक्षिणा देना इत्यादि"। भविष्य पुराण में आया है कि महर्षि कण्व ऋषि ने सरस्वती की आज्ञा से मिश्र देश में जाकर उन लोगों से सरस्वती की आराधना करायी। पाँच वर्ष के बाद—सरस्वती के प्रसन्न होने पर उनमें कुछ को शूद्र वर्ण में रखा, जो लोग शिल्प प्रभृति कार्य करते थे। उनके बहुत सन्तान हुए। और कुछ जो वाणिज्य प्रभृति वैश्यवृत्ति करते थे वे करीब दो हजार के वैश्य हो गये। उनमें पृथु नाम का जो एक व्यक्ति था, जिसने १२ बारह वर्ष की तपस्या से जब कण्व जी को प्रसन्न कर लिया तब उन्होंने उसको उनके राजा बनाकर "राजपूत" पद दे दिया। इत्यादि तथा—अब भी आसाम प्रान्त (कामाक्षापीठ) में अनार्यवन्य जातियों को धर्मव्यवस्था द्वारा प्रायश्चित्त कराकर शुद्ध किया जाता है, वह प्रत्यक्ष प्रमाण भी उपलब्ध है। इन बातों से यह सिद्ध होता है कि, आपद्धर्मानुसार उन अनार्यों को जो हिन्दूधर्म में प्रवेश चाहते हैं, शास्त्रीय प्रायश्चित्त अथवा तदनुकल्पादि से शुद्धकर हिन्दूधर्म में प्रवेश शास्त्रसंमत है और उनका नाम धर्मपूत होना उचित है। सनातन धर्म की प्राचीन तथा प्रधान अखिल भारतीय महाधर्मसभा श्री भारत-धर्म-महामण्डल के ब्राह्मीभूत स्वामी श्री दयानन्दजी महाराज एवं सनातन धर्म के स्तम्भभूत महामहोपाध्याय व्याख्यानवाचस्पति पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी प्रभृति भारत के विभिन्न प्रान्तों के गण्यमान्य अनेक विद्वानों ने प्रायः म्लेच्छभावापन्न मलकानों को पुनः संस्कारपूर्वक आर्यक्षत्रियधर्म में अधिकृत किया था। उस घटना को हुए करीब बीस वर्ष हो रहे हैं। उस समय स्वर्गीय दरभंगाधीश्वर महाराजाधिराज श्रीरमेश्वर सिंह जी महोदय के सभापतित्व में काशी के समस्त गण्यमान्य विद्वानों ने इस कार्य का एक स्वर से समर्थन किया था। रामानुज सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य स्वर्गीय श्रीमान् अनन्ताचार्य जी महाराज ने संवत् १९८२ की "मञ्जुभाषिणी" संस्कृत पत्रिका में मुसलमान आदि विधर्मियों को शुद्धकर हिन्दूधर्म में प्रवेश की आज्ञा दी है। शारदापीठाधीश्वर ब्राह्मीभूत पूज्यपाद शंकराचार्य श्रीमाधव तीर्थ महाराज ने आज से तीस वर्ष पहले एक आज्ञापत्र प्रकाशित कर यवनों को हिन्दूधर्म में 'धर्मपूत' नाम से प्रवेश की आज्ञा दी है। काशी तथा भारतवर्ष के अनेक गण्यमान्य विद्वानों के नाम से मुद्रित कई व्यवस्थायें यहां सुरक्षित हैं। अतः भारतखण्ड या भूमण्डल में रहनेवाली समस्त आर्यधर्मेतर यवनादि म्लेच्छ जातियों को यदि वे हिन्दुधर्म में निष्ठा प्रकट करें तो प्रायश्चित्तादि द्वारा आर्यधर्म में दीक्षित करना उचित है। ऐसे लोगों की व्यवस्था भविष्यपुराणोक्त राजपूत की तरह 'धर्मपूत' नाम से हो सकती है। इस समय भारतखण्ड में ईसाई मुसलमान बने हुए अनेक व्यक्ति हैं जिनमें ब्राह्मण क्षत्रिय आदि अपनी अपनी जातियों के चिन्ह अभी तक विद्यमान पाये जाते हैं और जिनका रजोवीर्य शुद्ध है। ऐसे लोगों का शीघ्रातिशीघ्र प्रायश्चित्त पूर्वक अपने अपने वर्णधर्म में प्रवेश

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शास्त्रसंमत है। रुधिरसांकर्य को प्राप्त हुए विधर्मियों को प्रायश्चित्तपूर्वक शुद्ध और संस्कृत कर राजपूत की तरह धर्मपूत जाति में प्रवेश अशास्त्रीय नहीं होगा।

शास्त्रों में अनेक प्रकार की सृष्टि का वर्णन पाया जाता है। जैसे देवदेवियों के संयोग से उत्पन्न ऋषि देवता-पितरों की सृष्टि, दैवमानवी समागम प्रादुर्भूत पञ्च पाण्डवादि सृष्टि, मनुष्य देवीसंगम-संभूत भीष्म शकुन्तलादि सृष्टि एवं मानव-मानवी-सहयोग संजात अस्मदादि मनुष्यसृष्टि, इत्यादि। मानव सृष्टि में अपने वर्ण की स्वपत्नी से जायमान सन्तति धार्मिक होती है। विवाह में सवर्णा प्रशस्त होने पर भी वैवाहिक संस्कार द्वारा समुत्पादित अनुलोमज प्रजा भी धार्मिकी ही मानी गयी है। किन्तु उसको माता की जाति प्राप्त होती है। विलोमज सन्तति वर्णाश्रमभ्रष्टकारिणी होने से धर्मानुकूल नहीं है। "शूद्र के लिये शूद्रा कन्या, वैश्य के लिये शूद्रा तथा वैश्य कन्या दोनो, क्षत्रिय के लिये शूद्रा, वैश्यकन्या एवं क्षत्रिय कन्या तीनों, ब्राह्मण के लिये शूद्रा, वैश्यकन्या और क्षत्रियकन्या एवं ब्राह्मण कन्या चारो वर्णों की कन्याओं से विवाह किया जा सकता है। (मनुस्मृति) तथा 'नीच कुल से भी स्त्रीरत्न लिया जा सकता है" इत्यादि स्मृति वचनों के अनुसार अनुलोमज सन्तान का मातृवर्ण में अधिकार शास्त्रसंमत माना गया है। एतद्विरोधी कलिवर्ज्य प्रकरण के विषय में ऐसी व्यवस्था करना उचित है कि कलियुग के प्रारम्भ में कुछ विद्वानों ने देशकाल के अनुसार शास्त्र प्रतिपादित अनेक आचारों का जैसे निवर्तन किया था, उसी प्रकार आपद्धर्मानुसार देशकाल पात्र का विचार कर उसमें से कुछ शास्त्रीय आचारों का प्रवर्तन भी सम्भव हो सकता हैं। "अनार्य-कन्याओं में आर्य पुरुषों के द्वारा उत्पादित संतति आर्य कहलाती है" मनुस्मृति की इस आज्ञा के अनुसार इस समय भी हिन्दू धर्म की पवित्र शरण में आई हुई म्लेच्छ यवनादि जाति की कन्याओं के सम्पर्क से आर्य पुरुषों के द्वारा समुत्पन्न सन्तान राजपूत की तरह धर्मपूत हिन्दू हो सकती है। यह शास्त्रसंमत है। क्योंकि ऐसी सन्ततियों का धर्ममार्ग में अभ्युदय हो सकेगा। सनातनधर्म शास्त्रों का समन्वय यह है कि हिन्दूजाति की रजोवीर्यशुद्धि और जन्मना वर्ण व्यवस्था में किसी प्रकार की बाधा न हो।

४—विधवा का पुरुषान्तर परिग्रह विचार—मन्वादिशास्त्रों में विधवा का पुरुषान्तर ग्रहण निषिद्ध है। इसलिये उनकी दिव्या और तपस्विनी ये दो श्रेणियां शास्त्रों में प्रशस्त मानी गयी हैं। जो मृत पति का सहगमन करती हैं वे त्रिलोकवन्द्य देवियां दिव्या कही जाती हैं। जो पति के मरने पर ब्रह्मचर्यादि नियमों का पालन करती हुई जीवन बिताती हैं वे हिन्दुजातिको पवित्र रखने वाली तपस्विनी कही जाती हैं। ये दोनों श्रेणियों की त्रिलोकपावनी आर्यमहिलायें हिन्दुजाति को पवित्र करनेवाली हैं। उनका आदर्श हिन्दूसमाज में सदा बना रहना चाहिये। जिन जिन कारणों से हिन्दुजाति चिरजीविनी है, उनमें आदर्श सती-धर्म एक प्रधान कारण है। आज कल के दूषित वातावरण की पर्यालोचना करने पर तथा शतशः साधक बाधक शास्त्रीय प्रमाणों की आलोचना से आपत्कालानुसार विधवाओं की एक अधम श्रेणी भी शास्त्रसंमत प्रतीत होती है। जो पति से वियुक्त होने पर अपने गुरुजनों की आज्ञा से दूसरे समान वर्ण पुरुषको वरण करलेती हैं वे कामपरायणा अधम श्रेणी की नारी कही जाती हैं। इस अधम श्रेणी की विधवाओं, उनके पतियों, तथा उनकी सन्तानों के साथ तत्तद्वर्णोचित सामाजिक व्यवहार होना चाहिये, किन्तु द्विजाति में उनकी विशेष श्रेणी रखना उचित है।

५—सगोत्रविवाह निषेध—सगोत्रविवाह वर्णाश्रम श्रृंखला की जड़ पर ही कुठाराघात करने वाला है। इसके होने से आर्य जाति अन्तर्जगत् के देवता ऋषि पितरों की सहायता न

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पाकर अनार्य बन जायगी, यह दार्शनिक सिद्धान्त है। अतः इससे बचने के लिये ब्राह्मण मात्र को दृढ़ रहना चाहिये। इस विषय को जो न मानें, उन्हें सामाजिक दण्ड देते हुए अपने अपने वर्ग को विशुद्ध रखना चाहिये। क्षत्रिय, वैश्य आदि भी प्रायः अपने अपने कुल पुरोहित के गोत्र से गोत्री कहलाते हैं। अतः विवाह में गोत्र का विचार सभी के लिये आवश्यक है ऐसा शास्त्रनिर्णय है। गोत्र प्रवर सम्बन्धीय व्यवस्था सूर्योदय के संस्कृत संस्करण में विस्तृत रूप से प्रकाशित द्रष्टव्य है।

६—विवाहविच्छेद निषेध—विवाह विच्छेद सर्वथा अशास्त्रीय है। हिन्दुओं में विवाह सम्बन्ध एक पवित्र दानयज्ञ है। वह अग्नि आदि देवताओं को साक्षी देते हुए विशेष प्रतिज्ञा के साथ किया जाता है। पतिस्त्रीका सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तर में भी बना रहता है। इस सम्बन्ध में पारलौकिक विज्ञान निहित है। अतः इसका विच्छेद असंभव है। पाश्चत्य अनार्यरीति के अनुसार आजकल हिन्दूसमाज में भी जो विवाह-विच्छेद प्रथा चलाना चाहते हैं, वे पवित्र हिन्दू सामाजिक व्यवस्था पर कुठाराघात करना चाहते हैं। इस प्रथा का विरोध भारत में सामाजिक दण्ड विधान आदि के द्वारा सदासे चला आता है।

इन्द्रियसंयम स्त्री पुरुष दोनों के लिये उत्तम है। स्त्री या पुरुष कोई भी विवाहविच्छेद नहीं कर सकता। किन्तु पुत्रादि सन्तान के अभाव में पुरुष पुनर्विवाह का अधिकारी माना गया है। किन्तु प्रथम स्त्री को भरण पोषणादि द्वारा प्रसन्न रखना उसका प्रधान कार्य है।

७—कन्या विवाहकाल—सभी हिन्दूधर्मशास्त्र एक वाक्य होकर यह निश्चय करते हैं कि रजोदर्शन से पहले कन्याओं का विवाह हो जाना चाहिये। दूसरी बात यह निश्चय करते हैं कि पुरुषों के लिये तो कथञ्चित् दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्यव्रत संभव है, परन्तु नारी जाति के लिये तो दीर्घकालीन ब्रह्मचर्य बिल्कुल प्रशस्त नहीं है। किन्तु आजकल अनेक कारणों से कुलीन हिन्दू अभिभावक भी बड़ी उमर में, जिसका शास्त्र समर्थन नहीं करता, अपनी कन्याओं का विवाह करने लगे हैं तथा कतिपय कुमारियां दीर्घकालीन ब्रह्मचर्य पालन करने लगी हैं। ये दोनों कार्य शास्त्र-विरुद्ध है। अतः इस आपत्काल में सतीत्वसंस्कार की रक्षा के लिये रजोदर्शन के पहले शास्त्रीय वाग्दान प्रथा को सुदृढ़ करना चाहिये। वाग्दान शास्त्रोक्त प्रथा है और प्राचीन काल से चली आ रही है। आजकल यह प्रथा सगाई नाम से प्रसिद्ध है। अतः भारतखण्ड की नारी जाति के सब प्रकार के मंगल के लिये तथा त्रिलोक पवित्रकारी सतीत्वधर्म की रक्षा के लिये इस पवित्र वाग्दान प्रथा को दृढतापूर्वक स्थायी रखा जाय। विवाह चाहे अधिक उमर में हो, परन्तु इस प्रथा के द्वारा पति दुर्ग से स्त्री जाति को सुरक्षित कर देना नितान्त आवश्यक है। अतः वाग्दान की विधि दृढतया प्रचारित करना चाहिये। इस प्रकार से हिन्दू अभिभावक अपने उत्तरदायित्व का पालन करते हुए पापमुक्त हो सकते हैं।

(८) समुद्रयात्रा विचार—"समुद्रयात्रास्वीकारः कमण्डलुविधारणम्। द्विजानामसवर्णासु कन्यासूपयमस्तथा"॥ इत्यादि कलिवर्ज्यप्रकरण में समुद्रयात्रा शब्द का अर्थ अनेक प्राचीन विद्वान् ऐसा मानते हैं कि 'महापातकी लोग प्रायश्चित्तार्थ समुद्र में जाकर प्राण विसर्जन किया करते थे'। भृगुपतन (पर्वत से गिरना) तुषानल प्रवेश (भूसे की अग्नि में जलना) हिमालय यात्रा (पाण्डवों की तरह हिमालय में जाकर गल जाना) आदि अन्यान्य प्रायश्चित्तों की तरह समुद्रयात्रा का (समुद्र में जाकर प्राण देना इस प्रायश्चित्त का) भी पूर्वाचार्यों ने इस कलियुग में निषेध कर दिया है, ऐसा उस वाक्य का तात्पर्य मानते हैं। जो समुद्रयात्रा का अर्थ विदेशयात्रा मानते हैं, वे अपने इस सिद्धान्त को सदाचारी

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मज्ञानी आदर्श ब्राह्मणपरक मानें, तो कथंचित् संगत हो सकता है। क्योंकि सदाचारी आदर्श ब्राह्मण को अपने पवित्र देश को छोड़ना कदाचित् उचित नहीं हो सकता। किन्तु आवश्यकता के अनुसार कोई द्विज विदेश जाय और अपने आचार विचार की रक्षा करे तथा लौट आने पर शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त करे तो समाज वहिष्कृत नहीं किया जाना चाहिये और जो द्विजेतर हिन्दू अर्थ काम के लिये अनार्य देशों में जायँ तो उन्हें लौटकर शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त करके अपनी तथा आध्यात्मिक उन्नतिशील जाति की मर्यादा सुरक्षित रखनी चाहिये। वायुयान, धूम्रयान, पोतयान आदि में जाते हुए ब्राह्मणादि हिन्दू सन्ध्योपासनादि नित्य कर्म मानसिक भी कर सकते हैं। ऐसा करने से वे पाप में लिप्त नहीं हो सकते।

(६) पीठ के संस्कारविरुद्ध देव मन्दिर प्रवेश— जैसे मनुष्य के अलग अलग संस्कार होते हैं, वैसे ही पीठाभिमानी देवताओं के भी संस्कार भिन्न भिन्न होते हैं। जैसे मनुष्यों के संस्कार विरुद्ध कार्य करने से उन्हें क्लेश होता है, वैसे ही पीठाभिमानी देवों के संस्कार विरुद्ध कार्य होने से उन्हें क्लेश पहुँचता है। दैवीशृङ्खला में धक्का लगने से देश जाति और व्यक्ति सबका अमङ्गल होता है। यही मीमांसाशास्त्र का सिद्धान्त है। जिस पीठ में पहले से शुद्धाशुद्ध विवेक की शिथिलता है, वहां कोई विचार नहीं है। परन्तु जहाँ इसकी दृढ़ता है वहाँ बलपूर्वक इसको तोड़ना नहीं चाहिये। यही मीमांसा शास्त्र का सिद्धान्त है। नये देवपीठ संस्थापित करते समय कर्ता चाहे जैसा संस्कार देवपीठ में करा सकता है। दूसरी ओर साम्प्रदायिक मत है कि "यथा रसविधानेन कांस्यं याति सुवर्णताम्, तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्" अर्थात् जैसे रसप्रयोग से कांस्य सुवर्ण बन जाता है, वैसे ही दीक्षा के विधान से मनुष्य द्विजत्व को प्राप्त करता है। जो तप्तमुद्रा आदि पञ्च-संस्कारों से संस्कृत हैं, वे अन्त्यज भी स्पृश्य हैं, और तद्विपरीत ब्राह्मण भी अस्पृश्य हैं, यह वैष्णव सिद्धान्त है। श्रीरामानुज सम्प्रदायाचार्य प्रतिवादि भयङ्कर श्री अनन्ताचार्य विरचित 'प्रपन्नचरितामृत' में इन बातों का सविस्तर वर्णन पाया जाता है। अतः शैव वैष्णव शाक्त सौर और गाणपत्य इन पांचो वैदिक सम्प्रदायों में किसी एक साम्प्रदायिक मन्त्र से दीक्षित सदाचारपरायण अन्त्यज देवदर्शन का अधिकारी है, ऐसा शास्त्र कहता है। हिन्दू धर्म को मानने वाले, भगवन्नाम परायण ऐसे अन्त्यज नर-नारी मात्र उन उन देवपीठों की संस्कार परम्परा की रक्षा करते हुए देव प्रतिमा दर्शन के अधिकारी हैं। रामेश्वर और विन्ध्यवासिनी आदि पीठों की अलग २ स्पर्शमर्यादा है। उसे सुरक्षित रखना सनातनधर्म मानने वालों का प्रधान कर्तव्य है। ऐसा न करने से दर्शनार्थियों का अमङ्गल होना और दैवीपीठ शक्ति का ह्रास होना अत्यन्त संभव है।

इस आपत्काल में जिस किसी देव मन्दिर की पूर्व परम्परागत स्पर्शमर्यादा का किसी विशेष कारण से भंग होने लगे, तो किसी स्वतन्त्र निर्धारित समय में, जब कि वहाँ कोई दूसरा प्रवेश न कर सके, शास्त्रोक्त शुद्धि सम्पादन पूर्वक प्रतिदिन उस देव प्रतिमा का पूजन होना चाहिये। सर्वसाधारण के प्रवेश के समय प्रतिमाधिष्ठात्री देवता से क्षमा मांगते हुए मन्दिर का द्वार खोल देना उचित है। वस्तुतः देवप्रतिमा-मार्जन, प्रोक्षण पूजनादि कार्यों के लिये जो नियुक्त है, उनके अतिरिक्त किसी सर्वसाधारण ब्राह्मण आदि का भी श्रीकाशीविश्वनाथादि देवपीठ स्पर्श का अधिकार देश काल पात्रादि विचार से शास्त्र-संमत नहीं है।

———

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आपद्धर्म का सहारा।

स्वधर्मपालन के लिये वर्तमान देश, काल, पात्र बहुत ही उलझन का हो रहा है। विशेषतः कुशिक्षा, कुसंग से धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक नेतृवृन्द की दृष्टि प्रायः धर्म और मोक्ष से एक बार ही हटकर अर्थ और काम की ओर लगी हुई है। ऐसी विपत्ति के समय में हिन्दुजातिके स्वधर्म पालन के विषय में आपद्धर्म की सहायता लिये विना आत्मरक्षा नहीं हो सकती। सनातनधर्म सर्व जीव हितकारी है। उसकी प्रधान १६ कलाएँ हैं। यथाः—(१) सदाचार, उसकी प्रधान और प्रथम कला है। मीमांसा शास्त्र कहता है, 'कि षोडशकलः आर्यधर्मः पूर्णचन्द्रवत्।' 'तत्र प्रथमः सदाचारो व्यापकत्वात्' (२)—उसका दूसरा अङ्ग सद्विचार है। शास्त्र कहता है,—' सद्विचारो द्वितीयार्यजातेः शिखासूत्रधारित्वात्।' अर्थात् आर्य धर्म की द्वितीय कला सद्विचार है। क्योंकि आर्यजाति शिखासूत्रधारी है। सद्विचार के महत्व के विषय में उक्त शास्त्र में कहा है,—शिखा देवमन्दिरस्य यज्ञसूत्रं त्रिविधभावशुद्धेः'। अर्थात् शिखा के कारण आर्य जाति का उत्तमाङ्ग देवमन्दिर समझा जाता है और आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक त्रिविध भाव शुद्धि के लिये आर्य जाति तीन गुणका यज्ञोपवीत धारण करती है। इन दोनों में सद्विचार अन्तःकरण का धर्म है और सदाचार प्रधानतः शरीर से सम्बन्ध रखता है। सद्विचार ठीक रखने के विषय में कोई बाहरी शक्ति बाधा नहीं दे सकती। परन्तु सदाचार, जो शारीरिक व्यापार से अधिक सम्बन्ध रखता है, उसमें देश, काल, पात्रानुसार अधिक बाधाएँ हो सकती हैं। इस कारण आपद्धर्म के अनुसार,—

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं सबाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

इस मन्त्र की अथवा मानस याग की सहायता से, साधक अपने स्वधर्म की रक्षा सब देश, काल, पात्र में कर सकता है। (३) वर्ण धर्म आर्य धर्म की तीसरी कला है। इसीलिये आर्य जाति त्रिविध भाव शुद्धि से पूर्ण है। इस जाति में रजोवीर्य की शुद्धि होने से यह चिरजीविनी है। रजोवीर्य की शुद्धि होने के कारण इसमें रूपान्तर होने की सम्भावना नहीं है। अतः इसमें जन्म से ही जाति मानना आवश्यक है। (४) सतीत्वधर्म आर्य धर्म की चौथी कला है। क्योंकि आर्य महिलाएँ नारीधर्म से पूर्ण समझी जाती हैं और वे त्रिलोक को पवित्र करने वाली होती हैं। रजोवीर्य शुद्धि मूलक वर्ण धर्म और त्रिलोक पवित्रकारी सतीत्व धर्म ही आर्य धर्म के मूल आधार स्वरूप हैं। (५) आश्रमधर्म उसकी पांचवीं कला है। यह प्रवृत्ति धर्म और निवृत्ति धर्म दोनों से पूर्ण हैं। ब्रह्मचर्याश्रम में शास्त्रोक्त प्रवृत्ति के पालन की तैयारी विद्याभ्यास द्वारा सिखायी जाती है, गृहस्थाश्रम में शास्त्रोक्त प्रवृत्ति करायी जाती है, वानप्रस्थाश्रम में निवृत्ति सिखायी जाती है और संन्यासाश्रम में निवृत्ति करायी जाती है। इसीसे आश्रमधर्म में जीवन्मुक्ति पदका उदय होता है। (६) दैवजगत् की शरण लेना, आर्य धर्म की छठीं कला है, इस कारण आर्यजाति पूर्ण आस्तिक है और इसी से ऋषिसंघ, देवसंघ और पितृसंघ, तीनों का इस पर अनुग्रह रहता है। (७) इसकी सातवीं कला अवतार निष्ठा है। धर्म सामञ्जस्य के लिये अवतारोंका आविर्भाव होता है। गोस्वामी जी कहते हैं :—

जब जब होइ धर्मकी हानी।
बाढें अधम असुर अभिमानी॥
सीदहिं विप्र धेनु सुर धरणी।
करहिं अनीति जाय नहिं वरणी॥
तब तब प्रभु धरि विविध शरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अवतार निष्ठा के कारण ही आर्यावर्तरूपी भारतखण्ड निवासी आर्यजाति ही भगवान् के अवतारों की आविर्भावभूमि है। (८) योग और भक्ति से पूर्ण उपासना पद्धति उसकी आठवीं कला है। क्योंकि आर्य उपासना प्रणाली सर्वाङ्ग पूर्ण है। यह उपासना प्रणाली सबका हित करने वाली होने से सबके लिये अनुकरणीय है। इसके अङ्ग और उपाङ्ग पृथ्वीके सब धर्मों के सहायक होने के कारण विभिन्न धर्मावलम्बियों ने इसके कतिपय अङ्गोंको अपने धर्मों में सन्निविष्ट कर लिया है। (९) पीठ पूजा इसकी नवीं कला है। आर्य जाति भगवच्छक्ति पर विश्वास करती है। इसी विश्वास से सर्वव्यापक प्राणमय कोष में पीठकी स्थापना होती है। दैवीशक्ति के द्वारा पीठका आविर्भाव होता है और इसीसे आर्य जाति में मूर्ति आदि पीठों की उपासना प्रणाली प्रचलित है। (१०) शुद्धाशुद्धविवेक और स्पर्शास्पर्शविवेक, जो दैवीजगत् से सम्बन्ध कराने वाला है, इसकी दसवीं कला है। (११) यज्ञ और महायज्ञ पर विश्वास, आर्य धर्म की ग्यारहवीं कला है। (१२) वेद और शास्त्रों पर विश्वास इसकी बारहवीं कला है। वेद शब्द से और शास्त्र भाव से नित्य माने जाते हैं। (१३) संस्कारों और कर्मों पर श्रद्धा करना आर्य धर्म की तेरहवीं कला है। इन दोनों का सम्बन्ध बीजाङ्कुरवत् है। (१४) आवागमन चक्र और जन्मान्तर वाद पर विश्वास, यह आर्य जातिकी चौदहवीं कला है। विवाह संस्कार, दायभाग-व्यवस्था, श्राद्धकर्म और तर्पणकर्म इन चार व्यूहों से आर्य जातिका जन्म मृत्यु और परलोक गमन रूपी आवागमन चक्र सुरक्षित रहता है। (१५) श्रीपरमात्मा की निर्गुण और सगुण उपासना की व्यवस्था आर्य धर्म की पन्द्रहवीं कला है। (१६) आर्य धर्म पूर्ण होने के कारण जीव की मुक्ति प्राप्ति इसकी सोलहवीं कला है।

महाभारत जैसे शास्त्रीय ग्रन्थ में पूज्यपाद भगवान् वेदव्यास ने प्रमाणित कर दिया है कि, महाभारत के युद्ध के पूर्व पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण जैसे महावीर महापुरुषों पर असुरों का आवेश हो गया था। वे असुरावेश से ही अधर्म का पक्ष लेते थे। अपने घर की वहू को भरी सभा में वस्त्रहीन करने का जो घोर लज्जाजनक घृणित कार्य उस समय हुआ था यह सब आसुरी प्रेरणा का ही कार्य था। और पूर्णावतार भगवान् श्री कृष्ण ने अपनी अपूर्व दैवी शक्ति से महारानी द्रौपदी की लाज बचायी थी। वर्तमान घोर समय में सामाजिक नेता, तथा कथित धार्मिक नेता और राजनीतिक नेताओं में आसुरी प्रेरणा होना सम्भव है। कानून बना कर धर्म की जड़ काटने का प्रयत्न भी सम्भव है। इस कारण इस समय किस प्रकार से आपद्धर्मका आश्रय लेना चाहिये, इसके कुछ उदाहरणों से दिग्दर्शन करा दिया जाता है।

स्त्री जाति के रजोदर्शन होने के साथ ही साथ उसमें कामभाव का आ जाना सम्भव है। अतः कानून आदि के द्वारा रजोदर्शन के अनन्तर जब विवाह होना अनिवार्य हो तो रजोदर्शन से पहले वाग्दान नामक शास्त्रीय प्रथा, जिसको सगाई कहते हैं उस को दृढ़ किया जाय। विवाह चाहे जब हो, कोई हानि नहीं है। इस वाग्दान संस्कार से पतिदुर्ग के द्वारा कन्या सुरक्षित हो जायगी और उसके अपवित्र होने की सम्भावना नहीं रहेगी। स्पर्शास्पर्श विवेक और शुद्धाशुद्ध विवेक का सम्बन्ध मीमांसा शास्त्र में पंचकोशों की शुद्धि के द्वारा प्रबल दैवी जगत् से सम्बन्ध स्थापित करने के लिये बताया गया है। यदि बलपूर्वक इसको मिटाने का प्रयत्न हो तो ऐसा नियम बाँधा जाय कि, बहिराचार में शुद्धाशुद्ध और स्पर्शास्पर्श का विचार साधारण तौर पर राजनीतिक सम्बन्ध से न रक्खा जाय; परन्तु घर में आकर शास्त्रोक्त मार्जन करके स्वधर्म का पालन किया जाय। जलादि ग्रहण के विषय में शास्त्रोक्त मन्त्रादि द्वारा जलादि शुद्ध कर लिया जाय, जिससे संस्कार नष्ट न हो सके। देव-

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्दिरादि में उस मन्दिर के पूर्व संस्कार के विरुद्ध यदि अनाचार फैलाया जाय, तो एक ऐसा समय निर्धारित किया जाय, जब शुद्धाशुद्ध विवेक रख कर शास्त्रोक्त विधिसे पीठ की उपासना की जाय और तदन्तर पीठ से क्षमा मांगकर मन्दिर खोल दिया जाय। ऐसा होने से आपद्धर्म के अनुसार दैवीमर्यादा सुरक्षित रह सकती है। विधर्मियों द्वारा अत्याचार से पीड़ित नरनारियों के लिये विस्तृत व्यवस्था स्थानान्तर में प्रकाशित की गयी है, जो द्रष्टव्य है।

इस प्रकार इस घोर विपत्ति काल में किस प्रकार आपद्धर्म का सहारा लेकर आत्मरक्षा की जा सकती है, और प्रमाद से बचा जा सकता है इसका दिग्दर्शन कराया गया है। धर्मपरायण बुधजन के लिये यह दिग्दर्शन सहायक होगा। वे इन बातों को सदा ध्यान में रक्खें कि हमारे वेद और शास्त्र अपरिवर्तनीय हैं और स्थिर सिद्धान्तों से युक्त हैं। काल परिवर्तनशील है। इस कारण सामयिक परिवर्तन से चिन्तित या भीत न होकर दैवी सहायता पर विश्वास रख कर अपना कर्तव्य पालन करते रहें। मङ्गलमय भगवान् सर्वविध मङ्गल करेंगे।

आचार्यचरणों की सेवा।

वेद और शास्त्रों में बड़ों की सेवा की बड़ी महिमा गायी गयी है। सनातन धर्मियों का धर्मशास्त्र कहता है कि वृद्धों की सेवा द्वारा आयु, विद्या, यश और बल बढ़ता है। भगवान् मनु ने कहा है :—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।

जिस दिन से श्री भारतधर्म महामण्डल नियंत्रित हुआ और इसकी रजिस्ट्री मथुरापुरी में हुई थी, उसी समय से पूज्य आचार्य चरणों की सेवा की ओर इसकी दृष्टि बनी रही। जिस महाधिवेशन में ये सब शुभ कार्य हुए, उसमें शृंगेरी मठ के श्रीशंकराचार्य पूज्यपाद अभिनव सच्चिदानन्द नृसिंह भारती महाराज ने कुछ सुवर्ण मुद्राएं, एक आज्ञापत्र और अपना एक फोटो भेज कर श्रीमहामण्डल पर असीम कृपा प्रकट की थी और कहलाया कि, "धर्मयुद्ध में विजयी होने के लिये मैं महामण्डल को सेनापति रूप से नियुक्त करता हूँ। हमसे जो कुछ बना, वह मैंने किया है। श्री भगवान् आदि शंकराचार्य महाराज की जन्मभूमि का उद्धार कराया है। मेरी अंतिम इच्छा है कि उत्तरा खण्ड के ज्योतिष्पीठ का उद्धार हो। मैं उत्तर भारत में जाने में इस समय असमर्थ हूँ। मेरे शरीर की अवस्था और आचार इसके बाधक हैं। अतः मेरी इस इच्छा को महामण्डल पूरी करे। उनका सर्व विध मङ्गल होगा"। तब से श्री महामण्डल उनकी आज्ञा पालन में तत्पर रहता है और इसने ज्योतिष्पीठ का उद्धार भी किया है।

जबतक इस मृत्युलोक में वे विराजते रहे, नियमित कृपादृष्टि महामण्डल पर रखते थे।

श्री शारदापीठ के भूतपूर्व परमज्ञानी तपस्विवर शंकराचार्य राजराजेश्वराश्रम महाराज की बड़ी कृपा श्री महामण्डल के संचालक श्री जी पर थी। वे उत्तर भारत में जब दिग्विजय के लिये यात्रा करते थे, तब प्रायः सब स्थानों में श्री जी को अपने पास बुलाते और यात्रा कार्य में उनसे सहायता लिया करते थे। भूतपूर्व बड़ोदा के महाराजा सयाजी राव से उनका मतभेद रहा करता था। इस विषय में भी जो सेवा की आवश्यकता हुआ करती, श्री जी किया करते थे। उन्होंने बड़ी योग्यता से उत्तर भारत में सञ्चार किया और सब जगह उनको जयपत्र और

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये। उनके ब्रह्मीभूत होने के अनन्तर श्री शंकराचार्य श्री माधवतीर्थ महाराज गद्दी पर बैठे। उनकी भी पूर्ण कृपा श्री महामण्डल पर निरन्तर रही। तदनन्तर उनके ब्रह्मीभूत होने पर शंकराचार्य श्री शान्त्यानन्द महाराज गद्दी पर बैठे। वे काशी धाम में महामण्डल कार्यालय में भी पधारे थे। उन्होंने द्वारका में जब एक विशेष यज्ञ किया था, तब उनकी एक विशेष इच्छा के अनुसार श्री महामण्डल के प्रधान सभापति श्री महाराजाधिराज मिथिलेश तथा स्व० जनरल सेक्रेटरी (प्रधानाध्यक्ष) महामहोपदेशक धर्मरंजन पं० धूमावती प्रसाद पाण्डेय उस यज्ञ में सम्मिलित हुए थे। उस समय महामण्डल के श्री जी की ओर से विशेष प्रतिनिधि ब्रह्मीभूत श्री ब्रह्मचारी नर्मदानन्द महाराज भी वहां उपस्थित थे। उस समय आश्चर्यजनक रूप से श्री आचार्य प्रभु का देहावसान होने पर ब्रह्मचारी नर्मदानन्दजी की ही बुद्धिमत्ता से वहां का सब कार्य सम्हाला गया था। अब तो श्री विश्वनाथ जी की अपार कृपा से शारदापीठ पर जो आचार्य चरण विराजते हैं, वे सब प्रकार से योग्य हैं और उन्होंने अच्छी तरह सब कार्य सम्हाल लिया है। पीठकी सेवा के लिये जो उनकी आज्ञा होती है, महामण्डल उसका आनन्दपूर्वक पालन किया करता है।

पुरी के गोवर्द्धन पीठ के भूतपूर्व आचार्य प्रभु शंकराचार्य श्रीमधुसूदन तीर्थ महाराज एक असाधारण महापुरुष थे। उनकी सरलता, महत्त्व और दया का एक उदाहरण दिये बिना नहीं रहा जाता है। जब श्री महामण्डल का कार्यालय श्री मथुरापुरी में श्रीमान् सेठ साहब के बाड़े में था, वे एकाएक श्री महामंडल प्रधान कार्यालय में बिना किसी सेवक को साथ लिये एके पर चढ़कर पधारे और आकर श्री महामण्डल के श्री जी के पास ऐसी जगह विराज गये, जहां भक्तलोग बैठते थे। श्री जी ने उनका नाम पूछा, "आप कहां बिराजते हैं और क्या हैं? आप कहां से पधारे हैं"? बताने पर श्री जी ने पूछा,—"आप श्री शंकराचार्य तो नहीं हैं"? तब मुसकराये। श्री जी ने उठ कर उनका यथोचित सम्मान किया और उनकी असीम कृपा को जान लिया। उन्होंने विनम्र होकर कहा,—यह आपने क्या किया? हमें पधारने की पूर्व सूचना क्यों नहीं दी गयी? इसके अनन्तर जिस कोठी में राजा महाराजा उतरे थे, वहीं आपको बहुत दिनों तक ठहराया और पीठ की सेवा के उपयुक्त सब पदार्थ, कागज़ात, पद्धति सहित कागज पत्रादि वहीं बनवा दिये और सेवक आदिका भी प्रबन्ध करा दिया। तब से लेकर उनके ब्रह्मीभूत होने तक उनकी असीम कृपा महामण्डल पर बनी रही। उनके समय में पीठ का अभ्युदय जैसा हुआ और सम्राट् के दरबार में और जनता में जैसा मान हुआ, वह सबपर विदित है। उनके शरीरावसान के समय बहुत कुछ असुविधाएँ देख पड़ीं, तब भी महामण्डल अंत तक उनकी सेवा कार्य कराता रहा। उनके ब्रह्मीभूत होने के अनन्तर गोवर्धन मठ के कार्य में बहुत कुछ उथल पुथल हुआ। श्री स्वामी भारती कृष्ण तीर्थ महाराज कानूनी उलझनों के साथ पुरी की गद्दी पर बैठे, उनसे श्री महामण्डल को पहले से परिचय था। उनके गुरुदेव श्री स्वामी त्रिविक्रम तीर्थ महाराज अपनी पाठनावस्था में महामण्डल के प्रतिष्ठाता श्री जी महाराज के पास उदयपुर में रहते थे और पीछे महामण्डल कार्यालय काशी में भी रहा करते थे। उनको प्रभासपट्टन की गद्दी पर अभिषेक करके कैलासवासी शंकराचार्य श्री मधुसूदन तीर्थ महाराज ने बिठाया था। इस गुरुशिष्य परम्परा से श्री स्वामी भारती कृष्ण तीर्थ महाराज पुरी के गद्दी पर बैठे थे। वे अतिबुद्धिमान् और लौकिक कार्यों में निपुण हैं। घटनाचक्र से वे गद्दी छोड़कर चले गये और एक नवीन शिष्य को जिनको आचार्य के उपयोगी तजुर्बा नहीं है, गद्दी पर बिठा गये। श्री महामण्डल इस सन्धि में श्री भगवान् जगन्नाथ प्रभु के चरणों में प्रार्थना

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करता है कि अतिशीघ्र श्री स्वामी भारती कृष्ण तीर्थ महाराज इस समय श्री शंकराचार्य के सम्प्रदाय के चारों गद्दियों के मङ्गलार्थ अपनी नवीन शिष्य को नियमित सदुपदेश देवें और ऐसा उनको तैयार करें, जिससे इस समय जैसे और तीन मठों की व्यवस्था व्यवस्थित है और मर्यादा सुरक्षित है, ऐसे गोवर्धन पीठ में भी हो जाय। अब जो नये आचार्य उस गद्दी पर बैठे हैं, उनसे श्री महामण्डल आशा करता है कि वे अन्य तीन पीठों के आचार्य प्रभुओं से एक मत होकर धर्म की मर्यादा वर्णाश्रम शृङ्खला की मर्यादा और उस पीठ की मर्यादा की सुरक्षाकर हिन्दुजाति के इस दुर्दिन में अपना कर्तव्य पालन करते रहेंगे।

पूज्यपाद शृंगेरीपीठाधीश शंकराचार्य ब्रह्मीभूत श्री अभिनव सच्चिदानन्द नृसिंह भारती महाराज, गोवर्धन मठ के शंकराचार्य ब्रह्मीभूत पूज्यपाद श्री मधुसूदन तीर्थ महाराज, शारदापीठाधीश्वर शंकराचार्य श्री ब्रह्मीभूत पूज्यपाद माधवतीर्थ महाराज, इन तीनों पूज्य चरणों की विशेष आज्ञा के अनुसार श्री महामण्डल ने उत्तराखण्ड के ज्योतिष्पीठ का श्री विश्वनाथ जी की कृपा से उद्धार कार्य किया है। इस शुभ कार्य के लिये श्री महामण्डल के सञ्चालक श्री जी उत्तराखण्ड पधारे थे। आपने श्री महाराज टेहरी की पूर्ण सहायता से वनाकीर्ण ज्योतिष्पीठ को खोज निकाला। उस पीठ को खोज की साक्षी श्री भगवान् के हाथ का लगाया एक सहतूत का वृक्ष, दो ओर के दो झरने और ज्योतीश्वर जी का भग्न मन्दिर दे रहा था। परन्तु वह स्थान भालुओं का निवासस्थान बन रहा था। ज्योतिर्मठ संस्थान और टेहरी दरबार दफ्तर से कुछ कागजात प्राप्त किये गये और गढवाल के डिप्टी कमिश्नर मि० क्ले साहब, जो पीछे सर जेम्स क्ले हुए थे, उनकी बहुत सहानुभूति पूर्ण सहायता प्राप्त करके ध्वंसावशेष मठ की सब भूमि प्राप्त की थी। तदनन्तर अनेक तपस्या और खोज के बाद जब योग्य महापुरुष का दर्शन हुआ, तब रजिस्ट्री दस्तावेज द्वारा पीठ की वह सब भूमि ज्योतिष्पीठाधीश पूज्यपाद शंकराचार्य श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती महाराज के चरणों में अर्पण कर दी गयी है। पूज्यपाद ज्योतिर्मठाधीश प्रभु को सब हिन्दु राजन्यवर्ग, सब हिन्दुप्रजावर्ग और शंकर सम्प्रदाय के सब महन्त महाराजों ने एक वाक्य होकर मान लिया है। प्रभु की योग्यता से सब लोग बड़े आनन्दित हैं। उन्होंने पहले से ही एक ऐसा पट्टशिष्य तैयार किया है, जो श्री स्वामी करपात्रीजी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हैं और देश प्रसिद्ध धर्मसंघ जिनकी विभूति है। पूज्यपाद ज्योतिर्मठाधीश प्रभु की इष्टभक्ति और ऐश्वर्य का प्रमाण यह सब है। वर्ष दो वर्ष के अन्दर ही वनाकीर्ण ज्योतिष्पीठ का उन्होंने पूर्ण रूप से उद्धार कर डाला है और लाखों रुपया लगाकर बिना किसी से याचना किये पीठस्थान में पीठेश्वरी भगवती पूर्ण गिरि देवी का मन्दिर, मठ का मकान, धर्मशाला, संस्कृत पाठशाला आदि बनकर तैयार होगया है और पीठ की सेवा के लिये लाखों रुपया बंक में जमा भी हो गया है। भक्तलोग यह सब देख कर चकित हो जाते हैं कि यह सब चमत्कार इतनी जल्दी कैसे हो गया। शृंगेरी मठ के भूतपूर्व योगिराज शंकराचार्य प्रभुने आज्ञा की थी कि अब दैवी शक्ति का विकास ज्योतिष्पीठ में होगा, सो भगवान् का वचन अब सत्य हो रहा है और इस सत्यता का परिचय राजा और प्रजा को दिन प्रति दिन प्राप्त होता रहेगा ऐसा श्री महामण्डल का दृढ विश्वास है। चारों आचार्य प्रभु आपस में परामर्श करके भविष्य के लिये ऐसा नियम बांधे कि जिससे कोई पीठ उच्छिन्न न होने पावे, और किसी पीठ में वर्णाश्रम शृंखला के विरुद्ध कोई कार्य न होने पावे।

जैसे प्राचीन काल में था, वैसे ही प्रत्येक आचार्य प्रभु की ओर से स्थान स्थान में ब्राह्मण गृहस्थों के योग्य व्यक्तियों को पीठ का प्रतिनिधि

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बना दिया जाय। ऐसे सब पीठ प्रतिनिधि कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्ड के कार्यों में प्रजा को सहायता देवें, और मंत्र उपदेशादि देकर प्रजा को सन्मार्ग में लगावें। विवाह-संस्कार तथा और अन्यान्य संस्कार तथा श्राद्धादि पारलौकिक कृत्यों के समय प्रजा के साथ सहयोग देवें। और पीठ के विद्या प्रचार कार्य के लिये यथा संभव आर्थिक सहायता संग्रह करके पीठ के कार्यकर्ताओं के पास भेज देवें। ऐसा होने पर पीठकी शृंखला दृढ रहेगी, अपने अपने अधिकार के पीठों में और अन्य स्थानों में धार्मिक शिक्षा विस्तार की सुविधा होगी। इस प्रकार से पीठ मर्यादा सुरक्षित रह कर हिन्दू प्रजा का कल्याण होगा। ऐसी श्री महामण्डल आशा करता है।

श्री शारदा-पुस्तकालय।

श्री भारतधर्म महामण्डल प्रधान कार्यालय का भवन काशी पुरी के मध्य भाग में एक सुप्रसिद्ध चौराहे पर स्थित है। उसमें कई अलग अलग भवन हैं और प्रशस्त यज्ञमण्डप भी है। मध्यभाग के विशाल भवन के नीचे के भाग में श्री महामण्डल का प्रधान कार्यालय, धार्मिकाध्यात्मिक विश्वविद्यालय का कार्यालय आर्यमहिला महापरिषद् का कार्यालय, आर्यधर्म प्रचारिणी सभा का कार्यालय, सूर्योदय कार्यालय, श्री अन्नपूर्णादान भण्डार कार्यालय आदि कार्यालय हैं और उपदेशक महाविद्यालय, कृष्णानन्द वेद-विद्यालय आदि संस्थाएँ हैं। इसी प्रधान भवन के ऊपरी भाग में श्री शारदापुस्तकालय और चित्रालय स्थापित है। कलकत्ता हाईकोर्ट के जज कैलासवासी श्री शारदाचरणमित्र महाशय महामंडल के बड़े भक्त थे और देहान्त तक इसके प्रधान मन्त्री रहे। उन्होंने अनेक देवासुरसंग्राम में सेनापति के रूप में सामना कर विजय प्राप्त किया था। उन्हीं के स्मारक रूपसे यह पुस्तकालय और चित्रालय स्थापित किया गया है। ऊपरी भाग में ही श्री वेद भगवान् भी विराजते हैं। इस पुस्तकालय में वेद, स्मृति, पुराण, तन्त्र आदि शास्त्रों के अनेक ग्रन्थ हैं। पुस्तकोंके अतिरिक्त बहुमूल्य चित्रों का संग्रह है। उन चित्रों में देव देवियों और अवतारों के अनेक चित्र तो हैं ही, किन्तु उपदेशक महाविद्यालय में धार्मिक और आध्यात्मिक शिक्षा देने के उपयोगी अनेक तैल चित्र हैं। इन चित्रों के मनन करने से दर्शक चकित होते हैं और उन्हें लाभ भी होता है।

सबसे प्रथम 'ब्रह्माण्ड का मानचित्र' नामक चित्र के विषय में विशेषरूप से कहने की आवश्यकता है। आजकल के विदेशी शिक्षा प्राप्त विद्वज्जन जाग्रफी और हिस्ट्री पढ़ कर समझ लेते हैं कि, हम सब कुछ जान गये हैं। हमारे वेदों और शास्त्रों में हमारे ब्रह्माण्ड और उसके अन्तर्गत चतुर्दश भुवन, नानाग्रह-उपग्रह आदिका जो विस्तृत वर्णन है, और ब्रह्माण्ड में हमारा मृत्युलोक किस स्थान पर स्थित है, इसका उन्हें पता नहीं है। इस अभाव को दूर करने के लिये बहुत खोज के साथ यह चित्र बनाया गया है। इस चित्र में चौदह भुवनों का यथाक्रम स्थान, उनमें पाँचों प्रकार के स्वर्गों का स्थान, पितृलोक का स्थान, नरकलोक का स्थान, प्रेतलोक का स्थान, सब ग्रह का स्थान, सूर्य का स्थान, ध्रुव का स्थान, भारतवर्ष अर्थात् मृत्युलोक का स्थान, जम्बुद्वीप में भारतवर्ष के अतिरिक्त जो आठ और वर्ष हैं, जो मृत्युलोक नहीं, किन्तु देव लोक हैं, उनका स्थान इस प्रकार हमारे इस ब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण भौगोलिक परिस्थिति का दिग्दर्शन कराया गया है।

दूसरा चित्र 'वर्णाश्रम वन्ध' नामक है। इस चित्र की पर्यालोचना करने से वर्णाश्रम धर्म का दार्शनिक रहस्य दर्शकके हृदय में अङ्कित हो जाता है। श्री शम्भुगीता में श्री भगवान् सदाशिव

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ने आज्ञा की है कि, मेरी प्रकृति जड़रूपा है और चेतनरूपा भी। जड़ और चेतनमयप्रकृति के स्वरूप का वर्णन श्रीमद्भगवद्गीता में भी किया गया है। श्री शम्भुगीता में भगवान् शम्भु ने अर्यमादि पितृगण, जो एक श्रेणी के देवता हैं, उनसे कहा है कि, मेरी जड़मयी प्रकृति से जलधारारूप से मेरी चिन्मयी प्रकृति निरन्तर बहती है। वह चिन्मयी धारारूपिणी नदी जब तक उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज इन चतुर्विध भूतसंघों में होकर आगे बढ़ती है, तब तक उस धारा के दोनों ओर जड़रूप पर्वत होने से धारा इधर उधर नहीं बिखरती; परन्तु वही धारा आगे बढ़ कर जब पूर्णावयव मनुष्य में पहुँचती है, तब वह पर्वत की अधित्यका में इधर उधर बहकर उसके नष्ट होने की सम्भावना रहती है; जिससे वह चिन्मयी धारा नष्ट होकर अध्यात्मोन्नतिशील मनुष्य जाति का नाश न होने दे और वह धारा बाधारहित होकर ब्रह्म-समुद्र में जाकर मिल सके, इसके लिये वर्णाश्रम बन्ध बाँधा गया है। यह वर्णाश्रम बन्ध ही आर्य जाति को चिरजीवी बनाकर निरन्तर उन्नति के मार्ग में ले जाता है। इस बन्ध के स्थान स्थान पर जीर्ण होने पर अधित्यका में पानी भरने लगता है। उसके संस्कार और सुरक्षा के लिये तपःस्वाध्यायनिरत सदाचारी ब्राह्मण और परम तपस्विनी सती आर्य महिलाएँ सदा प्रयत्न करती रहती हैं। इस प्रयत्न में स्वर्गलोक के अर्यमा आदि नित्य पितृगण सदा सचेष्ट होकर उन दोनों को सहायता पहुँचाया करते हैं। इसी में देवताओं की आनन्दमयी जलकेलि और ऋषियों के ध्यानमग्न होने का भी दृश्य है। इस चमत्कारपूर्ण औपनिषदिक चित्र की पर्यालोचना और मनन करने से आर्य जाति के महत्व, उसके वर्ण धर्म के वैज्ञानिक रहस्य और उसके चिरजीवी होने के मौलिक कारण का ज्ञान हो जाता है।

तीसरा दार्शनिक चित्र ज्ञानराज्य के लोकातीत वैभवका प्रदर्शक है। भगवान् गणपति ने धीशगीता में ज्ञानगोलक का विज्ञान ज्ञान-पिपासु मुमुक्षुओं के लिये वर्णन किया है। भगवान् ने महर्षियों से कहा है कि, जड़मय जगत् के ऊपर मेरा ज्ञानगोलक टिका हुआ है। उसके ऊपर मैं सर्वदा स्थित हूं। उस ज्ञानगोलक में सात ज्ञान भूमियाँ और सात अज्ञान भूमियां दिखायी गयी हैं। सात ज्ञान भूमियों की अधिष्ठात्री भगवती विद्या-देवी हैं और सात अज्ञान भूमियों की अधिष्ठात्री देवी भगवती अविद्या हैं। प्रथम अज्ञान भूमि का अधिकार उद्भिज्जसमष्टि चिदाकाश में देखने में आता है। तदनन्तर स्वेदजपिण्ड, अण्डजपिण्ड और जरायुज पशुपिण्डों में यथाक्रम दूसरी, तीसरी और चौथी इन चार अज्ञान भूमियों का अधिकार देखने में आता है। तदनन्तर जीव पञ्चकोषों के अधिकार से पूर्ण होकर मनुष्य योनि में तीन गुणों के अनुसार वानर योनि, सिंह योनि और गौ योनि से होता हुआ आता है। तदनन्तर क्रमशः पांचवीं, छठी और सातवीं अज्ञान भूमियों का अधिकारी अपने आप ही हो जाता है। पांचवां अधिकार देहात्मवादका है। छठा देहातिरिक्त आत्मवादका और सातवां आत्मातिरिक्त शक्तिवादका है। इस प्रकार सात अज्ञान भूमियों को मनुष्य को पार करना पड़ता है; तब कहीं आर्यत्व को प्राप्त कर मनुष्य सात ज्ञान भूमियों का अधिकार प्राप्त करता है। भगवती विद्या सेवित ज्ञान भूमियों के नाम इस प्रकार हैं:—१—ज्ञानदा, जो न्याय दर्शन की भूमि है, २—संन्यासदा, जो वैशेषिक दर्शन की भूमि है, ३—योगदा, जो योग दर्शन की भूमि है, ४—लीलोन्मुक्ति, जो सांख्यदर्शन की भूमि है, ५—सत्पदा, जो कर्म मीमांसा दर्शन की भूमि है, ६—आनन्दपदा, जो दैवी मीमांसा की भूमि है और ७—परात्परा, जो ब्रह्ममीमांसा अर्थात् वेदान्त दर्शन की भूमि है। इस प्रकार भगवती विद्यादेवी सेवित सप्त ज्ञान भूमियों का रहस्य उक्त ज्ञानगोलक के दर्शन और मनन से भली भांति ज्ञात हो जाता है।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऐसे अनेक दार्शनिक चित्र इस संग्रहालय में संगृहीत हैं। यथाः—धर्मवृक्ष, जिसमें धर्म के ७२ अंगों का दृश्य है। वेदाविर्भाव, सृष्टि के आदि में रेडियो यन्त्र की तरह महर्षियों के पवित्र अन्तः-करणों में वेद कैसे सुनायी देता है, उसका दृश्य इस चित्र में हैं। श्री सप्तशती गीता में वर्णित ब्रह्मचक्र में समष्टि देवताओं के तेज से श्री जगदम्बा का कैसे आविर्भाव हुआ था, यह एक चित्र में दिखाया गया है। वेद के कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड और ज्ञान काण्ड का दृश्य एक चित्र में अंकित किया गया है। योग साधन के जो चार भेद हैं, उनमें से मन्त्रयोग में सगुण पञ्चोपासना ध्यान, हठयोग में ज्योतिर्ध्यान, लययोग में बिन्दुध्यान और राजयोग में निर्गुण ब्रह्म ध्यान का रहस्य एक चित्र में लिखित है। इस प्रकार के अनेक चित्र इस संग्रहालय में विद्यमान हैं और जिज्ञासु उन्हें देख सकते हैं।

ब्राह्मण जाति की सुरक्षा।

ब्राह्मण जाति की सुरक्षा और उन्नति के लिये वर्तमान देशकाल में निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान देना चाहिये :—

(१) आजकल कई तरह के ब्राह्मण हो गये हैं और सभी लोग ब्राह्मण बनना चाहते हैं; इसकारण ब्राह्मणों के जो अलग अलग गोल हैं, वे बने रहना चाहिये और उनमें परस्पर रोटी व्यवहार भले ही हो, किन्तु बेटी व्यवहार नहीं होना चाहिये।

(२) ब्राह्मण जाति में भ्रष्टाचार, गायत्री त्याग, संस्कार लोप आदि बड़े बड़े दोष दिखायी देते हैं। इसकारण सदाचारपरायण सद्गृहस्थों का एक संघटन अपनी अपनी बिरादरी में अलग रहना चाहिये। जिस प्रकार कान्यकुब्ज आदि ब्राह्मण कुलों में उच्च श्रेणी आदि का विभाग है, उसी प्रकार ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि, सदाचार सम्पन्न ब्राह्मण वर्ग उच्च श्रेणी के समझे जाँय।

(३) ब्राह्मण जाति में धन का जो आदर बढ़ता जा रहा है, वह घटाना चाहिये और विद्या विनय तथा तपस्या का आदर बढ़ाना चाहिये।

(४) समाज दण्ड के द्वारा गायत्री हीन, सन्ध्याविहीन, संस्कार भ्रष्ट और आचार रहित ब्राह्मणों के यथायोग्य तिरस्कार की व्यवस्था की जाय। और जो सदाचारी विद्वान् ब्राह्मण हों, उनके यथोचित पुरस्कार की व्यवस्था हो।

(५) राजन्यवर्ग, जो भूमि के अधिकारी हैं, या वैश्यवर्ग, जिनके हाथ में यथेष्ट धन है, उनको कुल पुरोहित रखने की जो प्राचीन व्यवस्था है, उसको दृढ़ता से चालू करना चाहिये और अयोग्य कुल पुरोहितों के स्थान में सदाचारी तपस्वी विद्वान् ब्राह्मणों को आश्रय देना चाहिये। जो अयोग्य पुरोहितों की कुलपरम्परा की रीति है, उसे हटाकर सदाचार, विद्या और योग्यता का आदर होना चाहिये। तीर्थ पुरोहितों के लिये भी इसी प्रकार के सुधार की व्यवस्था गृहस्थों को करनी चाहिये।

(६) प्राचीन काल में जिस प्रकार सदाचारी विद्वान् ब्राह्मण घरमें ही पाठशाला खोल कर विद्या दान करते थे और उन ब्राह्मणों की आजीविका के लिये हिन्दू सद्गृहस्थ मात्र विवाहोत्सव जन्मोत्सव, श्राद्धादि के समय पर उनके घर दान पहुँचा देते थे, उसी प्रकार गृहस्थ मात्र को ऐसे विद्वान् ब्राह्मणों का हक रखना चाहिये और पहले की तरह उनकी नियमित सहायता करनी चाहिये। इस समय ऐसी कुरीति चल गयी है कि, उधार लेकर भी विवाह श्राद्ध आदि अवसरों पर जेवनार करते हैं। ऐसे अवसरों की जेवनार आदि रोक कर उक्त प्रकार के शुभ कार्य में धन का व्यय करना चाहिये।

(७) धर्म भूमि भारत द्वीप में अब भी धर्म

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दान बहुत होता रहता है। परन्तु देश काल पात्र का विचार ठीक ठीक रक्खा नहीं जाता। सबसे पहले ब्राह्मणों की रक्षा का प्रयत्न होना चाहिये; क्यों कि ब्राह्मणों की रक्षा पर ही वर्णाश्रम धर्म की रक्षा निर्भर है। वङ्ग प्रान्त में सुप्रसिद्ध कान्यकुब्ज ब्रह्मणों के भूषण स्वर्गीय भूदेव मुखोपाध्याय ने अपने पितृदेव के नाम से एक ट्रस्ट स्थापित कर अपनी कमायी हुई सम्पत्ति जो उनके पास थी, उसमें दान कर दी है। अब भी वह ट्रस्ट चालू है और उसमें से विद्वान् सदाचारी ब्राह्मणों को घर बैठे ५०) सालाना और विद्यार्थियों को ३६) सालाना दान दिया जाता है। उनके दो सुयोग्य पुत्र थे। उनको उन्होंने उपदेश दिया था कि, "ब्राह्मणों का धन रुपया नहीं, किन्तु विद्या और तपस्या है। दोनों को मैंने विद्याभ्यास करा दिया है। अब मैं तुम्हें मकान के सिवा और कुछ न दूँगा। इसी ट्रस्ट को दोनों चलावें"। इस ट्रस्ट का काम बहुत उत्तमता से चिनसुरा (हुगली) में चल रहा है। अनेक संस्कृत विद्वान् घर बैठे इस ट्रस्ट से सहायता पा रहे हैं। उनके सुयोग्य पुत्र राय बहादुर मुकुन्ददेव मुखोपाध्याय एम० ए०, जो पटने में कलेक्टर थे और अवसर प्राप्त होने पर श्री भारतधर्म महामण्डल के प्रधानाध्यक्ष थे, उन्होंने देखा कि कान्यकुब्ज नगर, जो कान्यकुब्जों की आदि भूमि है, वहाँ (कन्नौज—जो पहले विद्यापीठ था) एक भी संस्कृत पाठशाला नहीं है। उन्होंने अपने पितृदेव भूदेव बाबू के नाम से एक ट्रस्ट बनाकर कन्नौज में उसकी सहायता से एक संस्कृत पाठशाला खोल दी है। धनी मानी हिन्दू गृहस्थों को इसी शुभ उदाहरण को सामने रखकर सदाचारी विद्वान् ब्राह्मणों की आजीविका का प्रबन्ध करना चाहिये और धर्मशिक्षा का विस्तार करना चाहिये।

(८) आजकल चाटुकारी देखकर दान करने की जो रीति धनी लोगों में प्रचलित है और मूर्ख होने पर भी कदाचारी ब्राह्मणों को परम्परा क्रम से दान दिया जाता है, इस कुरीति का त्याग कर राजा महाराजा, धनी-मानी सज्जन विद्या, तपस्या सदाचार आदि गुणावलि को दृष्टि में रखकर दान की रीति को सम्हालें, तो ब्राह्मण जाति की उन्नति के वे सहायक बनेंगे।

राजनीति प्रसङ्ग (२)

(४) धर्मलोप से पतन—अपौरुषेय वेद तथा वेद सम्मत सब शास्त्र और अन्तर्जगत्प्रकाशक दर्शन शास्त्र समूह एक वाक्य होकर कर्म की महिमा गाते हैं। जहां जहां कर्म विज्ञान का वर्णन है, वह यही सिद्ध करता है कि अन्तर्जगत् में या बहिर्जगत् में जहां कहीं कोई भी कम्पन उत्पन्न होता है, वहीं कर्म प्रकट होता है। जहां कोई भी क्रिया होती है, वहां उसकी प्रतिक्रिया होना अवश्यम्भावी है। जो मनुष्य या मनुष्य जाति अन्नका अपव्यय करेगी, उस मनुष्य या मनुष्य जाति को घोर अन्न कष्ट उठाना पड़ेगा। जो मनुष्य या मनुष्य जाति मनुष्य हत्या में प्रवृत्त होगी वह या तो दूसरे से मारी जायगी या अल्पायु होगी। जो मनुष्य या मनुष्य जाति धन का दुरुपयोग करेगी, वह दरिद्र होगी। हिन्दु शास्त्र के कर्म विपाक में हरेक प्रकार के कर्म की प्रतिक्रिया का स्वरूप इसी प्रकार से बताया गया है। वर्त्तमान राजनीतिक जगत् में वृटिश जाति अपनी स्वार्थसिद्धि की अपूरणीय आशा से जो प्रजा में फूट डालकर उसको आपस में लड़ाकर अपनी कार्य सिद्धि करना चाहती है, वह कार्यसिद्धि उसके लिये आकाश-कुसुमवत् असम्भव है। इस दुर्नीति के कारण वृटिशजातिको दुर्बल से दुर्बल होना पड़ेगा। यह वेद शास्त्रोंका निश्चित सिद्धान्त है।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सहृदय उदार चरित हिन्दुजाति को यह देख कर बहुत ही दुःख हो रहा है कि जो बुद्धिमान् और शक्तिशाली वृटिश साम्राज्य में सूर्यास्त नहीं होता था, जिसकी बुद्धिमत्ता और नीतिनिपुणता के सामने अन्य जातियों को शिर झुकाना पड़ता था, इस समय उसके अधः पतन के लक्षण चारों ओर दिखाई पड़ रहे हैं। अपनी कूटनीति केसामने वृटिश जातिने अपने राजाका मानापमान का विचार छोड़ दिया। वर्त्तमान प्रजातन्त्रवाद (डिमोक्रेसी) में प्रथम तो राजाका कोई अधिकार ही नहीं है, केवल सम्मान था, उस सम्मान को यदि वृटिशजाति बनाये रखती तो अच्छा था। हिन्दुस्थान का अङ्गच्छेद करना न्याय, सत्य और धर्मका अपलाप है। यदि किसी स्वार्थ की प्रेरणा से ऐसा किया भी तो दोनों जगह राजाके सम्मान रक्षा में हानि क्या थी? यदि न्याय सत्य और धर्म का अपलाप करके लूट मार अराजकता, स्त्री बालक वृद्ध पर अत्याचार का घोर अनल देश भर में न प्रज्वलित कराया जाता और सच्चे हृदय से इस देश के राज्यशासन का भार प्रजा के हाथ में यथाक्रम सौंपते हुए शान्ति के साथ वृटिश राजनीति विशारद पुरुषगण अग्रसर होते तो, भविष्यत् में उनके लिये हानिकारक पाप कार्य का संग्रह भी न होता और न प्रजा के हृदय में उनकी अप्रतिष्ठा ही होती। न्याय सत्य और धर्मकी रक्षा करते हुए वे यदि हिन्दुस्थान के साथ अनुकूल सन्धिपत्र के द्वारा स्वार्थ साधन करते तो संसार भर में उनका सुयश बना रहता, उनकी शक्ति सुरक्षित बनी रहती और उनका स्वार्थ भी सिद्ध होता।

कर्म की प्रतिक्रिया होना निश्चित है। अतः हिन्दुस्थान का विभाजन चिरस्थायी नहीं होगा और जिस गवर्नमेंट का दोष अधिक होगा, वह गवर्नमेंट अवश्य गिर जायगी, इस अवश्यम्भावी सत्यको दृष्टिकोण के सम्मुख रखकर राजनीतिक पुरुषों को अपने पुरुषार्थ का प्रदर्शन करना चाहिये। अपने भाइयों के साथ कुटिल वर्त्ताव छोड़कर शुद्धचित्त से उचित व्यवहार करना चाहिये। नेतृवृन्द में यदि किसी को धर्म का अभिमान हो तो दम्भको छोड़कर किसी के धर्म में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये और धर्मका भार धर्मज्ञ पुरुषों पर छोड़ देना चाहिये। धर्म सबका मूल है। चाहे छोटा धर्म सम्प्रदाय हो चाहे बड़ा धर्म सम्प्रदाय हो, समान रूप से निरपेक्ष होकर सबका आदर करना चाहिये। नेतृवृन्दों के अन्तःकरण में हिन्दुधर्म पर आस्था न हो तो भी इस अङ्क में बताये हुए हिन्दुधर्म के सोलह अङ्ग में किसी के ऊपर भी कुठाराघात नहीं होने देना चाहिये। कानूनी झगड़ा उपस्थित होने पर जैसे वकील की शरण लेनी पड़ती है, जैसे रोग होने पर डाक्टर की शरण लेनी पड़ती है उसी प्रकार धर्माधर्म के निर्णय के लिये तत्तद्धर्मके मर्मज्ञों से ही सलाह लेनी चाहिये। अपने स्वयं धर्मध्वजी बनने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये और न ऐसे धर्मध्वजी की धर्म व्यवस्था प्रजा वर्ग को माननी चाहिये। भारत खण्ड हिन्दुस्थान धर्म भूमि है। शास्त्रों में भारतवर्षका अर्थात् मृत्युलोक का उत्तमाङ्ग भारत खण्ड अर्थात् हिन्दुस्थान माना गया है। अतः भारत खण्ड में धर्म और मोक्षका प्रभाव जाज्वल्यमान है। इस पुण्य भूमि में जो धर्म पर हस्तक्षेप करेगा, उस मनुष्य या मनुष्यजाति का अधः पतन अवश्यम्भावी है।

श्री गङ्गाजी की सेवा।

वैदिक मीमांसा शास्त्र यह सिद्ध करता है कि हर एक पदार्थ के त्रिभावात्मक तीन रूप हुआ करते हैं। उसी अकाट्य सिद्धान्त के अनुसार श्री गङ्गादेवी के भी त्रिभावात्मक तीन रूप हैं। आत्माकी और ज्ञान का प्रवाह ही उनका आध्यात्मिक रूप है। पुराणादि शास्त्रों में जो मकर-

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वाहिनी सुन्दर देवी मूर्त्ति है, वह उनका अधिदैव रूप वर्णित है और जो पवित्र जलमय नदीरूप है वह उनका अधिभूत रूप है। गङ्गादेवी की महिमा वेद पुराण स्मृति और तंत्रादि सब शास्त्रों में भरी हुई है। कुछ दिनों से हिन्दुस्तान के कर्मों के फल से श्री गङ्गानदी की धारा छिन्न भिन्न हो गई है। कुछ दिनों पहले तो यह दुर्दशा हो गई थी कि हरिद्वार के वन्ध पर और नरोरा के वन्ध पर धारा एक वारही बन्द कर दी गई थी और सब पानी नहरों में ले जाया जाता था। यहाँ तक कठिनता की गई थी कि जिन लकड़ियों के किवाड़ से धारा रोकी जाती थी उन किवाड़ों के छिद्र से जहाँ पानी झरता था वहाँ भी रुअड़ से बन्द कर दिया जाता था। पवित्र धारा की यह दुर्दशा भक्तों ने देखी। बहुत कुछ आन्दोलन होने लगा। महाराजाधिराज मिथिलाधिपति रमेश्वर सिंह बहादुर श्री महामण्डल के प्रधान सभापति, श्री महामंडल के संरक्षक यथा काश्मीराधिपति महाराजा प्रतापसिंह जी बहादुर, जयपुराधिपति महाराजा माधो सिंह बहादुर आदि जैसे नरपति वृन्द हिन्दूजाति के बड़े २ नेतृवृन्दों के साथ हरिद्वार तीर्थ में इकट्ठे होकर श्री गङ्गादेवी के इस दुःखजनक दृश्यको देखा। अन्ततोगत्वा सब की सम्मति से गवर्नमेंट को यह निश्चय करना पड़ा कि जो थोड़ा सा पका बन्ध है, उसमें एक स्थायी छेद बना दिया जाय। जिसके द्वारा एक अच्छी धारा हमेशा हरिद्वार में जारी रहे। हरिद्वार में वह धारा अबतक बराबर जारी रहती है। हरिद्वार के विषय में महामंडल को संतोष होने पर भी आगे जाकर नरोरा वन्ध पर जो वस्ती से दूर और रेल से दूर होने के कारण किसी के दृष्टिगोचर नहीं होता था, वहाँ गङ्गा जी की धारा एक दम बन्द की गयी थी। कई वर्ष तक श्रीभारतधर्म महामंडल द्वारा यू० पी०. गवर्नमेंट और भारतीय गवर्नमेंट में बहुत कुछ नाना प्रकार से प्रयत्न करने पर गवर्नमेंट ने विचार निश्चय करने के लिये एक कमीशन मुकर्रर किया था। उसमें गवर्नमेंट के बड़े बड़े अफसरान और चीफ इञ्जिनियर मौजूद थे। श्री भारतधर्म महामंडल की ओर से महामंडल की मान्त्रि सभा के उपसभापति, मुजफ्फरनगर के जमींदार आनरेवुल लाला सुखवीर सिंह जी जो इस पवित्र प्रयत्न के एक बड़े कार्यकर्त्ता थे, स्वयं उपस्थित रहे। उनके स्वर्गगामी पितृदेव आनरेवुल राय बहादुर निहालचन्द जी इस पवित्र कार्य में जितना ध्यान देते थे, उनके सुयोग्य पुत्र उनसे अधिक ध्यान दिया करते थे। अन्त में उन का शुभ प्रयत्न जय से युक्त हुआ और सर्वसम्मति से यह निश्चय हुआ कि नरोरा वन्ध के एक टुकड़े पर श्री गंगा जी के जल की एक चद्दर बराबर गिरती रहे और वह कभी नहीं बन्द होगी और उस जलप्रपात की समय २ पर बड़े २ पर्वों के समय श्री महामंडल की सम्मति से वृद्धि की जाय। इस मीमांसा के अनुसार बहुत दिनों तक माननीय मिथिलाधिपति महाराजाधिराज श्री रमेश्वर सिंह बहादुर के द्वारा हर साल जल की धारा बढ़ाने के लिये एक फिरिस्त महकमें सिंचाई में जाया करती थी और गवर्नमेंट आखिरी फिरिस्त के अनुसार पर्व दिनों में जल धारा बढ़ा देती है और नियमित धारा बराबर जारी रहती है इस व्यवस्था में यदि बाधा उपस्थित हो तो आस पास की धर्मसभाओं को या जनता को महामण्डल प्रधान कार्यालय काशी को सूचना देनी चाहिये।

———

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हिन्दूधर्मका स्वरूप ।

कालके प्रभावसे इस समय मनुष्य मात्रकी बुद्धि धर्मसे विमुख हो रही है। ईश्वर-ज्ञान-विहीन शिक्षा-प्रणाली द्वारा मनुष्यकी मनोवृत्ति श्रीभगवानके चरणोंकी ओरसे हटकर इन्द्रिय सुखके अन्वेषणमें लगी हुई है। आधिभौतिक लक्षणयुक्त-सायन्सके चमत्कारोंको देखकर शिक्षित समाजकी भी दृष्टि चकाचौंध होकर दर्शन-शक्तिविहीन हो रही है। क्या पुरुष, क्या स्त्री सभी धर्म और मोक्षको एक बार ही भूलकर अर्थ और कामको अपना सर्वस्व मान रहे हैं। ऐसी अवस्थामें हिन्दुस्तानकी धर्मप्राण हिन्दू-जाति जो धर्मको अपना सर्वस्व माना करती थी, कुशिक्षा, कुचिन्ता और कुसंगके प्रभावसे धर्मपथसे ही विमुख नहीं हो गयी है, अपितु अपने जगत-हितकारी धर्मके स्वरूप, वर्णाश्रमधर्म शृङ्खलाकी गौरव गरिमा अपनी जगत्पवित्रकारी संस्कृति और अपने जगद्गुरु पूर्वजोंके महत्त्व तकको प्रायः भूल गयी है। क्या पुरुष, क्या स्त्री, क्या हिन्दू राजन्यवर्ग, क्या हिन्दू प्रजावर्ग, क्या आश्रम गुरु संन्यासी, क्या वर्णगुरु ब्राह्मण, क्या प्राचीन संस्कृत विद्याके उपासक पंडितगण और क्या अंग्रेजी शिक्षाके पुजारी विद्वद्जन किसीसे भी यदि यह प्रश्न किया जाय कि आपका हिन्दूधर्म क्या है, तो प्रायः वे इस प्रश्नका उत्तर देनेमें असमर्थ ही रहेंगे। यद्यपि हमारे अपौरुषेय वेदका इस समय हजारवां हिस्सा भी नहीं मिलता है, परन्तु अपनी आर्षसंहिताओं और पुराण आदि वेदभाष्यग्रन्थोंका बहुतसा हिस्सा मिलता है, फिर भी उनका स्वरूप इतना विस्तृत है, और अपनी शिक्षाकी प्रणाली ऐसी विकृत हो गई है, कि उससे स्वधर्मका ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करनेमें बड़ी कठिनाई पड़ती है। इस कारण हिन्दू दर्शनशास्त्र जो वास्तवमें दर्शन अर्थात् नेत्ररूप हैं, उनकी सहायतासे हिन्दूधर्मका स्वरूप दार्शनिक सूत्रोंके द्वारा प्रकाशित किया जाता है। जो आर्यावर्त्त अर्थात् हिन्दुस्तानका सर्वजीवहितकारी धर्म है, उसके विषयमें श्रीभारद्वाज कर्ममीमांसा दर्शनके तीसरे पादमें जो सूत्र-बद्ध लक्षण किये गए हैं; उसका तात्पर्य निम्नलिखित है।

(१) "षोडशकलः आर्यधर्मः पूर्णचन्द्रवत् ।" अर्थात् आर्यधर्म पूर्णचन्द्रमाकी तरह षोडश कलाओंसे पूर्ण है। उन कलाओंमें सदाचार पहली कला है। यथा—"तत्र प्रथमा सदाचारो व्यापकत्वात्" अर्थात् व्यापक होनेके कारण उन षोडश कलाओंमें सदाचार पहली कला है। और कहा है कि—"अत आर्यसंस्कृतेर्महत्त्वम्" अर्थात् यही कारण है कि आर्यसंस्कृतिका इतना महत्त्व है। दूसरी कलाके विषयमें कहा है कि—

"सद्विचारोद्वितीयार्य्यजातेः शिखासूत्रधारित्वात्" अर्थात् आर्य्यधर्मकी द्वितीय कला सद्विचार है, क्योंकि आर्यजाति शिखा और सूत्रधारी है। सद्विचारके महत्वके विषयमें उक्तदर्शनमें कहा है कि—"शिखा देवमन्दिरस्य यज्ञसूत्रं त्रिविधभावशुद्धेः।" अर्थात् शिखाके कारण आर्यजातिका उत्तमांग देवमन्दिर समझा जाता है और त्रिविध भावशुद्धिके लिए आर्यजाति यज्ञोपवीत धारण करती है। तात्पर्य यह है कि—हिन्दू-संस्कृतिके अनुसार मस्तकको देवमन्दिर समझकर शिखा धारण की जाती है और अध्यात्मशुद्धि, अधिदैवशुद्धि और अधिभूतशुद्धिको स्मरण रखने के लिए यज्ञमय जीवन व्यतीत करनेवाली आर्य जाति तीन लड़ोंका यज्ञसूत्र अर्थात् यज्ञोपवीत धारण करती है। अब तीसरी कलाके विषयमें कहा है कि—

"वर्णधर्मस्तृतीयातस्तत्पूर्णता" अर्थात् वर्णधर्म आर्यधर्मकी तीसरी कला है। इसीलिए आर्यजाति त्रिविध भाव-शुद्धिसे पूर्ण है। तीसरी कलाके महत्वके विषयमें उक्त दर्शन शास्त्रने कहा है कि—"चिरजीविनी।" अर्थात् यही कारण है कि आर्यजाति चिरजीवी है। तात्पर्य यह है कि वर्णधर्मके कारण आर्यजातिमें रजोवीर्यकी शुद्धि बनी रहती है। इस कारण आर्यजाति चिरजीवी है। सृष्टिके प्रारम्भसे लेकर अब तक आर्यजाति विद्यमान है, परन्तु दूसरी अनेकों जातियाँ उत्पन्न हुईं और कालकवलित हो गईं। चौथी कलाके विषय में ऐसा कहा है कि—

"चतुर्थी सतीत्वं नार्याः पूर्णत्वात्" अर्थात् सतीत्वधर्म आर्यधर्मकी चौथी कला है, क्योंकि आर्यमहिलाएँ नारीधर्मसे

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूर्ण समझी जाती हैं। आर्यमहिलाओंके महत्त्वके विषयमें ऐसा कहा है कि—"अतस्त्रिलोकपावनी" अर्थात् इस कारण वे त्रिलोकको पवित्र करनेवाली होती हैं। तात्पर्य यह है कि सतीत्वकी पूर्णता जैसी आर्यमहिलाओंमें है, वैसी किसी भी जातिमें देखनेमें नहीं आती है। और सतीत्वधर्मके कारण आर्यमहिलाएँ त्रिलोकमें पूजित हुई हैं। पंचमकलाके विषय ऐसा कहा है कि—

'पञ्चम्याश्रमधर्म्मः प्रवृत्तिनिवृत्तिपूर्णत्वात्' अर्थात् आश्रमधर्म उसकी पञ्चमकला है, क्योंकि वह प्रवृत्तिधर्म और निवृत्तिधर्म दोनोंसे पूर्ण है। ब्रह्मचर्य आश्रममें प्रवृत्ति सिखाई जाती है। गृहस्थआश्रममें शास्त्रोक्त प्रवृत्ति कराई जाती है। वानप्रस्थआश्रममें निवृत्ति सिखाई जाती है और संन्यासआश्रममें पूर्ण निवृत्ति कराई जाती है। आश्रमधर्मके महत्त्वके विषयमें उक्त दर्शनशास्त्रने कहा है कि—"जीवन्मुक्तिप्रादुर्भावः" अर्थात् इस कारण 'आश्रमधर्ममें जीवन्मुक्ति पदका उदय होता है।

छठीं कलाके विषयमें उक्तदर्शनमें कहा है कि—"षष्ठी दैवजगच्छरणमास्तिकत्वात्" अर्थात् दैवजगत्की शरण होना, यह आर्यधर्मकी छठवीं कला है, इस कारण आर्यजाति पूर्ण आस्तिक है। तात्पर्य यह है कि स्थूल जगत्का चालक और रक्षक दैवीजगत् है। दैवीजगत् और उसके नाना देवपद-धारियोंपर विश्वास करना आस्तिकताकी जड़ है। इस छठीं कलाके महत्त्वके विषयमें कहा है कि—"त्रिविधसंघानुग्रहः" अर्थात् यही कारण है कि आर्यजातिपर ऋषिसंघ, देवसंघ और पितृसंघ इन तीनों का अनुग्रह रहता है। तात्पर्य यह है कि शास्त्रोंमें जो ऋषिसंघ, देवसंघ और पितृसंघ इन देवपदधारी समूहोंका वर्णन है, उक्त तीनों संघोंकी कृपा आर्यजाति आस्तिकताके कारण प्राप्त करती है।

अब सातवींकलाके विषयमें उक्त दर्शनशास्त्र कहता है कि—"सतम्यवतारनिष्ठा धर्मसामञ्जस्यात्" अर्थात् सप्तम कला अवतार-निष्ठा है, क्योंकि धर्मसामञ्जस्यके लिए अवतारका आविर्भाव होता है। धर्मकी स्थापना और अधार्मिकों पर शासन करना यह अवतारका कार्य है, ये भगवान्के अवतार अधर्मको नष्ट करके धर्म सामञ्जस्यके लिए होते हैं। अवतार सम्बन्धसे भारतखण्डकी महिमाके विषयमें कहा है कि—"भगवदवतारविर्भावभूमिः" यही कारण है कि आर्यावर्तरूपी भारतखण्ड-निवासी आर्यजातिही भगवानके अवतारोंके आविर्भावकी भूमि है।

आठवीं कलाके विषयमें ऐसा कहा है कि—"योगभक्तिद्वयाङ्गोपासनाष्टमी पूर्णत्वात्" अर्थात् योग और भक्तिसे पूर्ण उपासना-पद्धति उसकी अष्टमी कला है, क्योंकि आर्यउपासनाप्रणाली सर्वाङ्गपूर्ण है। तात्पर्य यह है कि आर्यधर्ममें जो उपासना-प्रणाली है, वह प्रणाली सर्वाङ्ग पूर्ण है; क्योंकि उसमें चार प्रकारकी योगसाधन-प्रणाली और भक्तिप्रणालीके सब अङ्गोंका वर्णन है। इस कारण यह दर्शनशास्त्र कहता है कि—"अनुकृतेयम् सर्वैः" अर्थात् इस कारण यह उपासना-प्रणाली सबका हित करनेवाली होनेके कारण सभीका अनुकरणीय है। तात्पर्य यह है कि आर्यजातिकी उपासनाप्रणालीके अङ्ग और उपाङ्ग पृथ्वीके सब धर्मोंके सहायक हैं इसीलिए उन लोगोंने इसके अङ्गोंको अपने धर्मोंमें सन्निविष्ट किया है।

नवमीं कलाके विषयमें यह दर्शन शास्त्र कहता है कि—"नवमी पीठपूजा शक्तिविश्वासात्" अर्थात् पीठपूजा उसकी नवमी कला है, क्योंकि आर्यजाति भगवत् शक्तिपर विश्वास करती है। तात्पर्य यह है कि सर्वव्यापक भगवच्छक्ति पर विश्वास करके सर्वव्यापक प्राणमयकोशमें पीठकी स्थापना होती है, ऐसा विश्वास आर्यजातिका है। और यह दर्शन कहता है कि—"प्रतीकाश्रयः" अर्थात् दैवीशक्तिके द्वारा पीठका आविर्भाव होता है, यही कारण है कि आर्यजातिमें मूर्त्ति आदि पीठकी उपासना-प्रणाली प्रचलित है।

धर्मकी दशवीं कलाके विषयसे दर्शनशास्त्र ऐसा कहता है कि—"शुद्ध्यशुद्धिस्पृश्यास्पृश्यविवेको दशमो पञ्चकोशसम्पर्कात्" अर्थात् शुद्धाशुद्धविवेक और स्पर्शास्पर्श विवेक उसकी दशमी कला है, क्योंकि यह जाति सदा पञ्चकोशके सम्बन्धका विचार रखनेवाली है। तात्पर्य यह है कि आत्मा पाँच कोशोंसे ढका रहता है, उन पाँच कोशोंकी शुद्धिद्वारा शुद्धाशुद्धविवेक और स्पर्शास्पर्श विवेकका साधन आर्यजाति करती है। उसके फलके विषयमें यह दर्शनशास्त्र कहता है कि—"दैवानुकम्पाशालिनी" अर्थात् यही कारण है कि इस धर्मके पालनसे आर्यजाति दैवानुकम्पाशालिनी है।

ग्यारहवीं कलाके विषयमें यह दर्शन शास्त्र कहता है

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कि—"यज्ञमहायज्ञविश्वासो एकादशी परस्परसम्बन्धात्" अर्थात् यज्ञ और महायज्ञपर विश्वास आर्यधर्मकी ग्यारहवीं कला है। क्योंकि शास्त्र कहता है कि यज्ञके द्वारा देवता और मनुष्योंमें परस्पर सहायताका सम्बन्ध स्थापित होता है। भगवान्‌की कृपा प्राप्त करके जिस धर्माङ्गके साधन द्वारा दैवी राज्यका सम्बर्द्धन किया जाता है, उसको यज्ञ कहते हैं, और यज्ञ तथा महायज्ञका भेद यह है कि जो यज्ञ सम्बन्धी धर्मकार्य किसी व्यक्तिके लिए किया जाता है, उसको यज्ञ कहते हैं और जो यज्ञ सम्बन्धी धर्मकार्य जाति और जगतके लिए किया जाता है, उसको महायज्ञ कहते हैं। यही कारण है कि—"धर्मप्राणा" अर्थात् आध्यात्मिक उन्नतिशील आर्य-जातिका जीवन यज्ञमय होनेके कारण यह जाति धर्म-प्राण है।

बारहवीं कलाके विषयमें यह दर्शनशास्त्र ऐसा कहता है कि—"वेदशास्त्रविश्वासो द्वादशी नित्यत्वात्" अर्थात् वेद और शास्त्रोंपर विश्वास आर्यधर्मकी बारहवीं कला है और वह वेद और शास्त्रोंको नित्य होना मानती है। वे दोनों किस प्रकारसे नित्य हैं इसके विषयमें दर्शन शास्त्र कहता है कि—"प्रथमः शब्दरूपत्वाद् भावरूपत्वाद् द्वितीयम्" अर्थात् वेद शब्दसे नित्य हैं और अन्यान्य शास्त्र भावसे नित्य हैं इसका तात्पर्य यह है कि वेदकी शब्दराशि ज्यों-की-त्यों सुनाई देती है और अन्यान्य शास्त्र ऋषि, मुनियोंके अन्तःकरणमें भाव रूसे प्रकट होते हैं और वे फिर उसे अपने शब्दोंमें प्रकट करते हैं।

तेरहवींकलाके विषयमें यह दर्शन कहता है कि—"संस्कार-कर्मश्रद्धा त्रयोदशी बीजाङ्कुरवत्" अर्थात् संस्कारों और कर्म पर श्रद्धा करना आर्यधर्मकी तेरहवीं कला है। कर्म और संस्कार ये दोनों अङ्कुर और बीजके समान हैं। संस्कार कर्मका बीज है और कर्म उसका अङ्कुर है। इसके फलके विषयमें कहा है कि—"चतुर्वर्गफला" अर्थात् यही कारण है कि आर्यजाति चतुर्वर्ग (काम, अर्थ, र्थ, धर्म और मोक्ष) फल प्राप्त करती है।

चौदहवीं कलाके विषयमें यह दर्शनशास्त्र यह कहता है कि—"आवागमन-चक्रजन्मान्तरवाद-विश्वासश्चतुर्दश्यभ्युदय निमित्तत्वाद्" अर्थात् आवागमन चक्र और जन्मान्तरवाद पर विश्वास यह आर्यधर्मकी चौदहवीं कला है, जो जीवके निरन्तर अभ्युदयका कारण है। इसका कारण वर्णन कर रहे हैं कि—"विवाहदायश्राद्धतर्पणचतुष्टयेहसुरक्षिता" अर्थात् यही कारण है कि विवाह संस्कार, दायभाग व्यवस्था, श्राद्धकर्म और तर्पण कर्म, इन चारों प्रकारके व्यूहसे आर्य जातिका जन्म मृत्यु और परलोकगमनरूपी आवागमनचक्र सुरक्षित रहता है। अर्थात् आवागमनचक्रमें भ्रमायमान जीवकी सहायताके लिए श्राद्धकर्म, तर्पण कर्म, विवाह कर्म और दायभाग व्यवस्था दृढ़तापूर्वक माननीय हैं, क्योंकि वे परलोकगामी जीवके सहायक हैं।

पन्द्रहवीं कलाके विषयमें यह शास्त्र कहता है कि—"निर्गुणसगुणोपासना पञ्चदशी सर्वशक्तिमत्त्वात्" अर्थात् श्रीपरमात्माकी निर्गुण और सगुण उपासनाकी व्यवस्था आर्यधर्मकी पन्द्रहवीं कला है। भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं इस कारण उनके लिये सब सम्भव है। इसका तात्पर्य यह है कि श्री भगवान् जब सर्वशक्तिमान् हैं, तो वे निर्गुण और निराकार होने पर भी भक्तोंके कल्याणार्थ सगुण और साकार रूप धारण कर सकते हैं। इसका कारण कहा गया है कि—"अधिकारिभेदाद् व्यवस्था" अर्थात् मनुष्यके अधिकार भेदसे ऐसा मानना सब हितकारी है। तात्पर्य यह है कि सब उपासक निराकार निर्गुण सर्वव्यापक भगवद् भावको धारण नहीं कर सकते हैं। इस कारण वे निर्गुण भी हैं और सगुण भी हैं और निराकार भी है और साकार भी हैं।

सोलहवीं कलाके विषयमें यह दर्शनशास्त्र कहता है कि—"कैवल्याधिगमः षोडशी पूर्णत्वात्" अर्थात् आर्यधर्म पूर्ण होनेके कारण मुक्तिप्राप्ति उसकी सोलहवीं कला है। षोड-शकलाओंसे पूर्ण आर्यधर्मके महत्त्वके विषयमें यह दर्शन शास्त्र कहता है कि—"जगद्गुरुत्वमार्य्यजातेः" अर्थात् यही कारण है कि आर्यधर्मके षोडशकलासे पूर्ण होनेके कारण आर्य-जाति जगद्गुरु है। तात्पर्य यह है कि पृथ्वीके सब सभ्य जातियोंके विद्वान् पुरुषोंने सर्वसम्मतिसे एकवाक्य होकर स्वीकार किया है कि प्राचीन आर्यगण जगद्गुरु थे।

—:०:—

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर्मकी प्रतिक्रिया।

कर्म के महत्त्व को आज दिन सारा संसार भूल गया है। कर्मकी सर्वव्यापकता, कर्मकी दुर्लंघनीय शक्ति और प्रत्येक मनुष्य तथा प्रत्येक जाति तक कर्मका प्रभाव कैसा नियमित पड़ता है इसकी ओर किसी का भी ध्यान नहीं है।

श्रीभगवान् ने निज मुख से श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है भगवान् का स्वभाव सच्चिदानन्दमय एक रस है। उसी अलौकिक सत्ता का जो त्याग कराके भूतों की उत्पत्ति कराता है, उसको कर्म कहते हैं। (भूतभावोद्भवकरः विसर्गः कर्मसंज्ञितः) पूज्यपाद महर्षि भरद्वाजने कर्ममीमांसामें कहा है कि प्राकृतिक कम्पन को क्रिया कहते हैं। (प्राकृतिकः स्पन्दः-क्रिया)

प्रकृति त्रिगुणमयी है। रजोगुणके कारण प्रकृति का परिणाम सदा होता रहता है। वह परिणाम कभी सत्त्वसे तमकी ओर और कभी तमसे सत्त्वकी ओर स्वभावसे होता है। जैसे प्रकृतिमें त्रिगुणका होना स्वभावसिद्ध है उसी प्रकार यह परिणाम भी स्वभावसिद्ध है। इसी स्वभावसिद्ध स्पन्दन को कर्म कहते हैं।

मीमांसाकारोंने कर्मके तीन भेद कहे हैं। यथा— सहज कर्म, जैवकर्म और ऐशकर्म। सहज कर्म प्राकृतिक स्पन्दन के साथ ही साथ प्रकट होता है। आदि सृष्टिमें ब्रह्मांड गोलक का बनना, जीवसृष्टि के उद्भिज्जरूपसे उत्पन्न होना यह सब सहज कर्म के उदाहरण हैं। सहजकर्म के बलसे जीव उद्भिज्ज योनि, स्वेदज योनि, अण्डज योनि, जरायुज योनि में होता हुआ अंत में पूर्णावयव मनुष्य योनि में पहुंच जाता है। मनुष्ययोनि पूर्णावयव होने के कारण वह पाप और पुण्य की अधिकारिणी हो जाती है। उस समय जीव में जैवकर्म का उदय होता है। तब मनुष्य आवागमन-चक्रमें घूमता हुआ प्रेतयोनि, नरकलोक, स्वर्गलोक, असुरलोकमें तथा मनुष्यलोकमें आता जाता रहता है। यही आवागमनचक्रको स्थायी रखनेवाला ही जैवकर्म कहाता है। इस दशामें जीवकी क्रमोन्नतिके लिये वेद, पुराण, स्मृति, तन्त्र आदि शास्त्र स्वतः प्रवृत्त रहते हैं। सहजकर्म और जैवकर्म दोनोंसे पृथक् और विचित्र ऐशकर्म कहाता है। ऐशकर्मका साक्षात् सम्बन्ध देव लोकसे है और परोक्ष सम्बन्ध मृत्युलोक से है। मनुष्य को क्रमशः आवागमन चक्र को छुड़ा कर देवलोक की परिधि में पहुँचाना ऐशकर्म का ही कार्य है। नचिकेता का एक जन्म में ही देवयोनिको प्राप्त होना नन्दिकेश्वर का देवत्व प्राप्त होना, बलिका असुरराजपद प्राप्त होना यह सब ऐशकर्म का ही प्रभाव है। ऐशकर्म के बल से देवता और असुर दोनों के सब कार्य सुरक्षित रहते हैं। शास्त्रोंसे पता लगता है कि इसी ऐशकर्म के बलसे मनुपदधारी और इन्द्रपद-धारीगण नाना छोटे बड़े देवपदधारीगण अदल बदल जाते हैं। इसी ऐशकर्म के बलसे लाखों वर्षोंका कलियुग, लाखों वर्षोंका द्वापरयुग, लाखों वर्षोंका त्रेता-युग और लाखों वर्षोंका सत्ययुग चारोंका मिल कर एक महायुग, ऐसे ७१ महायुगोंका १ मन्वन्तर होता है। जिसमें सब देवपदधारी बदल जाते हैं। यह सब ऐशकर्म की महिमा है।

कर्म की महिमा को देख कर कोई कोई कर्ममीमांसक कर्मको ही ईश्वर रूप मानते हैं। जैन और बौद्धधर्मके आचार्योंमें भी इसी कारण कोई कोई ईश्वरको न मानकर कर्मको मानते हैं। कोई जाति या व्यक्ति अपने किये हुए कर्म की प्रतिक्रियासे बच नहीं सकता। इस समय यूरोपकी जैसी अधःपतित दशा हो गई है, ब्रिटिश जातिकी शक्तिका जो क्षय हो गया है, यह उस जाति के पूर्व-समष्टि कर्मोंका ही परिणाम है। इस समय हिन्दुस्थानरूपी भरत खण्ड की जो अस्त व्यस्त दशा देख पड़ती है, समस्त पृथ्वी अर्थात् भारतवर्ष में जो घोर हलचल देखने में आती है, वह मनुष्य जातिके समष्टिकर्मका ही फल है। अतः इस समय के राजनीतिक नेतृवृन्द, समाज-संस्कारक नेतृवृन्द और सब श्रेणीके नेतृवृन्दकी कर्म के सत् और असत् भावों की ओर तीव्र दृष्टि होनी चाहिये और सबको अपने अपने शारीरिक, वाचनिक मानसिक और

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बौद्धिक कर्मों की ओर पूरा ध्यान रख कर कर्मक्षेत्रमें अग्रसर होना चाहिये। भक्ताग्रगण्य गोस्वामीजीने कहा है:—

कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करै सो तस फल चाखा॥

——:*:——

आचार्यपीठोंकी उन्नति और शारदामठ।

इस युग में सर्व जीवहितकारी चिरजीवी सनातनधर्मकी रक्षा के लिये आचार्योंके जितने पीठ हैं सब सुदृढ़ दुर्गरूप हैं। जिस प्रकारसे ब्राह्मणजातिकी आध्यात्मिक उन्नति और सम्मानरक्षाके ऊपर वर्णाश्रमधर्म तथा वर्णाश्रमधर्मावलम्बिनी जाति की उन्नति निर्भर करती है वैसे ही धर्माचारियोंकी गद्दीकी सुरक्षा एवं समुन्नतिके द्वारा समस्त वर्णाश्रमधर्मी हिन्दुजातिकी रक्षा हो सकती है। श्री भारतधर्म महामण्डलकी स्थापनाकी प्रथम अवस्थासे ही इस स्वजातीय प्रतिष्ठान पूज्य आचार्य पीठोंकी उन्नतिका निरन्तर प्रयत्न करता आया है। उसके शुभ प्रयत्नसे श्रीशृङ्गेरी पीठ, (मैसूर) एवं गोवर्धपीठ (पुरी) श्री ज्योतिर्मठ पीठ उत्तराखण्डकी जो सेवा हुई, वह सबको विदित है। श्रीशारदापीठ द्वारकाकी सेवा गत साठ वर्षसे श्रीमहामण्डल करता आया है। पूज्यपाद वर्तमान शारदापीठके आचार्य प्रभुके सम्बन्धमें जो मन्तव्य श्रीमहामण्डल मन्त्रिसभामें स्वीकृत हुआ है वह निम्नलिखित है—

"पूज्यपाद जगद्गुरु श्री अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ स्वामी महाराज शंकराचार्य द्वारका पीठके पट्टाभिषेक महोत्सवकी छपी हुई रिपोर्ट और श्री शंकराचार्यजी महाराजके जनरल एर्टनी विद्याभूषण श्रीमञ्जूलाल एस, दवे मेहसेना बड़ौदा स्टेटकी चिट्ठी ता० २०-१-४६ की पढ़ी गई। दोनोंको सुनकर सभाने बहुत हर्ष प्रकट किया और सर्वसम्मतिसे निश्चय हुआ कि श्रीशंकराचार्य पूज्यपाद जगद्गुरु अभिनव सच्चिदानन्दतीर्थ स्वामी महाराज पश्चिमाम्नायके शंकराचार्यके रूपसे हिन्दू राजन्यवर्ग और प्रजावर्ग सबको मानना चाहिए। ब्रह्मीभूत पूज्यपाद स्वनामधन्य श्री शंकराचार्य स्वामी राजराजेश्वराश्रम जी महाराजके समयसे पश्चिमाम्नायके पीठकी अवस्थामें नाना प्रकारकी असुविधाएँ और परिवर्तन होते रहे हैं। ब्रह्मीभूत पूज्यपाद शंकराचार्य स्वामी श्री शांत्यानन्दजी महाराज आदिके समयसे पश्चिमाम्नायके पीठके अभ्युदयके सम्बन्धमें इस अखिलभारतीय सबसे प्राचीन संस्था श्रीभारतधर्म महामण्डलका पूरा ध्यान रहा है। अब सर्वशक्तिमान श्री भगवानकी कृपासे पूज्यपाद जगद्गुरु श्री अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ स्वामी महाराज सर्ववादि-सम्मतिसे गद्दीस्थ हुए हैं। इसके लिए श्री महामण्डलकी मन्त्रिसभा, श्रीदरबार बड़ौदा, द्वारकाकी ब्राह्मणमण्डली और पश्चिमाम्नायके हिन्दू जन-समुदायको बधाई देती है। और सर्वशक्तिमान् श्री भगवानके चरणोंमें प्रार्थना करती है कि जिस प्रकार ब्रह्मीभूत पूज्यपाद श्री शृङ्गेरीपीठाधीश योगिराज श्री शंकराचार्य स्वामी सच्चिदानन्द शिवाभिनव नृसिंह भारती जी महाराजने अपने सम्प्रदाय की भी वृद्धि और अभ्युदय के विचार से श्री आदिशंकराचार्य महाराजकी जन्मभूमि रूपी तीर्थका उद्धार किया था और श्री भारतधर्म महामण्डलको अपनाकर विशेष आज्ञापत्र द्वारा देवासुर संग्राममें जयलाभ करनेके अभिप्रायसे अपना पूरा भार सौंपा था तथा श्री भारतधर्म महामण्डल को बार बार उत्साहित करके उसके द्वारा उत्तराम्नायके ज्योतिर्मठका उद्धार कराया था, तथा यह सिद्धान्त निश्चय किया था कि चारों आम्नायके पीठोंमें परस्पर सौहार्द स्थापित हो तथा जिस प्रकार ब्रह्मीभूत शारदापीठाधीश श्रीशंकराचार्य राजराजेश्वर

• Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जी महाराज और ब्रह्मीभूत शारदा पीठाधीशश्रीशंकराचार्यमाधवतीर्थजी महाराजने स्वसम्प्रदाय स्वआश्रम तथा संस्कृत विद्याप्रचारके आजीवन परिश्रम कर गए हैं। और जैसे पूर्वाम्नाय गोवर्धनपीठाधीश्वर ब्रह्मीभूत श्री शंकराचार्य पूज्यपाद स्वामी मधुसूदन तीर्थजी महाराजने अपनी गद्दीकी लुप्त प्राय शक्तिका उद्धार किया था और श्री महामण्डलको अपनाकर वर्णाश्रमधर्मकी रक्षाके निमित्त आजीवन पुरुषार्थ करके सफलता प्राप्तकी थी। और जैसे उत्तराम्नायके ज्योतिष्पीठके शंकराचार्य पूज्यपाद स्वामी श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज वर्णधर्मकी रक्षाके लिए और हिन्दू प्रजाके अभ्युदयके लिए स्वयं प्रयत्न कर रहे हैं और अपने प्रधान पट्टशिष्य तपस्वीवर स्वामी करपात्रीजी महाराज द्वारा करा रहे हैं, उसी प्रकार आचार्योंकी पवित्र कार्य प्रणाली और शुभ उद्देश्योंका अनुसरण करके वर्तमान शारदापीठाधीश श्री जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्री अभिनव सच्चिदानन्दतीर्थजी महाराज वर्णाश्रमधर्मऔर हिन्दू संस्कृतिकी रक्षामें सफल काम हों; यही सर्वशक्तिमान श्रीभगवानके चरणोंमें प्रार्थना है।"

स्पर्शास्पर्शविवेक।

शुद्धाशुद्ध विवेक और स्पर्शास्पर्श विवेक जो आर्यधर्मका प्रधान अङ्ग है, उसके विषयमें वर्त्तमान राजनैतिक जगत्में शास्त्रज्ञानरहित होनेके कारण अनेक शङ्काओं और उपद्रवोंका सामना धार्मिक जगत् को करना पड़ रहा है। दर्शन शास्त्रके न जाननेसे ही लोगोंको ऐसी बातों पर सन्देह हो सकता है। वस्तुतः आर्य जातिका शुद्धाशुद्ध विवेक तथा स्पर्शास्पर्श विवेक दृढ़ दार्शनिक भित्ति पर स्थित है। शरीर में पाँच कोष हैं, जिनसे आत्मा ढका रहता है। वे अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय और आनन्दमय कोष कहलाते हैं। इन पाँचोंको साधारण रीतिसे समझनेके लिये यह इंगित किया जाता है, कि अन्न के सहारे जो घटता बढ़ता है, उसे अन्नमय कोष कहते है। अन्नमय कोषका जो सञ्चालन करता है उसे प्राणमयकोश कहते हैं। प्राणमय कोषको जो चलाता है और जो मनके द्वारा व्यवस्थित रहता है, उसे मनोमयकोष कहते हैं, मन उसका केन्द्र है। मनको जो सदसद् विचारके द्वारा जो पथ प्रदर्शन करके चलाता है, वह विज्ञानमयकोष कहलाता है। जिस बुद्धितत्त्वके परे आत्माकी स्थिति शास्त्रने मानी है,—जैसे 'यो बुद्धेः परतस्तु सः' (गीता) और परमात्मासे जीवात्माको अलग करने वाला द्वैतभावोत्पादक पञ्चम आनन्दमय कोष कहलाता है। इन पाँचों कोषोंके मलिन करनेके स्वतन्त्र-स्वतन्त्र पाँच कारण हैं। जिन अपवित्र स्थूल पदार्थोंके द्वारा अन्नमय कोष अपवित्र होता है, उनको मल कहते हैं। प्राणमय कोषको मलिन करनेवाला विकार कहलाता है। मनोमय कोष में जो विषमता उत्पन्न करता है, उसे विक्षेप कहते हैं। विज्ञानमय कोष में जो अपवित्रता उत्पन्न करता है, उसे आवरण कहते हैं। आनन्दमय कोषमें जो अपवित्रता उत्पन्न करता है, उसे अस्मिता कहते हैं। अस्मिता आत्मस्वरूपको ढकती है तथा जितनी ही अस्मिताकी अभिवृद्धि होती है उतनाही अज्ञान बढ़ता जाता है। इन पाँचों प्रकारके कोषोंमें (शरीरमें) पाँच प्रकारकी मलिनता न बढ़ने पावे, इसी का नाम शुद्धाशुद्ध विवेक तथा स्पर्शास्पर्श विवेक है। इस बातको मीमांसाशास्त्रने अच्छी तरह सिद्ध किया है।। इस दार्शनिक रहस्यको विशेष स्पष्ट करने के लिये कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

धोनेसे तथा सचैल स्नानादि करनेसे अन्नमय कोषकी अपवित्रता दूर होती है, यह स्पष्ट ही है। शव आदिके स्पर्श करनेसे प्राणमय कोष मलिन होता है। जब मृत देहसे प्राणमय कोष अन्य कोषों के साथ लोकान्तरमें चला जाता है तो स्वतः उसमें प्राणमय कोष के अभाव होनेसे शवस्पर्शकारीके प्राण खिच जाते हैं। इसीलिए शवस्पर्शीके लिये स्नान अग्नि सुवर्ण आदिका स्पर्श करके अपने प्राणमय कोषको पवित्र

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करनेकी विधि शास्त्रोंमें वर्णित है। देव मन्दिरस्थ मूर्त्ति आदिमें जो पीठ बनता है, वह प्राणमय कोष की क्रियाका ही परिणाम है। आर्यजाति उसी पीठ-में व्यापक दैवी शक्तिकी पूजा किया करती है। जहाँ चेतन शक्तिका विकाश होता है, उसीको पीठ कहते हैं। जिस पीठमें जैसी संस्कारपरम्परा रहती है, विरुद्ध स्पर्श द्वारा उसको नष्ट करनेसे पीठाभिमानी देवता अप्रसन्न होता है, मनोमय कोषके मलिन होने का उदाहरण सूर्य-चन्द्रग्रहण अशौचादि समझना उचित है। सूर्य और चन्द्रकी शक्तिका प्रभाव जो मनोमय कोष पर रहता है, उसमें ग्रहणसे बाधा होती है, इसलिए उसमें सामयिक मलिनता आती है। स्नान, दान, जपादि द्वारा उस मलिनता को दूर किया जाता है, अशौचादिके द्वारा मनोमय कोषमें जो अपवित्रता होती है, वह श्राद्ध आदि द्वारा दूर होती है। विज्ञानमय कोषकी अपवित्रता कुसङ्गादिसे होती है, इसको दूर करनेसे तथा सत्संगति करनेसे विज्ञानमय कोष पवित्र होता है। इसी कारण शास्त्रोंमें साधुसंग की बड़ी महिमा है और अस्मिता जो जीवभावका मूल कारण है उसकी वृद्धि होनेसे आनन्दमय कोषमें अपवित्रता बढ़ती है, निष्काम कर्म, ईश्वर तथा गुरुमें अहैतुकी भक्ति और ज्ञानके द्वारा आनन्दमय कोष-की अपवित्रता दूर होती है। ऐसे शुद्धाशुद्ध विवेक तथा स्पर्शास्पर्श विवेककी महिमा न समझकर अज्ञ लोग स्वयं विपथगामी होते हैं तथा समाज को भी विपद्-ग्रस्त करते हैं। आशा है, इन थोड़े उदाहरणोंसे विज्ञ लोग सचेत होकर समाजके अमंगलका कारण न बनेंगे और दैवी जगत्को अप्रसन्न करके अपना अमं-गल नहीं करेंगे। मनमाने, निरंकुश होकर काम करने से विपत्ति अवश्य भोगनी पड़ती है और सोच समझ कर काम करने से सब ओर मंगल होता है।

—०—

अहिंसा-विज्ञान।

आधुनिक कालकी वर्त्तमान सन्धिमें हिंसा और अहिंसाके सम्बन्धमें अनेक विचार भारतवर्षरूपी पृथ्वी और भरतखण्डरूपी हिन्दुस्थान दोनों जगह चल रहे हैं। इस कारण हिंसाके विषयमें हिन्दु शास्त्र क्या कहता है, इसका विस्तारित स्वरूप लोकशिक्षाके लिए प्रकाशित होना उचित है। अहिंसा हिन्दुशास्त्रके अनुसार योगसाधनका अङ्ग है। योगके प्रधान अङ्ग आठ हैं। यथा (१) यम (२) नियम (३) आसन (४) प्राणायाम, (५) प्रत्याहार, (६) धारणा, (७) ध्यान, और (८) समाधि। इन आठोंमें योग शास्त्रके प्रधान आचार्य पूज्यपाद महर्षि पतञ्जलिजीने योगदर्शनमें यमका लक्षण इस प्रकार किया है—

"अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहा यमाः"

पूज्यपाद महर्षि वेदव्यासजीने पुराणशास्त्रमें हिंसाके दस लक्षण किये हैं। यथा—(१) जीवको किसी प्रकारका उद्वेग पहुँचाना, (२) जीवको किसी प्रकारका सन्ताप अर्थात् दुःख पहुँचाना (३) जीवमें किसी प्रकारकी रोगोत्पत्तिका कारण बनना (४) किसी जीवके शरीरमें चोट पहुँचाना (५) किसीकी निन्दा करना (६) दूसरेके हितमें बाधा पहुंचाना, (७) दूसरेके भीतरी गुप्त छिद्रोंका उद्घाटन करना (८) दूसरेके सुखमें बाधा पहुंचाना (९) दूसरेकी स्वाधीनतामें बाधा पहुँचाना और (१०) जीवमात्रकी हत्या करना। ये सब बातें हिंसाके अन्तर्गत हैं। इन दस बातोंका त्याग करनेसे मनुष्य यथार्थमें हिंसा-रहित हो जाता है। ऐसे हिंसा-रहित महापुरुषके निकट हिंसा करनेवाले मनुष्योंकी तो बात ही क्या है, हिंसा करनेवाले पशु-पक्षी भी अपनी हिंसावृत्तिको छोड़ देते हैं। जैसा कि भगवान् पतञ्जलिने योगदर्शनमें कहा है—"अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः" इति। उपर्युक्त दसविध हिंसाके अभावकी जिस साधु पुरुषमें सच्ची प्रतिष्ठा नहीं होती, उसको अहिंसक नहीं कहा जा सकता। अहिंसाकी महिमा जितनी हिंदूशास्त्रमें है उतनी अन्य कहीं भी नहीं है अहिंसाके सच्चे महाव्रती ऋषि मुनियोंके आश्रमका जहाँ वर्णन आता है, उसको देखकर सब लोगोंको चमत्कृत होना पड़ता है। जैसा कि महाकवि बाणभट्टने महर्षि जाबालिकेआश्रमका वर्णन किया है। तथाहि—

"अहो महात्माओंका प्रभाव भी क्या ही अद्भुत होता है। इस आश्रममें स्वाभाविक बैर विरोधका

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परित्याग करके शान्तिके साथ पशुपत्ती भी तपोवनमें रहनेके सुखका अनुभव कर रहे हैं। जैसे—सूर्यकी प्रखर किरणोंसे पीड़ित सर्प मयूरके कलापमें हरियाली समझकर शान्तिके लिए निःशङ्क प्रवेश कर रहे हैं। हरिणके बच्चे छोटे-छोटे सिंह शिशुओंके साथ मित्रता हो जानेसे सिंहिनीके स्तनोंका पान कर रहे हैं। हाथी के बच्चोंसे अपने केसर समूहके खैंच जाने पर सिंह परम प्रसन्न हो रहे हैं। अपनी स्वाभाविक चपलताको छोड़कर बन्दरोंके समूह स्नात ऋषिकुमरोंको फल ला लाकर दे रहे हैं। ये मदान्ध हाथी अपने कपोल पर बैठे, मदपानसे निश्चल, भौंरोंको दयाके वशीभूत होनेके कारण उड़ा नहीं रहे हैं। अधिक कहाँ तक जाय, तपस्वियोंके अग्निहोत्रके धूओंके कारण मानों कृष्ण मृगचर्म धारण किये हुए, फल मूल वाले तथा वल-कलधारी ये वृक्ष भी इस आश्रममें तपस्वीका जीवन व्यतीत कर रहे हैं।" इत्यादि।

गोत्र और प्रवर महिमा।

आर्य संस्कृतिमें गोत्र और प्रवरका विचार रखना सर्वोपरि माना गया है। सनातनधर्मी आर्यजातिकी सुरक्षाके लिये चार बड़े बड़े दुर्ग हैं। प्रथम गोत्र और प्रवर जिसके द्वारा अपने पवित्र कुलपरम्परापर स्थिर लक्ष्य रहता है। दूसरा रजोवीर्यशुद्धिमूलकवर्णव्यवस्था, जिसमें जन्मसे जाति माननेकी दृढ़ आज्ञा है और तपःस्वाध्यायनिरत ब्राह्मण जातिके नेतृत्वमें सञ्चालित होनेकी व्यवस्था है। तीसरा आश्रमधर्मकी व्यवस्था, जिसमें आर्यजाति सुव्यवस्थित रूपसे धर्ममूलक प्रवृत्ति मार्गपर चलती हुई भी निवृत्तिकी पराकाष्ठापर पहुँच जाती है। और चतुर्थ दुर्ग सतीत्वमूलक नारीधर्मकी सहायतासे आर्यजातिकी पवित्रता है। इन चार अटल दुर्गोंमें गोत्र और प्रवरपर सदा लक्ष्य रखनेवाला प्रथम दुर्ग कितना महान् और परमावश्यक है, उसको इस समय प्रकाशित करनेकी बड़ी आवश्यकता है। गोत्र और प्रवरका माहात्म्य और उसकी परम आवश्यकताका ज्ञान कुछ भी न होनेसे आजकलके राजकर्मचारी और प्रजावर्ग बहुत ही विपथगामी हो रहे हैं, उनके अन्तःकरणमें इतना अज्ञान छा गया है कि प्रवरको तो भूल ही गये हैं और सगोत्र विवाहको कानून द्वारा चलाना चाहते हैं। आर्यजातिका प्रधान महत्त्व यह है कि वह सृष्टिके आरम्भसे अबतक अपने रूपमें विद्यमान है। चतुर्युगी सृष्टि और मन्वन्तर सृष्टिकी तो बात ही क्या है! कल्पादि और महाकल्पादिकी आदि सृष्टिके साथ गोत्र प्रवर-संबन्ध है, क्योंकि ब्रह्माजीकी उत्पत्तिके साथही उनके मानस-पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए ऋषियोंसे ही गोत्र प्रवरका संबन्ध चला है। यह गोत्र प्रवरके विज्ञानकी ही महिमा है कि हिन्दू-जाति तबसे अबतक जीवित है। उस समयसे लेकर अबतक पृथ्वीकी लाखों जातियाँ प्रकट हुईं और कालके गालमें चली गयीं। परन्तु दैवीजगत्पर विश्वास करनेवाली वर्णाश्रमधर्म माननेवाली अपनी पवित्रताकी रक्षा करनेके लिये गोत्र प्रवर की शृंखलाके आधार पर चलनेवाली सनातनधर्मी प्रजा अभी तक अपने अस्तित्वकी रक्षा कर रही है। जिस मनुष्य जाति में वर्णाश्रम व्यवस्था नहीं है, गोत्र प्रवरकी सुव्यवस्थाका विचार नहीं है, उस मनुष्य जाति पर अर्यमा आदि नित्य पितरोंकी कृपा न होनेसे वह जाति जीवित नहीं रह सकती। हमारे वेदोंमें वैदिक कल्पसूत्रोंमें तथा स्मृति और पुराणोंमें गोत्र प्रवर प्रवर्त्तक महर्षियोंकी चर्चा है, तथा उससे आर्यजाति को सुरक्षित रखनेके लिये दृढ़ आज्ञा है। अतः आधुनिक अहम्मन्य नेतृवृन्दों के द्वारा इस व्यवस्थाका नाश होने नहीं देना चाहिये। गोत्र और प्रवरका विस्तारित वर्णन सूर्योदयके संस्कृत संस्करणमें बहुत अच्छी तरहसे किया गया है। आर्य जाति के नेतृवृन्दोंको सूर्योदयके संस्कृत संस्करणसे अवश्य लाभ उठाना चाहिये। इस समयकी क्षत्रिय जाति, वैश्य जाति आदिजातियोंमें अपने पुरोहितके गोत्रसे गोत्र प्रवर माननेकी व्यवस्था प्रचलित हैं इस कारण उक्त जातियोंमें यदि इस व्यवस्थाको कुछ शिथिलता देख पड़े तो हो सकता है। परन्तु ब्राह्मण जातिमें वेद और शास्त्रोक्त गोत्र और प्रवरकी व्यवस्था यथावत् चलनी चाहिये। आजकल ब्राह्मण जातिमें जो अनेक प्रकारके पतनके लक्षण दिखाई देते हैं उसका प्रधान कारण यह है कि ब्राह्मण जाति गोत्र और प्रवरकी महिमाको भूल गई है। वास्तवमें गोत्र और प्रवर महिमाके प्रभावसे ही अभी तक ब्राह्मण जातिमें कहीं कहीं ब्रह्मतेज दिखाई देता है। और वर्णाश्रमधर्म व्यवस्था पर गोत्र प्रवर महिमाका बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। अतः जिसमें स्वजातीय अभिमान है जो अपने स्वधर्मका गौरव समझते हैं, जो जन्मान्तर विज्ञान मानते हैं और जो रजोवीर्यकी शुद्धताका गौरव समझते हैं उनको इस समय प्रमादग्रस्त न होकर सचेत होना चाहिये।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अखिलभारतीय धार्मिकाध्यात्मिकसंस्कृतविश्वविद्यालय ।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल का शास्त्रप्रकाशन विभाग जैसे सबसे परमावश्यक विभाग है, जिसका संक्षिप्तविवरण इस अङ्कमें अलग प्रकाशित होरहा है उसी प्रकार यह विश्वविद्यालयविभाग भी देश काल पात्र के बहुत हितकारी हैं। हिन्दुजाति हिन्दुसंस्कृति और हिन्दुधर्म की सेवाके लिये अत्यन्त उपयोगी है। इस विश्वविद्यालय के निम्नलिखित उद्देश्य हैं।

१—पूज्यपाद त्रिकालदर्शी, ज्ञानमार्गको बतलानेवाले महर्षियों की चलाई हुई शिक्षाप्रणाली का प्रचार स्थायी रखना।

२—भारतमें स्थान स्थान पर विद्वान् ब्राह्मणों और दाताओंके प्रयत्न से जो संस्कृतविद्याप्रचार के लिये केन्द्र बने हैं उनको एक सूत्र में बाँधकर इसके शुभ उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक बनाना।

३—भारत के जो प्राचीन विद्यापीठ हैं उनको पुनर्जीवित और शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न करना एवं उनको काशी के इस प्रधान केन्द्र द्वारा उत्साह और सहायता पहुँचाना।

४—एक विशेष शिक्षा प्रणाली का अवलम्बन करना, जो अपनी प्राचीन मर्यादा के धार्मिक और आध्यात्मिक उन्नतिका साधक हो तथा वर्तमान देश कालके उपयोगी भी हो। इस परीक्षाप्रणालीके परीक्षा-केन्द्र समस्त भारतखण्ड में स्थापित करना।

५—सनातनधर्मी नरनारी और बालक बालिकाओं में धार्मिकशिक्षा का विस्तार करना तथा प्रत्येक हिन्दू के घर में पुस्तकादिद्वारा धार्मिक-शिक्षा का नियमित प्रचार करना।

६—वर्णाश्रम सदाचार का लोप होने न पावे और आध्यात्मिक उन्नतिशील जाति का विनाश न हो, इसके लिये भारत में सदाचारी विद्वान ब्राह्मणों के विद्यादान के कार्य में सहायक बनना।

७—काशी के इस विद्यापीठ के प्रयत्न से पृथ्वी की सब जातियों को आध्यात्मिक लाभ पहुँच सके, ऐसा प्रयत्न करना।

८—काशी में उपदेशक महाविद्यालय का स्थापना करना, जिसमें धार्मिक प्रणाली के अनुसार विद्यार्थियों को शास्त्राध्ययन करने की, व्याख्यान देने की और अन्य आवश्यकीय विषयों की ऐसी शिक्षा का प्रदान करना कि वे सुयोग्य धर्मवक्ता धर्मशिक्षक, धर्मसेवक और देशसेवक बनें।

९—आर्य महिलाओं में धार्मिक शिक्षा विस्तार के लिये श्रीआर्यमहिलाहितकारिणी महापरिषद् नामक जो एक स्वतन्त्र संस्था है और उस संस्था के द्वारा स्थापित 'धर्मसेविका विद्यापीठ' नामक प्रतिष्ठान है। सारे भारतमें इस प्रतिष्ठानके कार्यक्षेत्र को विस्तार करके आर्यमहिलाओंमें धार्मिक और संस्कृत शिक्षा का अधिक से अधिक प्रचार करने में सहायक बनना।

१०—आयुर्वेद की सर्वाङ्गीण शिक्षा के लिये काशी में आयुर्वेद की जो 'काशी आयुर्वेद-सम्मिलनी' नामक प्रतिष्ठान है उसका कार्यक्षेत्र बढ़ाकर आयुर्वेद शिक्षा की उन्नति करना

११—शास्त्रप्रकाश और प्रचार के लिये जो स्वतन्त्र विभाग होगा उसके द्वारा विश्वविद्यालय के मुखपत्ररूप से सामयिक पत्रका प्रकाशन करना और दुर्लभ, प्राचीन एवं अत्युपयोगी प्राचीन पुस्तकों का प्रकाशन करना।

१२—सुकौशल पूर्ण उपायद्वारा जिससे हिन्दू बालक बालिकाओं को बाल्यावस्था से ही अपने घर में धार्मिक शिक्षा मिल सके ऐसा प्रयत्न करना।

१३—साङ्गोपाङ्ग वेदवैदिक दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र, ज्यौतिषशास्त्र, धर्मवक्तृता की प्रणाली, एवं संस्कृत साहित्य का ज्ञान, भारतखण्ड की मातृभाषा हिन्दी साहित्य का ज्ञान, कर्मकाण्ड का विधिज्ञान आदि की विभिन्न विभिन्न परीक्षायें स्थापित करके सनातन

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धर्म के अविरुद्ध सद्विद्या का विस्तार करना और परीक्षोत्तीर्ण चुने हुए विद्यार्थियों को आर्थिक पारितोषिक देकर उत्साहित करना।

१४—अंग्रेजीभाषाभाषी विद्वानों में धार्मिक शिक्षा और तुलनात्मक दार्शनिक गवेषणा का प्रचार करने के लिये प्रबन्ध (रचना) लिखवाकर योग्य उपाधि आदि देकर उन्हें सम्मानित करने का प्रयत्न करना।

इस विश्वविद्यालय का संक्षिप्त इतिहास यह है कि, श्रीभारतधर्म महामण्डलकी श्रीमथुरा जी में रजिस्ट्री होते ही आर्यसंस्कृति की रक्षा, पूज्यपाद महर्षियों की प्राचीन शिक्षा प्रणाली का यथासम्भव प्रचार, सनातनधर्म और वर्णाश्रमधर्म का वर्तमान देशकाल के अनुसार विस्तार और आध्यात्मिक ज्ञान की अभिवृद्धि के शुभ अभिप्राय से उसी समय इस महासभा की सुव्यवस्था के साथ ही साथ 'विद्यापरिषत्' के नाम से यह संस्था श्रीमथुरापुरी में संस्थापित हुई थी। तदनन्तर काशीपुरी में जब श्रीमहामण्डल का कार्यालय आया तो इस विश्वविद्यालय का कार्य "श्रीवाराणसीविद्यापरिषद्" के नाम से चलता रहा। तत्पश्चात् जब बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी की स्थापना हुई, उस समय गवर्नमेण्ट हिन्दू के सम्मुख तीन विश्वविद्यालयों की योजनाएँ रखी गई। यथा—श्रीमान् माननीय मालवीय जी की योजना, माननीया श्रीमती एनीबेसेन्ट की योजना और श्री वाराणसीपरिषद् की योजना। श्रीवाराणसी परिषद् की योजना को स्वर्गीय महाराजाधिराज रमेश्वरसिंह बहादुर ने स्वयं अपने दस्तखतों से उपस्थित किया था। भारत गवर्नमेण्ट ने इन योजनाओं के पेश होने पर यह मत प्रकट किया कि तीनों जब तक एकमत होकर हमारे संमुख नहीं आवेंगे, तब तक विश्वविद्यालय को राजाज्ञा नहीं दी जावेगी। तदनन्तर ऐक्य-स्थापन के शुभ अभिप्राय से तीनों दलों के विशिष्ट व्यक्तियों की एक सभा दरभंगा राजभवन इलाहाबाद में हुई। जिसके सभापति श्रीमान् महाराजाधिराज दरभंगा थे। श्रीमान् माननीय मालवीय जी भी उस सभा में उपस्थित थे। मतैक्य में बाधा होना देखकर श्रीमहामण्डल के व्यवस्थापक श्रीस्वामी जी ने यह प्रस्ताव किया था कि अन्य दोनों स्कीम पश्चिमी युनिवर्सिटी की नकल है, इस कारण दोनों का एकमत होना सम्भव है और होना उचित भी है परन्तु श्रीमहामण्डल के स्वजातीय विश्वविद्यालय की जो योजना है वह वर्तमान समय की युनिवर्सिटियों से विलक्षण है। इस कारण उचित यह होगा कि श्रीमहामण्डल के प्रधान सभापति श्रीमान् मिथिलाधिपति महाराजाधिराज महोदय को अन्य दोनों योजनाओं के सभ्यवृन्द अपना सभापति बना लेवें तथा दोनों एक मत होकर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना करें। इस शुभ प्रस्ताव को सबने प्रसन्न होकर स्वीकार किया था और वर्तमान बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी की स्थापना हुई थी।

श्रीमहामण्डल ने बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी की स्थापना में इस प्रकार से पूर्ण सहयोग और सहायता देकर अपने धार्मिक विश्वविद्यालय के मङ्गलमय कार्य को यथादेशकालपात्र जारी रक्खा। स्वर्गीय लार्ड मिण्टो जब हिन्दुस्थान के वायसराय थे, उन्होंने श्रीमहामण्डल के पदधारियों को परामर्श दिया था कि गवर्नमेण्ट की चलाई हुई विद्याप्रचार की जो नाना योजनाएँ हिन्दुस्थान में हैं उनसे पूर्णरूप से अलग रहकर महामण्डल अपने ढंग पर सद्विद्याविस्तार की एक योजना बनावे तो बहुत अच्छा होगा। विज्ञ स्वर्गीय लार्ड मिण्टो के इस सत्परामर्श से श्रीमहामण्डल के कार्यकर्ताओं को विशेष उत्साह हुआ। दूसरी ओर हिन्दुस्थानके नाना प्रान्तों में जो अनेक विश्वविद्यालय स्थापित हैं उनमें ईश्वर-ज्ञानविहीन धार्मिक शिक्षा से रहित तथा सबको बलपूर्वक एक ही रास्ते से चलाने की जो प्रणाली जारी है वह अतिभय-जनक है। ऐसे अनेक विचारों के बाद तथा काशी में अखिल भारतीय ब्राह्मण-महासम्मेलन के प्रस्ताव

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के अनन्तर अखिलभारतीयधार्मिकाध्यात्मिक संस्कृतविश्वविद्यालय (आल इण्डिया रिलीजस एण्ड स्पिरिचुअल युनिवर्सिटी) की वर्तमान रूप में स्थापना की गयी। इसका शुभ कार्य बहुत धीरे धीरे अग्रसर हो रहा है। वर्तमान समय में कालप्रभाव से हिन्दूप्रजा की दृष्टि धर्म और मोक्ष की ओर से हटकर अर्थ और काम की ओर लगी हुई है। जो वर्णाश्रमी हिन्दूजाति एक समय जगद्गुरु थी, वही जाति अब अपने पूर्वजोंके महत्व को भूलकर आधुनिक सभ्यता की बुद्धि नाशकारी चाकचिक्य में फँसकर अपनी त्रिलोकपवित्रकारी प्राचीन संस्कृति को भूल गयी हैं। जिस हिन्दूजाति के शारीरिक मानसिक और बौद्धिक सब कर्म स्वधर्मरक्षा और आध्यात्मिक लक्ष्य से हुआ करते थे उसी आध्यात्मिक उन्नतिशील आर्यजाति के नवशिक्षित नेतृवृन्द धर्म के नाम से नाक सिकोड़ते हैं। इस जाति की पवित्र संस्कृति और धर्म पर बाहर सब ओर से तो आक्रमण हो ही रहा है, अधिकन्तु घर के ही लोग पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव से उन्मत्तप्राय होकर अपने आप ही अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे हैं तथा काममोहित होकर हिन्दूजाति के जगत्पवित्रकारी सतीधर्म का अनादर करके और ईश्वरदत्त पुरुष अधिकार और स्त्री अधिकार को भूलकर दोनों को एक ही ढंग की शिक्षा प्रणाली पर चलाकर आर्यजाति की पवित्रता का मूलोच्छेद कर रहे हैं। केवल अर्थ और काम की दृष्टि से हिन्दुस्तान में जो राजनैतिक आन्दोलन के लिये जागृति देखने में आ रही है, उस जागृति के पुरुषार्थों में धर्म का स्थान कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता। धर्मप्राण आर्यजाति के लिये यह समय बहुत ही भयानक है। इस समय सत्शिक्षा के अवलम्बन से इस अधोगामी स्रोत को रोकने के शुभ अभिप्राय से महामण्डल के नेतृवृन्द ने इस विश्वविद्यालय की स्थापना की है।

इस स्वजातीय धार्मिकविश्वविद्यालय का प्रधान कार्यालय जगतगंज बनारस में स्थापित है। भारतखण्ड के गण्य मान्य विद्वान् इस विश्वविद्यालय के परीक्षक के कार्य में भाग ले रहे हैं। इस स्वदेश हितकारी और धर्म हितकारी विद्याप्रचार का कार्य सुकौशलपूर्ण उपायों के द्वारा कई प्रकार से चलाया जा रहा है। इस विभाग की नियमावली स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित है जो माँगने पर बिना मूल्य भेजी जाती है। इस विश्वविद्यालय के अपने परीक्षाकेन्द्र सब समेत १६४ हैं। ये सब केन्द्र संयुक्तप्रान्त, बिहारप्रान्त, बंगालप्रान्त, मध्यप्रान्त, राजपुतानाप्रान्त, बम्बईप्रान्त, पञ्जाबप्रान्त और मद्रासप्रान्त आदि में स्थापित हैं। और विद्यार्थियों की परीक्षा प्रतिवर्ष नियमित समय पर सब जगह हुआ करती है। परीक्षोत्तीर्ण विद्वानों को मानपत्र उपाधि आदि के प्रमाणपत्र तत्तत्केन्द्रों के मार्फत नियमित समय पर भेजा जाता है। प्रबन्ध लिखकर जो परीक्षा देते हैं उनको परीक्षा अन्य समय में भी हुआ करती है। इस प्रकार से यथाशक्ति यह विश्वविद्यालय अपना कर्तव्यपालन कर रहा है।

धर्म प्रचार विभाग।

श्रीभारतधर्ममहामण्डलके धर्मप्रचार का कार्य दो प्रकार से किया जाता है। एक धर्मोपदेशकोंके द्वारा और दूसरा पुस्तकों के द्वारा। श्रीभारतधर्म महामण्डलकी पहली अवस्थामें जबतक ब्रह्मीभूत स्वामी दयानन्दजी महाराज भारतके प्रधान धर्मवक्ता रूपसे काम करते रहे और सुविधा भी रही तबतक करीब ३० धर्मवक्ता वृत्ति लेकर सारे भारत खण्ड में धर्मोपदेश का काम किया करते थे। इसके अतिरिक्त बिना वृत्ति लिये धर्मोपदेशक महोपदेशक महामहोपदेशक भी अनेक थे जो अपने समयके अनुकूल प्रचारका काम किया करते थे। ब्रह्मीभूत स्वामी जीने इस शुभ कार्य में विशेषरूप से सहायता देने

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के अर्थ भारतधर्म सिंडिकेट लिमिटेड नामक एक कंपनी १००००००) दस लाखके मूलधनसे खोली थी। उस कंपनी द्वारा अनेक पुस्तक पुस्तिकाएँ और मासिक, साप्ताहिक पत्र आदि प्रकाशित होते थे। दैनिक पत्रके प्रकाशनका भी आयोजन हो रहा था। ब्रह्मीभूत स्वामीजीने वर्णाश्रमसंघ नामक एक सभा प्रचारकार्यके लिये स्थापित की थी। उक्त सभाको कैलासवासी महामहोपाध्याय लक्ष्मणशास्त्री जो महाशय ने और कैलासवासी म० म० उपाध्याय महामहाध्यापक पञ्चानन तर्करत्न महाशय ने उक्त स्वामीजीसे एकवाक्य होकर अपने हाथ में लिया था। इस नवीन सभाको श्री भारतधर्म महामण्डल से मासिक आर्थिक सहायता भी दी जाती थी। कुछ दिनों के बाद उक्त संघका कार्यालय काशी से दिल्ली ले जाया गया और उक्त सभाके नामके साथ स्वराज्य शब्द बढ़ा कर वर्णाश्रमस्वराज्यसंघ नाम रखा गया इस परिवर्त्तन के कार्य में महामंडल की सम्मति नहीं लीगई; अतः क्रमशः वर्णाश्रम स्वराज्य संघ की एक अलग संस्था बन गई और धर्म प्रचार का कार्य अपने ढंगपर अलग होने लगा। इधर कार्य-कर्त्ताओंके स्वार्थके कारण भारतधर्म सिंडिकेट कंपनी फेल हो गई और स्वामी दयानन्दजी महाराज के ब्रह्मीभूत होनेपर धर्मवक्ताओंके द्वारा धर्मप्रचार का कार्य कुछ शिथिल कर दिया गया। क्योंकि वर्णाश्रम स्वराज्य संघमें धर्मवक्ताओं के द्वारा धर्म-प्रचारक का काम अपने ढंगपर कुछ होही रहा था और वह संस्था अपने यहाँ से निकली हुई संस्था थी इस कारण से भी तथा उस में कार्य करनेवाले सब व्यक्ति प्रायः अपने ही थे, जो कुछ कार्य हो रहा था वह वर्णाश्रम के अनुकूल ही होरहा था; यह देख कर उक्त सभाके कार्य में सदा आनुकूल्य ही रखा गया। इस बीचमें उत्तराम्नायके ज्योतिर्मठ के उद्धार होनेके साथ ही साथ वहाँके पूज्यचरण श्रीशङ्कराचार्य श्रीज्योतिष्पीठाधीशकी अलौकिक शक्तिसे और उनके सुयोग्य पट्टशिष्य तपस्विवर श्रीस्वामी हरिहरानन्द तीर्थ जी महाराज (स्वामी श्री करपात्री जी) की असाधारण प्रतिभा से धर्मसंघ नामक प्रतिष्ठान का कार्य आरम्भ होने से सनातनधर्म प्रचार का काम बहुत योग्यता से आगे बढने लगा और इससे श्रीभारतधर्म महामण्डल को बहुत कुछ निश्चिन्तता होगई। तोभी श्रीमहामण्डलके इस विभाग के द्वारा कुछ धर्मवक्ता कार्यकर रहे हैं और भारतधर्म-महामण्डलके उपदेशक महाविद्यालय में शिक्षा-पानेवाले पण्डितगण इस प्रचारविभाग के कार्य में भी यथासंभव सहायता दिया करते हैं। पुस्तिकाओं के द्वारा धर्मप्रचारका काम जैसा होता था वैसा नियमित रूपसे जारी है। गायत्री उपासना और गायत्रीमंत्रकी टीका, हिन्दुधर्मका स्वरूप, सदाचार प्रश्नोत्तरी, परलोक प्रश्नोत्तरी, पञ्चमहायज्ञ सम्बन्धी सरलसाधनप्रश्नोत्तरी आदि जैसे अनेक पुस्तिकाओं के द्वारा धर्मप्रचारका कार्य स्थायी रूपसे किया जाता है। इस धर्म प्रचार कार्य में इस समय श्रीधर्मसंघ, श्री वर्णाश्रमस्वराज्यसंघ और कलकत्ते की श्रीशास्त्रधर्मप्रचारिणी सभा से श्रीभारत-धर्म महामण्डल के इस प्रचार विभाग के कार्य में बहुत कुछ सहायता प्राप्त हो रही है।

हिन्दुस्थानका शास्त्रीय नाम।

हिन्दुस्थान यह नवीन नाम है। यह कैसे पड़ा इसके विचार करने में अनेक मतभेद हैं। भारत-खण्ड, भारतद्वीप, भारत आर्यावर्त आदि नाम आर्यशास्त्रों में पाये जाते है। भारतवर्ष रूप से जो नाम सुनने में आता है, वह हिन्दुस्थान का नहीं है बल्कि यह नाम सारे पृथ्वी का है। आर्यशास्त्रों में जो हमारे ब्रह्माण्ड का वर्णन आता है और जिसका वर्णन आर्यजाति के नित्य संकल्प में पाया जाता है

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसके अनुसार हमारे ब्रह्माण्ड के चौदह लोक माने गये हैं। ऊपर के भूर्भुवः स्वः आदि सात लोक, और नीचे के अतल वितल सुतल आदि सात लोक हैं। जिनमें से ऊपर के सात लोकों में पहला भूलोक है। भूलोक के सात अलग अलग द्वीप है, जो भूलोक के सात खण्ड कहाते हैं। उनमें से जम्बू द्वीप हमारा द्वीप है। इसमें साधारण स्वर्गरूपी पितृलोक, उसके नीचे नाना प्रकार के नरकलोक और हमारे पृथ्वी के पास प्रेतलोक है। इन सब के शासक भगवान् यम धर्मराज हैं। इसी जम्बूद्वीप में नववर्ष अलग अलग हैं।: उन नव वर्षों में से एक भारतवर्ष है। भारतवर्ष ही मृत्युलोक है, जहाँ माता के गर्भ से जीव जन्म लेता है। शेष आठ वर्षों में ऐसा नहीं होता है, क्योंकि वह देवलोक है। अतः हमारे शास्त्रों का यह सिद्धान्त है कि इस सम्पूर्ण मृत्युलोकरूपी पृथ्वी का नाम भारतवर्ष है। और हमारे हिन्दुस्थान को शास्त्रों में भारतखण्ड भारतद्वीप और भारत आदि नाम मे अभिहित किया गया है। शास्त्रीय इस मौलिक तत्वको हिन्दू-मात्र को स्मरण रखना चाहिए।

शास्त्रों में जो जम्बूद्वीप का वर्णन आता है। अथवा जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भारतवर्षके अतिरिक्त अन्य आठवर्षों का वर्णन आता है उनके पढ़नेसे साधारण व्यक्तिको भी यह निश्चय हो जायगा कि वे सब वर्णन मृत्युलोक के नहीं हो सकते किन्तु देवलोक के वर्णन है। अतः भारतवर्ष के नाम से जो लोगों मे भ्रम फैला हैं वह दूर हो जाना चाहिये। इस विचार का निष्कर्ष यह है कि भारतवर्षरूपी मृत्युलोक सम्पूर्ण पृथ्वी को कहते हैं। और हमारे हिन्दुस्थान का नाम भारतखण्ड, भारत-द्वीप और केवल भारत है।

राजनीतिक तुलनात्मक गवेषणा।

वीराग्रण्य परमतपस्वी पितामह भीष्म महा-भारतके युद्धकी समाप्ति के अनन्तर जब शरशय्या-पर पड़े हुए थे, उस समय धर्म सम्बन्धी अनेक उपदेश जगत्कल्याण के लिये उन्होंने दिये थे। महाभारतीय वे सब उपदेश वेदवत् बड़े सारगर्भ हैं। उस समय महाराणी द्रौपदी ने उनसे प्रश्न किया था कि, दादाजी! आप इस समय अद्भुत धर्मोपदेश दे रहे हैं, जिनको सुनकर ऋषि-मुनि तक चकित हो रहे हैं। भला यह तो बताइयेकि, युद्ध से पहले जब आपकी पुत्रवधू भरी सभा में विवस्त्र करके अपमानित की जा रही थी, तब आपकी यह ज्ञानराशि कहाँ लुप्त हो गयी थी? धीरवर भीष्म पितामहने उत्तर दिया,—बेटी! तुम कहती हो, वह ठीक है। उस समय मेरी बुद्धि असुराक्रान्त हो गयी थी और मैं हतबुद्धि हो गया था।

वैदिक दर्शनशास्त्रों का यह सिद्धान्त है कि, यह स्थूल जगत् दैवी जगत्के आश्रय से चला करता है। इस स्थूल जगत् की सञ्चालिकाएँ तीन शक्ति-याँ है। यथा कश्यप, अत्रि, भरद्वाज आदि ऋषि गण, जो एक प्रकारके देवता हैं। ये ज्ञानके सञ्चा-लक हैं। वसु, रुद्र, आदित्य आदि पदधारी देवता हैं, जो कर्मके चालक है और अर्यमा, अग्निष्वात्ता आदि नित्य पितृगण, जो एक प्रकार के देवपद-धारी हैं, स्थूल शरीर के बनानेवाले और स्थूल जगत्के रक्षक हैं। इन दैवीशक्तियोंकी शत्रु आसुरी शक्तियां अनेक हैं। पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण, इन दोनों के हृदयों में उस समय असुरोंका आवेश हो गया था, इसीसे उन्होंने असुरराज दुर्योधन का पक्ष लिया था। राजनीतिक नेतृवृन्दों को स्मरण रखना चाहिये कि, असावधान कर्ता, चाहे महात्मा हो, चाहे विद्वान् और राजनी-

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विज्ञ हों, असावधान और सची ईश्वरभक्तिविहीन होनेसे उनके अन्तःकरणों में असुरों का आवेश होना स्वाभाविक है। इस कारण जिनके हाथ में राज्य की बागडोर रहती है, उनको दम्भ और दर्प से रहित होकर सच्ची ईश्वरभक्ति करनी चाहिये और न्याय तथा सत्य के पथ से कदापि विचलित नहीं होना चाहिये।

प्राचीन ढंग की राजशासनप्रणाली सबसे उत्तम है, परन्तु वैसी शासनप्रणाली में राजा को दुर्व्यसनों को छोड़कर भगवान रामचन्द्र के आदर्श को सामने रखना चाहिये, तभी सफलता हो सकती है। परन्तु आज कल वैसा मौका है ही नहीं न उस आदर्श का जगत् में कहीं चिह्न ही दिखायी देता है। इस समय के शक्तिशाली रूस सम्राट् जैसे राजा की जैसी दुर्दशा हुई, सभी जानते हैं। दूसरी प्रणाली, जो इस समय प्रचलित है, उसको राज प्रजातन्त्र कह सकते हैं। उसका नमूना जापान और इङ्गलैन्ड में दिखायी देता है। लक्ष्यभ्रष्ट होने से जापान और इङ्गलैण्ड में कैसी दुर्बलता आ गयी है, वह विचारवान् पुरुष सुगमता से समझ सकते हैं। भारतद्वीप के लिये यह प्रणाली वर्तमान समय में बहुत ही भयजनक है, क्योंकि यहां के हिन्दू मुसलमान राजाओं की दशा सब पर विदित है और उसका फल भी सामने है। तीसरी राजशासन प्रणाली शुद्ध प्रजातन्त्रकी है, जो डेमोक्रसी कहलाती है। इसमें प्रत्येक मनुष्य को मतदेनेका अधिकार है। इस प्रणालीका जनक फ्रान्स-देश है, जो अब वृद्ध हो गया है और उसकी दशा दयनीय है। इस शासनप्रणाली की यौवनावस्था इस समय अमेरिका में देख पड़ता है। यह अपेक्षाकृत भय रहित हो सकती है, यदि शासकवृन्द सच्चे हृदय से भगवानके भक्त हों और न्याय तथा सत्यपरायण हों और कुटिल राजनीतिके पक्षपाती न हों। वर्तमान जगत्की राजनीतिका चौथा प्रकार, जो निरंकुश है, उसका नमूना रूस में देखने योग्य है। यह शासन प्रणाली पहली दशा में ऐसी उच्छृङ्खल और निरंकुश थी कि, वहां की स्त्रियां गाय भैंसकी तरह मानी जाती थी। सुनने में आता था की वहां प्रतिदिन सायंकाल को पुरुष-गण एकत्र होते और अपनी उपस्थिति के नम्बर वार स्त्रियोंके घर भेज दिये जाते थे। उनकी जो सन्तति होती, वह राज्य की सम्पत्ति समझी जाती थी यद्यपि अब कोई विवाह करना चाहता हो, तो कर सकता है, ऐसा कानून वहां बन गया है, तथापि स्त्री पुरुषों के संबन्ध की निरंकुशता दूर नहीं हो सकी है और न ऐसी शासनप्रणाली में हो ही सकती है। इस शासनप्रणाली की प्रारम्भिक अवस्था में ऐसी निरङ्कुशता और उच्छृङ्खलता आगयी था कि, भगवान का नाम लेने से ही लोग विपन्न होजाते थे और प्रकाश्यरूप से उपासना प्रणाली लुप्त होगयी थी। लघुशक्ति और प्रबल-शक्ति, विचार का अधिकारभेद, विद्या का अधिकारभेद उठा दिया गया था और सबको समान अधिकार दे दिये गये थे। वस्तुतः इस राज शासन प्रणाली में एक व्यक्तिको राष्ट्रपति बनाया जाता है और उसीको राज्यसञ्चालन का पूरा अधिकार रहता है। इसी को डिक्टेटरशिप कहते हैं। इस शासनप्रणाली में भविष्यत् में अधिक भय होने की सम्भावना है। इस प्रकार का डिक्टेटर कदापि भय से खाली नहीं रह सकता। रूस और हिन्दुस्थान में इस भयके लक्षण भी देखने में आये हैं।

वर्तमान समय में अमेरिका का प्रजातन्त्र (डेमोक्रसी) राज कुछ सम्हला हुआ देख पड़ता है। अतः उसीके अनुकरण पर हिन्दुस्थानके देशकाल-पात्रके अनुकूल सामञ्जस्य करके यहां सच्चा प्रजा-तन्त्र स्थापित हो और सत्य, न्याय और स्वधर्म की रक्षा का ध्यान रखकर यदि प्रजातन्त्रकी यहां शैली चलायी जाय, तो सब ओर मङ्गल हो सकता है। हिन्दुस्थान धर्मभूमि है। राजनीति के बहाने इस समय जो हिन्दू प्रजाके धर्म में मनमाना हस्तक्षेप किया जा रहा है, दैवी जगत् से सम्बन्धयुक्त

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्दिर आदि दैवीपीठों में जो भ्रष्टाचार किया जा रहा है, जातपाँत तोड़ कर गोत्रादि नष्ट करके जो एकाकार फैलाया जारहा है, यह शुभ लक्षण नहीं है। इससे दैवीकोप होकर इस तरह की दुर्बलता और बाधा का सामना करना पड़ेगा इसको राजनीतिक नेताओं को हर समय ध्यान में रखना चाहिये।

मन्त्र, तन्त्र और यन्त्र।

दैवी राज्य से सम्बन्ध युक्त शब्द को मन्त्र कहते हैं। दैवी राज्य से सम्बन्ध युक्त शुभाशुभ फलप्रद पदार्थ विशेष को यन्त्र कहते हैं। तन्त्र शब्द का अर्थ यद्यपि बहुत विस्तृत है, क्योंकि वेद स्मृति पुराणों की तरह यन्त्रशास्त्र भी बड़ा विषय है। श्री जगदम्बा से सदाशिव ने कहा है:- "सप्त सप्त सहस्राणि तन्त्राण्याहुर्वरानने" परन्तु तन्त्र शास्त्र का रूढार्थ टोटका भी है। जिसके अद्भुत कार्य देखने में आते हैं।

मन्त्रों में भगवन्नाम वाचक मन्त्र सर्वश्रेष्ठ होते हैं। पूज्यपाद महर्षियों ने कहा है कि सर्वशक्तिमान् श्री भगवान् का सबसे बड़ा आदिवाचक प्रणव है। प्रणव त्रिगुणात्मक है। उसमें सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा, सृष्टि पालक विष्णु, और संहारकर्ता तथा मुक्तिदाता शिव विद्यमान हैं। इस कारण प्रणव का जप करने और उसके अर्थ को भावना करने से साधक भगवान् के चरण कमलों तक पहुँच जाता है। मन्त्र शास्त्र का यह सिद्धान्त है, कि प्रणव सेतु (पुल) है जैसे रास्ते को सरल करने वालों के लिये नदी नालों पर सेतु बनाये जाते हैं, वैसे ही प्रणव से युक्त मन्त्र दैवी जगत् में पहुंचाने के लिये सब बाधाओं से मुक्त हो जाते हैं। पूर्णशक्ति प्राप्त करते हैं। प्रणव आदि मन्त्र होने से इसके स्वरूप को समझने की विशेष आवश्यकता है। मंत्र तत्वज्ञ योगीजन प्रणव के दो स्वरूप बताते हैं, एक वर्णात्मक, दूसरा ध्वन्यात्मक। अ उ और म के संयोग से ॐकार का जो स्वरूप अक्षरात्मक बनाया जाता है, और जिसका उच्चारण हर एक मनुष्य कर सकता है वह शब्दात्मक है। ध्वन्यात्मक प्रणव के विषय में मन्त्रशास्त्र कहता है कि वह तैलधारा के समान अविच्छिन्न' और बड़े घन्टे के नाद की तरह है और उसका कोई अंग मुख के द्वारा उच्चारित नहीं हो सकता। केवल योगयुक्त अन्तःकरण अपने चित्ताकाश में उसको सुन सकता है। प्रणव की असाधारण महिमा वेदों, उपनिषदों, पुराणों और तन्त्र ग्रन्थों में बहुत कुछ पाई जाती है। वैदिक दर्शनशास्त्र यह सिद्ध करते हैं कि जहाँ कुछ कार्य है वहाँ कम्पन है, और जहाँ कम्पन है. वहाँ शब्द अवश्य होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार साम्यावस्था प्रकृति, जो परम पुरुष के साथ एकरस रहती है, वह जब विषमावस्था में परिणत होती है तब जगत् का सृष्टि स्थिति लय कार्य हुआ करता है। जिस समय एक रस रहनेवाली साम्यावस्था प्रकृति वैषम्यावस्था में परिणत होने लगती है, उस समय प्रकृति में जो कम्पन होता है, उस कम्पन की प्रथमध्वनि को प्रणव कहते हैं। अतः योगिराज का अन्तःकरण जब इस प्रकृति को वैषम्यावस्था प्राप्ति के मूलस्थान में पहुँचता है, तब प्रणव सुनायी देता है। इस परमात्मस्वरूप प्रणव के बाहर की ओर शब्दरूपात्मक जगत् है और दूसरी ओर परम विष्णु पद है। 'तद्विष्णोः परमं पदम्' आदि मन्त्रप्रणव की जितनी महिमा कही जाय, उतनी थोड़ी है।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जैसे प्रणव परमात्मा का वाचक होने कारण भगवान् के चरणकमलों में पहुँचा देता है, वैसे ही मन्त्रशास्त्रोक्त नाना बीजमन्त्र भी दृश्य और अदृश्यरूप दोनों से सम्बन्ध करा के तत्तद् बीज से सम्बन्धयुक्त देव देवियों के निकट साधक को पहुँचा देते हैं। दर्शनशास्त्रने सिद्ध कर दिया है कि अन्तःकरण विश्व का माध्यम है और वह योगयुक्त तथा समाहित होने से विश्वब्रह्माण्डके कोने कोने में पहुँच सकता है। मन्त्र बीज से युक्त, शाखापल्लव से युक्त कई तरह के होते हैं। मन्त्र वैदिक और लौकिक भेद से दो तरह के होते हैं। बीजशाखापल्लव से युक्त वेद पुराण और तन्त्रादि में पाये जाने वाले मन्त्र वैदिक मन्त्र कहाते हैं। और लोगों में प्रसिद्ध शावर आदि लौकिक मंत्र हैं, शावर मन्त्र नाना प्रकार के होते हैं। यहाँ तक कि वे मारण वशीकरणादि कर्मों के भी काम आते हैं। वे अर्थशून्य विभक्तिशून्य होते हैं। ऐसा होने पर भी उनको सिद्ध करने की प्रणालियाँ भिन्न भिन्न हैं। उनके विना वे काम नहीं दे सकते। आजकल चाहे वैदिक या लौकिक किसी मन्त्र का प्रभाव नहीं देख पड़ता। इसका कारण यह है कि उसके साधक परिश्रम से जी चुराते हैं। वैदिक मन्त्रों की अनेक प्रकार की साधनविधि पायी जाती है। इसी तरह लौकिक मन्त्रों की सिद्धि करने में भी कई प्रकार के साधन और तप की आवश्यकता होती है। इन सब मन्त्रों की साधनावस्था में ही साधक विश्वास और दृढ श्रद्धा के साथ जब प्रयत्न करता है, तभी सफलता की प्राप्ति होती है। इस विषय में यदि कमी रह जाय तो सफलता नहीं होती। अतः वर्तमान समय की विफलता देखकर मन्त्रों में लोग सन्देह करते हैं, परन्तु ऐसे सन्देह की कोई गुंजाइस नहीं है। साधकों की साधना में कमी रह जाने से ही विफलता देख पड़ती है। तन्त्रशास्त्र में यह भी रूपान्तर से कहा है कि शरीर, अपवित्र अन्न, कुदानग्रहण और आचाररहित हो तो दग्ध के सदृश हो जाता है। मन, परद्रव्य में लोभयुक्त हो, और परस्त्री आदि में आसक्त हो तो दग्ध के सदृश हो जाता है, और अन्तःकरण सदा विषयासक्त होने से समाहित नहीं हो सकता, इस कारण कलियुग में मन्त्रों की सिद्धि दुर्लभ हो गयी है।

ऐसे गहन विषयों को समझने के लिये अन्तःकरण के स्वरूप की शक्ति और व्यापकता पर कुछ प्रकाश डालने की आवश्यकता है। अन्तःकरण के चार भेद हैं, मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त। चारों मिलकर अन्तःकरणचतुष्टय कहाता है। भगवान् ब्रह्मा अन्तः करण के प्रधान आधिदैव हैं। अन्तःकरण के चार विभागों में विभक्त होने से ही ब्रह्मा चतुर्मुख कहाते हैं। अन्तः करण के चार विभागों में बुद्धि और मन मुख्य हैं और चित्त तथा अहङ्कार गौण हैं। इन्द्रियों को जो चलाता है वह इन्द्रियराज मन है। और सदसद्विचार के अनुसार जो मन को समाहित करती है, वह मन का गुरु बुद्धि है। नाना वृत्तियों द्वारा जो मन को नचाता है वह चित्तकहाता है और प्रत्येक जीवपिण्ड में स्वतन्त्र व्यक्तित्व स्थापन करके सर्वव्यापक आत्मतत्व को जो आवृत्त करता है उसको अहङ्कार कहते हैं। अहङ्कार बुद्धि का अन्तर्विभाग है क्योंकि विना अहंकार के बुद्धि कार्य नहीं कर सकती। शुद्ध अहंकार आत्मतत्व तक पहुँचा देता है, और अशुद्ध अहङ्कार और अशुद्धबुद्धिके द्वारा जीव जगत् के सब कार्य किया करता है, इसलिये अहङ्कार गौण है। और बुद्धि मुख्य है। चित्त एक ऐसा तत्व है जिसमें स्मृति भी रहती है। वह चित्त पूर्वस्मृति के अनुसार नाना विषयों को लाकर मन को नचाया करता है। इसी से मन एक क्षणभी निश्चल नहीं रहता, चञ्चल बना रहता है।

मन्त्र शास्त्र के साथ अन्तः करण का बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी कारण तन्त्र शास्त्र में कहा है कि जो मन का त्राण करे वही मन्त्र है। मन्त्र में जो शक्ति निहित रहती है वह शक्ति मन्त्र के आश्रय से अन्तःकरणमें प्रकट होजाती है। लकड़ी में अग्नि रहती है, परन्तु अरणी के द्वारा मथी जाने से ही

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकट होती है। इसी तरह योगयुक्त अन्तःकरण में व्यवस्थित रूप से मन्त्र का कार्य होते रहने से वह शक्ति प्रकट होकर कार्य करने लगती है। निर्गुण प्रणव मन्त्र हो अथवा सगुण शक्ति बीज, मायाबीज आदि हो अथवा शाखा पल्लव से युक्त मन्त्र हो, सब में ही तत्तन्मन्त्रसम्बन्धी सब शक्ति विद्यमान रहती है। जैसे पञ्चाक्षरी, द्वादशाक्षरी आदि वैदिकमन्त्र और लौकिक मन्त्र दोनों के विनियोग में शक्ति विकास का तारतम्य रहता है। वेदोक्त और तन्त्रोक्त जो अलौकिक मन्त्र हैं, उनके सिद्ध करने में अधिक प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं होती, क्यों कि वे स्वतः सिद्ध अनादिमन्त्र हैं। निष्काम साधक को इन मन्त्रों से लाभ उठाने के लिये विशेष परिश्रम करने नहीं पड़ते, परन्तु सकाम रूप से उनके उपयोग की सिद्धि प्राप्त करने पर विशेष परिश्रम की आवश्यकता होती है। जो मिश्र मन्त्र होते हैं जिनमें वैदिकत्व और लौकिकत्व दोनों मिले हुए हैं, और लौकिक मन्त्र जो सिद्ध पुरुषों के बनाये हुए हैं, ऐसे मन्त्रों की सिद्धि प्राप्त करने के लिये विशेष अनुष्ठान की आवश्यकता होती है, केवल मन्त्र से कार्यसिद्धि नहीं होती।

अन्तःकरण सर्वव्यापक है और योगयुक्त होने से सब जगह काम कर सकता है। इसका प्रधान कारण यह है कि पिण्ड तीन प्रकार के होते हैं:— १-उद्भिजादि सहजपिण्ड २-नाना अधिकारों के पूर्णावयव जीवरूपी मानवपिण्ड, और ३-नानाश्रेणी के देवताओं के देवपिण्ड। देवपिण्डों में भूतप्रेतादि और दानव असुरादि पिण्ड भी आ जाते हैं। अन्तःकरण सर्व व्यापक होने से वह इन सब पिण्डों में विद्यमान है। इस कारण साधक यदि शक्तिशाली हो और उसका अन्तःकरण योगयुक्त हो, तो वह चतुर्दश भुवनों के सब स्थानों और पिण्डों में मन्त्रबल से बलवान् होकर कार्य कर सकता है। यही मन्त्र शास्त्र का तात्पर्य है, और यह अधिदेव वत् अष्टाङ्ग योग सिद्धि के द्वारा विधिपूर्वक जपयज्ञ द्वारा अन्यान्य प्रकार के शास्त्रीय अनुष्ठानों द्वारा प्राप्त हो सकता है। तन्त्रशास्त्रों में इसकी अनेक प्रकार की विधियाँ पायी जाती हैं। जो विश्वास, श्रद्धा, गुरुसेवा, और अन्तःशुद्धि तथा बहिःशुद्धि के सम्पादन से तथा अन्तःकरण विज्ञान पर सदा स्थिरदृष्टि रखने से और दैवी जगत्पर पूर्णनिर्भर रहने से सफल होती है।

यन्त्र और तन्त्र के सम्बन्ध में भी कुछ समझने योग्य है। यन्त्र दो प्रकार के होते हैं—नित्ययन्त्र और भावयन्त्र। नित्ययन्त्र उसको कहते हैं, जिसमें दैवीशक्ति स्वाभाविकरूप से निहित रहती है। जैसे शालिग्रामशिला, नर्मदेश्वर शिला, अपराजिता, कमल आदि पाँच यन्त्रपुष्प। इनमें देवता का आवाहन विसर्जन की आवश्यकता नहीं। इनमें हर एक देवता की पूजा हो सकती है। इन नित्ययन्त्रों में दैवीशक्ति कैसे निहित रहती है, यह केवल योगीजन ही अनुभव कर सकते हैं। दूसरे प्रकार के यन्त्र भावयन्त्र कहाते हैं। भावयन्त्र को समझने के लिये भाव क्या है, यह समझ लेना आवश्यक है। योगशास्त्र में लिखा है कि मन और चित्त के संयोग से आसक्ति उत्पन्न होती है और अहंकार तथा बुद्धिके संयोग से भावतत्व का उदय होता है। शुद्ध और अशुद्ध रूप से भाव दो प्रकार के होते हैं। अशुद्धभाव बुद्धिको विषयाकार कर देता है और शुद्धभाव अन्तःकरण को मलरहित करता हुआ बुद्धि को ब्रह्मपद में पहुँचाकर शान्ति प्रदान करता है। भाव यन्त्र में शुद्धभाव की ही प्रधानता रहती है, श्रीयन्त्र, आद्यायन्त्र, नृसिंहयन्त्र, आदि, वैदिकयन्त्र अथवा अन्य प्रकार के तान्त्रिकयन्त्र बनाते समय सिद्धिप्राप्त महापुरुष तत्तदनुयायी शुद्धभावके अवलम्बनसे रेखा-मन्त्रादिका यन्त्रमें प्रयोग करते हैं और अन्तःकरण की शक्ति व्यापक होने से तत्तद्भावों में प्रयुक्तहोकर तत्तदुपयोगी शक्तियां उन यन्त्रों में उदित होती हैं। इसका कारण चाहे नित्ययन्त्र हो, समाहित अन्तःकरण की सहायता से और उन यन्त्रों की शक्ति के सहयोग से सिद्धि प्राप्त होती है। इसीलिये

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यन्त्र तत्तद् देवतारूपी माने जाते हैं। और इसी से लौकिक और अलौकिक स्तरों में सब तरह की सफलता प्राप्त हो सकती है। इसी प्रकार जैसे यन्त्रों से दैवी सहायता मिलती है, वैसे ही टोटका आदि तन्त्रों से भी समाहित अन्तःकरण की सहायता से यथा योग्य सफलता मिलती है।

आर्यसंस्कृतिकी तुलनात्मक गवेषणा।

आर्यजातिकी संस्कृतिमें एक अद्वितीय सर्वशक्तिमान् परमात्मा को माना गया है, वे ही परमपुरुषभगवान् श्रीकृष्ण आदि नाम से अभिहित होते हैं। जैसे हमारा यह ब्रह्माण्ड है वैसे ही अनन्ताकाश में अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड हैं। परमात्मा के ईक्षणमात्रसे ही अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंमें सृष्टि, स्थिति और लयका कार्य नाना देवधारियोंके द्वारा व्यवस्थित रूपसे हुआ करता है, वे परमात्मा निर्गुण निराकार होनेपर भी भक्तोंके कल्याणार्थ सगुणरूप धारण कर लेते हैं। पृथ्वीके अन्य मनुष्य जातियोंमें एक ईश्वरवादका विचार तो प्रचलित देखने में आता है, परन्तु उनमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंकी महान् धारणा का विकाश नहीं है और न वे ऐसी विचारशैलीकी ओर ध्यान देते हैं कि प्रत्येक ब्रह्माण्डका कार्य कैसे चलता है। जैसे एक राज्यके चलानेके लिये अनेक श्रेणियोंके राजपद-धारियोंकी आवश्यकता होती हैं, वैसे ही हमारे ब्रह्माण्डके सब कार्योंके संचालनके लिए, अनेक देवता, ऋषि, पितृ आदि देवपदधारी सदा अपने अपने काम पर नियुक्त रहते हैं ऐसी विचारशैली उनमें नहीं है। और जब भगवान् सर्व-शक्तिमान् हैं, तो भक्तके कल्याणार्थ वे सगुण रूप भी धारण कर सकते हैं, ऐसी धारणा भी सबमें नहीं है। आर्यजातिकी संस्कृतिमें जैसे ब्रह्माण्डोंकी संख्या अनन्त मानी गयी है, उसी प्रकार नाना जीवोंके पिण्ड भी अनेक माने गये हैं। उद्भिज्ज पिण्ड, स्वेदज पिण्ड, अण्डज पिण्ड और जरायुज पिण्ड, ये सब सहज पिण्ड कहाते हैं। मनुष्यके स्थूल शरीरको मानव पिण्ड कहते हैं और देवता ऋषि, पितर, यक्ष, गंधर्व, असुर, प्रेत आदिके पिण्ड देवपिण्ड कहाते हैं। जीव उद्भिज्ज योनिसे, स्वेदजयोनिमें, स्वेदजयोनिसे अण्डजयोनिमें, अण्डजयोनिसे जरायुजयोनिमें क्रमशः पहुँचता है। मनुष्ययोनि अन्य उच्चयोनियोंका माध्यम है। मनुष्ययोनिसे जीव उन्नति करता हुआ नाना देवयोनियोंमें जा सकता है। नाना देवपदधारी देवयोनियाँ इस मृत्युलोकके सहायक हैं, देवयोनियों का इतना विस्तार है कि उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज चार श्रेणाके जीव असम्पूर्ण शरीरधारी होनेके कारण इनमेंसे हर एक श्रणीके जीवोंका एक एक रक्षक और चालक अलग-अलग एक-एक देवता हैं, प्रसिद्ध पर्वत नदी आदिके भी अलग-अलग अधिदैव हैं, और ये सब दैवी राज्यशृङ्खलाके अधीन रहकर सुव्यवस्थित होकर अपना-अपना कार्य करते रहते हैं। पृथ्वीकी अन्य सभ्य जातियोंमें इस प्रकारकी संस्कृतिका प्रचार नहीं है। वे सब सामान्य रूपसे दैवी राज्यको मानते हैं।

असुरको शैतान और देवताओंको फिरिस्ता, एञ्जिल आदिसे अभिहित करते हैं। परन्तु उनकी संस्कृतिमें दैवी राज्यके महान् विस्तार पर और दैवी पदधारियों तथा दैवी शृङ्खलापर विस्तारपूर्वक विचार नहीं किया गया है। आर्यजातिकी संस्कृतिमें पुरुष और स्त्रीका भेद बहुत कुछ माना गया है। जैसे दिन और रातमें भेद है, जैसे बीज और बीज बोनेकी भूमिमें भेद है, और जैसे विकर्षण शक्ति और आकर्षणशक्तिमें भेद है, उसी प्रकारसे बड़ा भारी भेद समझकर आर्यसंस्कृतिमें स्त्री जातिके मौलिक धर्म और आचारोंके सम्बन्धसे बहुत

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुछ विशेषता मानी गयी है। आर्यजातिकी संस्कृति के अनुसार पुरुष जातिकी अपेक्षा स्त्रीजातिमें आचार-विचार, रहन-सहन और शिक्षाधर्म आदिके विषयमें सब प्रकारसे पृथकता रखी गयी है। आर्यजाति यह समझती है कि श्रीभगवान्ने पुरुष जातिको और स्त्री जातिको विशेष-विशेष शक्ति देकर सृष्टि-क्रियामें प्रवृत्त किया है। थोड़ी-सी बुद्धि जिसमें है, वह यह समझ सकता है कि जगतकी सृष्टि-क्रियामें पुरुषकी पाँच-दस मिनटकी जिम्मेवरी है और स्त्रीकी कमसे कम ९ महीनेकी जिम्मेवरी है। पुरुष यदि वेश्यागामी हो जाय, तो उसके कुल और उसकी जाति आदिको विशेष क्षति नहीं पहुँचती है, परन्तु स्त्री यदि अपने जीवनमें पाँच-दस मिनटकी भूल कर बैठे तो उस भूलके द्वारा उसका सतीत्व ही नष्ट नहीं होगा, बल्कि उसका वंश, उसकी कुलपरम्परा, उसकी जाति और उसका समाज सब अपवित्र हो जायेगा। इन थोड़ेसे उदाहरण द्वाराही विचारशील सज्जन समझ सकते हैं कि आर्य्यजातिकी पवित्रताकी रक्षाके लिये; और सृष्टिकी पवित्रताकी रक्षाके लिये स्त्री जातिकी जिम्मेवरी कितनी अधिक है। इस कारण आर्य्यजाति अपनी माता और कन्याओंको नाना उपाय द्वारा पवित्र रखनेका प्रयत्न करती है। परन्तु आज दिन पृथ्वीकी अन्य मनुष्य जातियाँ स्त्री और पुरुषोंको एक प्रकारकी शिक्षा देकर और एकही रास्तेसे चलाकर मनुष्यजातिके अकल्याणका कारण हो रही हैं। पृथ्वीकी अन्य मनुष्य जातियोंकी दृष्टियोंमें आर्य्यजातिके वर्णाश्रम धर्म-मूलक समाज-विज्ञान (सोशियालोजी) की विचित्रता और कठिनता प्रतीत होती है, उसकी सामामाजिक अवस्थाको चारों ओरसे चार सुदृढ़ दुर्गके द्वारा सुरक्षित किया गया है। प्रथम दुर्ग यह है कि आर्य्यनारियोंमें सतीत्व धर्मकी पवित्रताकी रक्षा अतिदृढ़तासे की गयी है। वैसी व्यवस्था पृथ्वीके अन्य किसी जातियोंमें नहीं पाई गयी है। आर्यजातिकी सामाजिक पवित्रताकी रक्षाके लिए, रजोवीर्य शुद्धिमूलक वर्ण-धर्मकी व्यवस्था और जन्मसे जाति माननेका नियम आदि द्वितीय दुर्ग है।

पृथ्वीके अन्य मनुष्य जातियोंमें मनुष्य जीवनके आयुके भेदोंके अनुसार कोई विशेष व्यवस्था नहीं बाँधी गई है। परन्तु आर्यसंस्कृतिमें अतिसुन्दर उपायोंके द्वारा ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमोंकी व्यवस्था अतिसुन्दर रूपसे बाँधी गई है, यह आश्रमधर्म तृतीय दुर्ग है। इस समय सब अस्त-व्यस्त हो जानेपर भी सबको यह मानना ही पड़ेगा, कि मनुष्य जीवनको प्रथमसे लेकर अन्त पर्यन्त एक ढंगसे न चलाकर ब्रह्मचर्य आश्रममें कैसी प्रवृत्ति होनी चाहिये, सो विद्याभ्यास द्वारा सिखानेकी रीति है। गृहस्थाश्रम धर्ममें प्रवृत्ति धर्मका धर्मानुकूल पालन कराया जाता है। तीसरे वानप्रस्थ-धर्ममें तपस्या आदि द्वारा निवृत्ति-धर्मकी शिक्षा दी जाती है और चौथे संन्यास आश्रममें निवृत्ति-धर्मकी चरितार्थता कराई जाती है। एक जीवनमें मनुष्य धर्मानुकूल प्रवृत्ति करता हुआ अन्तमें निवृत्तिके राज्यमें पहुँचकर श्रीभगवान्के निकट पहुँच सके इसकी व्यवस्था बाँधी गयी है। आर्यजातिकी संस्कृतिमें सामाजिक व्यवस्थाकी सुरक्षाके लिए, सब समय आचार और विचारकी ओर तीव्र दृष्टि रखना चौथा दुर्ग है। इस प्रकार चार दुर्गोंके सुरक्षित धर्मोंके द्वारा मनुष्य समाजको चिरंजीवी बनाने और सुरक्षित रखनेका नियम पृथ्वीकी अन्य मनुष्यजातिमें नहीं पायी जाती है।

हिन्दूजाति में आचार और विचारके विस्तार और दृढ़ताकी अधिकतासे कोई कोई अन्यधर्माबलम्बी सन्देह करते हैं और कहते हैं कि जिस जातिमें इतना कठिन जातिभेदका सिद्धान्त प्रचलित है और जो जाति शुद्धाशुद्ध विवेकको इतना मानती है उस जातिमें मनुष्य-प्रेमका सिद्धान्त कैसे चल सकता है? हिन्दुओंके प्रतिदिन के करने योग्य नृयज्ञ पर मनन करनेसे ही ऐसी निर्मूल शंकाओंका समाधान हो जाता है। नृयज्ञ साधन सनातनी हिन्दुओंका नित्य कर्म है। विधिपूर्वक अतिथि सेवाको नृयज्ञ कहते हैं।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हिन्दुओंके समाजविज्ञान (सोशियालाजी) में शुद्धाशुद्ध विचार और जातिभेद संबंधी विस्तृत आज्ञायें रजोवीर्यकी शुद्धिके निमित्त शास्त्रोंमें पायी जाती है। साथ ही साथ धर्मशास्त्रोंमें प्रत्येक गृहस्थको प्रतिदिन पंचमहायज्ञ करने की आज्ञा भी है। नृयज्ञ उनमेंसे एक यज्ञ है। नृयज्ञका सिद्धान्त यह है कि घरमें आये हुए अतिथिको परमात्माका स्वरूप मानकर उसकी पूजा करना चाहिये। घरमें आया हुआ अतिथिके चाहे हिन्दू हो चाहे मुसलमान चाहे ईसाई हो, चाहे और किसी धर्मका हो, चाहे ब्राह्मण हो, चाहे शुद्ध हो, और चाहे अछूत जातिका हो, चाहे असभ्य जातिका मनुष्य हो, उसको आसन, भोजन जल और आदर के बचन द्वारा तृप्त करना चाहिये। वेद और शास्त्रोंमें दृढ आज्ञा है कि घरमें आए हुए अतिथिको भगवान समझकर आदर जो नहीं करता है उसका सब पिछला पुण्य नष्ट हो जाता हैं मनुष्यमात्र को भाई भाई समझनेके लिये और उस पवित्र विचारको आचारमें परिणत करनेके लिये हिन्दूजातिमें प्रचलित नृयज्ञसे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है? आध्यात्मिक उन्नतिकी इच्छा रखनेवाली जिस मनुष्यजातिमें वर्णधर्म, आश्रमधर्म शुद्धाशुद्धविचारधर्म और नारियोंमें सतीत्व धर्मका इतना विचार किया जाता है, उस हिन्दू जातिमें एक अद्वितीय परमात्माको पितारूप और उसकी सब प्रजाको सन्तानोंमें प्रेम करते हुए उनमें भ्रातृभाव का संस्कार बनाये रखनेके लिये ही नृयज्ञका ऐसा दृढ़ नियमभी प्रचलित है। अतः यह मानना पड़ेगा कि मनुष्य मात्रसे प्रेम करना उनका मौलिक उद्देश है, इसमें सन्देह नहीं। यद्यपि पृथ्वीके सब धर्ममतोंमें तथा सभ्य और असभ्य सभी मनुष्य समाजमें किसी न किसी प्रकारसे मनुष्यमात्रमें भ्रातृप्रेम बनाने रखने और अतिथि सेवा करनेके सिद्धान्त किसी न किसी रूपमें आये जाते है, तथापि वर्णाश्रम (धार्मिक समाज विज्ञान) को माननेवाली हिन्दू जातिके धर्मशास्त्रमें नृयज्ञरूपी धार्मिक अतिथि सेवा करनेकी जैसी दृढ आज्ञा पायी जाती है, वैसी शास्त्रीय आज्ञा अन्य किसी धर्ममें नहीं है। हिन्दू गृहस्थोंके नित्य करने योग्य जितने धर्मसाधन बताये गये हैं, उनमेंसे नृयज्ञ एक प्रधान साधन है, इस प्रकार विचार करनेसे अलौकिक आर्यसंस्कृति तथा पृथ्वीकी अन्य मनुष्यजातियों की संस्कृति दोनों की तुलनात्मक गवेषणा करने पर परस्परमें दिन और रात सा पार्थक्य दिखायी देगा। आर्यसंस्कृतिमें स्त्री जातिको जगज्जननी महामायाकी प्रतिकृति मान कर उसको कन्यावस्थासे लेकर वृद्धावस्थातक आर्यमहिलाओंकी सम्मान रक्षा और पवित्रता रक्षा का पूरा नियम बांधा गया है। किन्तु अन्य सभ्य जातियों में इस सिद्धान्तके विपरीत देखनेमें आता है। आर्यसंस्कृतिमें स्त्रियोंके लिये अन्तःपुरका बहुत कठिन नियम रखा गया है। भारतखण्डका आजकल अत्यन्त दरिद्र हो जानेपर भी आर्यमहिलाओं के शरीरको ढँके रखने के लिये वस्त्र आदिका पहिनावा कितना उत्तम है सो सब जानते ही हैं। दूसरी ओर यूरोप और अमेरिकाके शिक्षित अधिवासियोंमें किस प्रकार निर्लज्जताको रीति प्रचलित है सो देखनेसे भी हिन्दु जातिको लज्जित होना पड़ता है। उदाहरण की रीतिपर दिखाया जाता है कि इन सभ्य जातियोंके सामाजिक उत्सव किसीभी प्रकार का हो, उसमें स्त्रियोंके पुरुषोंके साथ निर्लज्जभावसे नाचने की प्रथा और उस समय भोजनके साथ मद्यपान की प्रथा नियम पूर्वक प्रचलित है। इस उत्सवके समय स्त्रियां लज्जा रहित जैसा वस्त्र धारण करती हैं, वह कितना लज्जाजनक है, इसका जिन्होंने देखा है वे स्वयं जानते हैं। विशेषता यह है कि कोई विवाहित स्त्री अपने पतिके साथ नाच नहीं सकती यह नियम विरुद्ध है, उस को परपुरुषके साथ ही नाचना होगा। ऐसे उत्सवोंमें एकान्त स्थान भी बने रहते हैं। नृत्यकारी युगल स्त्री पुरुष रातभर नाँचनेमें स्वेच्छा पूर्वक घूमने आदिमें स्वतन्त्र और निर्भय रहते हैं। यह उसदेशकी साधारण प्रथा है। यदि कोई स्त्री किसी पुरुष बन्धुसे एकान्तमें बात चीत करती है, तो उस समय उसका पति बिना उसकी

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आज्ञाके वहां जा नहीं सकता यह उसदेशका नियम है। दूसरी ओर आर्यजातिकी संस्कृतिमें इसके बिलकुल विपरीत नियम प्रचलित है, जो धर्मशास्त्र की आज्ञाके अनुसार पालित किया जाता है। स्त्रियोंके लिये रहनेके स्थान का नाम अन्तः पुर है, वहां परपुरुष की तो बात ही क्या है, अपने घरके पुरुषभी सब समय नहीं जा सकते। आर्यसंस्कृतिमें परपुरुष के साथ नाचने की तो बातही नहीं, प्रत्युत परपुरुष का स्पर्शभी हिन्दुशास्त्रमें निषिद्ध है। नाचने की प्रथा हिन्दुजातिमें अवश्य है, क्योंकि संगीत शास्त्रके तीन भेद हैं—नर्तन, गायन, और वादन। परन्तु जिन जातियोंमें नाचने की प्रथा है, उनकी स्त्रियाँ अन्तःपुरमें स्त्रीमण्डलीमें ही नाचती हैं। पर पुरुषोंके साथ की तो बातही क्या है, परपुरुषके सामनेभी कुलीन स्त्रियों का नाचना आर्य-संस्कृतिके विरुद्ध है। धार्मिक उत्सव और तीर्थ आदिमें आर्यस्त्रियां अपने पति आदि अभिभावकके साथ जाती हैं। एकाकिनी जाना या परपुरुषके साथ जाना यह आर्य संस्कृतिके विरुद्ध है। आजकलके राजनीतिक और सामाजिक नेतृवृन्दों को इस तुलनात्मक गवेषणा को अपने बुद्धितत्त्वके सामने रखकर समाजसंस्कार की बात सोचनी चाहिये। यूरोपीय सभ्यताकी बहुत ही बातें आपात रमणीय होती हैं, किन्तु वे परिणाममें विषवत् भयङ्कर सिद्ध होती हैं, इसका भी विचार रखना चाहिये।

महामण्डल-उपदेशक महाविद्यालय।

श्रीभारतधर्ममहामण्डलकी स्थापना जब मथुरा पुरीमें हुई थी, तबसे लेकर अब तक यह महाविद्यालय यथाशक्ति यथादेशकाल सेवा कर रहा है। इस महाविद्यालय का कार्यालय श्रीमहामण्डल भवन जगत्गंजमें स्थित है। इसकी सहायताके लिये धर्मग्रन्थोंका एक बड़ा पुस्तकालय और एक सुप्रसिद्ध चित्रशाला स्थापित है। इस सुप्रसिद्ध चित्रशालामें दैवी जगत् सम्बन्धी, वैदिक दर्शनशास्त्र संबंधी और वेद, योग तथा पुराण सम्बन्धी अनेक असाधारण और बहुमूल्य चित्र संगृहीत है, जो विद्यार्थियों और दर्शकोंके ज्ञानवर्द्धक हैं। इस महाविद्यालय के प्रधानाध्यापकपदपर भारतद्वीपके नामी विद्वान् और लेखक महामहाध्यापक महामहोपाध्याय पण्डितवर-कैलासवासी अन्नदाचरण तर्कचूड़ामणि और सनातनधर्म जगत्के सर्वमान्य सुप्रसिद्ध विद्वान् लेखक और धर्मवक्ता ब्रह्मीभूत श्रीस्वामी दयानन्दजी महाराज प्रतिष्ठित थे। इस महाविद्यालय से सैकड़ों बड़े बड़े नामी विद्वान् धर्मवक्ता और धर्मसेवक प्रस्तुत होकर उन्होंने भरतखण्डकी बहुत सेवा की और अब भी कर रहे हैं। साधुसंन्यासियोंमें सुप्रसिद्ध मण्डलेश्वर श्रीस्वामी विद्यानन्दजी महाराज जैसे अनेक साधु महात्मा इस महाविद्यालय से ही शिक्षा पाकर सुप्रसिद्ध हुए हैं। महामहोपदेशक पं० गङ्गाविष्णु शास्त्री, महामहोपदेशक पं० विन्ध्येश्वरीप्रसाद शास्त्री, जैसे अनेक धर्मोपदेशक, महोपदेशक और महामहोपदेशक इस अनोखे नये ढङ्गके विद्यालय से उत्तीर्ण होकर सनातनधर्मकी नियमित सेवा कर रहे हैं। जैसा वर्तमान देशकाल पात्र है, उसके अनुसार यह महाविद्यालय धर्मवक्ताओं और धर्मसेवकों को प्रस्तुत करने तथा स्वधर्म, स्वजाति और स्वदेशकी सेवामें सदा सन्नद्ध रहता है। इसके परीक्षोत्तीर्ण छात्र भारत खण्डके प्रत्येक जिलोंमें हिन्दू प्रजा का कल्याण साधन कर सकते हैं। सनातन धर्म के धर्मोपदेशक और धर्मशिक्षक तैयार करने के विचार से इस महाविद्यालय में कुछ ऐसे योग्य विद्यार्थी लिए जाते हैं, जो संस्कृत में आचार्य या अंग्रेजी में बी. ए. हों। योग्य साधु संन्यासी भी लिए जाते हैं, जिनका ध्येय इस योजना के अनुसार पाया जाय। सबको कम से

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कम दो वर्ष तक महाविद्यालय के पण्डितनिवास में रहकर योग्यता सम्पादन करना आवश्यक होता है। ३०) मासिक तक प्रत्येक छात्र को छात्रवृत्ति दी जाती है। पण्डितनिवास में श्री हनुमान् भगवान् का प्रसाद भण्डार उन्हीं के हाथ में रहता है, जिसमें उनको दोनों समय प्रसाद भोजन के रूप में मिलता है। पण्डितनिवास में रहने वाले इन छात्रों के अतिरिक्त बाहरके सर्वसाधारण छात्रों को मास के दोनों पक्षों की प्रतिपद् अष्टमी और चतुर्दशी इन ६ दिनों में व्याख्यान कला, शास्त्रीय शङ्कासमाधान तथा आवश्यकीय दर्शनशास्त्र और धर्म शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने के लिए सुअवसर दिया जाता है, इन पिछले वर्ग के छात्रों में अच्छी निष्ठा पानेवाले छात्रों को महीनेमें ६ दिनकी हाजिरी के लिए १॥) मासिक से ६) मासिक तक छात्रवृत्ति दी जाती है। इस योजना से देश के उत्साही युवक जितना अधिक लाभ उठावेंगे, देशका उतना ही अधिक कल्याण होगा। वर्तमान समय में देश की जो परिस्थिति है उसके अनुसार आर्थिक सहायता होने पर इस महाविद्यालय के परीक्षोत्तीर्ण छात्र भारतखण्ड के प्रत्येक जिलों में एक एक धर्मवक्ता धर्मप्रचार करके हिन्दू प्रजा का कल्याण साधन कर सकते हैं।

श्रीकृष्णानन्द वेदविद्यालय।

इस नामका एक वेदविद्यालय, जिसमें स्वरसहित वेद और श्रौतस्मार्त कर्मकाण्ड की शिक्षा दी जाती है, श्रीमहामण्डल प्रधान कार्यालय के सुप्रसिद्ध यज्ञमण्डप के बहिर्भाग में स्थापित है। ब्रह्मीभूत श्रीस्वामी कृष्णानन्दजी महाराज एक असाधारण धर्मवक्ताऔर महापुरुष थे। आर्यसमाज के संस्थापक ब्रह्मीभूत श्रीस्वामी दयानन्दजी सरस्वती महाराज भारतद्वीप में जब आर्यसमाज के प्रचार का प्रयत्न कर रहे थे और वर्णाश्रमधर्म की व्यवस्था में ही परिवर्तन करना चाहते थे, उस समय उक्त श्रीस्वामी जीने सनातनधर्मकी मर्यादा रक्षाके लिये बड़ा पुरुषार्थ किया था और इसके लिये सनातन धर्मी जनता उनकी सदा ऋणी रहेगी। श्रीस्वामी कृष्णानन्दजी महाराज काशीपुरी में शरीर त्याग करते समय श्रीमहामण्डल के अधिष्ठाता श्रीजी से कह गये थे कि, उनकी भारतवर्षीय आर्यधर्मप्रचारिणी नामक सभा और उनके प्रतिष्ठित वेद-विद्यालय की सुरक्षा श्रीमहामण्डल करे। इसके लिये कुछ नगद रुपया भी छोड़ गये थे। उनकी इस अन्तिम शुभवासना को महामण्डल ने पूर्ण किया। रुपयों का उद्धार किया गया, सभाकी रजिष्ट्री करायी गयी और वेद विद्यालयका स्थायी प्रबन्ध किया गया। तबसे यह विद्यालय यथाशक्ति, यथादेश काल उक्त श्री स्वामी जी महाराजकी शुभ वासना को पूर्ण करने में तत्पर रहता है। उनकी सभा काशीके स्थानीय धर्मप्रचारका कार्य करती रहती है और महामण्डल उपदेशक महाविद्यालय के छात्र-अध्यापक इस धर्म कार्यमें योगदान किया करते हैं। इस सभाकी निधिकी सुरक्षाके लिये तीन स्वतन्त्र ट्रस्टी नियुक्त कर दिये गये हैं। इस वेद विद्यालय से उत्तीर्ण होने वाले छात्रो को उपदेशकमहाविद्यालय की ओर से उपाधियां भी दी जाती हैं।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मनुष्यजातिकी निरङ्कुशता कैसे दूर हो?

जब मनुष्य की निरङ्कुशता अत्यन्त बढ़ जाती है, तब उसीको उन्माद कहते हैं। उन्माद एक रोग भी होता है, जिसमें बुद्धि तत्वका विलयहो जाता है और सदसत्का विचार नहीं रहता। मनुष्यमें काम, क्रोध लोभ, मोह, मद और मात्सर्य इन वृत्तियोंमें से कोई वृत्ति अत्यन्त बढ़कर जब निरङ्कुश हो जाती है, तब मनुष्य उन्मादरोगग्रस्तके समान होकर पागल बनजाता है। जब किसी व्यक्तिमें इस प्रकारके उन्मादके थोड़े लक्षण भी देखनेमें आवें, तब उसे सदुपदेश, औषधि और अन्यान्य उपचार द्वारा सावधान न किया जाय, तो उसका अकल्याण ही होता हैं। वर्तमान समयकी घोर अवस्थामें प्रमाद मदिरा को पीकर सारा संसार उनमत्त हो रहा है। जैसा कि, महाराजा भर्तृहरिने कहा है:—

पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्ः-

सर्वशक्तिमान् भगवान् जो सबके धाता, विधाता और परम सुहृद हैं, जिनकी आज्ञाके बिना पेड़का एक पत्ताभी नहीं हिल सकता, जो कृपामय सर्वशक्तिमान् भगवान् ने शास्त्रोंमें बारबार कहा है कि, जो व्यक्ति एक बार भी सच्चे हृदयसे यह कहता है कि, हे भगवन्! मेरी रक्षा करो, उसके वे ऋणी हो जाते हैं। ऐसे करुणामय भगवान को सब प्रजा प्रायः भूल ही गयी है। मनुष्यजातिका यह प्रमाद इतना बढ़ गया है कि, पढ़े लिखे कहानेवाले लोग ईश्वरकी सत्ता मानने को भूल ही गये हैं। कहीं कहीं मत गणनाके अनुसार ईश्वर का अस्तित्व है या नहीं, इसी विचारको किया करते हैं। किसी किसी देश के राजनीतिक क्षेत्रमें ईश्वरको मानने पर दण्ड देनेका नियम बन गया था। भारतखण्डमें भी वही प्रथा चल रही है, यह शुभ लक्षण नहीं है।

धर्माधर्मका विचार इस समय सब जगह से उठ गया है। यदि कहीं वह देख पड़ता है, तो मनमाने ढंग से और सभी धर्माचार्य बननेके लिये उत्सुक हैं। हिन्दुजातिमें और हिन्दुस्थानमें वेद, स्मृति, पुराण, तन्त्र आदिका इतना बड़ा विस्तार होने पर भी धर्म का स्वरूप प्रजाके हृतपटलसे एक बार ही तिरोहित हो जानेके कारण यहांके नेतृवृन्दों ने मनमाने कानून बनाकर सनातनधर्म, उसकी त्रिलोक पवित्रकारी पवित्रता, उसकी अलौकिक संस्कृति और उसकी बनायी हुई चिरकाल से सुव्यवस्थित शान्ति-प्रद शृंखला, सबका नाश करनाही उन्होंने अपना ध्येय बना लिया है। राजा और प्रजाके चित्तपर न ईश्वर और धर्मके भयका प्रभाव है और न वे यही मानते हैं कि. इस स्थूल जगत् का सञ्चालन सूक्ष्म दैवी जगतसे ही होता है। निरीश्वरवादी एकाकारके पक्षपाती नेतृवृन्द प्रजाको उलटा पलटा समझाकर जिधर चाहें उधर बहकाकर ले जाते हैं।

जगत्के राजनीतिक क्षेत्रमें राजाका नाम तक वे रखना नहीं चाहते और दूसरी ओर राजकुलोंमें योग्यताका भी अभाव हो जानेसे प्रजाको उस ओर से कुछ सहायता भी नहीं मिलती। अगत्या प्रत्येक मनुष्यका एकमत (वोट) इसी सिद्धान्तके अनुसार मतगणनासे राज्य शासन परिषद (डिमाक्रेशी के नियमानुसार) बनाते हैं। योग्य राजाके अभावमें इस प्रकार पंचायती राजशासनपद्धति इस समयके लिये एक प्रकारसे अच्छी ही है। परन्तु जहां मनुष्य समाज श्री भगवानके चरणारविन्दोंकी ओर उपेक्षा करता है और सर्वजीवहितकारी धर्म के द्वारा सुरक्षित नहीं रहता, वहां एकाकार और निरङ्कुशता-का होना स्वाभाविक है। इसी कारण केवल प्रजातन्त्रवाद (डेमाक्रेसी) से तृप्त न होकर प्रजा निरङ्कुश सोशियालिजम, कम्युनिजम, नाजीजम आदिवादोंका अवलम्बन कर पशुताकी ओर अग्रसर हो रही है। किसी किसी देशमें युवती स्त्रियां गाय भैंस की तरह समझी जाकर केवल सृष्टि उत्पन्न करनेकी मशीनें समझी जाती हैं। गाय भैंस

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

घोड़ी आदिमें तो उनके ऋतु और समयका नियन्त्रण होनेसे सृष्टिकार्यमें कुछ शृंखला है; परन्तु अनेक राजनीतिक क्षेत्रोंमें वह शृंखला भी नहीं देखपड़ती और मनुष्य समाज पशुओंसे भी नीचे गिर गया है। आश्चर्यकी बात यह है कि, धर्मभूमि हिन्दुस्थान और आध्यात्मिक उन्नतिशील हिन्दू जातिमें भी अब निरङ्कुशताके लक्षण द्रुतवेगसे बढ़ रहे हैं। आजकलके राजनीतिक नेतृवृन्द धर्म बुद्धिहीन होनेसे ऐसे एकाकारके कार्यों में आनन्द अनुभव करते हैं।

ज्ञान दृष्टिसे रहित होनेके कारण केवल पदार्थ विज्ञान (साइन्स) का सहारा लेकर एकाकारको लक्ष्य करके शिक्षा प्रणाली प्रचलित करनेसे आजकलके नेतृवृन्द विपथगामी हो रहे हैं। अत: सबसे पहले अन्तर्जगत्में पथ दिखानेवाले, धर्मके मूल स्वरूप ईश्वरके चरणों तक पहुचाने वाले वैदिक सप्तदर्शन-विज्ञानका मौलिक सिद्धान्त जबतक मनुष्य समाजमें प्रचलित करके मनुष्यजातिकी बुद्धि को सूक्ष्म विषय समझनेके उपयोगी नहीं बनाया जायगा, तबतक इस घोर विपत्तिकालमें उसकी रक्षा नहीं हो सकेगी। पूज्यपाद त्रिकालदर्शी महर्षियोंने अलौकिक दर्शन शास्त्रद्वारा यह भलीभांति सिद्ध करके दिखलाया है कि, केवल ज्ञानराशि की एक कला प्राप्त करके उद्भिज्ज श्रेणीके सब जीव पंचज्ञानेन्द्रियका काम कैसे करते हैं। तदनन्तर स्वेदज श्रेणी के जीव ज्ञान सूर्यकी दो कलाएँ प्राप्त करके कैसे शक्तिशाली हो जाते हैं। तत्पश्चात् अण्डज श्रेणीके जीव ज्ञान राशिकी तीन कलाएं प्राप्त करके कैसे कैसे अद्भुत कार्य करते हैं। तदनन्तर जरायुज जातिके उन्नत जीव समूह ज्ञान ज्योतिकी चार कलाओंके पाजानेसे कैसे मनुष्य पिण्डधारी जीवोंके पास पहुच जाते हैं और अन्तमें वानर, सिंह और गो योनिसे आगे बढ़कर पूर्णावयव मानव पिण्डको प्राप्त करते हुए कैसे पाप पुण्यके अधिकारी बन जाते हैं। वैदिक दर्शनशास्त्रने यह भी सिद्ध किया है कि मनुष्यमात्र एकसा नहीं हो सकता। जब जीव मनुष्य बन जाता है, तो उसको भी हजारों बार आनाजाना पड़ता है और तदनन्तर ज्ञानोन्नतिकी शृंखलामें वह पहुँच जाता है और अन्तमें तीन नास्तिक दर्शन भूमियों के अधिकारों को अतिक्रमण करके जीव आर्यत्वको प्राप्त होता है और सातों वैदिक दर्शनोंकी भूमियोंका अधिकारी बनजाता है और अन्तमें सब प्रकारके अभ्युदयोंका अधिकारी होता हुआ ज्ञानस्वरूप परमात्माके चरणों तक पहुच जाता है। अत: इससमय सबसे पहले हमारे राजनीतिक नेतृवृन्द, जिनके हाथमें राज्यकी बागडोर है, उनको स्कूल कालेज और पाठशालाओंमें आरंभमें संक्षेपमें और आगे चलकर विस्तार पूर्वक दार्शनिक शिक्षा, क्या स्त्री, क्या पुरुष, सबको देकर उनको आध्यात्मिक मार्ग का दिग्दर्शन करा देना चाहिये। ऐसा होनेपर ही हिन्दुजाति का ही नहीं, समस्त मनुष्य समाजका परम उपकार हो सकता है।

काश्मीर और मन्त्रिसभा के विचार।

श्रीमहामण्डल मन्त्रिसभामें ता० २७-११-४७ को स्वीकृत मन्तव्य नं० २० की प्रतिलिपि—

जम्बू और काश्मीर राज्यकी वर्तमान परिस्थिति पर विचार करके श्रीमहामण्डलकी मन्त्रिसभा यह निश्चय करती है कि काश्मीर प्रदेश भारतखण्डके उत्तमाङ्ग के समान है। काश्मीर प्रदेशमें अनेक अलौकिक हिन्दूतीर्थ विद्यमान हैं। वर्तमान सृष्टिके आदिमें काश्मीर की देविका नदीके तीर पर हिन्दूशास्त्रानुसार प्रथम मानवसृष्टि हुई थी जिसका प्रमाण पञ्चम वेदरूपी महाभारत दे रहा है। काश्मीरराज्य एक प्रसिद्ध प्राचीन विद्यापीठ रहा है ऐसे पवित्र राज्य की रक्षा करना हिन्दूराजा प्रजा-

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मात्रका कर्तव्य है, इस कर्तव्यके विषयमें हिन्दुस्थान गवर्नमेन्टके प्रधान मन्त्री माननीय श्रीमान् पं० जवाहर लाल नेहरू महाशयने सम्प्रति अपने वक्तव्यमें बहुत कुछ कहा है जिसके लिये वे हिन्दू मात्रके निकट धन्यवादाई हैं। अतः यह सभा हिन्दू-राजा और प्रजा राजनैतिक नेतृवृन्द हिन्दूधनी मानी सज्जनों तथा धार्मिक संस्थाओं एवं धार्मिकनेताओं से सविनय प्रार्थना करती है कि वे काश्मीर राज्य की सर्वतोभावेन रक्षारूपी शुभ कार्यमें तन मन धन से सहायता करें।

डाक्टर काटजू साहब और संस्कृतभाषा।

श्री महामण्डल मन्त्रिसभामें ता० ४-१२-४७ को स्वीकृत मन्तव्य नं० ३ की प्रतिलिपि—

हिज एक्सलेन्सी माननीय के. एन्. काटजू महोदय गवर्नर साहब उड़ीसाने संस्कृतभाषाको समग्र भारतखण्डकी राजकीय भाषा बनानेके लिये बहुत योग्यताके साथ युक्ति एवं प्रमाण देकर जो वक्तव्य प्रकाशित किया है उसको देखकर श्रीभारत-धर्म महामण्डलकी मन्त्रिसभा बहुत प्रसन्न हुई है। और उनको कृतज्ञतासूचक धन्यवाद देती है। भारतखण्डमें ऐसा कोई भी सहृदय न होगा, जो इस वक्तव्य को सुनकर प्रसन्न और कृतज्ञ न हो।

वस्तुतः प्राचीन कालमें राष्ट्रभाषा संस्कृत ही थी और साधारण लोग जो टूटी हुई संस्कृत बोलते थे उसको प्राकृत कहते थे। वह शुभ समय तो अब उपस्थित हो नहीं सकता है। अतः इस समय हिन्दुस्थान की राष्ट्रभाषा संस्कृत हो यह दुराशामात्र है। परन्तु हिज एक्सलेन्सी डा० काटजू साहबने ऐसे पदस्थ होकर ऐसे धर्महीन और ईश्वरज्ञानविहीन समय में निर्भय और निःसंकोच होकर ऐसी महत्त्वपूर्ण संमति दी है इसके लिये वे सब विद्वज्जनों के आदरणीय हुए हैं। उनके इस अभिवचनका कुछ फल हो या न हो परन्तु उनके हृदयका यह शुद्ध भाव दैवी जगतमें पहुँचेगा और वहां इसका आदर होगा जिससे उनकी आध्यात्मिक उन्नति होगी।

वर्तमान समयमें हिन्दुराज्यकी असंभावना।

पृथ्वीभरकी (भारतवर्षकी) परिस्थिति और विशेषतः भारतखण्ड (हिन्दुस्थान) की परिस्थिति पर विचार करने से विचारशील व्यक्ति अवश्य ही स्वीकार करेंगे कि वर्तमान समयकी दशा ऐसी नहीं है कि हिन्दू राज्य स्थापित हो सके। कुछ राजनैतिक दल तथा कुछ विद्वान् सज्जन जो इस समय प्राचीन हिन्दूराज्य स्थापन करने की आशा कर रहे हैं, उनकी यह आशा आकाशकुसुमवत् है। हिन्दू राज्य की मूलभित्ति वर्णाश्रमशृङ्खला है। जिसके चलाने वाले निवृत्तिसेवी और तपःस्वाध्यायनिरत ब्राह्मणगण और त्यागशील तथा संयमी क्षत्रिय राजन्यवर्ग थे। ब्राह्मणगण अर्थ कामको ओर से पराङ्मुख होकर वनोंमें वास करते थे और वे जो कुछ कानून आदि की शृङ्खला बांधते थे, क्षत्रिय राजन्यवर्ग उसपर विश्वास और पूर्ण श्रद्धा रखकर उसीके अनुसार राज्यका शासन करते थे। इस समय कालप्रभावसे न वे ब्राह्मण हैं और न वे क्षत्रिय हैं। अतः इस समय आदर्श हिन्दू राज्य स्थापन होना असम्भव है। इस विषयमें शास्त्र भी कहता है कि कलियुगके अन्तमें श्रीभगवान् कल्की अवतारकी सहायतासे हिन्दूराज्य

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्थापित हो सकेगा। कलिके अन्तका समय अभी लाखों वर्षबाद आवेगा। इस समय जैसी परिस्थिति मनुष्य समाजको अभिभूत कर रही है उसके अनुसार शुद्ध और सरल राजनीतिपूर्ण पञ्चायतिराज्यकी स्थापना ही हिन्दूस्थानके लिये उपयोगी हो सकती है। इस समय जगतके सामने पञ्चायत्तिराज्य शासन प्रणालीके जो प्रधान आदर्श उपस्थित हैं, उनमें जो जो दोष और अदूरदर्शितायें हैं, यथा एकाकार-प्रधान रूसकी राज्यव्यवस्था, परजातीय विद्वेषपूर्ण अमेरिकाकी शासनप्रणाली और कुटिल भेदनीति प्रधान बृटिश राज्यशासनप्रणाली। इनके दोषोंको हिन्दुस्थानकी शासनप्रणालीमें आने न देना तथा पञ्चायत्तिराज्यके ऐसे उदार नियमावली-में सबका समान अधिकार रहे और जिस उदारताको देखकर विरोधी शक्ति विवश होकर हिन्दुस्थानीय शासनपद्धतिमें स्वयं आसके। धर्मभूमि जगद्गुरु हिन्दुस्थानकी नवीन पञ्चायत्ति राज्यशासन प्रणालीमें इतना अवश्य होना चाहिये कि धर्मके विषयमें भगवान् श्रीवेदव्यास ने महाभारतमें जैसा धर्मका आदर्श रख कर धर्मरूप भगवानको प्रणाम किया है कि "यं पृथग्धर्मचरणाः पृथग्धर्मफलैषिणः। पृथग्धर्मैः समर्चन्ति, तस्मै धर्मात्मने नमः"। इसी पवित्र आदर्शको सामने रखकर, जितने प्रकारके धर्मपन्थ और धर्ममत हिन्दुस्थानमें प्रचलित हैं, उन सबोंमेंसे किसीके आचार विचार और संस्कृतिमें कोई बाधा न पहुंच सके ऐसा नियम दृढ़ता पूर्वक बनना चाहिये। परजातीय विद्वेष, परधर्मी विद्वेष, ये बातें हिन्दुस्थानकी शासन पद्धतिमें नही आनी चाहिये। पिछले दिनों जैसे भेंड़बकरी पालनेवाले लोम और मांसके लिये भेड़ बकरी पालते हैं, उस प्रकार अर्थ और कामकी चरितार्थताके लिये जो प्रजापालनकी पद्धति प्रचलित थी उसको अब बिलकुल रोक देना चाहिये। शिक्षाप्रणालीकी व्यवस्थामें तथा अर्थनीतिकी व्यवस्थामें ऐसी शठतापूर्ण विशृङ्खलता पैदा करना, जिससे प्रजा दुर्बल होती रहे, इस नीतिका हिन्दुस्थानकी नवीन शासनपद्धतिमें सर्वथा उच्छेद कर देना चाहिये। हिन्दुस्थानकी प्राचीन संस्कृतिमें राजा पितास्थानीय और प्रजा पुत्रस्थानीय मानी जाती है। इस समय पञ्चायति राज्यशासनप्रणालीमें राजाका जो पद था, वह राजनीतिके नेताओं को प्राप्त है, अतःउनको उचित है कि सर्वदा सत्य न्याय और सरलताका अवलम्बन करके वे यदि भारतके अनुकूल नवीन शासनप्रणालीकी व्यवस्था बांधेंगे, तो उनको कभी भी विफलता नहीं होगी, और सफलता अवश्य होगी।

आर्य संस्कृति और पीठविज्ञान।

वर्तमानसमयमें पीठविज्ञान औरआर्यधर्मके प्रधान सोलह अङ्गोंके रहस्यको अच्छी तरह न समझने से अमार्जनीय बड़ी बड़ी भूल भारत खण्डके नेतृवृन्दोंके द्वारा हो रही है। उस भूलको दूर करनेके लिये एक उदाहरण दिया जाता है। आर्यसंस्कृतिके अनुसार आर्यजाति सर्वव्यापक दैवीसत्ताके नाना पीठोंमें उपासना किया करती है। योगशास्त्रके मन्त्रयोग संहितामें सगुण उपासना के आश्रय रूप दिव्य देशस्वरूप पीठके सोलह भेद माने गये हैं। यथा—

यथा गवां सर्वशरीरजं पयः
पयोधरान्निःसरतीह केवलम्,
तथा परात्माऽखिलगोऽपि शाश्वतो
विकाशमाप्नोति स दिव्यदेशकैः।
तन्त्रेषु दिव्यदेशाः षोडश प्रोक्तास्तथाऽत्र कथ्यन्ते,
अग्न्यम्बुलिङ्गवेद्यो भित्तिरेखा तथा च चित्रं च।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मण्डलविशिखौ नित्ययन्त्रं पीठं तीर्थं च भावयन्त्रं च ।
मूर्त्तिर्विभूतिर्नाभी हृदयं मूर्द्धा च षोडशैवे स्युः ॥

अर्थात् जिस प्रकार गौके सर्वशरीरमें दुग्ध व्यापक होने परभी केवल स्तन द्वारा क्षरित होता है, उसी प्रकार परमात्माके व्यापक होने पर भी उनका विकाश दिव्य देशोंमें होता है। दिव्य देश तन्त्रोंमें सोलह कहे हैं। यथा—वह्नि, अम्बु, लिङ्ग, स्थण्डिल, कुड्य, पट, मण्डल, विशिख, नित्ययन्त्र, भावयन्त्र, पीठ, विग्रह, विभूति, नाभि, हृदय और मूर्द्धा। यद्यपि ये सबही पीठ हैं किन्तु यहां पीठ शब्द जो अलग आया, है वह तीर्थके लिये आया है। क्योंकि तीर्थके विशेष विशेष स्थानमें विशेष विशेष शक्ति का आविर्भाव माना जाता है। जैसे भारतवर्ष शब्द पृथ्वीका बोधक है किन्तु भारत कहने से भारत खण्ड अर्थात् हिन्दुस्थानका बोध होता है। क्योंकि भारतवर्ष (पृथ्वी) में भारत खण्ड (हिन्दुस्थान)-की प्रधानता है। इसी प्रकार पीठ शब्द से उपरोक्त सोलह वस्तुओंका ज्ञान होता है, किन्तु यहां पीठ शब्दका अलग प्रतिपादन इसलिये किया गया है कि जिससे तीर्थों की महिमा सूचित हो। तीर्थ शब्दसे नगर या ग्राम विशेष से तात्पर्य नहीं है, वहां के देवस्थान विशेष से तात्पर्य है। उपर्युक्त दिव्य देशों-में सर्वव्यापक दैवी सत्ताका पीठमें प्राणप्रतिष्ठा करके आविर्भाव कराया जाता है। जैसे—मूर्ति में अथवा भावयन्त्रादिमें जिन जिन दैवीशक्तियोंका आविर्भाव करना होता है, तो पहिले अपने अन्तः-करणको शुद्धकरके उस पीठस्थानको भी शुद्ध कर अपनेमें उस देवताका आविर्भाव करके तदनन्तर उस पीठमें देवताका आविर्भाव कराना होता है। मन्त्रशास्त्रमें पीठाविर्भावके अनेक प्रकारके भेद पाये जाते हैं। वैदिक दर्शन शास्त्रोंमें आकर्षण और विकर्षण शक्तिका जहां समन्वय होता है, वहां पीठकी उत्पत्ति होती है; ऐसा माना गया है। आकर्षणशक्ति रजोगुण प्रसूत है और विकर्षणशक्ति तमोगुण प्रसूत है। दोनोंका जहां समन्वय होता है, वहां ही, सत्त्वगुण है और उसी सत्त्वगुणमें धर्मका धारिका शक्तिका विकाश होता है, तथा वहां ही पीठ बना रहता है। इसी विज्ञानके अनुसार ग्रह नक्षत्रादि जिस कक्षामें भ्रमण करते हैं और उस कक्षासे अलग नहीं जाते हैं, वही उनका पीठ है। समाहित अन्तःकरणकी शक्ति, मन्त्रशक्ति और द्रव्य-शक्ति इन तीनोंकी सहायता से ऊपर कथित सोलह दिव्य देशोंमें देवशक्तिका आविर्भाव किया जाता है। और उस शक्तिके लघुत्व और गुरुत्वके विचार से तत् तत् स्थानोंमें वह शक्ति अल्पकाल तक या बहुत काल तक विद्यमान रहती है। इसी विज्ञानके अनुसार तीर्थविशेषमें अथवा पीठ और मूर्ति विशेष में दैवीसत्ता बनी रहती है और इसी दैवी रहस्यके अनुसार तीर्थोंमें और मूर्ति विशेषमें विशेष विशेष दैवीशक्ति प्रकट रहती है तथा श्रद्धालु भक्तों का कल्याण करती है। वैद्यनाथ, तारकेश्वर, नाथद्वारा आदि तीर्थों और विग्रहोंमें जो नानाप्रकारके चम-त्कारोंका वर्णन सुननेमें आता है, उसका यही कारण है। जब नाना पीठोंमें नाना चमत्कारोंका वर्णन पाया जाता है, इसका कारण प्रत्येक पीठका अलग अलग संस्कार ही है। जैसे व्यक्ति विशेषमें संस्कारका पार्थक्य रहता है वैसाही प्रत्येक पीठमें भी अलग अलग संस्कार रहता है। मनुष्यके संस्कारके विरुद्ध कार्य करने से उसको कष्ट होता है उसी प्रकार पीठ-के संस्कारके विपरीत कार्य होनेसे उसकी शक्तिमें धक्का लगता है और पीठाभिमानी देवता अप्रसन्न होते हैं। इतना ही नहीं पीठस्थ संस्कारके विरुद्ध कार्य होने पर व्यक्ति जाति तथा देशको भी क्षति-ग्रस्त होना पड़ता है। इसलिये जिस पीठमें जिस तरहका संस्कार पूर्व परम्परा से चला आ रहा है, उसका नाश करना उचित नहीं है। वहां नूतन स्थापित पीठों में नया संस्कार चलाया जाय तो कोई हानि नहीं। पीठरहस्य और मूर्तिपूजा आदि समझनेके लिये अपने मनमानी कल्पना से काम नहीं करना चाहिये। जैसे कि आधुनिक महात्मा कहलानेवाले तथा अंग्रेजीशिक्षाशिक्षित नेतृवृन्द किया करते हैं। दैवी जगत् पर श्रद्धा, वैदिक दर्शन-शास्त्रोंका अध्ययन तथा मन्त्रशास्त्रका अनुशीलन करने से यह बात पूरी तरह समझमें आसकती है।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राजनीतिक नेतृवृन्दोंको सत्परामर्श।

इस समय विश्वका समष्टि अन्तःकरण नाना विरुद्ध वातावरणोंके कारण सर्वत्र कुछ न कुछ विचलित हो रहा है। प्रधानतः भारतखण्डका वातावरण तो बहुत ही विचलित है। इस समय भारतखण्डके राजनीतिक नेतृवृन्दोंको बहुत ही ठण्ढे मस्तिष्कसे काम लेना चाहिये। और धैर्य तथा सद्विचारको सदा साथ रखना चाहिये। यह तो सद्विचारसे सर्ववादिसम्मत होगया है कि, वर्तमान डिमाक्रेसी (प्रजातन्त्र) के नियमानुसार व्यक्तिगत मतगणनाके आधार पर बहुमतसे मन्त्रिमण्डल संघटित किया जाय। यद्यपि हिन्दुस्थानका विभाजन हो गया है, जो अनुचित और अमङ्गल कार्य हुआ है। परन्तु जब यह हो ही गया है, तो अब उधर उपेक्षा करके हिन्दुस्थानको शक्तिसम्पन्न बनाना अत्यन्त आवश्यक है। इस कार्यमें सब श्रेणीके लोगोंको तन, मन, धनसे सहायता देनी चाहिये। हिन्दुस्थानकी अवस्था सबदेशोंकी अपेक्षा विचित्र है। अन्ततः सबबातोंमें विदेशोंकी नकल करना हिन्दुस्थानके लिये उपयुक्त नही होगा। हिन्दुस्थानकी हिन्दुजाति सृष्टिके आदिकालसे अपनी पवित्रता रक्षाका सम्बन्ध मानती आयी है। आजकलके नवशिक्षित लोग यह नहीं जानते कि हिन्दुलोग भगवान् ब्रह्माकी आदि सृष्टि हैं, जिसको करोड़ों वर्ष हो गये उस समयसे लेकर अबतक वे अपने रजोवीर्यकी शुद्धिका महत्त्व समझते हैं। हिन्दुओंका वेद, ज्योतिषशास्त्र और धर्मशास्त्र एकवाक्य होकर स्वीकार करते हैं कि ४३२००० वर्षका एक कलियुग होता है और इससे द्विगुण त्रिगुण और चतुर्गुण द्वापर, त्रेता और सत्ययुग होते हैं। चारोंयुग मिलकर एक महायुग कहाता है। ऐसे ७१ महायुगोंका एक मन्वन्तर होता है। एक मन्वन्तरमें कालप्रमापक मनु और देवराज इन्द्रादि बड़े बड़े देवपदधारी बदल जाते हैं तथा उनके स्थानमें नये पदधारी आजाते हैं। ऐसे १४ मन्वन्तरोंका एक कल्प होता है। वर्तमान कल्पके प्रारम्भमें वैवस्वतमनु नामक जो मनु हुए थे और भृगु, अङ्गिरा आदि ऋषिगण उत्पन्न हुए थे, उनके द्वारा गोत्र और प्रवरोंकी सृष्टि हुई है। उस समयसे लेकर अब तक गोत्र और प्रवरोंका यथाक्रम अखण्ड सम्बन्ध हिन्दु जातिमें चला आरहा है। ऐसे गोत्र और प्रवरोंका आर्यसंस्कार मूलक महत्व, रजोवीर्य शुद्धिमूलक जन्मना जातिका महत्त्व हिन्दुजातिसे नष्ट नहीं हो सकता। अतः जातिभेदविध्वंसकारी कानून, सगोत्रविवाह आदि कानून, अन्तर्जातीय विवाह सम्बन्धी कानून आदि कानून बनाकर सृष्टिके आरम्भसे ही जो पवित्र जाति बनी आयी है, उस पवित्र जातिको संकर बनानेका प्रयत्न करनेसे महती हानि होगी। हिन्दुजातिमें जो दायभागकी व्यवस्था है वह पृथ्वीकी अन्य जातियों से एकबार ही पृथक् है। हिन्दुशास्त्रका सिद्धान्त है कि, मनुष्य मरनेके अनन्तर नाना प्रेतलोक, नाना नरकलोक और नाना श्रेणीके स्वर्गलोकमें जाता है और ज्ञानके द्वारा उसकी जब तक मुक्ति नहीं होती तबतक घूम घूम कर इसी मृत्युलोकमें जन्म ग्रहण करता है। इस आन जानेके क्रमको आवागमन चक्र कहते हैं। इस आवागवनचक्रका पथ सरल रहे और परलोकगामी आत्माका क्लेश न हो इसके लिये हिन्दुशास्त्रोंने श्राद्ध, तर्पण, गयाश्राद्ध और अन्यान्य प्रकारके परलोकगत जीवको सहायता पहुंचानेवाले कर्मकाण्डके अभिप्रायसे दायभागकी व्यवस्था बांधी है। इन कर्मोंमें पुरुषोंका प्राधान्य है, स्त्रियोंका विशेष नहीं है। ऐसे दायभागके जो पवित्र नियम हैं, उनको कानून के द्वारा नष्ट न किया जाय।

इसी प्रकार इस मृत्युलोकमें तीर्थ, पीठ और देवमन्दिर आदिकी स्थापनाके साथ दैवीराज्यका पूर्ण सम्बन्ध रहा करता है। हिन्दू दर्शनशास्त्रका यह सिद्धान्त है कि, जैसे शब्द उत्पन्न होते ही वह आकाशमें व्यापक हो जाता है और रेडियोके यन्त्रके द्वारा सर्वत्र सुनायी देता है, उसी प्रकार दैवीसत्ता

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वतःही सर्वत्र व्याप्त है और पवित्र दैवीपीठमें वह कार्यकारी होती है। इसका उदाहरण यह है कि, रसरूप दुग्ध गौके शरीरभरमें होता है परन्तु स्तनोंद्वारा ही क्षरित होता है, वैसे ही सर्वव्यापक दैवीसत्ता पवित्रपीठ, देवमूर्तिआदिके द्वारा कार्यकारी होती है। अतः प्रत्येक पीठकी प्राचीन मर्यादा नष्ट होनेसे हानि होती है और इस प्रकारका बलात्कार राज, देश तथा मनुष्य सबके लिये हानिकारक होता है। अतः हिन्दुधर्मविज्ञानकी महिमा न समझकर राजनीतिक नेताओंको राजनीतिक स्वार्थकी दृष्टिसे मनमानी कार्यवाही न करनी चाहिये।

दूसरी ओर राजनीतिक विचारसे भी ये सब कार्य बहुत छोटे हैं। ऐसे छोटे कार्योंपर अधिक ध्यान देकर देशभरमें अशान्ति उत्पन्न करना और दैवी जगत्पर आघात पहुंचानेका यत्न करना, यह सद्विचारकी बात नहीं है। राजनीतिक नेतृवृन्दको सबसे पहले अपना शक्ति बढ़ानेका यत्न करना चाहिये। शक्ति वृद्धिके लिये समवेत प्रेम और समवेत ऐक्यकी आवश्यकता है और ऐसी अदूरदर्शिताके कार्य दोनोंके लिये बाधक हैं। सत्शिक्षाकी प्रणाली चलाना, पुरुषोंसे स्त्रियोंकी शिक्षाके रूपान्तरका विचार करना, देशमें शान्ति स्थापनके लिये पुलिसका संस्कार और सद्व्यवस्था करना, ब्रिटिशजातिकी न्यायालय चलानेकी जो जटिल प्रथा है, उसे सरल और दोषरहित बनाना, अर्थबल और सेनाबलका सञ्चय करना, जिस भारतवर्षमें चोरीकी छायातक नहीं थी उसी भारतमें नीचेसे ऊपर तक जो चोरी-घूसखोरीका अड्डा बन गया है, इस घृणित अवस्थाको दूर करना, प्रजाको अन्न और वस्त्र पर्याप्त मिले, इसकी व्यवस्था करना, ये और ऐसेही जो कार्य सबसे पहले करने योग्य हैं, उनकी ओर राजनीतिक नेतृवृन्दको विशेष रूपसे ध्यान देना चाहिये। श्रीभगवानकी तरह उसके भक्त भागवतजन भक्तिके योग्य हैं। सच्चे साधु महात्माओंका आदर सब समयसे चला आरहा है। वही क्रम हमारी सरकारको भी बनाये रखना चाहिये और किसीके धर्ममें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये।

——:॰:——

राजनीतिप्रसङ्ग (३)

(६) नियन्त्रित शासन पद्धति।

वैदिक दर्शनशास्त्रका यह सिद्धान्त है कि आकर्षणमूलक रजोगुण है और विकर्षणमूलक तमोगुण है और दोनों का जहां समन्वय होता है, वहां सत्त्वगुणमूलक धर्मका उदय होता है। वही धर्मशक्ति ग्रह नक्षत्र सूर्य चन्द्र पृथ्वीसे लेकर जड़ और चेतनात्मक सारे विश्वको धारण करती है। इसी कारण इसको धर्म कहते हैं। राजनीतिमें भी यही धर्मशक्ति यदि यथावत् रूपसे प्रयुक्त हो तो राज्यका सम्यक् मंगल होता है। राज्यमें भी दो शक्तियां हैं यथा राजशक्ति और प्रजाशक्ति, जहां दोनोंका ठीक मेल रहता है वहीं रामराज्य का उदय होता है। भगवान् रामचन्द्रके राज्यमें राजशक्ति और प्रजाशक्तिका पूर्ण समन्वय था। वाल्मीकीय रामायण इसका मुक्तकण्ठ होकर प्रमाण दे रहा है। भगवान् रामचन्द्र के रामराज्य का पूर्ण अनुकरण होना तो इस समय कठिन ही है किन्तु उसका कुछ अंश भी जिस राज्यमें प्रकट होता है, वहां अवश्य ही सब प्रकारसे मंगल होता है। इस समय यद्यपि राजाओंकी ऐसी अवनति हुई है कि जिससे राजतन्त्रशासन का एकबार ही अभाव पृथ्वी पर हो रहा है। जहां कहीं नियन्त्रित राज्य शासन प्रणाली प्रचलित है और प्रजाकी मण्डली द्वारा राज्यशासन और प्रजाशासन दोनों का समन्वय

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होता रहता है, जैसाकि कुछ दिनों तक वृटिश-जाति में था वहां अवश्य मङ्गल होता है। वृटिश राज्य ऐसा समृद्धशाली था कि अन्य राष्ट्र उससे डरते थे और उस राज्यमें भगवान् सूर्य कभी भी अस्त नहीं होते थे। कालकी दुर्दमनीय गतिसे और अपने कर्मोके फलसे वृटिश जाति अत्यन्त दुर्बल हो गयी है। राजतन्त्रशासन हिन्दुस्थानमें पुनः प्रचलित इस समय नहीं हो सकता। इस कारण शुद्ध प्रजातन्त्रशासन (डिमोक्रेसी) का ही प्रचार भारत खण्डमे होनेसे राजशक्ति और प्रजाशक्ति दोनोंमें समन्वय भी होगा और दोनोंका कल्याण भी होगा।

(७) धर्मध्वंस न करो।

भारतखण्डकी वर्त्तमान राजनीति (पालिटिक्स) के परिचालन करनेमें नेतृवृन्दोंको ध्यान अवश्य देना चाहिये कि राजनीतिका दायरा वहीं तक रखा जाय जहां तक प्रजाका उत्तम शासन हो, उसको पूर्ण न्याय प्राप्त हो, प्रजाको सब प्रकारसे शान्ति और सुखकी प्राप्ति हो, प्रजाको सत्‌शिक्षा मिले। परन्तु उस सत्-शिक्षाके प्रचालनमें पुरुषशिक्षा और नारी-शिक्षाका अलग अलग प्रबन्ध रहे, क्योंकि भगवान्ने उनको अलग अलग बनाया है। राज्यकी रक्षाके लिये सेना आदिका उत्तम आयोजन रहे। प्रत्येक व्यक्तिका एक एक वोट हो, जिससे सब लोग यह अनुभव कर सकें कि हम प्रजातन्त्रके अङ्ग हैं। राज्यशासन व्यवस्था निरपेक्ष हो, जिससे किसीको भी पक्षपातका सन्देह भी न हो सके। परन्तु दूसरी ओर चाहे बड़े समूहका धम हो चाहे छोटे समूहका धर्म हो, राजनीतिके बहाने किसीके धर्ममें अथवा धार्मिक आचरणमें किसी प्रकारसे भी हस्तक्षेप न किया जाय। जैसे हिन्दुधर्ममें देवमन्दिरोंमें पूर्व परम्पराके अनुसार जैसी व्यवस्था है, राजनीतिके बहाने उसमें बाधा पहुंचा कर देवापराध करना अत्यन्त अनुचित होगा। हिन्दुशास्त्र में शुद्धाशुद्धविवेक का अधिकार इतना विस्तृत है कि हमारी मातायें बहिनें और कन्यायें भी थोड़े समयके लिये अस्पृश्य हो जाती हैं। हिन्दु शुद्धाशुद्ध विवेकके अनुसार शरीरके सब अङ्ग समान होनेपर भी नाभिसे नीचे और नाभिसे ऊपरमें बहुत अन्तर माना जाता है, और उसमें स्पर्शास्पर्श विवेक माना जाता है। इस प्रकारके स्पर्शास्पर्श विवेकको नेतृवृन्दोंको हटानेके लिए अनुचित प्रयत्न नहीं करना चाहिये। राजनीतिक नेतृवृन्द केवल इतना ही कह सकते हैं कि राज्यके राजनीतिक दायरेके अन्दर जो कार्य होंगे उसमें स्पर्शास्पर्शविवेक या शुद्धाशुद्ध-विवेक तथा जातिभेद नहीं रखा जाय। ऐसा होनेसे राजनीतिक अनुशासनमें बाधा नहीं होगी और किसीभी धर्म और सम्प्रदाय पर अत्याचार नहीं होगा, देशमें सुखशान्तिकी अभिवृद्धि होगी।

——❀:०:❀——

हिन्दुसंस्कृतिके मौलिक लक्षण।

आजकल हिन्दु संस्कृतिकी बहुत दोहाई दी जाती है; परन्तु वास्तवमें हिन्दु संस्कृति क्या है, इसका शास्त्रीय दृष्टि से यहां कुछ दिग्दर्शन किया जाता है। शास्त्रोंमें लिखा है:—

"आचार मूला जातिः स्यादाचारः शास्त्रमूलकः।
वेदवाक्यं शास्त्रमूलं वेदः साधकमूलकः ॥
क्रियामूलं साधकश्चे क्रियाऽपि फलमूलिका।
फलमूलं सुखं देव सुखमानन्दमूलकम् ॥
आनन्दो ज्ञानमूलं च ज्ञानं वै ज्ञेयमूलकम्।
तत्त्वमूलं ज्ञेयमात्रं तत्त्वं हि ब्रह्ममूलकम् ॥

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मज्ञानं त्वैक्यमूलमैक्यं स्यात्सर्वमूलकम् ।
ऐक्यं हि परमेशान भावातीतं सुनिश्चितम् ॥
भावातीतमिदं सर्वं प्रकाशभावमात्रकम् ।"

अर्थात् जातिका मूल आचार है, आचारका मूल शास्त्र है शास्त्रोंका मूल वेद हैं, वेदोंका मूल साधक हैं, साधकोंका मूल क्रिया है, क्रियाओंका मूल फल है, फलका मूल सुख (विषयसुख) है, सुखोंका मूल आनन्द (ब्रह्मानन्द) है, आनन्दका कारण ज्ञान है, ज्ञानका मूल ज्ञेय है, ज्ञेयवस्तुका मूल तत्त्वानुभव है, समस्त तत्त्वोंका मूल ब्रह्म है, ब्रह्मज्ञानका मूल ऐक्यभाव है, और इस तरहका ऐक्य (अद्वैत) ही सब तरहकी साधनाओंका मूल है। वह ऐक्यभाव भावातीत होकर निखिल चराचर विश्वका भावप्रकाशक होता है।

वेद और शास्त्रोंमें आर्यसंस्कृतिका विज्ञान क्या है, यह उक्त शास्त्रवचनोंकी गवेषणा से जाना जा सकता है। आर्यसंस्कृतिका मूल आचार है। आर्यजाति, जो धर्मप्राण है, उसके प्राणस्वरूप हिन्दुधर्मके सोलह अङ्ग प्रधान हैं। पूज्यपाद महर्षियोंने सनातन हिन्दुधर्मको सोलह प्रधान अङ्गोंमें विभक्त किया है और इसधर्मको पूर्णचन्द्रकी तरह सोलह कलाओं से पूर्ण बताया है। हिन्दुधर्मके ये ही सोलह अङ्ग हिन्दुसंस्कृतिके मूलाधार हैं।

धर्मानुकूल शारीरिक व्यापाररूपी सदाचारसमूह इसका प्रथम अङ्ग है। आत्माकी ओर ले जाने वाले यावत् विचार सद्विचार कहाते हैं। यह उसका दूसरा अङ्ग है। इस दूसरे अङ्गकी पूर्तिके लिये आर्यजाति शिखासूत्र धारण करती है। शिखाके द्वारा यह शरीर देवमन्दिर समझा जाता है। शिखाबन्धनके समय ब्रह्मा, विष्णु, महेशकाध्यान किया जाता है। सूत्रमें जो तीन लड़ें होती हैं, वे अध्यात्मशुद्धि, अधिदैवशुद्धि और अधिभूतशुद्धिकी द्योतक हैं। वर्णधर्म सनातनधर्म का तीसरा अङ्ग है। क्योंकि रजोवीर्यशुद्धिसे ही जातिकी शुद्धि बनी रहती है और जातिकी आधिभौतिकशुद्धि पिताके वीर्य और माताके रजकी शुद्धिपर निर्भर रहती है। जातिकी इस शुद्धिका मूल माताओंके सतीत्वधर्मके पालन पर ही सम्पूर्णरूपसे निर्भर है। इस कारण आर्य नारियोंमें सतीत्वका प्राधान्य रहता है और यह इसका चौथा अङ्ग है। हिन्दू जातिके धर्मका पांचवां अङ्ग आश्रमधर्म है। इसके द्वारा मनुष्यजातिका जीवन व्यवस्थित रहता है। ब्रह्मचर्याश्रममें प्रवृत्ति कैसे की जाती है, इसकी सब तरहकी शिक्षा दी जाती है। गृहस्थाश्रममें धर्मानुकूल प्रवृत्ति करायी जाती है। यहीं जीवनकी समाप्ति नहीं होती। तीसरे वानप्रस्थाश्रममें निवृत्ति सिखायी जाती और चौथे संन्यासाश्रममें निवृत्ति करायी जाती है। इन्हींके द्वारा मनुष्यजीवनकी सार्थकता होती है। दैवजगत पर विश्वास हिन्दुधर्मका छठा अङ्ग है। यह स्थूलजगत् सूक्ष्म दैवी जगत्के अधीन होकर सुरक्षित होता है। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् श्रीभगवानके प्रतिनिधि होकर हमारे इस चतुर्दश लोकमय ब्रह्माण्डके सृष्टिकार्यमें भगवान ब्रह्मा, रक्षाकार्यमें भगवान् विष्णु और प्रलयकार्यमें भगवान् शिव नियुक्त हैं। इनके अधीन रह कर नाना वसु नामक अनेक देवता, रुद्र नामक अनेक देवता और आदित्य नामक प्रधान देवता अपने अपने पदपर नियुक्त हैं। दूसरी ओर नित्य ऋषिगण ज्ञानराज्यका सञ्चालन करते हैं। सब देवता कर्मराज्यका सञ्चालन करते हैं और अर्यमा आदि नित्य पितृगण स्थूल राज्यकी सुव्यवस्था करते हैं। पूर्वजन्मार्जित कर्मके अनुसार सुन्दर शरीर, कुरूप शरीर, अन्धता, बधिरता आदि नित्यपितृगण ही माताके गर्भमें सृजन करते हैं। उद्भिज, स्वेदज, अण्डज आदि चतुर्विध भूतसंघकी व्यवस्था भी देवतागण ही करते हैं। किसी मनुष्यको मारना या बचाना, यह सब काम देवताओं और असुर आदिकी प्रेरणासे ही मनुष्य किया करता है। राजा या विचारपति जब विचार करने बैठता है तब यदि वह आस्तिक हो, तो उसके हृदयमें देवता प्रेरणा किया करते हैं। यही सब दैवीराज्य की अलौकिक क्रियाएं हैं। भगवान्की दैवी शक्तिपर स्थिर विश्वास रखकर उनके तथा देवताओं और असुरोंके अवतारोंपर विश्वास करना हिन्दुधर्मका सातवां अङ्ग है। योगमूलक और भक्तिमूलक हिन्दुधर्मकी जो उपासना पद्धति है, वह इसका आठवां अङ्ग है। स्थूलध्यानमूलक मन्त्रयोग, ज्योति-

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ध्यानमूलक हठयोग, विन्दुध्यानमूलक लययोग और निर्गुण ध्यानमूलक राजयोग, ये ही योगमार्ग-के चार भेद हैं। इसीसे हिन्दुओंकी उपासना-प्रणाली बहुत विस्तृत है। मूर्ति आदि सोलह प्रकारके दिव्य देशोंमें पीठस्थापन करके सर्वव्यापक भगवत्सत्ताकी उपासनां करना, हिन्दुधर्मका नवाँ अङ्ग है। शुद्धाशुद्धिविवेक और स्पर्शास्पर्शविवेक इसका दसवाँ अङ्ग है। यह अङ्ग बहुत गभीर विज्ञानसे पूर्ण है। जीवात्मा अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय, इन पाँचकोषोंसे आच्छादित रहता है। शुद्धाशुद्धि और स्पर्शास्पर्शविचारके द्वारा उन कोषोंको पवित्रता सम्पादन करता हुआ अन्तमें उन्नत साधक मुक्त हो जाता है। इन पांचों कोषोंके पांच स्वतन्त्र अपवित्र करने वाले पदार्थ हैं। अन्नमय कोषके दोषको मल कहते हैं। इसमलका लक्षण तो स्पष्टही है। प्राणमयकोषके दोषको विकार कहते हैं। जैसे शवादिके स्पर्श करने से यह विकार शक्ति बढती है; क्योंकि प्राणमय कोष अन्य-कोषोंको लेकर लोकान्तरमें चला जाता है, तब मृतदेहमें अन्यकी प्राणशक्तिको खींचनेकी शक्ति बनी रहती है। इसी कारण अवगाहन स्नान, सुवर्णस्पर्श, अग्निस्पर्श आदिकी विधि श्मशानयात्राके बाद करनेकी शास्त्राज्ञा है। मनोमय कोषकी बाधक शक्तिको विक्षेप कहते हैं। यह दोष अशौच, सूर्य चन्द्रग्रहण आदिके समय आ जाते हैं, जिनके निवारणके लिये शास्त्रोंमें अनेक उपाय बताये गये हैं। विज्ञानमय कोषके दोषको आवरण कहते हैं और आनन्दमय कोषके दोषको अस्मिता कहते हैं। कर्म-मीमांसा शास्त्रमें इन दोषोंसे बचनेके लिये ही शुद्धाशुद्ध और स्पर्शास्पर्शविवेककी विधि बतायी गयी है।

यज्ञों-महायज्ञोंपर विश्वास रखना, हिन्दूधर्मका ग्यारहवां अङ्ग है, यज्ञ महायज्ञके हिन्दुशास्त्रोंमें अनेक भेद कहे गये हैं जो धर्मकार्य एकाधारमें श्रीभगवानकी प्रसन्नता सम्पादन करके साथ ही साथ दैवी राज्यके संवर्द्धनका कारण होता है, उसको यज्ञ कहते हैं। यज्ञ और महायज्ञमें भेद यह है कि, साधक अपने ऐहिक और पारलौकिक कल्याण-के लिये जो साधन करता है, जैसा कि, पुत्रेष्टियाग अग्निहोत्रादिको यज्ञ कहते हैं और जो जगत्के मङ्गलके लिये किया जाता है जैसे पञ्चमहायज्ञ, उसको महायज्ञ कहते हैं। ऋषियोंकी तृप्तिके लिये किये जाने वाले यज्ञको ब्रह्मयज्ञ कहते हैं और देवताओंके संवर्द्धन के लिये जो यज्ञ किया जाता है, उसे देवयज्ञ कहते है। अर्यमा आदि नित्यपितृगण और अपने मृतपूर्वजोंकी तृप्तिके लिये किया जाने वाला पितृयज्ञ है और उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज इस चतुर्विध भूतसंघके मङ्गलके लिये जो यज्ञ किया जाता है, उसे भूतयज्ञ कहते हैं। एक मनुष्य मनुष्यजातिका अङ्ग है, इस कारण कर्तव्यबुद्धि से भोजनसे पहले जो कोई आ जाय, उसे अन्नादिसे तृप्त करना नृयज्ञ है। ये पञ्चमहायज्ञ आर्यजातिका नित्यकर्म है; परन्तु इस समय इसको लोग बिलकुल भूल गये हैं। वेदों और वेदसम्मत स्मृति, पुराण, तन्त्र आदि शास्त्रोंमें स्थिर विश्वास रखना, हिन्दू धर्म का बारहवाँ अङ्ग है। कर्म तथा कर्मका बीज-संस्कार और उसकी क्रिया-प्रतिक्रियापर दृढ़ विश्वास रखना हिन्दुधर्मका तेरहवाँ अङ्ग है। जन्मान्तर-वादपर विश्वास, हिन्दुधर्मका चौदहवाँ अङ्ग है। मनुष्य मृत्युलोकमें आता है और जाति आयु, भोग, प्रकृति, प्रवृत्ति, शक्ति और संस्कार इन सातोंके अनुसार भोगता है और भोगलेनेपर प्रेतलोक, नरकलोक, पितृलोक, असुरलोक, स्वर्गआदि लोकोंमें जाता है और घूमफिर कर पुनः इस मृत्युलोक में आजाता है। इसी निरन्तर घूमनेको आवागमन-चक्र कहते हैं। इसी निरन्तर घूर्णायमान चक्रमें आत्मा या जीवको सहायता पहुँचानेकेलिये नाना श्राद्ध विधि, तर्पण विधि और दायभागविधि स्मृति-कारों ने बाँधे हैं और श्राद्धादिके नाना अधिकार स्मृतिपुराणोंमें वर्णित हैं। आजकल दायभागको जैसे लोग समझते हैं, वैसी दाय भागकी विधि साधारण विज्ञान सिद्ध नहीं है. वह बड़ी सद् व्यवस्था से बांधी गयी है। निर्गुण उपासना और सगुण उपासना की नानाविधि जो हिन्दुशास्त्रोंमें बतायी गयी है; वह हिन्दुधर्मका पन्द्रहवां अङ्ग है। और जीवकी कैवल्यप्राप्ति इसका सोलहवां अङ्ग है।

हिन्दु संस्कृतिको समझनेके लिये सबसे पहले इन बातों की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वर्तमान समयकी राजनीति।

ईश्वरीय नियम, प्राचीन और नवीन इतिहास तथा तुलनात्मक राजनीतिक गवेषणा, सभी से यह सिद्ध होता है कि मनुष्य-समाजमें दो शक्तियाँ चिर-स्थायी हैं—एक राजशक्ति और दूसरी प्रजाशक्ति। यह तो सर्ववादिसम्मत सिद्धान्त है कि राजतंत्र अनुशासन सबसे उत्तम है, परन्तु उसमें राजाका देवतुल्य होना आवश्यक है। यदि वह निरंकुश हुआ, तो नरक का अधिकारी होता है। और प्रजा उच्छिन्न हो जाती है। भारत द्वीपमें ऐसे राज्यका आदर्श भगवान् रामचन्द्रका राज्य है। वर्तमान समयमें न ऐसे राजा मिलते हैं और न ऐसा राजशासन सम्भव है। वर्तमान समयमें जितने प्रकारकी राजप्रणालियाँ संसारमें प्रचलित हैं, उनको तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। प्रथम प्रजातन्त्र राज अर्थात् डेमोक्रेसी है। उसके भी दो विभाग हैं। एक राजा सहित प्रजातन्त्र और दूसरा राजाविरहित प्रजातन्त्र। राजा सहित जो प्रजातन्त्र राज है, जिसका उदाहरण इङ्गलैण्डमें पाया जाता है, उसमें राजाको कोई विशेषाधिकार नहीं होते, किन्तु वह स्थायी सभापति होता है। दूसरा राजाविरहित प्रजातन्त्र जिसका उदाहरण अमेरिका है, उसमें राजसभाके सभापतिको राजासहित प्रजातन्त्रके सभापतिकी तुलनामें कुछ अधिकार होते हैं, इसमें सन्देह नहीं; परन्तु वह सभापति हर पाँचवें वर्षमें नया चुना जाता है। दूसरे प्रकारकी राज-शासन प्रणाली जो इस समय प्रचलित है, उसको सोशलिज्म अर्थात् समाजवाद कहते हैं। इस शैलीकी राजशासन प्रणाली इस समय यूरोपके कई देशोंमें देख पड़ने लगी है, किंतु उसमें भी बहुत मतभेद हैं। तीसरी राजशासन प्रणाली, जिसको कम्युनिज्म (साम्यवाद) कहते हैं, उसका उदाहरण रूसमें देख पड़ता है। इन पिछली दोनों राजशासन प्रणालियोंमें एकाकारकी नीति स्पष्ट रूपसे दिखायी देती है; परन्तु सोशलिज्म (समाजवाद)में एकाकार करनेके विषयमें कुछ रोक-टोक है, कम्युनिज्म अर्थात् साम्यवादमें तुलनात्मक दृष्टिसे पूर्ण निरङ्कुशता है। इस शासन प्रणालीकी प्रारम्भिक अवस्थामें निरंकुशता इतनी बढ़ गयी थी कि, सामाजिक शृङ्खला विवाह आदि उठ ही गयी थी और युवा स्त्रियाँ पशुओंकी तरह सामूहिक सम्पत्ति समझी जाती थीं।

भारतखण्ड (हिन्दुस्तान) में नये राजनीतिक परिवर्तनके साथ ही साथ राजनीतिक नेतृवृन्दकी मनोवृत्ति और कार्यप्रणाली ऐसी देखनेमें आ रही है कि, वे हिन्दुस्थानकी प्राचीन संस्कृतिको भूल गये हैं और आजकलकी पृथ्वीकी अन्य जातियोंकी नकल करके अपने यहाँकी कार्य प्रणाली बनाना चाहते हैं। आर्यशास्त्रों में अनुशासनके तीन भेद किये हैं।

१—योगानुशासन, जिसके दो भेद हैं। योगानुशासनके द्वारा श्रीभगवान्‌के चरणकमलों से सम्बन्ध हो जाता है। वह एक परोक्षरूपसे और दूसरा अपरोक्षरूपसे होता है। उन दोनोंके अनुसार योगीमें दो तरहके अधिकार पाये जाते हैं। अतः योगानुशासनके द्वारा अपने अन्तःकरणको समाहित करनेवाले व्यक्तिसे प्रायः भूल नहीं होती। दूसरे अधिकारका नाम है—शब्दानुशासन। इस अनुशासनके लिए अधिकार प्राप्तिके दो स्थान हैं। एक वेद और शास्त्र द्वारा और दूसरा गुरुदेवके द्वारा। इस अधिकारमें भी निरंकुशता आने नहीं पाती। ऐसे विज्ञ व्यक्तियों को या तो शास्त्रसे सहायता मिलती है या गुरुदेव से। अतः ऐसे अधिकारियोंमें भ्रमप्रमादकी सम्भावना बहुत कम रहती है। तीसरे प्रकारके अनुशासनका नाम है—राजानुशासन। यह अनुशासन तमोगुणाश्रित अज्ञानी जीवोंके लिए विहित है। क्योंकि अज्ञानीजीवों की तामसिक बुद्धि असत् विषयको सत् और सत्

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषयको असत् समझने लगती है। ऐसे लोगोंको ठीक रास्ते पर चलानेके लिए राजानुशासनकी आवश्यकता होती है। राजानुशासन दो प्रकारसे चला करता है। एक राजदण्ड द्वारा, जिसे राजा कानून बनाकर चलाता है और दूसरा सामाजिक दण्ड द्वारा, जिसका विधान समाज करता है। वर्तमान समयमें राजानुशासनकी अधिकसे अधिक आवश्यकता है ही। आजकलके हमारे राजनीतिक नेतृवृन्दको उक्त शास्त्रीय तीन प्रकारके अनुशासनोंके रहस्यको अपने दृष्टिकोणमें रखकर कार्य करना चाहिए। उनको आत्मदर्शी महात्माओंका सम्मान करना चाहिए। और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करना चाहिए, जिससे योगानुशासनसे कुछ सहायता मिलती रहे। उनको शास्त्र और अपनेसे वृद्धजनोंसे सहायता लेने की इच्छा सर्वदा रखनी चाहिये, जिससे उनको शब्दानुशासनसे सहायता प्राप्त होती रहे। हमारे पूर्वज पूज्यपाद त्रिकालदर्शी महर्षियोंने मनुष्यत्व प्राप्तिके लिए, जिन-जिन शास्त्रोंकी आवश्यकता है, उन सबकी रचना की है। इस विषयमें आजकलके सभ्यजगत् में मतभेद नहीं है कि हिन्दुस्तानके ऋषिगण जगत्के आदिगुरु हैं। उनके बनाये सब शास्त्र अभ्रांत हैं। ऐसा होने पर उनमें आत्मबल अवश्य बढ़ेगा और पूज्यपाद महर्षियोंकी कृपासे उनसे भूलें नहीं होंगी।

साथ ही साथ नेतृवृन्दको बहुत विषयों पर एक साथ ध्यान न देकर और एकाकारवादी आजकलके सिद्धान्तों पर ध्यान न देकर देशके राजानुशासनको सुधारना चाहिए और जो लोग सामाजिक बन्धनोंको तोड़कर एकाकार फैलानेकी सुविधा दे रहे हैं, वह न करके राजदण्ड और समाजदण्डको व्यवस्थित करना चाहिए।

हमारे वर्तमान समयके नेतृवृन्दको यह समझना चाहिए कि पृथ्वीके अन्य देशों और अन्य जातियोंमें तथा हमारी इस धर्मभूमि हिन्दुस्थान और आर्यजातिमें दिन और रात जैसा प्रबल अन्तर है। जिन जिन कारणोंसे हिंदुजाति करोड़ों वर्षोंसे अब तक जीवित है, उसके मूलमें जो संस्कृति विद्यमान है, उसको ठीक तरहसे समझकर तदनुसार राजानुशासनका प्रवर्तन करनेसे सब हिन्दुस्थान और हिन्दुजातिका कल्याण हो सकेगा और ऐसा होने पर हिन्दुस्थानकी सरकार दीर्घकाल तक स्थायी रहेगी और सारे जगत् में उसका आदर होगा। वर्तमान जगत्के इतिहाससे जिन जिन विषयोंके लेनेसे अपनेमें शक्तिका संचार हो, अपने यहाँका अर्थबल बढ़े, प्रजाके स्वास्थ्य और शान्तिकी अभिवृद्धि हो, भारतद्वीपमें धनबल जनबल, विद्याबल आदिकी वृद्धि हो, ऐसी बातोंको ग्रहण करना चाहिए और जिनसे अपनी संस्कृतिका नाश होना सम्भव हो, उनको त्यागना चाहिए।

आजकलके राजनीतिक नेतृवृन्दोंके आचार और विचारमें भयजनक यह लक्षण दिखाई दे रहा है कि जो कुछ वे सोचते और कहते हैं, वह दूसरोंकी नकल होती है। स्वाधीन चिंताकी ओर उनका ध्यान नहीं है। आर्यशिक्षाप्रणालीके द्वारा यह सिद्धांत निश्चित होता है कि जिस व्यक्ति या जातिमें प्रतिभाका लक्षण दिखायी दे, वह व्यक्ति या जाति उन्नत समझी जाती है। जिस बुद्धिके द्वारा नयी नयी बातों और नये नये सिद्धांतोंका आविष्कार हो, उसको प्रतिभा कहते हैं। हमारे पूर्वजोंमें प्राचीन कालमें यह प्रतिभा चिरस्थायी रूपसे दीख पड़ती है। मनुष्यजीवनको सफल बनानेके लिये जिन जिन विद्याओं और कलाओंकी आवश्यकता होती है, उनकी पूर्ति इसी प्रतिभा द्वारा हुई है। प्रतिभाशाली व्यक्ति या जातिको किसीकी नकल करने की आवश्यकता नहीं होती। जिससे स्वाधीन भारतमें फिर इस प्रतिभाका उदय हो, इसके लिये भारत सरकारको नियमित प्रयत्न करना चाहिए।

ज्ञानके आधार ज्ञानस्वरूप परमात्मा हैं। ईश्वरज्ञानविहीन शिक्षासे और ईश्वरज्ञानहीन मनुष्य-समाज में सच्ची प्रतिभाका उदय होना असम्भव है। अतः भारतमें सबसे पहले ऐसा प्रयत्न होना चाहिए कि भारतमें ईश्वरज्ञानविहीन शिक्षाके स्थान पर ऐसी शिक्षा-प्रणाली प्रचलित होनी चाहिये, जिससे ईश्वरकी भक्ति बढ़े। शंका समाधानके लिये कहा जा सकता

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है कि, भारत द्वीपमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी आदि जातियाँ और हिन्दुधर्मके सिख, जैन, आर्यसमाजी आदि ऐसा कोई पन्थ नहीं है जो ईश्वरको न मानता हो। इस कारण साधारणरूपसे ईश्वरज्ञान और भक्तिको वढ़ानेवाली शिक्षा बालक बालिकाओंके विद्यालयोंमें अच्छी तरहसे दी जा सकती है। यदि इस प्रकारकी शंका है कि ईश्वरज्ञानविहीन अन्तःकरणमें प्रतिभाका उदय नहीं होता, तो यूरोप और अमेरिका में ईश्वरको न माननेवाले ऐसे साइन्सके विद्वान् हैं जिन्होंने भौतिक जगत्‌में चमत्कार कर दिखाया है, यह क्या बात है? इस शंकाका समाधान यह है कि उनका आविष्कार केवल स्थूल भौतिक जगत्‌के संबंधसे ही हुआ है। स्थूलसे परे सूक्ष्म आध्यात्मिक जगत् तक उनकी पहुँच नहीं है। उदाहरण स्थल पर समझना चाहिए कि चिकित्सा-विज्ञान (मेडिकल साइन्स) में बहुत अलौकिक आविष्कार अमेरिका और यूरोपके विद्वानोंने किये हैं, किन्तु सूक्ष्म जगत् सम्बन्धी विचार जैसे—वात, पित्त, कफ विज्ञान, नाड़ी विज्ञान, वात पित्त-कफके सम्बन्धसे रोग विज्ञान आदि विषयों पर वे अब तक दृष्टि ही नहीं डालते। होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली यूरोपने अवश्य निकाली है, जिसकी अब तक एलोपैथिकके विद्वान् बिना समझे ही हँसी उड़ाते हैं। होमियोपैथिकके विज्ञानमें जो अलौकिक शक्तिका सिद्धांत निहित है, उसी प्रकारका सिद्धांत आजकलके ऐटोमिक एनर्जीके सिद्धांतमें भी निहित है। परन्तु हिंदुशास्त्रोंके शक्ति-विज्ञानमें जो शक्तिके प्रथम चार भेद किये हैं, स्थूल, सूक्ष्म, कारण और तुरीय तथा फिर स्थूल शक्तिके सात अलौकिक भेद किये गये हैं, उनका कुछ भी रहस्य आजकलके विद्वान् समझते, तो बहुत आगे वढ़ जाते। परन्तु जब उनका ईश्वर भक्ति पर ही विश्वास नहीं, तो वे ऐसे शक्तितत्त्व को क्या समझ सकेंगे? अतः आजकलके राजनीतिक नेतृवृन्द अधीर होकर सब विषयोंमें पश्चिमी आदर्शों की नकल करते हैं जो सर्वथा उचित नहीं है। वे यदि आजकलकी आसुरी युद्धविद्या, जलयान, वायुयान, स्थलसेनाके नाना युद्धास्त्रोंको सीखकर अन्य देशोंके समकक्ष होना चाहें, तो उनकी नकल करके हो जाना चाहिए। क्योंकि भारत द्वीपमें पहले आसुरी विद्याका आदर नहीं हुआ था, न वे उसका आदर कर सकते थे। आजकल पश्चिमी इञ्जीनियरिंग विज्ञान, लोहा आदि धातुओंसे जो बड़े बड़े कार्य किये जा रहे हैं, उसका संग्रह करके भारतको लोहेके कार्यमें युरोपके समकक्ष बनाना अवश्य ही भारतको करना पड़ेगा। बिजलीके उपयोगमें यूरोप और अमेरिका बहुत आगे बढ़े हुये हैं। उस विद्याका संग्रह भी भारतको करना होगा। इस प्रकार जो नवीन विद्याएँ और नवीन आविष्कार पश्चिमी देशोंमें हुए हैं, उनका संग्रह कर भारत सरकारको अपनी शक्ति बढ़ानी चाहिए, परंतु सब बातोंमें उनकी नकल नहीं करनी चाहिए, क्योंकि दूसरोंकी नकल करके उन्नति करना तीसरी श्रेणीकी उन्नति कहाती है। अपनी प्रतिभा द्वारा उन्नति करना प्रथम श्रेणीकी उन्नति है। दूसरेसे शिक्षा पाकर अपनी उन्नति करना दूसरी श्रेणीकी उन्नति है और हर विषयमें दूसरोंकी नकल करके उन्नति करना तीसरी श्रेणीकी उन्नति है। ऐसी उन्नति स्थायी फलप्रद नहीं हो सकती।

हमारे राजनीतिक नेतृवृन्दको सबसे पहले यह विचार कर लेना चाहिए कि हमारी प्राचीन संस्कृति क्या क्या है। उसमें भी कौन सी संस्कृति ऐसी मौलिक भित्ति पर स्थित है, जो अपरिवर्तनीय है। और किस किस संस्कृतिमें देश-काल-पात्रके अनुसार परिवर्त्तन किया जा सकता है। यह सब विचार करके उनको नवीन योजनाएँ बनानी चाहिये। भारत कृषि प्रधान देश है। कृषि प्रधान देश इस पृथ्वीमें और भी बहुत हैं; परन्तु भारतका देश-काल-पात्र कुछ विचित्रता रखता है। भारतमें यह संभव नहीं है कि भारतकी सभ्यता और संस्कृतिमेंसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जाति और उपजातियोंका एक बार ही बष्किार कर दिया जाय और सब जाति और देशमें एकाकार फैलाकर सबकी रहन सहन एक सी कर दी जाय। बड़े बड़े दूरदर्शी बौद्ध, सम्राट अशोक, सुधन्वा, कनिष्क आदिके इस लोकसे चले जानेके बाद

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जब अदूरदर्शी परवर्ती बौद्ध राजाओंने एकाकार फैलानेका प्रयत्न किया, तो उसका फल उलटा हुआ। बौद्ध साम्राज्य नष्ट हो गया और बौद्धशासकगण भारतसे भगा दिये गये। अतः इस आदि सृष्टिकी पवित्र भूमि और जगत्के आदिगुरुओं की पुण्यभूमि में एकाकार जो चलाना चाहेंगे, वे अन्तमें स्वयं नष्ट हो जायेंगे। इस समय यह कल्पना चल रही है कि जमीदारोंसे जमीन छीन ली जाय और कृषकोंके छोटे छोटे टुकड़े तोड़ दिये जायँ। और रूस, आस्ट्रेलिया आदि देशों की तरह जमीन जोतने बोनेके बड़े बड़े यंत्र मँगाकर विदेशी ढङ्गकी नकल कर यहाँकी कृषि की जाय। इस प्रकारका परिवर्त्तन भारतमें करने से पहले नेतृवृन्दको बार बार अच्छी तरहसे समझ लेना चाहिए। जहाँ बड़ी बड़ी जमीनें पड़ी हों, वहाँ अवश्य इस नयी प्रणालीसे कार्यको आगे बढ़ाया जा सकता है, परन्तु जहाँ प्राचीन मर्यादाके अनुसार कृषि प्रणाली चल रही है, वहाँ उसे तोड़कर नयी प्रणाली चलानेसे पशुओं और मनुष्यों दोनोंकी हानि होगी। ब्रिटिश गवर्नमेंटकी जो न्यायालयकी नीति थी, उसमें अर्थकी ओर लक्ष्य अधिक था और आमदनी बढ़ानेकी ओर दृष्टि रहती थी। अन्यायसे आमदनी बढ़ाना आर्यसंस्कृतिके सर्वथा विरुद्ध है। अतः आर्यसंस्कृतिको दृष्टिकोणमें रखकर न्यायालयोंका संस्कार सबसे पहले करना चाहिए।

आर्यसंस्कृतिमें सब विषयोंमें प्रधान लक्ष्य परमात्माकी ओर रक्खा गया है। वैदिक सप्तदर्शनशास्त्रों ने एक वाक्य होकर सबने अपने अपने ढंग पर परमात्माका स्वरूप और उसके साथ जगत्का साक्षात् सम्बन्ध बताया है। वेद दर्शन और स्मृतिशास्त्र पुराण आदि सबमें ही यह अच्छी तरह बताया गया है कि भगवान् एक और अद्वितीय होने पर भी उनकी दैवी श्रृंखलाके अधीन अनेक देव देवियाँ हैं। सृष्टिकर्त्ता भगवान् ब्रह्मा स्थितिकर्त्ता भगवान् विष्णु और प्रलयकर्त्ता तथा मुक्तिदाता भगवान् शिव और इनके अधीन अनेक दैवपदधारी जैसे आठ वसु, एकादश रुद्र द्वादश आदित्य आदि अनेक देवपदधारी हैं जो जगत् की सृष्टि स्थिति और लयका कार्य अपने अपने अधिकारके अनुसार किया करते हैं। हिन्दुओंके महाभारत और पुराण आदि शास्त्र यह सिद्ध करते हैं कि देवताओं और उनके विरोधी असुरोंकी प्रेरणा मनुष्योंमें हुआ करती है, जैसे कि महाभारत युद्धमें देवताओंकी प्रेरणा पाण्डवोंमें और असुरोंकी प्रेरणा कौरवोंमें हुई थी, जिससे महाभारतीय युद्ध हुआ था। पितामह भीष्म जैसे विज्ञ व्यक्तियोंने इस सिद्धान्तको महाभारतमें स्वीकार भी किया है। मनुष्यके अन्तःकरणकी सहायतासे उस अन्तःकरणमें प्रेरणा करते हुए देवता और असुर अपना अपना कार्य करते रहते हैं। मनुष्यके अन्तःकरणमें शारीरिक, मानसिक, वाचनिक और बौद्धिक कर्मोंका जो संस्कार पड़ता है, वे अच्छे और बुरे संस्कारसमूह चित्ताकाशसे चिदाकाशमें अर्थात् मनुष्यके अन्तःकरणके आकाशसे ब्रह्माण्डके आकाशमें वैसे ही पहुंच जाते हैं, जैसे रेडियो यन्त्र द्वारा शब्द सर्वत्र पहुँच जाता है वे संस्कार भगवान् यम धर्मराजके दफ्तरमें उनके दो मन्त्री चित्रगुप्त और विचित्रगुप्तके द्वारा लिख लिये जाते हैं। उसी लेखके अनुसार जीवोंको यथाक्रम फल मिलता है। फलके मिलनेके लिए भी इसी तरहका सिद्धांत समझना चाहिये। इसी कारण मनुष्यके राजकीय दफ्तर और अदालत आदिमें सब जगह उधर से ही प्रेरणा होती है। हिन्दूशास्त्र यह प्रमाणित करता है कि जो राजा या प्रधान राजकर्मचारी या न्यायाधीश आस्तिक होते हैं, उनमें अष्टदिक्पाल अपनी प्रेरणाशक्तिसे काम लेते हैं। जो आस्तिक नहीं होते उनमें आसुरी प्रेरणा भी होती है। जैसा कि शास्त्र में कहा है—

"अष्टानां लोकपालानां मात्राभिर्निर्मितो नृपः"
"यो हि धर्मपरोराजा देवांशोऽन्यश्चरक्षसाम्
अंशभूतो धर्मलोपी प्रजापीड़ाकरो भवेत्।"

ये सब सिद्धान्त केवल धर्मशास्त्रके वचनोंसे ही सिद्ध नहीं हैं, दार्शनिक युक्तियोंसे भी सिद्ध होते हैं। अतः आजकलके राजनीतिज्ञ नेतृवृन्द इन सिद्धान्तोंको अपने दृष्टिकोणमें रखकर तुलनात्मक गवेषणासे काम

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करें तो अच्छा होगा।

योरपकी एकाकारकी प्रवृत्तिकी नकल करके जो आधुनिक राजनीतिक नेतृवृन्द आजकल छोटे बड़ोंको एक ही रास्तेसे चलाना चाहते हैं और गरीबोंकी स्थिति सुधारनेके पहलेही उनके रहन सहनको योरपके ढङ्गपर बहुव्यय साध्य बनाना चाहते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि वे केवल मुँहसे भारतीय संस्कृति शब्द कहते हैं, किन्तु भारतीय संस्कृतिके स्वरूपको उन्होंने अच्छी तरह समझनेका प्रयत्न नहीं किया है। भारतीय संस्कृतिके अनुसार हिन्दुसमाज का जो सबसे बड़ा और माननीय हिस्सा है, वह ब्राह्मण जाति है, जिसके लिये भगवान् मनुने कहा है—

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादाऽग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥"

अर्थात् इस भारतखण्डमें उत्पन्न सदाचारी अग्रजन्मा ब्राह्मणोंके चरित्रसे पृथ्वीके सब मनुष्य शिक्षा लिया करेंगे। ऐसी ब्राह्मण जाति जिसने मानवीय शिक्षाके उपयोगी सर्वविध विद्याओंका आविष्कार किया था, जिससे कि वह जगद्गुरु समझी जाती है। इसी कारण ब्राह्मणोंको धनी होना या धनसंग्रह की तरफ प्रवृत्त होना निषिद्ध है, उन्हें भिक्षावृत्तिका ही अवलम्बन करना चाहिए। विना धन लिये पढ़ाना यजन अर्थात् पौरोहित्य वृत्ति द्वारा गृहस्थोंसे अपना निर्वाह करना तथा सदाचार परायण व्यक्तियोंका दान ग्रहण करना आदि उनकी प्रधान वृत्ति समझी जाती है, ऐसी पवित्र ब्राह्मण जातिको एकाकारके ढर्रे में चलाने से हिन्दुजातिका कितना बड़ा नुकशान हो सकता है, इस बातको जो विद्वान् हैं, समझ सकते हैं। ब्राह्मण जातिको धनलोलुप न बनाकर उनका आदर और सम्मान करते हुए उनके तथा उनके योग-क्षेमका प्रबन्ध करते हुए उनसे विद्योन्नतिका कार्य लेनेसे ही वस्तुतः आर्यसंस्कृतिकी रक्षा हो सकती है।

—०*०—

शास्त्रप्रकाश विभाग।

जैसे ब्रह्माण्डमें दैवी सुमेरु पर्वत ब्रह्माण्डकी सुदृढ़ता सम्पादन करके उसकी सुरक्षा करता है और जैसे मानव-पिण्डमें मेरुदण्ड शरीरको सुदृढ़ करता और उसकी रक्षा करता है उसी प्रकार श्रीभारतधर्म महामण्डलका शास्त्र-प्रकाशनकार्य इसका मेरुदण्ड है। उस विभागमें सबसे बड़ा कार्य संस्कृत ग्रन्थ प्रकाशनका हुआ है इसके द्वारा कलियुग के अन्त पर्यन्त हिन्दुस्थान और हिन्दुजातिकी रक्षा होती रहेगी उनके नाम निम्नलिखित हैं—(१) न्यायदर्शन (सरल संस्कृत वृत्ति सहित) (२) वैशेषिक दर्शन (सरल संस्कृत-वृत्ति सहित (३) योगदर्शन (सरल संस्कृत वृत्ति सहित) (४) सांख्यदर्शन (सरल संस्कृत वृत्ति सहित) इस समय भगवान कपिलदेव द्वारा प्रणीत सांख्यदर्शन मिलता है, किन्तु उसपर आर्ष भाष्य नहीं मिलता है। इस कारण अन्यधर्मके आचार्योंने सांख्यदर्शन पर भाष्य और टीका आदि बनाकर उसको नास्तिक दर्शन बना रखा है। वैदिकदर्शनोंका यह अभाव दूर करनेके लिये भगवान कपिल-देवका सिद्धान्त यथार्थ रूपसे प्रकाशित हो इसके लिये इस दर्शन पर टीका ग्रंथ और भाष्य ग्रंथ संस्कृतमें बने हैं। जिससे यह बड़ा भारी अभाव दूर होगा। इसी प्रकार वेदके कर्मकाण्डके दर्शनका उत्तरार्ध मिलता था, परन्तु पूर्वार्ध नहीं मिलता था और वेदके उपासना काण्डका दर्शन-शास्त्र भी नहीं मिलता था। ये दोनों दर्शनशास्त्र श्रीभगवानकी कृपासे उपलब्ध हुए हैं। जिसमेंसे श्री भरद्वाज दर्शन पहला है। (५) श्री भरद्वाज कर्ममीमांसा दर्शन (सरल संस्कृत वृत्ति सहित) (६) श्री जैमिनीय कर्ममीमांसादर्शन (सरल संस्कृत वृत्ति सहित) (७) 'दैवी मीमांसा दर्शन' जो वेदके उपासना काण्डकी मीमांसा है। (सरल संस्कृत वृत्ति और विस्तृत संस्कृत भाष्य सहित) (८) वेदान्त दर्शन अर्थात् ब्रह्ममीमांसा दर्शन, जिसके अनेक भाष्य प्रचलित हैं, तो भी उसका एक समन्वय भाष्य बना है। इन आठों दर्शन

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ग्रन्थोंमेंसे यथाक्रम निकलनेसे इस समय दार्शनिक शिक्षा प्रणालीमें जो असम्पूर्णता हो रही है अब सो दूर हो गई है। विशेषतः सांख्यदर्शन पर कोई आर्ष भाष्य न मिलनेसे इसको लोगोंने नास्तिक दर्शन बना रखा था। अब अपनी वृत्ति और भाष्य निकल जानेसे वह बड़ा अभाव दूर हो गया है। वेदके उपासनाकाण्डका मीमांसादर्शन नहीं मिलता था। उसका सूत्रसमूह भी जो सांख्यदर्शनसे बड़ा है मिल जानेसे दार्शनिक जगत्का यह बड़ा भारी अभाव दूर हो गया है। अब यह प्रयत्न किया जा रहा है कि इन आठों दर्शन-ग्रन्थोंके प्रचारका एक व्यवस्थित उपाय निकाला जाय जिससे वैदिक दर्शनोंका प्रचार जगत् भरमें हो सके। इन सातों दर्शनोंकी विस्तृत भूमिकायें भी तैयार हुई हैं। जिनके द्वारा सातों ज्ञानभूमियोंके अनुसार सातों दर्शनोंका विस्तृतरहस्य जगत्में प्रकाशित होगा। उसी प्रकार पञ्चोपासनाके समन्वय और उपासना पद्धतिको व्यवस्थित रूपसे चलानेके लिये पाँचों सगुण उपासनाकी पाँचों गीताएँ हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित की गई हैं। उनके नाम ये हैं—

(९) श्री शम्भुगीता (१०) श्री विष्णुगीता (११) श्री शक्तिगीता (१२) श्री धीश गीता (१३) श्री सूर्य्यगीता। सब श्रेणीके उपासकोंके कल्याणके लिये—(१४) श्री गुरु गीता। सब श्रेणीके साधु संन्यासियोंके कल्याणार्थ (१५) संन्यासगीता; सब श्रेणीके सन्यासियोंके उपकारार्थ (१६) श्री संन्यासधर्मपद्धति। योगमार्गके उपयोगी (१७) मन्त्रयोग-संहिता, हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित हो गई है। (१८) हिन्दी अनुवाद सहित हठयोग संहिता। यह पुस्तक भी छप गई है। (१९) लययोग संहिता। हिन्दी अनुवाद सहित प्रस्तुत है लेकिन अभी छपी नहीं है। (२०) राजयोग संहिता हिन्दी अनुवाद सहित प्रस्तुत है लेकिन अभी छपी नहीं है। इन चारोंयोग संहिताओंसे योगसाधन पद्धति व्यवस्थित हो गई है। उपासकोंको और योगियोंको इन सब ग्रन्थोंसे बहुत कुछ लाभ पहुँचेगा। जैसे संन्यासधर्मपद्धति रूपी पद्धतिग्रंथ और संन्यासगीतारूपी निबन्ध ग्रन्थ इन दोनों के द्वारा सब श्रेणीके साधु संन्यासियोंका बहुत कुछ उपकार हो सकेगा। क्योंकि इस प्रकारके मौलिक ग्रन्थ आजतक उपलब्ध नहीं होते थे। उसी प्रकार उपासना प्रणाली और योग साधनके अधिकारियोंके लिये पञ्चोपासनाके पाँचो गीता ग्रन्थ और योगसाधनके चारो योगसंहिताग्रन्थ हर श्रेणीके उपासकों और साधकोंके लिये परम उपकारी होंगे। (२१) श्री मधुसूदन संहिता, संस्कृत मूल छप गयी है, किन्तु अभी हिन्दी अनुवाद नहीं तैय्यार हुआ है। पुराण समझनेके लिये (२२) पुराण रहस्य, कर्मका स्वरूप समझनेके लिये (२३) श्री दत्तात्रेय कर्म रहस्य। दर्शनशास्त्रकी शृंखला समझनेके लिये (२४) श्री दत्तात्रेय दर्शनादर्श जो संस्कृत मूल हिन्दी अनुवाद सहित श्री दत्तात्रेय ग्रंथमालामें प्रकाशित हो चुका है। धर्मके सार्वभौमरूपको और उसके विस्तृत अंगोंको समझनेके लिये (२५) श्री दत्तात्रेय धर्ममीमांसा है। यह वृहत् संस्कृत मौलिक ग्रंथ तीन स्कंध और ५४ अध्यायोंमें श्री सूर्यग्रन्थमालामें नियमित प्रकाशित हो रहा है। ये सब ग्रन्थ संस्कृतमें हैं। कलियुगके अभी केवल पाँच हजार अड़तालीस वर्ष बीते हैं, आशा है कि ये ग्रन्थ कलिके अन्त तक आर्यजातिकी रक्षा करते हुए जगत् हितकर धर्मकी सेवा करते रहेंगे। इस शास्त्रप्रकाशन विभागके असाधारण पुरुषार्थके शुभ कार्यमें कैलाशवासी महामहाध्यापक महामहोपाध्याय पण्डितवर अन्नदाचरण तर्क चूड़ामणि, ब्रह्मीभूत स्वामी दयानन्दजी महाराज और श्रीमती विद्यादेवी महोदया जैसे गुरुभक्त शिष्य और शिष्याओंने बहुत कुछ परिश्रम किया है। महामहाध्यापक महामहोपाध्याय पण्डित चूड़ामणि जीके बनाये हुए कई संस्कृत ग्रन्थ तैयार हैं। वे क्रमशः प्रकाशित होंगे। ब्रह्मीभूत स्वामी दयानन्जी महाराजके द्वारा प्रकाशित अनेक हिन्दी ग्रन्थ हैं—धर्मकल्पद्रुम। श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज विरचित सुवृहत् आठ खंडोंमें प्रकाशित हुआ है। यह सनातनधर्मका विश्वकोष है। श्रीस्वामी जीका दूसरा वृहत् ग्रन्थ जिसका नाम धर्मविज्ञान है। वह तीन खण्डोंमें प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थमें श्री सनातन धर्मके बड़े बड़े विषयोंको दार्शनिक और वैज्ञानिक युक्तिसे सिद्ध किया गया है और उन विषयों पर विदेशीय विद्वानोंकी सम्मतियाँ दी गई हैं, जिससे अंग्रेजी शिक्षित विद्वान्गण लाभ उठा सकेंगे। हिन्दी भाषाकी पुष्टि और सनातनधर्म-शिक्षाके विस्तारके शुभ अभिप्रायसे अनेक मौलिक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं यथा प्रवीण दृष्टिमें नवीन भारत। नवीन

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दृष्टिमें प्रवीश भारत। शास्त्रचन्द्रिका। साधन चन्द्रिका। धर्मचन्द्रिका। आर्य गौरव। आचारचन्द्रिका। नीतिचन्द्रिका सनातनधर्म दीपिका। चरित्र चन्द्रिका इत्यादि अनेक ग्रन्थ बने हैं और छप भी चुके हैं जो सब श्रेणीके विद्यार्थियोंको क्रमानुसार पढ़ाये जा सकते हैं।

धर्मप्रश्नोत्तरी आदि अनेक प्रश्नोत्तरियाँ बाल्यावस्थासे ही बालक-बालिकाओंके पढ़ानेके योग्य प्रकाशित हुई हैं। तत्त्वबोध, कहावत रत्नाकर, धर्मतत्त्व, गीतार्थचन्द्रिका, परलोक रहस्य, चतुर्दश लोक रहस्य, सती चरित्र चन्द्रिका, नित्यकर्म चन्द्रिका, सदाचार सोपान, कन्याशिक्षा सोपान, ब्रह्मचर्य सोपान, राजशिक्षा सोपान, साधन सोपान, धर्मप्रचार सोपान, उपदेश पारिजात, स्तोत्र कुसुमांजलि, गोव्रत-तीर्थ महिमा, व्रतोत्सव चन्द्रिका, सुगम साधन चन्द्रिका, धर्मसुधाकर आदि अनेक पाठ्यग्रन्थ प्रस्तुत होकर छप चुके हैं। श्रीमती विद्यादेवी महोदयाके प्रयत्नसे अनेक धर्मग्रन्थ वाणीपुस्तक माला द्वारा प्रकाशित हुए हैं, यथा भारतधर्म समन्वय, परलोकतत्त्व, धर्मप्रवेशिका, वेदान्त चतुःसूत्री, व्रतोत्सव कौमुदी, सती सदाचार, ईशोपनिषद् हिन्दी भाष्य सहित, केनोपनिषत् हिन्दी भाष्य सहित, कठोपनिषत् हिन्दी भाष्य सहित, मारकण्डेय पुराण हिन्दी अनुवाद और टीका सहित, देवी भागवत हिन्दी अनुवाद और टीका सहित, आदर्श देवियाँ दो भागमें प्रकाशित, कर्म रहस्य, श्रीव्यास शुक सम्वाद, दुर्गासप्तशती हिन्दी अनुवाद और भाष्य सहित, धर्माधर्म प्रश्नोत्तरी, सदाचार प्रश्नोत्तरी तीर्थ देवपूजन प्रश्नोत्तरी, महिला प्रश्नोत्तरी, परलोक प्रश्नोत्तरी, पूजा और प्रार्थना, हिन्दूधर्मका स्वरूप, भक्तितत्त्व आदि अनेक छोटे बड़े ग्रन्थ प्रकाशित हो कर हिन्दूधर्मकी सेवा और राष्ट्रभाषा हिन्दीकी पुष्टि कर रहे हैं। श्रीभारतधर्म महामण्डलकी मन्त्रिसभाका यह उदार और सर्वजनहितकारी विचार है कि जो जो ग्रन्थ किसी धर्मप्रतिष्ठान विशेषको नहीं दिया गया है, वह सब ग्रन्थसमूह अथवा उनमेंसे किसी ग्रन्थको यदि कोई धर्मप्रतिष्ठान या पुस्तकप्रकाशनप्रतिष्ठान छापना चाहे तो उनके पत्र भेजने पर श्रीमहामण्डल मन्त्रीसभा उनको छापमेके लिए उनको अधिकार दे देगी। क्योंकि इस अलौकिक धर्मग्रन्थ प्रकाशन में किसीका व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं है।

राजनीतिक और धार्मिक नेताओंको चेतावनी।

इस समयकी नवीन और प्राचीन सब विद्वन्मण्डली एक वाक्य होकर इस सिद्धान्त पर पहुँची है कि भारतवर्ष अर्थात् भूमण्डल भरमें भारत द्वीप हिन्दुस्तान सबसे प्राचीन देश है और इसके अग्रजन्मा ब्राह्मणगण पृथ्वीके आदिगुरु हैं। यह तो पाश्चात्य विद्वान् भी स्वीकार करते हैं कि धार्मिकतत्त्व के अनुसंधानमें भारतखण्ड ही जगद्गुरु है। ईश्वरतत्त्वके प्रचार करनेमें भारतखण्डके ग्रन्थही सर्वोपरि है भारतकी सभ्यता और शिक्षा जगद्गुरु पदवीके योग्य है। भारतके दर्शन सर्वादि और सर्वोपरि हैं। क्रमि विज्ञान (जर्मथ्योरी) को भारतवासी पहलेसे ही जानते थे। संस्कृत भाषाकी पूर्णता, संस्कृत व्याकरणकी पूर्णता, देवनागरी अक्षरोंकी पूर्णता, अङ्कशास्त्र, रेखागणित, ज्यामिति, बीजगणित, गणित ज्योतिष, फलित ज्योतिष, चिकित्सा शास्त्र, मन्त्र शास्त्र, संगीत शास्त्र, काव्य, चित्रकला, लेखन कला, आदि मनुष्यको मनुष्य बनाने वाली विद्या कलाओंका आविष्कार भारतखण्डमें ही हुआ था और उसके आविष्कर्त्ता भारतवासी ही थे। इसी तरह स्थापत्य शिल्प, तन्तुवाय शिल्प, कागज निर्माणका शिल्प, लोहा, सोना आदि धातुओंके व्यवहारका शिल्प, युद्धके जहाज आदि बनानेका शिल्प, सीने पिरोने और कसीदा काढ़नेका शिल्प, पाक शिल्प, वनस्पतियोंके व्यवहारक शिल्प, पारेके उपयोग आदिका शिल्प आदिके आविष्कर्त्ताभी भारतवासी ही थे। युद्धविद्याके साथ मन्त्र शास्त्रका जो सम्बन्ध था, वह विषय तो अब किसीकी

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समझमें ही नहीं आता। किसी कला, विद्या या शिल्प का आविष्कार करना और बात है, तथा उसमें न्यूनाधिक कर उपयोग और उन्नति करना और बात। आज जो शिल्प या विज्ञानका उत्कर्ष देख पड़ता है, उसके मूल आविष्कर्त्ता भारतवासी थे और इसीसे उनका महत्त्व अधिक है। इस समय शिल्प और विज्ञान आदि विषयोंमें जो नवीन संस्कार देखनेमें आते हैं, उन सब विषयोंके आदिगुरु कौन थे इस पर बहुत कम लोग विचार करते हैं। पूर्वजों पर श्रद्धा हुए विना और आर्यजातिकी प्राचीन संस्कृतिका अनुकरण किये विना हिन्दू जातिका कल्याण नहीं हो सकता।

हिन्दुजातिकी इस रोगग्रस्त और मृतप्राय अवस्था में भी निष्ठावान् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने नित्य संकल्पमें जिस प्रकार देश और कालके स्वरूपको अपने हृत्पटलमें प्रकाशित करनेके लिये देश और कालका चित्र अंकित करते हैं उस पर भी आजकल कोई दृष्टि नहीं डालता, यह खेदका विषय है। देशके विषयमें हमारे वेद और शास्त्र यह स्पष्ट रूपसे आज्ञा देते हैं कि हमारा ब्रह्माण्डरूपी देश चौदह भुवनोंमें विभक्त है। उनके नाम इस प्रकार हैं—भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक ये ऊपरके लोक हैं। ऊपरके लोकोंमें, देवता निवास करते हैं और नीचेके लोकोंमें असुर। हिन्दुशास्त्रमें पिण्ड तीन प्रकारके माने गये हैं—उद्भिज्जादि जीवोंके सहज पिण्ड, मनुष्योंके मानव पिण्ड और देवोंके देवपिण्ड। देवता और असुर दोनों परस्पर विरोधी होने पर भी दोनों देवपिण्डधारी हैं और भूत प्रेतादि देवपिण्डके ही अन्तर्गत माने गये हैं। इन चौदह भुवनोंमेंसे भूर्लोक हमारा भुवन है। इस कारण भूर्लोक साधारणतः पृथ्वीको भी कहते हैं। भूर्लोक सात द्वीपोंमें विभक्त है। प्रत्येक द्वीप एक दूसरे से बड़ा है और उनके चारों ओर वातावरणरूपी समुद्र विद्यमान हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—लवण समुद्र, इक्षु समुद्र, सुरा समुद्र, घृत समुद्र, दधि समुद्र, दुग्ध समुद्र और जल समुद्र। प्रत्येक वातावरणके अनुसार ये नामकरण किये गये हैं। उक्त सातों द्वीपोंमेंसे जम्बुद्वीप हमारा द्वीप है। इस जम्बुद्वीपमें सुमेरु पर्वतके चारों ओर नौ वर्ष हैं। उनमें एक तो हमारा भारतवर्ष है, शेष सब देवलोक हैं। भारतवर्षकी दक्षिण दिशामें यमलोक, नरकलोक आदि स्थित हैं। भारतवर्षके अन्तर्गत मस्तकरूपी हिन्दुस्तान है, जिसको भारतद्वीप कहते हैं। आर्यजातिके प्रतिदिनके संकल्पमें पढ़े जाने वाला जो ब्रह्माण्डका चित्र है, वह यही है। जिसकी ओर ध्यान देना भी आर्यजाति भूल गई है। इसी प्रकार नित्य संकल्पमें जो कालका वर्णन आता है, वह इस प्रकार है—मनुष्यके चार लाख बत्तीस हजार वर्षोंका कलियुग होता है। कलियुगके द्विगुण वर्षोंका द्वापर, त्रिगुण वर्षोंका त्रेता और चतुर्गुण वर्षोंका कृतयुग होता है। इस प्रकार ४३२०००० वर्षोंका एक महायुग होता है। ऐसे ७१ महायुगोंका एक मन्वन्तर होता है। प्रत्येक मन्वन्तरमें कालमापक भगवान् मनु, देवराज इन्द्र, सप्तर्षि, अर्यमादि नित्य पितृगण आदि सब बदल जाते हैं और उनके स्थानमें नवीन पदधारी आ जाते हैं। इसी प्रकार ८६४०००००० मानव वर्षोंका एक कल्प अर्थात् भगवान् ब्रह्माका एक अहोरात्र होता है। हर एक कल्पका, और हर एक मन्वन्तरके अलग अलग नाम हैं, जिनका नित्यके संकल्पमें उल्लेख किया जाता है। हमारे पुराण शास्त्रमें प्रत्येक मन्वन्तरके देवसंघ, ऋषिसंघ और पितृसंघके नाम तो दिये ही गये हैं, किन्तु उनके जीवनवृत्तान्त भी संक्षेपमें दिये गये हैं। यह वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। इससे पहले जो मन्वन्तर हो गये, उनके पदधारियोंका नामोल्लेख तो पुराण शास्त्रमें हुआ ही है, किन्तु भविष्यमें जो पदधारी होंगे, उनके नामभी दिये गये हैं। शास्त्रादि कैसे प्रकाशित होते हैं, ब्रह्माण्डके देशोंका कैसे पता चलता है और कालका कैसे विचार किया जाता है, इसका ज्ञान योगशास्त्रसे होता है और योगशास्त्रकी सहायता से साधक कैसे इन सब कार्योंमें सफल होता है, इसके संक्षिप्त वर्णनका वैदिक योगदर्शन आदिसे अब भी पता लगता है। इन सब चम-

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्कारोंकी ओर आजकलकी विद्वन्मण्डलीको ध्यान देने का भी अवकाश नहीं है।

इस घोर समयमें इन्द्रजालके खेलके समान साइन्सके चार्काचक्यसे चकाचौंधमें आकर, अपने पूर्वजोंके महत्त्वको भूलकर अपने गोत्र और प्रवरोंकी महिमा भुलाकर, अपने नित्य संकल्पमें प्रतिदिन रचे हुए देश और कालकी ओरसे आँखें मूँदकर, थोड़ासा नवीन भूगोल पढ़कर ब्रह्माण्डका जो पता लगाना चाहते हैं, विमान और राकेटकी सहायतासे लोक लोकान्तरको देखनेका साहस करते हैं, योगयुक्त बुद्धिसे हमारे पूर्वजोंने जो आविष्कार किये हैं, उनको बिना समझे उनकी निन्दा करते हैं और मनमाने हमारी प्राचीन आर्यसंस्कृतिको भ्रष्ट करना चाहते हैं, त्रिलोकपवित्रकारी सतीत्वधर्मको ढकोसला समझ कर नष्ट करना चाहते हैं, और आदि सृष्टिसे लेकर अब तक आर्यजातिमें जो शुद्ध रजोवीर्यका प्रवाह चला आ रहा है, जिससे आर्यजाति जीवित है और जीवित रहेगी, उसको नाश करके वर्णसंकर प्रजाकी सृष्टि करना चाहते हैं, यह कितना बड़ा प्रमाद और पाप कार्य है, इसकी ओर बुद्धिमान् और विद्वान् सज्जनोंकी दृष्टि आकृष्ट होनी चाहिये।

वर्त्तमान समयके हमारे राजनीतिक नेतृवृन्दोंसे सविनय निवेदन है कि वे अपनी कार्य-प्रणालीमेंसे आर्यसंस्कृतिको नष्ट करनेवाली बातें हटा दें। इस समयकी राजनीतिका पूर्वापर विचार करनेसे दूरदर्शी विद्वज्जन यह अवश्य मानेंगे कि भारतखण्डमें एकाकारका प्रचलन होना असंभव है। जहाँ करोड़ों वर्षोंसे दर्शनशास्त्रका महत्त्व और अधिकारभेदका गौरव चला आ रहा है, जहाँका देश, काल और इतिहास हाथ उठाकर साक्षी दे रहा है, वहाँ एकाकारका प्रचलन होना संभव नहीं है। कम्युनिज्म और सोशलिज्मका स्थान भारतखण्ड नहीं है। यहाँ इस समय विशुद्ध डिमाक्रसी जिसका नमूना अब भी इङ्गलैंड और अमेरिकामें मिलता है, ऐसे लोकतन्त्रको चलानेका यहाँ प्रयत्न होना चाहिये। हिन्दूजातिके उदार विचारके अनुसार नवीन गवर्नमेंट अर्थनीति और कामनीतिमें चाहे जैसा प्रोत्साहन कर सकती है, परन्तु धर्मनीतिमें दृढ़ रहकर इसे छोटे से छोटे धर्ममें भी हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। इस सिद्धान्तको यदि वे अपने दृष्टिकोणमें रक्खेंगे, तो हिन्दूजाति उनका साथ देनेमें आनाकानी नहीं करेगी और उन्हें देवलोकसे भी सहायता मिलती रहेगी। सनातनधर्मी नेतृवृन्दसे निवेदन है कि वे दूसरोंकी नकल न करें। सब एकमत होकर ग्रामसंघटन, ब्राह्मणजातिकी उन्नति और महत्त्वस्थापन तथा घरके बालक बालिकाओंको बाल्यावस्थासे ही धार्मिक शिक्षा देनेकी व्यवस्था करें। श्रीभारतधर्ममहामण्डल उन्हें सब तरहसे सहायता देनेको प्रस्तुत है।

सनातनधर्मी हिन्दूजातिके वर्तमान समयके नेतृवृन्दसे विनीत निवेदन यह है कि वे सदा अपने अन्तःकरणमें विचारा करें और स्थिर लक्ष्य रक्खें कि इन्द्रियासक्त पृथ्वीकी अन्य मनुष्य जातियोंका ध्येय अर्थ, काम और इन्द्रियभोग है और आध्यात्मिक उन्नतिशील सनातनधर्मियों का लक्ष्य धर्म और मोक्ष है। इस कारण उसकी शारीरिक, वाचनिक, मानसिक और बौद्धिक सब क्रियाओंमें सर्वव्यापक धर्मका लक्ष्य सदा बना रहता है। इसकी रजोवीर्यशुद्धिमूलक वर्णाश्रम शृङ्खला कोटि कोटि वर्षोंसे जीवित है और जीवित रहेगी। इसकी आर्यसंस्कृति अपरिवर्तनीय है। अधिकारभेदके अनुसार शास्त्रोक्त नियमोंके आधार पर पुरुषार्थ करने पर उसकी विफलताकी सम्भावना नहीं है। आर्यसंस्कृति सत्य पर प्रतिष्ठित है और महाशक्तिशाली दैवीराज्यके पदधारियों द्वारा सुरक्षित है। इस कारण अधिकसे अधिक विपत्ति आने पर भी अन्तमें उसकी जय होना निश्चित है। इस अकाट्य सिद्धान्तको सदा अन्तःकरणमें रखकर और कुसंगके प्रभावसे बचे रहकर निरलस भावसे वेद और शास्त्रोंमें विश्वास रखते हुये वृद्धोंके परामर्शके अनुसार सत्पुरुषार्थ करते रहें। वर्तमान समयके राजनीतिक नेतृवृन्दके साथ सहयोग कर और उसको धर्मविरुद्ध कार्योंसे सदा रोकते हुये शक्तिशाली बनानेका यत्न करते रहना चाहिए। जब उधरसे कोई

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपने धर्म पर आक्रमण हो, तो समवेत शक्तिसे उसमें बाधा देनी चाहिए। जिस प्रकार स्नेहमय माता-पिता अज्ञान बालकको ठीक रास्ते पर चलानेके लिए प्रेमके साथ उनके असत् कार्योंके रोकनेका प्रयत्न करते हैं; परन्तु उनसे द्वेष नहीं करते, उसी प्रकार हिन्दु-जातिके नेताओंको चाहिए कि वे जब कभी धर्मनाश-का कोई अवसर आवे, तो सावधानतासे उन्हें उनका कर्त्तव्य सुझावें और उनके प्रति द्वेषबुद्धि न आने दें। जिस जिस कार्यक्षेत्रमें राजनीतिक नेतृवृन्दका पुरुषाथ प्रारम्भ हो, उसके सहयोगी बनकर अपने धर्मानुकूल पुरुषार्थ किया जाय। ग्रामसंगठनके द्वारा और ग्रामसुधारके द्वारा जनपद (जिला) सुधार हो सकता है। जिलोंके संघटन द्वारा प्रान्तका और प्रान्तोंके संघटन द्वारा देशका सुधार हो सकता है। अतः वर्तमान समयमें राजनीतिक बह्वारम्भकी नकल न कर ऐसे ठोस कार्य आरम्भ करने चाहिए, जिससे देश और जातिका स्थायी उपकार हो। प्रत्येक जिलेमें कमसे कम एक दो धर्मवक्ता और धर्मसेवक नियुक्त रहें और सुसंगठित धर्मसभायें काम करें। उक्त जनपदकी धर्मसभा, धर्मवक्ताका यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वे अपने ढंग पर प्रत्येक समृद्धिशाली ग्राममें प्राचीन ढंगकी पंचायतोंको सदुपदेश देकर उनमें जीवनी शक्तिका संचार करें और जहाँ पंचायत न हो, वहाँ नई स्थापित करें। यदि गवर्नमेंटकी ओरसे पंचायत कायम हो तो उससे सहयोग करें। यही ग्रामपंचायत अपने ग्रामको और निकटके कसबोंको और छोटे छोटे ग्रामोंको एक सूत्रमें बाँधकर शक्तिशाली बनानेका प्रयत्न करे। प्रत्येक ग्राममें पंचायत शक्ति द्वारा स्थानीय स्कूल, संस्कृतपाठशाला आदिको कार्यकारी बनावें और जहाँ पाठशाला न हो वहाँ नई खोले। उनमें धार्मिक शिक्षाविस्तारके लिये विशेषरूपसे पुरुषार्थ करें। जो विभिन्न जातियों की पंचायतें हों, उनको भी सहयोगके द्वारा कार्यकारी बनावें। घरमें बैठकर गृहशिल्प द्वारा जो जो कार्य हो सकें, उनका विचार कर गृहशिल्पका विस्तार करें। शुद्ध विचार द्वारा ग्रामकी शुद्धता बनायी रखी जा सकती है, इस ओर ग्राम पंचायतें और जाति पंचायतों अवश्य ध्यान दें। आजकल एक नये प्रमादकी सृष्टि हुई है कि, सबका जीवनस्तर ऊँचा कर सबको समान बनाया जाय। ऐसे प्रमादग्रस्त लोगोंका विचार है, कि सबकी रहन-सहन, खान-पान बैठना-उठना एक तरहका हो। इस प्रमादके फंदेमें आर्यजातिको नहीं पड़ना चाहिए। क्योंकि आर्यजाति का अनादिकालसे सिद्धान्त है कि, विषयसुखसे मुँह फेरकर सादा जीवन बनाना और उच्च विचार करना। आर्यजातिके अग्रजन्मा ब्राह्मणगण अयाचित वृत्तिसे अपना जीवन निर्वाह करते थे और जगत्की आध्यात्मिक उन्नतिके लिए ही नहीं, किन्तु सब प्रकारकी उन्नतिके लिये शास्त्रादि प्रणयन करके अपनेको कृतकृत्य समझते थे। धनसंग्रह करके धनी बनना वे पाप कार्य समझते थे। धनसंग्रहके लिये वैश्य जातिका ही अधिकार था। अतः इसी आदर्शको यथा संभव चलानेके लिये धर्मसभा, धर्मवक्ता और धर्मसेवकों का प्रबन्ध होना चाहिये। जो ब्राह्मण सदाचारी न हो और गायत्री भी न जानता हो, उसका तिरस्कार करना चाहिये और सदाचारी ब्राह्मणोंको पुरस्कृत करना चाहिये। जो ब्राह्मण धनलोलुप न हों, विद्यानुरागी हों, सदाचारी हों और विद्यादानमें निरत हों, उन्हींको दान देनेका परामर्श ग्रामपंचायतोंको देना चाहिये।

आर्य नारियोंकी पवित्रता और मर्यादाका विचार तथा उनको धर्मानुकूल शिक्षा देनेका विचार ग्राम-पंचायतों और धर्मसभाओंको सदा रखना चाहिये। बालक बालिकाओंको बाल्यावस्थासे ही धार्मिक शिक्षा देनेका प्रबन्ध करना चाहिये और यत्न करना चाहिये कि प्रत्येक गृहस्थ अपने बालक और बालिकाओंको बाल्यावस्थासे ही धर्मशिक्षा देनेका प्रबन्ध करें। इस शुभ कार्यके लिये यथायोग्य परामर्श और पाठ्य-पुस्तक आदिकी सहायता श्रीभारतधर्ममहामण्डल प्रधान कार्यालय काशीसे मिल सकती है। हिन्दुजाति के पतनका सबसे बड़ा कारण यह हुआ है कि वेद और शास्त्रके अनुसार पञ्चमहायज्ञ साधनके लिये प्रत्येक

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सद्गृहस्थको जो दृढ़ आज्ञा है, उसकी ओर बहुतोंका ध्यान नहीं है। अतः प्रत्येक धर्मवक्ता, धर्मसेवक, तथा धार्मिक प्रतिष्ठानका यह उचित कर्तव्य है कि कमसे कम नित्य तर्पणरूपसे पञ्चमहायज्ञका पुनः प्रचार हो। इसके लिये पुस्तिकाकी सहायता महामण्डल प्रधान कार्यालयसे हो सकती है। हिन्दुजाति की जातीयता रक्षाके लिये वेद शास्त्रोक्त संस्कारोंका यथासमय ठीक ठीक होना परम आवश्यक है। इस कारण हिन्दुनेतृवृन्दोंका और संस्थाओंका यह कर्तव्य होनां उचित है कि वे संस्कारोंका पुनः प्रचार करनेके लिये सर्वथा प्रयत्न करें। ग्राम्यपुरोहितोंकी दशा इस समय बहुत ही शोचनीय है। इस कारण यथावश्यक पुस्तक आदिकी सहायता देकर उनको कार्यक्षम बनाने का प्रयत्न होना चाहिये।

हिन्दूजातिकी इतिहास लिखनेकी शैली।

हिन्दूजातिके अतिरिक्त पृथ्वीकी अन्य जातियोंकी जो इतिहास लिखनेकी शैली है उसमें तथा हिन्दू जातिकी जो इतिहास लिखनेकी शैली है इनमें रातदिनकासा अन्तर है। पृथ्वीकी अन्य जातियोंमें एक थोड़ेसे देश और एक थोड़ेसे काल और थोड़ेसे राजाओंकी लौकिक जीवनी और उनके समयके कुछ लौकिक गाथाओंको लिख देनेसे ही उनके इतिहास लिखनेकी चरितार्थता हो जाती है। प्राचीन हिन्दूगण पहले योग आदि द्वारा मनको समाहित किया करते थे, तब ग्रन्थका प्रणयन किया करते थे। इस कारण पुराण और इतिहास लिखते समय वे हमारा ब्रह्माण्ड जो अनेक लोकान्तरोंमें बँटा हुआ है उसको देशरूप मानकर और सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुगके समूहको महायुग मानकर और इकहत्तर ऐसे महायुगोंका मन्वन्तर मानकर इस प्रकारके विस्तृत कालको अपने दृष्टिकोणमें रखकर ऐसे महान् चतुर्दश भुवनमय देश और युगयुगान्तर और मन्वन्तर मन्वन्तरान्तरमय देशकालको सामने रखकर उसमेंसे कुछ ऐसी घटनाओंको लिपिबद्ध करते थे जो मनुष्य जातिके चरित्रगठन, आध्यात्मिक उन्नति, आधिदैविक उन्नति, आधिभौतिक उन्नति आदिमें विशेषरूपसे सहायता कर सकें। बुधजन थोड़े ही विचारसे समझ सकेंगे कि जिस हिन्दूजातिके पूज्यपाद ऋषिमुनियोंके देश और कालकी दृष्टि इतनी महान् थी कि, उनके लिये दोसौ चारसौ वर्षकी लौकिकगाथाओंको लिखनेसे उनको कैसे तृप्ति हो सकती थी। इस कारण आजकलके ऐतिहासिक अनुसन्धानकारी विद्वज्जनोंको इन्हीं सिद्धान्तों को सामने रखकर ऐतिहासिक तत्त्वों पर गवेषणा करनी चाहिये।

पुराण शास्त्र तथा महाभारत जैसे इतिहास ग्रन्थों में जो ऐतिहासिक गाथायें और वंशवर्णन आता है और वंशके विस्तारका इतिहास आता है, उन सबके समझने और समझानेके लिये पुराणपाठक और पुराणवक्ताको समाधिभाषा, परकीयभाषा और लौकिकभाषा तथा आध्यात्मिक वर्णन, आधिदैविक वर्णन और आधिभौतिक वर्णन इन छहो विषयों और सिद्धान्तोंका जैसे प्रतिमुहूर्त्त विचार रखना चाहिये, उसी प्रकार यह भी अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि पौराणिक गाथाओं और इतिहासोंमें दैवीसृष्टि और मानवी सृष्टि इन दोनोंका मिलाजुला वर्णन आया करता है। इसका प्रधान कारण यह है कि वैदिक विज्ञानके अनुसार दैवी जगत् मुख्य है और यह स्थूल

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मृत्युलोक गौण है। दैवी जगत्के आश्रयसे ही इस मृत्युलोकके सब काम चलते हैं। वस्तुतः सनातनधर्मावलम्बियोंके सब कार्य और सब चिन्ताप्रणालियाँ दैवी जगत्को मुख्य मानकर चलायी जाती हैं। यहाँ तक कि वर्णाश्रमधर्मी हिन्दू प्रजाका चलना, फिरना, उठना, बैठना, सोचना, समझना, उनकी शारीरिक क्रिया, मानसिक क्रिया और बौद्धिक क्रिया जो कुछ होती है वह दैवी जगत्को मुख्य समझकर ही होती है। यही कारण है कि पृथ्वीकी अन्य शिक्षित जातियाँ सनातनधर्मके आचार-व्यवहार और चिन्ताप्रणालीको ठीक समझ नहीं सकतीं और उनको असम्बद्ध तथा मिथ्या समझा करती हैं। दूसरी ओर पुराणोंकी गाथाओंके समझनेमें बड़ी भारी कठिनता इसलिये रहा करती है कि इस मृत्युलोककी इस कल्पकी अथवा कल्पान्तरकी गाथा और इतिहासवर्णनके साथ ही साथ वेद और पुराणोंमें मृत्युलोक और देवलोक दोनोंके चरित्रोंका परस्पर सम्बन्धयुक्त गुम्फित वर्णन आया करता है। इसमें भी आधिभौतिक दृष्टिसम्पन्न जनगण विमोहित हुआ करते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि त्रिकालदर्शी पूज्यपाद महर्षियोंकी समाधिसुलभ ज्ञानदृष्टिके सम्मुख सूक्ष्म देवलोक और स्थूल मृत्युलोक दोनों एक साथही दिखायी दिया करते हैं। जैसे हम अपने घरमें बैठकर घरके आकाशको और घरके बाहरके आकाशको एक दृष्टिसे देख सकते हैं, वैसे ही वे स्थूल मृत्युलोक और उसके आधार सूक्ष्म दैवीलोकको समदृष्टिसे देखनेमें समर्थ हुआ करते थे।

शंकासमाधानरूपसे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं। क्षत्रियोंके सूर्यवंश अथवा चन्द्रवंशका वर्णन जब शास्त्रमें आवेगा और उसके साथ मिलाजुला पृथिवीके इस मृत्युलोकके लौकिक राजवंशोंका वर्णन आवेगा तो समझना चाहिये कि उस वंशके ऊपरके कुछ लोगोंके नाम देवलोकके राजाओंके हैं और पीछेके नाम मनुष्यलोकके राजाओंके है। सूर्यवंशमें सूर्य आदि देवपिण्डधारी हैं। दशरथ आदि मानवपिण्डधारी हैं। उसीके अनुसार ही सृष्टिमें नाना प्रकारकी विचित्रता भी रहेगी। अतः पूर्वकथित सिद्धान्तोंके साथ ही साथ इस सिद्धान्त को भी ध्यानमें रखना उचित है। दूसरा रहस्य यह है कि भूः, भुवः, स्वः इन्हीं त्रिलोकके समष्टिकर्मके तारतम्य और समष्टि जीवके प्रारब्धके अनुसार समय समय पर मृत्युलोकके साथ देवलोकका प्रत्यक्षमें कभी घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है और कभी विच्छिन्न हो जाता है। पुराणों और इतिहासोंके वर्णनसे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि द्वापर युगके अन्त तक, यहाँतक कि सम्राट् जनमेजय आदिके समय तक सूक्ष्म दैवीराज्यका स्थूल मृत्युलोकके साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध कुछ न कुछ बना था। द्वापर और उसके पहिले युगोंमें तो परस्परके विशिष्ट व्यक्तियोंका आना जाना भी हुआ करता था। यद्यपि जड़वादी स्थूलदर्शी व्यक्तिगण इस प्रकारके दैवी और मानुषी व्यक्तियोंके परस्पर सम्बन्ध, मानवपिण्ड और देवपिण्डधारी जीवोंकी घनिष्टता, मानवपिण्डधारी जीवोंमें विशेष विशेष कालमें विशेष विशेष दैवी शक्तियोंके आविर्भावकी सम्भावना और स्थूल मृत्युलोकमें कैसे देवतागण आकर कार्य करते हैं, अथवा सूक्ष्मलोकमें कैसे स्थूल देहधारी मनुष्यगण पहुँच सकते हैं, इत्यादि रहस्योंको विना शास्त्रज्ञान प्राप्त किये समझ नहीं सकते। परन्तु अन्तर्दृष्टिसम्पन्न बुधजनका यह स्थिर सिद्धान्त है, जो वेद और शास्त्रसे भी सिद्ध है कि कालप्रभाव से दैवीजगत् और मनुष्य जगत्का परस्पर सम्बन्ध समय समय पर घट जाता है और समय समय पर बढ़ भी जाता है। त्रिकालदर्शी महर्षियोंने अपने समयमें जैसा अनुभव किया था वैसा ही उन्होंने नाना पुराणों और इतिहासोंमें सार्वजनिक लोकशिक्षाके निमित्त दैवीचरित्र और मानुषीचरित्र दोनोंको बिना अलग अलग किये एक साथ ही वर्णन किया है।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भगवान् आदिशंकराचार्यके आविर्भावका समय।

आजकल भगवान् आदि शंकराचार्य प्रभुके आविर्भावके समयके सम्बन्धमें इतिहासके संशोधक विद्वानोंमें बहुत मतभेद देख पड़ता है और वाद-विवाद चलता रहता है। इस विषयमें द्वारकाके शारदापीठाधीश्वर पूज्यपाद श्रीशंकराचार्य राजराजेश्वराश्रम महाराज (संवत् १९३५–१९५६) ने विमर्श नामक एक संस्कृत पुस्तिका लिखी है, उसमें भगवान् शंकराचार्यके जीवनके कार्योंका तिथिक्रम अनेक विश्वसनीय प्रमाणोंसे दिया गया है। उसीमेंसे संक्षिप्त रूपसे यहाँ तिथिक्रम दिया जाता है। आजकल विक्रम संवत् २००५ है। विक्रम संवत्से पहले इस देशमें युधिष्ठिर संवत् चलता था और ३०५० वर्ष तक चलता रहा। इस तिथिक्रममें युधिष्ठिर संवत्का ही उपयोग किया गया है।

यु० सं० २६३१ वैशाख शुक्ल ५ को भगवान् शंकराचार्यका आविर्भाव हुआ।

२६३६ चैत्र शुक्ल ६ को उपनयन हुआ।

२६३९ कार्तिक शुक्ल ११ को संन्यासग्रहण किया। २६४० फाल्गुन शुक्ल २ से २६४२ तक प्रभु गोविन्द गौडपादसे उपदेश ग्रहण, बादरायणके साथ काशीमें ब्रह्मविद्याका प्रचार और सनन्दन (पद्मपाद) से मिलना।

२६४७ मार्गशीर्ष वदी ३ को मण्डनमिश्रसे विवाद आरम्भ।

२६४७ चैत्र शुक्ल ४ को मण्डनकी हार।

२६४७ चैत्र शुक्ल ६ को मंडनकी पत्नी सरस्वतीसे शास्त्रार्थ।

२६४७ चैत्रबदी ८ को अमरकराजाके देहमें योगशक्ति द्वारा प्रवेश।

२६४८ कार्तिक शुक्ल १३ को पुनः अपनी देहमें लौट आना।

२६४८ कार्तिक वदी १ को सरस्वतीकी हार।

२६४८ कार्तिक वदी १ को द्वारकामें आकर चिंतामणि मंत्रके प्रभावसे ब्रह्मलोकमें जाती हुई सरस्वतीको रोक लेना।

२६४८ कार्तिक वदी ५ को द्वारकामें सरस्वतीकी स्थापना (सरस्वतीकी स्थापनासेही वहाँका मठ 'शारदा मठ' कहाता है) २६४८ कार्तिक वदी १३ से माघ सुदी १० तक शारदा मठकी रचना, बौद्धोंका पराजय, भद्रकालके रूपमें भगवदालय वर्तमान द्वारकाधीशका मन्दिरनिर्माण, श्रीकृष्णकी प्राणप्रतिष्ठा, सिद्धेश्वर मन्दिरकी रचना और भद्रकालीयन्त्रका उद्धार।

२६४८ फागुन सुदी ९को सरस्वतीकी ७ कलाओंमेंसे एक कलाको द्वारकामें रखकर अवशिष्ट कलाओंके साथ मैसूरके शृङ्गवेरपुरमें जाना और वहाँ मठकी स्थापना कर सरस्वतीकी प्रतिष्ठा करना।

२६४९ चैत्र शुक्ल ६ को मंडनमिश्रका संन्यास ग्रहण और सुरेश्वराचार्य नाम ग्रहण।

२६४९ मार्गशीर्ष शुक्ल १० को सुधन्वा राजाका शिष्यत्वग्रहण।

२६४९ माघ वदी ७ को सुरेश्वराचार्यकी शारदापीठ पर आचार्य रूपसे स्थापना।

२६५० वैशाख शुक्ल ३ को दिग्विजयका आरंभ।

२६५३ श्रावण शुक्ल ७ को तोटकका आगमन।

२६५४ पौष शुक्ल १५ को हस्तामलकाचार्यकी शृंगेरी मठपर और तोटकाचार्यकी ज्योतिर्मठपर आचार्यरूपसे प्रतिष्ठा।

२६५५ वैशाख शुक्ल १० को दिग्विजय करते हुए

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुरुषोत्तम क्षेत्र जगन्नाथ पुरीमें जाना और वहाँ काष्ठकी प्रतिमा स्थापित करना, उस क्षेत्रकी मर्यादा बाँधना, गोवर्द्धन मठकी वहाँ स्थापना और पद्मपादाचार्य्यको आचार्य्य रूपसे प्रतिष्ठित करना।

२६५५ भाद्रपद शुक्ल १५ से २६६२ पौष वदी ३० तक दिग्विजय, बौद्ध कापालिक आदि ८६ मतवालोंका पराजय और योगकी महत्ताकी प्रसिद्धि।

२६६३ कार्तिक शुक्ल १५ को कैलाशगमन।

इस तिथिक्रममें पौर्णिमान्त नहीं, अमान्त मास व्यवहृत हुआ है, जो नर्मदाके दक्षिणके देशोंमें व्यवहृत होता है। इस तिथिक्रमसे स्पष्ट होता है कि भगवान् शंकराचार्य प्रभुका आविर्भाव विक्रम संवत्से ४१६ और ईसवी संवत्से ४७५ वर्ष पूर्व हुआ था।

उक्त 'विमर्श' नामक पुस्तिका जिन पूज्यपाद शंकराचार्य्य महाराजने लिखी है, वे परम तपस्वी असाधारण विद्वान् और प्रभावशाली महापुरुष थे। आपने बड़े परिश्रमसे यह पुस्तक लिखी है।

इतिहास संशोधक विद्वान् जो अपने अपने ढंग पर श्रीभगवान् आदि शंकराचार्य्यके आविर्भावके समयका निश्चय करते और आपसमें वादविवाद कर समय नष्ट करते हैं, उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिये। भगवान्के नाना चरित्रोंका समय यहाँ जो निश्चित किया गया है, वह भ्रमरहित और विश्वसनीय है। शंकासमाधानके लिये लिखा जा रहा है कि भगवान् शंकराचार्य अपनी योगशक्तिसे अमरकराजाके शरीरमें प्रवेश किये बिना ही सब कुछ बता सकते थे, क्योंकि योगकी संयमक्रियासे योगी लोक लोकान्तरके विषयमें और छोटे बड़े सब कार्यों के विषयमें सब कुछ जान सकता है। जिसका विस्तृत वर्णन योग दर्शनके तीसरे अध्यायमें है। ऐसे शक्तिशाली साक्षात् शंकरावतार भगवान् शंकराचार्य प्रभुको परकायाप्रवेशकी आवश्यकता ही क्या थी? ऐसी शंकाओंका समाधान बहुत सुगम है। भगवान् शंकर यदि यति शरीरको धारण करके स्त्रीशरीरमें संयम कर कामकलाका अनुसंधान करते, तो कर सकते थे, परन्तु यतिधर्मके अनुसार ऐसा करनेसे यतिकी मर्यादाके विरुद्ध कार्य होता। अतः आदर्शचरित्र भगवान्ने ऐसा न कर योगशक्तिके द्वारा एक नरपतिके शरीरमें प्रवेश करके सब जान लिया और शास्त्रार्थका नियम पालन किया।

इस मन्वन्तरमें भगवान् वेदव्यासने सप्तदर्शनोंमें अन्तिम ब्रह्ममीमांसादर्शनके सूत्र अवश्य बनाये थे, परन्तु उनको समझाने और विद्वानोंके अन्तःकरणमें इस अगम्य विषयका स्वानुभव करानेके उपयोगी कोई भाष्य उस समय उपलब्ध नहीं था। यद्यपि उस समय भाष्य अनेक थे, परन्तु कर्ममीमांसा दर्शन और वेदके उपासना मीमांसादर्शन दोनों अनुपलब्ध थे। इस कारण एकपुरुषवाद, बहुपुरुषवाद तथा सगुण-निर्गुण वाद इत्यादि गंभीर विषयोंको समझानेका दार्शनिक सुभीता न रहनेसे अनेक दार्शनिकोंको कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनों भूमियोंके अनुसार थोड़ी बहुत अद्वैतवादकी खींचातानी करनी पड़ी है। शान्तचित्त दार्शनिक प्रतिभासम्पन्न पण्डितगण यदि स्थिरचित्त होकर देखेंगे, तो पावेंगे कि सप्तदर्शनोंमें ज्ञानभूमि और तदनुसार दार्शनिकविज्ञानमें भेदप्रतीति होने पर भी सबकी गति एक आत्माकी ओर है और उसका अन्तिम अद्वैत स्वरूप वेदान्त दर्शनके अद्वैत वादको हृदयङ्गम करनेसे ही अनुभूत हो सकता है। इसी अद्वैतवादको भगवान् शंकराचार्य प्रभुने अति सरल शब्दोंमें जगत्के मंगलार्थ प्रकट करके ज्ञानमार्गका कितना उपकार किया है, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अद्वैतवादी और भक्तकी मुक्तिका स्वरूप।

अद्वैतवाद और द्वैतवाद तथा योगीमत और वैष्णवमत इनका विरोधाभास देखनेमें आता है, वह स्वाभाविक है। इस विरोधके कारण अनेक बड़े बड़े भाष्य ग्रन्थ और टीका ग्रन्थ निर्मित हुए और हो रहे हैं, परन्तु तत्त्वदर्शी महापुरुषोंके निकट यह विरोध विरोध नहीं, विरोधाभास भलेही कहा जा सकता है। सांख्यदर्शन, योगदर्शन और वेदके तीनों कांडोंके मीमांसादर्शनके धैर्यके साथ अनुशीलन करने पर यही निष्कर्ष निकलेगा कि द्वैतवाद और अद्वैतवाद दोनों सत्य हैं। प्रथम अवस्थामें द्वैतवाद और अंतिम अवस्थामें अद्वैतवादका भाव हृदयमें प्रकट होना स्वाभाविक है। प्रथम अवस्थामें साधक न तो अद्वैतवादका स्वानुभव प्राप्तही कर सकता है और न ब्रह्मसत्ताके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं, इस एक तत्वयुक्त ब्रह्मभावको समझही सकता है। इस कारण द्वैतमत सर्वसाधारणमें प्रथम अवस्थामें आदरणीय है। इसी कारण वेदोंसे लेकर सब शास्त्रोंमें निर्गुण अद्वैतमत और सगुण द्वैतमत दोनोंका वर्णन यथेष्ट पाया जाता है। शास्त्रोंमें दो अधिकारोंका वर्णन है। एकको योगमत दूसरेको वैष्णवमत कहते हैं। देवीभागवतमें इसका विस्तृत वर्णन है।

निःश्रेयस अर्थात् मुक्तिके सम्बन्धमें योगीमतका यह सिद्धान्त है कि एक अद्वितीय चिन्मय ब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति होती है और अन्तमें उसका उसीमें लय हो जाता है और जीवात्मा आकाशपतित वारिबिन्दुके समान अनादि अनन्त ब्रह्मसमुद्रमें गिरकर एकरस हो जाता है। इस प्रकारकी मुक्ति वैष्णवमतके माननेवाले नहीं मानते। उनके सिद्धान्तका निष्कर्ष यह है कि सर्वशक्तिमान् भगवान्की कृपा प्राप्त कर कृतकृत्य साधक अन्तमें सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मुक्तिको प्राप्त करता है और भेदाभेद बना रहकर ब्रह्मानन्दका अनुभव करता रहता है। अधिकारभेदसे दोनों प्रकारकी मुक्तियाँ दार्शनिक विद्वान् और बुद्धिमान् सज्जनोंके निकट माननीय हैं। इस प्रसंगमें शंकासमाधानके लिये जिन बातोंके कहनेकी आवश्यकता है, वे कही जाती हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि भगवान् निर्गुण हैं। उनकी सगुण मूर्त्ति युक्तिविरुद्ध है। इस श्रेणीकी शंकाका समाधान अतिसुगम है। जब भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, जिसे सभी लोग मानते हैं, तो यदि वे भक्तके मंगलार्थ सगुणरूप धारण करें, तो उन्हें कौन रोक सकता है? सर्वशक्तिमान भगवान् भक्तके अधिकारके अनुसार करुणामय भगवान् सगुण रूप धारण करें, तो अनायास हो सकता है। दूसरी शंका यह हो सकती है कि, एक ब्रह्माण्डके प्रलयके गर्भमें चले जाने पर ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोक आदि सभी महाप्रलयमें लीन हो जाते हैं, तो सायुज्य, सामीप्य आदि मुक्तियोंकी चरितार्थता कैसे हो सकती है? ऐसी शंकाका समाधान देवीभागवत और विष्णुभागवत दोनोंकी कृष्णलीलासे सुगम हो जाता है। नित्य वैकुण्ठ और अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक श्रीकृष्णका नित्य गोलोकधाम और नित्य महारासलीलाका परिचय भागवतोंमें अच्छी तरह मिलता है। अन्य पुराणोंमें भी मिलता है और देवीभागवतमें तो एक गाथा ही प्रसिद्ध है कि जिसमें इसी ब्रह्माण्डके ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवतागण कृष्णदर्शनके लिये गोलोकमें गये थे, उस समय वहाँके थोड़े समयमें ही जिस ब्रह्माण्डके ये देवता थे, वह ब्रह्माण्ड ही प्रलयके गर्भमें चला गया था। तब भगवान् श्रीकृष्णने कहा कि, आप लोग यहीं रह जाइए। इस अलौकिक महारासलीलासे ही उक्त शंकाका समाधान हो जाता है।

जहाँ सगुणत्व है, वहाँ सगुणत्वके वैभवोंका भी

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लोप नहीं हो सकता। इस कारण इस प्रकारकी सालोक्यादि मुक्तिमें विघ्नोंकी भी सम्भावना है। जैसे कि श्रीभगवानके द्वारपाल जय और विजयका गोलोक से पतन होना और हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु, रावण-कुम्भकर्ण और वक्रदन्त-शिशुपालके रूपमें जन्म ग्रहण कर फिर गोलोकमें पहुँचना इसका ज्वलन्त उदाहरण है। वैदिक सप्तदर्शनोंका यथाक्रम अनुशीलन करने वाले बुधजन इन दोनों अवस्थाओंके रहस्यको अच्छी तरह समझ सकते हैं और उनके चित्तमें इस प्रकारकी शंकाओंका अवसर नहीं रह सकता।

—०✱०—

हिन्दूप्रजाका स्थिर विश्वास।

सनातनधर्मी प्रजाका स्थिर विश्वास वेद और शास्त्रपर है। उनका अटल विश्वास है कि शास्त्रीय-सिद्धान्तसमूह अलंघनीय है। शास्त्रके तीन भाषा और शास्त्रके तीन भाव तथा दैवी जगत्की शृङ्खलासे जो अपरिचित हैं वे अज्ञानके कारण चाहे कुछ भी समझें, परन्तु जब वे इन सब रहस्योंको समझ जायेंगे तो उनका विचार परिवर्तित हो जायगा। उनका यह भी विश्वास है कि हिन्दूधर्म पर और हिन्दूसंस्कृति पर चाहे कोई भी कुठाराघात करे, परन्तु हिन्दूधर्मकी व्यवस्था सत्य पर प्रतिष्ठित होनेके कारण अन्तमें वह विरुद्ध शक्ति अवश्यही परास्त हो जायगी। आर्यजाति महान् और प्रबल दैवीराज्य द्वारा सुरक्षित है। इसकी वर्णाश्रमशृङ्खलाके साथ दैवीराज्यका पारस्परिक नित्य संबंध है। आर्यधर्म सत्यपर प्रतिष्ठित है और जगत्मंगलकारी है। आर्यप्रजा कितनी ही दुर्बल और मलिन क्यों न हो जाय, परन्तु उसका आश्रय अतिबलशाली है। वेद और शास्त्र यह सिद्ध करते हैं कि सृष्टिकर्ता भगवान् ब्रह्माजीका अहोरात्र एक कल्प कहाता है जो ८६४००००००० मानववर्षोंका होता है। १४ मन्वन्तरोंका एक कल्प होता है। प्रत्येक मन्वन्तर ३०६७२०००० वर्षोंका होता है। प्रत्येक मन्वन्तरमें दैवीराज्यकी पूरी शृङ्खला बदल जाती है और प्रत्येक दैवीपदधारीकी जगह पर नये पदधारी अर्थात् वसुगण, रुद्रगण, आदित्यगण, देवराज इन्द्र, कालराज मनु इत्यादि सब बदल जाते हैं। ऐसा मन्वन्तर ७१ महायुगोंका होता है। प्रत्येक महायुग सत्ययुग त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग इन चारों युगोंको मिलकर कहलाता है जो ४३२०००० मानववर्षोंका होता है जिसमेंसे कलियुग ४३२००० वर्षोंका होता है। अब केवल कलियुगके ५०४८ वर्ष बीते हैं। शास्त्र कहता है कि कलियुगके अन्तमें भगवान् कल्कि अवतारका ब्राह्मणके कुलमें आविर्भाव होगा। अर्थात् उस समय तक भी वर्णाश्रमधर्म रहेगा। दैव बल सबसे बड़ा है और दैवी जगत्को माननेवाली आर्यजाति अपनेको दैवाधीन समझकर स्थिर और निश्चिन्त रहेगी।

—:०:—

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आर्यसंस्कृतिका विशेषत्व।

आर्य संस्कृतिके विशेषत्व और महत्त्वके विषयमें अन्यान्य शीर्षकोंमें कई लेख प्रकाशित हो चुके हैं। अब गर्भाधानसे लेकर शरीरान्त पर्यन्त आर्य-जातिके आचारोंके विशेषत्व और महत्त्वके सम्बन्ध-में प्रकाश डाला जा रहा है। साथ ही साथ लोक कल्याण बुद्धिसे तुलनात्मक गवेषणा की जायगी। आर्य जातिमें विवाह संस्कार सबसे बड़ा शास्त्रीय संस्कार है। जिस संस्कारका सम्बन्ध केवल इसी लोक तक नहीं, किन्तु लोक लोकान्तर तक माना गया है। पृथ्वीकी अन्य सभ्य जातियों और विभिन्न धर्मा-वलम्बियोंमें विवाह एक स्थायी संस्कार नहीं है और न उसका सम्बन्ध शरीरान्तके उपरान्त माना ही गया है। उनमें इन्द्रियसुखकी चरितार्थता और इस जन्ममें सामयिक सुख प्राप्तिके अतिरिक्त और कुछ अधिक नहीं माना गया है। उनके यहां विवाहवि-च्छेद साधारण सी बात है; किन्तु आर्य संस्कृतिमें विवाह विच्छेद हो ही नहीं सकता। यही कारण है कि, आर्य जातिने विधवाका विवाह होना अशा-स्त्रीय माना है। छोटी जातियोंमें विधवाविवाह प्रचलित है; परन्तु वह विवाह नहीं, नाता कहाता है। द्विजोंमे तो विधवा विवाह अधर्म समझा जाता है। क्योंकि विधवा विवाहका संस्कार प्रचलित होने पर त्रिलोक पवित्रकारी सती धर्म पर आघात पहुँचता है। आर्य जातिमें विवाह संस्कारका सबसे बड़ा यह उद्देश्य रक्खा गया है कि, विवाह परलोक-गामी पितरोंके आवागमन चक्रमें श्राद्धादिसे सन्तति सहायता करे और यही कारण है कि, इसी सिद्धान्तके अनुसार दायभाग की व्यवस्था बांधी गयी है। इन सब सूक्ष्म विचारके विषयोंपर आज कलके नव शिक्षित सज्जन कभी ध्यान ही नहीं देते और मनमाने विधानोंको (कानून) बनानेकी चेष्टा किया करते हैं। वे यह भी नहीं सोच सकते कि, कानून द्वारा सत्यकी जड़ काटना असम्भव है। सत्य सूर्यके समान सत्य ही है। सूर्य कभी कभी बादलोंसे ढंक जाता है, परन्तु वह ढंकना साम-यिक होता है।

पृथ्वीकी अन्य जातियोंमें विवाहका काल निश्चित नहीं, किया गया है और न स्त्रीसम्भोगके लिये कोई आध्यात्मिक लक्ष्य ही रक्खा गया है। हनीमून जैसे आनन्दप्रद आचार उनमें किस प्रकार प्रचलित हैं, सभी जानते हैं। आर्य संस्कृतिमें रजोदर्शनसे पूर्व विवाह संस्कार करनेकी दृढ़ आज्ञा है। यदि ऐसा हो जाय कि, विवाहसे पहले ही कन्यामें रजो-दर्शन होने लगे, तो प्रत्येक रजोदर्शनमें पिताको प्रायश्चित्त करके शुद्ध होनेकी आज्ञा है। प्रथम रजो-दर्शनके अनन्तर पशुधर्मके अनुसार स्त्रीसम्बन्ध न करके ऋषि, देवता और नित्य नैमित्तिक पितरोंका संवर्द्धन करते हुए एक संस्कार करनेकी आज्ञा है, जिसे गर्भाधान संस्कार कहते है। तदनन्तर काम-वृत्तिसे नहीं, धर्मवृत्तिसे स्त्रीसम्बन्ध करनेकी आज्ञा आर्य-शास्त्र देते हैं। तदनन्तर पूर्णिमा-अमा-वास्या आदि पुण्यतिथियां, तथा अशास्त्रीय वार कुयोग पर्वदिन, अशौचके दिन आदि दिनोंको छोड़-कर धर्मबुद्धिसे युक्त होकर स्त्रीसंसर्ग करनेकी आर्यशास्त्र आज्ञा देते हैं। इसके विरुद्ध चलनेका धर्मशास्त्र निषेध करते हैं। अपनी उम्रसे अधिक उम्रकी' कन्यासे विवाह करना आर्यशास्त्रमें निषिद्ध है। गोत्र और प्रवरका सम्बन्ध इस कल्पके प्रारम्भ से ही माना गया है, और अपने गोत्र और प्रवरसे सम्बद्ध कन्यासे विवाह करना माता से विवाह करने के समान समझा गया है। जन्मसे जाति मानना अपनी जातिकी कन्यासे विवाह करना और रजो-दर्शनसे पहले विवाह संबंधसे सम्बद्ध होना,—क्योंकि रजोदर्शनके उपरान्त ही स्त्रीको पुरुषसे सम्बन्ध करनेकी इच्छा होती है—इस कारण सती-त्वधर्मको अक्षुण्ण रखनेके लिये रजोदर्शनसे पहले

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ही कन्याका विवाह करना विज्ञानसम्मत है—ये सब आर्य विवाहके लक्षण हैं और कामजविवाह अन्य जातिकी स्त्रियोंके साथ हो सकता है, किन्तु अनुलोम विवाह हो सकता है, प्रतिलोम नहीं। अपनेसे निम्न जातिकी स्त्रीसे विवाह करना अनुलोम और उच्चजातिकी स्त्रीसे विवाह करना प्रतिलोम कहाता है। प्रतिलोम नरकका कारण होता है और उसकी सन्तति पतित समझी जाती है। अनुलोम सन्तति माताकी जातिकी होती है। ब्राह्मण यदि शूद्रासे विवाह करे, जैसा दक्षिणमें होता है, तो उसकी सन्तति शूद्र ही मानी जायगी। ऐसी जाति दक्षिण भारतमें विद्यमान भी है। पृथ्वीकी किसी अन्य सभ्य जातिमें विवाहके ऐसे दूरदर्शितापूर्ण नियम नहीं पाये जाते और स्मृतिशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र एकवाक्य होकर यह सिद्ध करते हैं कि इन्ही सब मौलिक कारणोंसे आर्यजाति सृष्टिके आरम्भ कालसे अबतक अपने स्वरूपमें जीवित है। पृथ्वी की अन्य मनुष्य, जातियां, जिनमें रजोवीर्य शुद्धि और वर्णधर्मकी श्रृंखला नहीं है, वे पतित हो गयीं और कालके कवलमें पहुँच गयी हैं। प्राचीन इतिहास और आधुनिक इतिहास हाथ उठाकर इसकी साक्षी दे रहे हैं।

आर्य संस्कृतिके अनुसार वेद, स्मृति और तन्त्रमें सब समेत ४२ संस्कार पाये जाते हैं। उनमेंसे १६ मुख्य हैं, जिनकी मीमांसा वेदके कर्ममीमांसादर्शनमें की गयी है। संस्कारको भी मीमांसाशास्त्रमें कर्मका बीज कहा है। जैसे बीजसे वृक्षकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही संस्कारसे कर्म प्रकट होता है। सुकौशल पूर्ण उपाय द्वारा ये १६ संस्कार ऐसे बांधे गये हैं कि, विधिपूर्वक इनका अनुष्ठान हो, तो ये ही १६ संस्कार, जिनमें अन्य सब संस्कारोंका अन्तर्भाव है मनुष्यको प्रथम ८ संस्कारों द्वारा प्रवृत्तिमार्गमें पूर्णोन्नति देता है और शेष ८ संस्कारों द्वारा मुक्तिभूमिमें पहुँचा देता है। इन १६ संस्कारोंमें प्रथम संस्कार गर्भाधान संस्कार है और अन्तिम संस्कार संन्यास संस्कार है, जो निवृत्तिका अन्तिम संस्कार है और प्रवृत्तिमार्गका सबसे पहला गर्भाधान संस्कार है। आर्य शास्त्रोंमें यह भली भांति सिद्ध किया है कि, यदि माता और पिता दोनों सात्विक बुद्धिसे और अन्तः करणसे इच्छा करे तथा विधिपूर्वक सावधान होकर संस्कार करें, तो जैसी चाहे, वैसी सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं। दम्पतिका साक्षात् सम्बन्ध दैवी जगत्से बांधने के लिये गर्भाधान संस्कार किया जाता है। तदनन्तर कोई दैवी कार्य बिना स्त्री पुरुष दोनोंको एकत्र हुए सम्पन्न नहीं हो सकता। इसीसे गंठबन्धनकी प्रणाली हिन्दु जातिमें सर्वत्र प्रचलित है। दोनों इस प्रकार एकत्र होकर दैवी कार्य करें तो वहां एक दैवी पीठ बन जाता है। ये सिद्धान्त आर्यसंस्कृतिके मूलभूत हैं। पृथ्वीकी जो अन्य अवैदिक जातियां हैं, उनमें इन पवित्र सिद्धान्तोंका गन्धमात्र नहीं है। ऐसे गूढ़ रहस्यपूर्ण शास्त्रीय विषयोंका विचार न कर आजकलके नेतृवृन्द जो पश्चिमी जातियोंका अनुकरण कर हिन्दुजाति, हिन्दुसंस्कृति, हिन्दुधर्म और हिन्दु आचार विचारोंमें विप्लव मचाना चाहते हैं, यह कितनी हानि और अदूरदर्शिताका कार्य है, सो विचारशील पुरुष सुगमताके साथ समझ सकते हैं।

हिन्दू शास्त्रोंका यह सिद्धान्त है कि जैसा बीज बोया जाता है वैसा ही वृक्ष होता है। अवश्य ही वृक्षोत्पत्तिमें और भी कई वस्तुओं की आवश्यकता होती है, जैसे देश काल, जल, भूमि आदि, किन्तु सबसे अधिक महत्व बीजका है। वैदिक, पौराणिक, स्मार्त और तान्त्रिक संस्कारोंका तात्पर्य यही है कि द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि, मन्त्रशुद्धिसे सुकौशल पूर्ण रीति पर इन वैदिक संस्कारोंके द्वारा अन्तर्जगत्में ऐसी शक्ति उत्पन्न की जाती है कि वही शक्ति समयान्तर में वैसे ही वृक्ष और फल की उत्पत्ति करती है। जैसी बीजरोपणके समयमें संकल्प द्वारा इच्छा की गयी थी। सब दार्शनिक विषयोंको समझनेके लिये दर्शनोंके अनुशीलनकी आवश्यकता है। इसीमें संस्कार शुद्धिके बलसे भारत-

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वर्षमें (पृथ्वीमें) हिन्दुस्थान (भारत द्वीप) एक अनोखी भूमि है, जहाँ अर्थ और काम की अपेक्षा धर्म और मोक्षको प्रधान माना जाता है और मनुष्य जीवनमें आध्यात्मिक उन्नतिको ही श्रेष्ठ स्थान दिया गया है। यही अनादिसिद्ध संस्कारशुद्धिके बलसे ही भारतखण्ड (हिन्दुस्थान) में अनेक प्रान्त और भाषाएँ होने पर भी सम्पूर्ण भारत एक राष्ट्र माना गया है। जिस राष्ट्रमें निवृत्तिपरायण धन ऐश्वर्यकी उपेक्षा करनेवाली, तपः स्वाध्याय निरत ब्राह्मणजाति स्वाभाविक नेता समझी जाती है, जिसको शिष्ट लोगोंकी राष्ट्रभाषा संस्कृत है और जिसके सब ग्रन्थ अनादिकालसे संस्कृतमें ही बने हैं, जिसके सब शास्त्रीय संस्कार संस्कृतमें ही होते हैं, कोई कुछ भी कहे किन्तु ऐसी स्थायी और अपरिवर्तनीय अवस्था संसारकी किसी जातिमें नहीं पायी जाती।

सृष्टि होनेके सूत्रपातकी दशामें स्त्रीरूपी पीठमें दैवी जगत् से गर्भाधानके द्वारा सम्बन्ध बाँधा जाता है। तदनन्तर शुद्धाचारके द्वारा दैवी जगतको सामने रखकर सृष्टि उत्पन्न की जाती है। पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण आदि संस्कार दैवीजगत से सम्बन्ध स्थापन करनेके लिये ही किये जाते हैं। यथासमय चूड़ाकर्म तो हिन्दुजातिके सब वर्णोंमें होता है। इसका कारण यह है कि, बालकको शिखा रखाकर उसका दैवी जगत्से संबन्ध कराया जाता है और उसका उत्तमाङ्ग (शिर) देवमन्दिरके रूपमें परिणत किया जाता है। द्विज बालकोंका यथासमय यज्ञोपवीत संस्कार कराके उसे आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक शुद्धिके लिये तीन लड़ोंका जनेऊ पहनाया जाता है और आजीवन व्रतधारण कराके उसको आध्यात्मिक जीवनके लिये प्रतिज्ञा बद्ध कराया जाता है। इसके अनन्तर बालककी पाठ्यावस्था प्रारम्भ होती है, जिसमें गुरुका प्राधान्य रक्खा गया है और गुरुका अधिकार सर्वोपरि माना गया है। तदनन्तर विवाह संस्कार होता है, जो स्त्री-पुरुष दोनोंके लिये प्रवृत्तिमार्गका सबसे बड़ा संस्कार है। इस संस्कारमें स्त्री और पुरुषका स्वतन्त्र स्वतन्त्र उत्तरदायित्व बताया जाता है और वह उत्तरदायित्व इसी जन्म तक सीमित न रहकर जन्म जन्मान्तर तक बना रहता है। विवाहित दम्पति हिन्दुसंस्कृतिके अनुसार केवल अपनेही गार्हस्थ्य जीवनकी सुखसमृद्धिके लिये उत्तरदायी नहीं किन्तु समस्त ब्रह्माण्डकी सुखसमृद्धिके लिये उत्तरदायी होते हैं। यह महत्ता संसारकी किसी जातिमें नहीं पायी जाती। हिन्दु जातिका पंच महायज्ञ इसका ज्वाज्वल्यमान प्रमाण है। यह स्थूल संसार दैवी जगत्की सहायतासे सुरक्षित रहता और परिचालित होता है। दैवी जगत्के संचालकोंमें ज्ञानके प्रवर्तक होनेसे भृगु, वसिष्ठ, अंगिरा आदि महर्षियोंका स्थान सबसे ऊंचा है। उनके संवर्द्धनके लिये नित्य ब्रह्मयज्ञ करना प्रत्येक गृहस्थका कर्तव्य है। अष्टवसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, देवराज इन्द्र, धर्मराज यम आदिके, संवर्द्धनके लिये प्रतिदिन नियमित रूपसे देवयज्ञ करनेकी आज्ञा है। क्योंकि कर्मके दाता उक्तपदधारी देवताही समझे जाते हैं। तीसरे महायज्ञका नाम है पितृयज्ञ, पितृगण एक प्रकारके देवता हैं, जो नित्यपितृ कहलाते हैं। उनकी कृपासे कुल, वंश, मनुष्य समाजकी सुरक्षा होती है और स्त्रीकी गर्भावस्थामें उन्हीकी कृपासे गर्भके अन्तर्गत पूर्वकर्मानुसार देह बनता है। नैमित्तिक पितृ वे कहाते हैं, जो हमारे पितर शरीरान्तके पश्चात्, पितृलोकमें पहुंचते हैं और आवागमनके नियमानुसार फिर लौटकर इसी लोकमें आ जाते हैं। इनके संवर्द्धनके लिये जो यज्ञ किया जाता है, वह पितृयज्ञ कहाता है और यह श्राद्ध-तर्पणके द्वाराभी होता है। तर्पणकी यहां तक महिमा है कि, तर्पणके द्वारा साधक मिनिटोंमें पंचमहायज्ञका यजन कर सकता है। चतुर्थ महायज्ञका नाम भूतयज्ञ है। मनुष्यके अतिरिक्त संसारकी अन्य जो जीव सृष्टि है, वह चार श्रेणियोंमें विभक्त है। और वे चारों श्रेणियां स्वतन्त्र देवताओं द्वारा परिचालित और संवर्द्धित

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होती हैं। जैसी, वृक्षादिकी उद्भिज सृष्टि, जो रोग उत्पन्न करती और नीरोगता भी उत्पन्न करती है, तदनन्तरकी अण्डेमे उत्पन्न होने वाली अण्डज सृष्टि, पक्षी मछेली सर्प आदिकी सृष्टि और चौथी सृष्टिका नाम है, जरायुज सृष्टि जैसे मृग, गाय, घोड़ा, हाथी आदि। मनुष्यकी सृष्टि यद्यपि जरायुज ही है, किन्तु उक्त स्वाभाविक जीवसृष्टिसे भिन्न है। क्यों कि उसको धर्माधर्मका अधिकार प्राप्त हो जाता है। हिन्दुधर्मके महत्त्व, उदारता और आचारकी व्यापकताका यह ज्वलन्त प्रमाण है कि, वह कृतज्ञताके वश होकर चतुर्विध भूतसंघके कल्याणके लिये प्रतिदिन भूतयज्ञ किया करता है। हिन्दु जातिका पंचम महायज्ञ नृयज्ञ कहाता है। अपने भोजनसे पहले किसी वर्ण, किसी आश्रमका मनुष्य हो, आर्य अनार्य, किसी जाति या देशका मनुष्यहो, सबको देवता समझकर पहले उसे भोजन कराके गृहस्थको स्वयं भोजन करनेकी विधि है। अतिथि सेवा भी इसी महायज्ञका अङ्ग माना जाता है। जो अदूरदर्शी सज्जन हिन्दुओंको ऊंचनीचके अधिकार भेद और मनुष्योंमें स्पर्शास्पर्श विवेक और जातिभेद आदि माननेका कलङ्क लगाते हैं, वे यदि समाहित अन्तःकरण होकर शान्तिसे विचार करेंगे, तो देखेंगे कि, भगवान्की सर्वव्यापी शक्ति अनन्त प्राणियोंकी एकताका अनुभव, स्थूल और सूक्ष्मलोकका एकत्व सम्बन्ध और मनुष्यमात्रमें भ्रातृभावस्थापनका अधिकार जैसा हिन्दुजाति और हिन्दुधर्ममें है, वैसा न कहीं देखनेमें आता है, न सुननेमें ही आता है।

प्रवृत्ति धर्मकी पूर्णता गार्हस्थ्यमें हो जाती है। वह कैसे होती है, यह ऊपर बताया गया है। तदनन्तर आर्यजीवनमें निवृत्तिधर्मका अधिकार प्रारम्भ होजाता है। उस समय जो आश्रम आरम्भ होता है, उसका नाम वानप्रस्थ है, यह तृतीय आश्रम है। इस आश्रममें पुरुष अकेला रह सकता है और स्त्री को भी साथ रख सकता है। सब इन्द्रियादिको वशमें लानेके लिये वह तपस्याके द्वारा प्रयत्न करता रहता है। प्राचीन कालके ऋषि-मुनिगण प्रायः वानप्रस्थही हुआ करते थे, जिनका विवरण पुराणादि शास्त्रोंमें पाया जाता है।

तदनन्तर अन्तमें जो आश्रम ग्रहण किया जाता है,। उसका नाम है संन्यास। आजकल जैसी पृथ्वी भरमें प्रथा है कि, एक गृहस्थाश्रमके ढंग परही समस्त जीवन व्यतीत करते और निवृत्तिकी ओर ध्यानभी नहीं देते, यह अनार्य प्रथा है। प्रकृति माता जैसा इंगित करती है, मनुष्यको उसीका अनुसरण करना चाहिये; नहीं तो जीवका नीचे गिरना स्वाभाविक है। इस कारण प्रवृत्ति धर्म और निवृत्ति धर्म यथासमय अवश्य पालनीय है। संन्यासाश्रम के चार पृथक् पृथक् अधिकार हैं। कुटीचक धर्म, बहूदक धर्म, हंसधर्म और परमहंस धर्म। इनका अलग अलग साधन और आचार हिन्दुशास्त्रों में पाये जाते हैं, जो संन्यासगीता और पद्धतिमें द्रष्टव्य है। इस समय यद्यपि इसमें व्यतिक्रम देख पड़ता है, तथापि जो व्यवस्था बांधी गयी है, वह सर्वोत्तम है।

इस प्रकार जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त संस्कारों से संस्कृत होकर मनुष्य कैसी नियमित उन्नतिकर सकता है, इसकी विस्तृत पद्धति हिन्दूधर्ममें ही है और हिन्दुजातिके अधःपतित होनेपर भी ये सब संस्कृतिके लक्षण हिन्दु जातिमें ठीक ठीक मिलते हैं। इस समयके नेतृवृन्दोंको सबसे पहले हिन्दु संस्कृति का अध्ययन कर अन्य जातिकी संस्कृतियोंके साथ तुलनात्मक गवेषणा करनी चाहिये। तत्पश्चात् हिन्दु संस्कृतिकी रक्षा करते हुए यदि वे सामाजिक सुधारमें ध्यान देंगे, तभी वे सफल होंगे, नहीं तो ऐहिक और पारलौकिक पतनके कारण होंगे। श्रीभगवान्के चरणोंमें यही प्रार्थना है कि, इस सन्धिके समयमें वे सबको सुबुद्धि देवें।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दृश्यादृश्य लोक ।

आत्मा पाँच कोशोंसे ढका रहता है। उन कोशों का नाम यथा (१) अन्नमय कोष (२) प्राणमय कोष (३) मनोमय कोष (४) विज्ञानमय कोष (५) आनन्द-मय कोष। इन पाँचों कोषोंमेंसे जीवके एक जीवन का भोग समाप्त होने पर अन्नमयकोष यहीं पड़ा रहता है। उसको मृत देह कहते हैं और बाकी चारो कोष जीव के साथ लोकान्तरमें चले जातेहैं, इसी घटनाको संसारके लोग मृत्यु कहते हैं। मृत्युके बाद जीव या तो (१) प्रेत लोकमें जाता है या (२) नरक लोकमें जाता है या (३) अधिक पापी होतो तिर्यक् योनि में जाता है और (४) पुण्यात्मा जीव अपने अपने अधिकारके अनुसार पाँच श्रेणीके स्वर्ग लोकोंमें जाते हैं। जिनके नाम ये हैं यथा—(१) विल स्वर्ग (२) भौम स्वर्ग (३) माहेन्द्र स्वर्ग (४)प्राजापत्य स्वर्ग (५)ब्राह्म स्वर्ग। इन पाँचोंके अपने ढँग पर अनेक विभाग भी हैं। ब्रह्माण्डके चतुर्दश भुवनोंमें नीचेके अतल-वितल-सुतल-तलातल-रसातल, महातल और पाताल, नामक सात भुवन जिसमें असुर लोग वास करते हैं वे विल स्वर्ग कहाते हैं। भूलोक और भुवर्लोक ये दोनो लोक जिसमें सब ग्रह नक्षत्र हैं ये दोनों भौम स्वर्ग कहाते है। उसके बादका स्वर्ग जो सूर्य लोकसे ऊपर है वह माहेन्द्र स्वर्ग कहाता है। उसके ऊपरका लोक प्राजापत्य स्वर्ग कहाता है और उसके बादके तीन अन्तिम ऊर्ध्व लोक जो ब्राह्म स्वर्ग कहाते है।

प्रेतलोकके जीव भी एक तरहको देवयोनि है। प्रेतलोक इस मृत्यलोकके चारो ओर और निकट के अन्तरीक्ष तक व्याप्त है। स्थूल शरीर छोड़ते समय यदि जीवकी ऊर्ध्वदृष्टि न रहे, उसकी विषयाकार दृष्टि रहे, मोह आदि में यह फँसा रहे अथवा मूर्छित अवस्थामें उसका देहान्त हो तो ऐसा मनुष्य अवश्य ही प्रेतत्वको प्राप्त होता है। इस कारण अधिक संख्यक स्त्री पुरुषोंको मृत्युके अनन्तर प्रेत लोकोंमें जाना पड़ता है और यही कारण है कि वर्णाश्रम-धर्मियों के सदाचारमें प्रेत श्राद्ध एक साल तक करने की दृढ़ आज्ञा है। स्थूल शरीर छोड़ते समय जीव की दो तरहकी दृष्टि होना सम्भव है। पुण्यात्मा और भगवद्भक्त जन ऐसी सन्धिमें अपने अन्तः-करण की गति ऊर्ध्वकी ओर रख सकते हैं, पापात्मा जन ऐसा नहीं कर सकते हैं। अतः यदि शरीर छोड़ने वाले व्यक्तिके अन्तःकरणकी गति भगवान्‌की ओर किसी न किसी प्रकारसे भी रहे तो उसको प्रेतत्व नहीं होता; परन्तु यदि उस समय उसके अन्तःकरण की गति किसी भी विषयमें लगी रहे तो उसको प्रेतत्व होना सम्भव है। इसी प्रकार यदि उस समय वह पुत्र कलत्र आदिके मोहमें फसा रहे तो भी उसको प्रेतलोकको प्राप्ति होती है। अन्तःकरणकी मूर्च्छा जिसको भाषान्तरमें बेहोशी कहते हैं ऐसी दशामें भी यदि मृत्यु हो तो उसको प्रेतयोनिकी प्राप्ति होती है। वस्तुतः अन्तःकरण सावधान न रहे यदि असावधान हो जाय और उसको अपनी सुध न रहे, उसीको मूर्च्छा कहते हैं। इसी मूर्च्छा का होना प्रेतत्वके होने का प्रधान कारण है। प्रकारान्तरसे जितने कारण ऊपर बताये गये हैं, इन सबमें ही जीव अपनेको भूल कर मूर्छित हो जाता है। उसकी वह मूर्च्छा रूपान्तरसे प्रेतलोकमें भी बनी रहती है, क्योंकि प्रेत जो कुछ करता है वह सावधान होकर नहीं कर सकता है। प्रायः देखा गया है कि प्रेत जिस प्रबल संस्कारको लेकर प्रेतलोकमें जाते है उसी संस्कारके अनुसार ही वे प्रेतलोकका भोग करते रहते हैं। प्रेतयोनि भी बहुत प्रकारकी होती है अच्छेसे अच्छे भी प्रेत देखे जाते हैं जो परोप-कारी होते हैं। चूँकि प्रेतयोनि के जीव मृत्युलोक के आसपास ही रहते हैं और शरीर छोड़ते समय के संस्कार उनके साथ रहते हैं इस कारण ये जीवित मनुष्योंसे हेलमेल करनेके इच्छुक रहते है। यही कारण है कि स्त्री और पुरुषों पर कभी प्रेतावेश

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होता है और यही कारण है कि आजकलके वैज्ञानिक ढँगसे जो दैवीराज्यसे सम्बन्ध करनेकी युक्तियाँ चली हैं जैसे टेबुल रैपिंग, प्लैन्चिट, सर्कल आदिकी क्रियामें प्रेत ही आया करते हैं। कोई कोई ऐसा कहते हैं कि इसमें उन्नत देवलोकके जीव भी आते हैं, यह मिथ्या कल्पना है। देवलोकके देवतागण ऐसे सस्ते नहीं हो सकते हैं, सबको इसका स्मरण रखना चाहिये। ऐसी दशामें आये हुये जीव ऐसा कहते हैं कि हम पाँचवे लोकमें रहते है, सांतवें लोकमें रहते हैं, इन शब्दोंसे यही समझना उचित है कि प्रेत लोक के भी अनेक स्तर हैं। प्रेतयोनियों का स्थूल शरीर वायुप्रधान होता है इस कारण वे मिनटों में सैकड़ों कोस जा सकते हैं। बहुत शक्तिशाली प्रेत नाना प्रकारके स्थूलशरीर धारण कर सकते हैं; परन्तु वह स्थूल शरीर क्षणिक होता है। प्रेतलोकके रक्षक बेताल होते है जो अधिक शक्तिमान् होते हैं। ऐसा कहा जाता है कि सम्राट विक्रमादित्य बेताल सिद्ध थे। यदि प्रेतश्राद्ध विधिपूर्वक किया जाय तो प्रेतयोनिसे मुक्ति हो जाती है और साधारण तौर पर गयातीर्थमें पिण्डदान करनेसे अवश्य मुक्ति हो जाती है। प्रेतत्वप्राप्त होना भी एक प्रकारकी सजा है, उससे मुक्त करने के लिये हमारे शास्त्रोंने नाना उपाय बताये हैं।

प्रेतलोक नरकलोक और पितृलोक-नामक स्वर्गलोक जिसका मृत्युलोकसे घनिष्ट सम्बन्ध है उसके व्यवस्थापक और राजा कर्मफलविधाता भगवान् यम धर्मराज है। जिनकी राजधानी पितृलोकमें है। वह लोक हमारे मृत्युलोकके दक्षिणमें जम्बूद्वीपके ही अन्तर्गत है। नरक लोक पितृलोक के पास ही स्थित है। नरकलोकके रौरव कुम्भीपाक असीपत्र आदि अनेक अलग अलग भेद हैं वहाँ स्त्री और पुरुष कठिन सजा पानेके लिए भगवान् यम धर्मराजकी आज्ञासे भेजे जाते हैं। उनके दो प्रधान मन्त्री हैं एकका नाम चित्रगुप्त, दूसरेका नाम विचित्रगुप्त है। उनमेंसे एक जीवोंके पुण्य कर्मोंका हिसाब रखते हैं और दूसरे पाप कर्मोंका हिसाब रखते हैं। आज कल सायन्सने रेडियो यन्त्रसे यह सिद्ध करके बताया है कि कहीं भी कोई शब्द हो वह महाकाशमें अङ्कित हो जाता है और अच्छी व्यवस्था बाँधी जाय तो सब जगह वह सुनाई देता है। ऐसे ही जीव जो शारीरिक वाचनिक, मानसिक और बौद्धिक कर्म करता है वह महाकाशकी पुस्तकमें अङ्कित हो जाता है। जिसको राजमन्त्री चित्रगुप्त और राजमन्त्री विचित्र गुप्त महाकाश पुस्तकसे पढ़कर अपना अपना हिसाब बनाते हैं। उसी हिसावके अनुसार जीवों को शुभाशुभ फल मिलता है। जो जीव विशेष प्रकार कठिन पाप करता है वह थोड़े समयके लिए तिर्यग् योनिमें भी जाता है। जैसा कि श्रीमद्भागवत में है कि देवता यमलार्जुन वृक्ष हुए थे, जिनका उद्धार श्रीभगवान् कृष्णचन्द्रजीके स्पर्शसे हुआ था। उद्भिज्ज स्वेदज अण्डज और जरायुज रूपी चतुर्विध भूतसंघकी तिर्यक् योनिमें जीव केवल एक बारके लिये जाता हैं और वहाँकी सज़ा भुगतने के बाद फिर वह अपना पूर्व रूप प्राप्त कर लेता हैं। उसको तिर्यक् योनिके क्रमके अनुसार आगे नही बढ़ना होता है एक दम वापस आ जाना होता है।

मनुष्य शरीर जीवोंके लिये केन्द्रस्थानीय है। मनुष्य देहके त्यागनेके बाद ही जीव अपने अपने कर्मोंके अनुसार ऊपरके लोकोंमें नीचेके लोकोंमें अथवा तिर्यक् शरीरमें जाते हैं। पापात्मा लोग प्रेत लोक या नरक लोकमें जाते हैं, जिनका विधिपूर्वक श्राद्ध भी हुआ है और धर्मात्मा हैं, ऐसे लोग पितृ लोकमें जाते हैं और सुखभोग करते हैं। जो सुख भोगकी कामनासे पुण्यकार्य करते हैं, ऐसे लोग स्वर्ग जाते हैं। इन्द्रियोंपर अधिकार करने वाले महर्लोकको प्राप्त करते है। जिनका इन्द्रिय और मनके ऊपर आधिपत्य है, ऐसे लोग जनलोकमें पहुचते हैं। इन्द्रिय मन और बुद्धि तत्त्वपर आधिपत्य रखनेवाले तपो लोकको प्राप्त करते हैं और इन्द्रिय मन बुद्धि तथा अपने समस्त प्रकृति राज्यपर जिनका अधिकार है, उनको सत्य लोककी प्राप्ति होति है।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महामण्डल नगर ।

श्रीभारतधर्म महामण्डलके संचालकने जो महामण्डलके हितार्थ पाँच ट्रष्ट बनाये हैं उसमेंसे एक ट्रष्टका नाम "महामाया ट्रष्ट" है। उस ट्रष्टके पास एक विशाल जमीन है जिसके चारो ओर सरकारी सड़क है और उससे मिली हुई एक छोटी सी जमीदारी है जो भगवान् श्रीनाथजीकी कृपासे प्राप्त हुई हैं। महामाया ट्रष्टके ट्रष्टियोंने यह निश्चय किया है और बनारस डिस्ट्रिक्ट जजसे आज्ञा भी ले ली है कि विशाल जमीन जो बसाई गई है उसका नाम 'महामण्डल नगर' रखा जाय। महामण्डल नगर की आधेसे ज्यादा जमीन बस गई हैं और उसमें मकानात भी बन रहे हैं। इस महामण्डल नगरके पूर्व दिशामें श्रीमहामण्डल भवन स्थापित है और इसकी पश्चिम दिशामें पिशाचमोचन नामक विशाल ह्रद स्थापित है। यह ह्रद काशीका एक बड़ा तीर्थ है। उस तीर्थके निकट श्रीआर्यमहिला हितकारिणी महापरिषद्का विशाल भवन है। जिसमें आर्यमहिला कालेज, आर्यमहिला नार्मल स्कूल, आर्यमहिला विद्यापीठ, आर्यमहिला अन्नसत्र आदि संस्थायें स्थापित हैं। महामण्डल नगरके संलग्न जो भगवान् श्रीनाथजीकी दी हुई जमीदारी है वह किस प्रकारसे भगवान् श्रीनाथजीने अपनी अपार कृपासे श्रीमहामण्डलको दी है उस विषयका अलौकिक वर्णन "श्रीनाथजीकी अद्भुत महिमा" नामक पुस्तक आदिसे उद्धृत करके भगवान्के भक्तोंके विदितार्थ नीचे दिया जाता है।

भक्तों पर कृपा करनेकी रीति भगवान् श्रीनाथजीमें इस समय भी ऐसी है कि जो कहीं नहीं दिखाई देती है। अवध प्रदेशनिवासी स्वर्गीय पं० प्रयागनारायण शास्त्रीजीने श्रीनाथजीके विग्रहमें श्रीकृष्णकी युगल मूर्तिका दर्शन किया था, क्योंकि वे स्वयं कृष्ण-भक्त थे। पंजाब प्रान्तनिवासी स्वर्गीय पं० शिवदत्तशर्मा जो परम शिवभक्त थे, श्रीविग्रहमें भैरव मूर्तिका दर्शन करके नृत्य करने लगे थे। बङ्गाल प्रांतके भाटपाड़ाके गुरु-वंशके सुप्रसिद्ध समुज्ज्वल रत्न, वर्तमान भारतके संस्कृत विद्वानोंमें शिरोमणि, अनेक काव्य और नाटकोंके रचयिता, दर्शनशास्त्रोंके टीकाकार और वेदान्तसूत्रों पर शक्ति-भाष्यके रचयिता स्वर्गीय महामहाध्यापक पण्डितप्रवर पञ्चानन तर्करत्न भट्टाचार्य जो स्वयं शक्ति सम्प्रदायके गुरु थे, श्रीनाथजीके विग्रहके दर्शनके समय "ऐ मेरी माँ, ऐ मेरी माँ—" कहकर बहुत देर तक आनन्दाश्रु बहाने लगे थे। उनकी भक्तिविह्वल दशा देखकर पासके सब दर्शकवृन्द चमत्कृत और पुलकित हो गये थे। अपने-अपने सम्प्रदायके अनुसार सच्चे भक्तोंको भगवान् श्रीनाथजी उनके यथायोग्य इष्टके अनुसार दर्शन दिया करते हैं, उसके अनेक प्रमाण हैं।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल पर भगवान् श्रीनाथजीकी कृपा बहुत दिनोंसे चली आती है। पुण्यवान् श्रीमान् गोस्वामी गोवर्धनलालजी महाराज और उनकी भगिनी पुण्यवती श्रीमती वाणीबेटीजी महारानीजी तथा उनकी स्वर्गीय मातृदेवीके द्वारा श्रीमहामण्डलके धर्म कार्योंमें अनेक बार सहायता होती रही है। इस श्रीनाथद्वाराकी सहायताके सम्बन्धसे एक ओर दैवी घटनाका वर्णन किये बिना रहा नहीं जा सकता है। श्रीभारतधर्ममहामण्डलसे सम्बन्धयुक्त एक ट्रस्टके द्वारा जो अति मूल्यवान जमीन— श्रीमहामण्डल दफ्तरके सामने खरीदी गई है और इस समय 'महामण्डल नगरके' नामसे बसाया जा रहा है। उससे लगी हुई श्रीनाथ द्वारा संस्थानकी एक छोटी सी जमींदारी है। सोचा गया कि इस जमीदारीके मिल जानेसे यह मूल्यवान् जमीन भी चौकोर हो जायगी और दफ्तरके पासकी जमींदारी भी हाथमें आ जायगी। उस समय महामण्डलमंत्रिसभाने श्रीमान् गो० गोवर्धनलालजी महाराजके निकट प्रार्थनापत्र भेजा था कि यह जमीन श्रीमहामण्डल को दे दी जाय और इससे श्रीनाथद्वारा संस्थानको जो सालाना आमदनी

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है, उतनी आमदनी होती रहे, इसके निमित्त गवर्नमेंट प्रामिसरी नोट खरीद कर महामण्डल, श्रीनाथद्वारा संस्थानको देनेके लिये तैयार है। इस प्रार्थना पत्रके जवाबमें श्रीनाथद्वारासे इनकार आया। उसके कुछ दिनों बाद श्रीमहामण्डलके पूज्य प्रतिष्ठाता श्रीस्वामीजी महाराजमें प्रेरणा हुई कि श्रीनाथ द्वारा जाओ, जमीन मिल जायगी। श्रीस्वामीजी महाराज उदयपुर प्रायः पधारा ही करते थे। अबकी जब जाना हुआ तो श्रीस्वामीजी श्रीनाथद्वारामेंभी पधारे, उन दिनों श्रीमान् दामोदरलालजी संस्थानका सब काम करते थे। उन्होने शील-रहित होकर साफ जवाब दे दिया कि जमीन बहुत कीमती है, नहीं मिल सकती। श्रीस्वामीजीने उदयपुर लौटनेका इरादा किया, इतनेमें भगवान् श्रीनाथजीके एक प्रधान पुजारीने आकर श्रीस्वामीजी महाराजसे प्रार्थना की कि श्रीभगवान्के दर्शन करिये। श्रीस्वामी जी श्रीमन्दिरमें दर्शन करनेको गए और इरादा किया कि दर्शन करते ही उदयपुर लौट जायँगे, श्रीभगवान् श्रीनाथजीके दर्शन करते समय और भी दो तीन बम्बईके सेठ बराबरमें खड़े थे और बाकी दर्शकवृन्द पीछे खड़े थे। श्रीमन्दिरके अन्दर श्रीभगवानके विग्रहके तीन चार गजकी दूरी पर दरवाजेके दाहिनी ओर लालजी बैठे जप पूजा कर रहे थे, श्रीमन्दिरमें और कोई भी नहीं था। श्रीविग्रहके चरणोंके पास फुट भर ऊँची एक चौकी बिछी हुई थी, जिस पर २-३ थालोंमें पूजाका सामान रक्खा हुआ था। उन थालोंमें दो चाँदीकी पिचकारी केसरसे भरी हुई रक्खी थी। श्रीस्वामीजी जो देव-मन्दिरके बाहर खड़े थे, उनको एकाएक मालूम हुआ कि उनके ऊपर पानी गिर रहा है। श्रीस्वामीजी कुछ सशंकित हुए और इधर उधर देखने लगे। साथके भक्तवृन्द भी चकित हुए। दोनों पिचकारियाँ एक साथ चली। यदि वे दोनों साधारण तौर पर चलतीं तो उनकी धारा श्रीस्वामीजीके घुटने के नीचे और साथके एक सेठजीके घुटने तक पहुँच सकती थी। परन्तु ऐसी दैवी घटना हुई कि, दोनों पिचकारीकी दोनों धारायें श्रीस्वामीजीकी जटा पर पहुँच कर शरीरको भिगोते हुए दोनों पैरों पर पहुँची। आजकलका साइंस और आजकलके नवशिक्षित व्यक्ति इस दैवी चमत्कारका कोई भी ठीक ठीक समाधान नहीं कर सकते हैं। इस दैवी घटनासे मन्दिरमें बड़ा शोर मचा कि काशीसे श्रीविश्वनाथजी आये हैं और उनके साथ श्रीनाथजीने होली खेली है।

श्रीस्वामीजीने इस घटनाके अनन्तर उदयपुर लौट आनेका इरादा छोड़ा नहीं। तब श्रीमान् गोस्वामी गोवर्धनलालजी महाराज जो लज्जासे श्रीस्वामीजीसे मिलते नहीं थे, उन्होंने कहला भेजा कि आज देर हो गई है, कल उदयपुर पधारें। उसी रातको बाप-बेटे दोनोंको स्वप्न हुआ कि जिस साधुका मैंने इतना स्वागत किया उसको फौरन जमीन दे दो और उनका अच्छा सत्कार करो, नहीं तो अच्छा नहीं होगा। दूसरे दिन महलोंमें से बुलावा आया। श्रीस्वामीजी महाराज वहाँ पधारे और सबके सामने श्रीगोस्वामीजी महाराजने श्रीस्वामीजीसे कहा कि हमारी यह भूल है कि एक छोटीसी बात आपकी नहीं मानते थे। हमारा आदमी काशी जाकर जमीनकी रजिष्ट्री करा आवेगा और श्रीमहामण्डलको कुछ भी नहीं देना होगा। उसके बाद आखिरी मुलाकातमें श्रीगोस्वामीजी महाराजने प्रसादी वस्त्र और १००१) रुपया नगद देकर श्रीस्वामीजीको सम्मानित किया। वह मूल्यवान् जमीन अभी तक श्रीमहामण्डलके पास है। उसमें एक वाल्मीकि टीला है जिसपर श्रीवाल्मीकेश्वर महादेव विराजते हैं। किम्वदन्ती यह है कि महर्षि वाल्मीकिजी वहाँ कुछ दिनों तक विराजते थे और रामायणकी वहाँ पर कुछ दिनों तक उन्होंने रचना भी की थी। काशीमें वह टीला एक तीर्थ समझा जाता है और सालभरमें उसमें एक मेला होता है। यदि कोई भाग्यवान् भक्त इस टीला रूपी तीर्थ की श्रीको बढ़ाकर इस टीले पर अथवा टीलेके नीचेकी जमीन पर मकान आदि बनाकर अथवा नीचेकी ज़मीन पर धर्मशाला बनवाकर यश और धर्मप्राप्त

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करना चाहते हों तो यह टीला आदि उनको मिल सकता है। ऐसा टीला काशीपुरीके अन्दर दूसरा नहीं है।

भगवान् श्रीनाथजीकी दैवी विभूति केवल सनातनधर्मियोंके लिये ही नहीं प्रकाशित होती है बल्कि, वे सर्वजीवहितकारी होनेके कारण सब जातिके भक्तोंके लिये उनका दैवी चमत्कार समय समय पर प्रगट होता रहता है। बम्बईमें श्रीमती गुलमयी नामकी एक धनी विदुषी रूपवती और धर्मपरायणा पारसी महिला हैं। उनके पति तथा पिता दोनों ही धनी थे। उनके आचरण से मालूम होता है कि वे पूर्व जन्ममें श्रीनाथजीकी विशेष भक्त थीं। उनका कहना यह है कि पूर्व संस्कारके कारण यौवनावस्थामें उनको श्रीनाथजीके दर्शन करनेकी बड़ी ही उत्कण्ठा हुई थी। उनके स्वर्गीय पति धर्मात्मा और ईश्वरभक्त थे। श्रीमती गुलमयी जीके विशेष आग्रह से वे दोनों पति-पत्नी श्रीनाथ जीके दर्शनोंको नाथद्वारामें आये थे। पारसी-धर्मावलम्बी होने पर भी उनको किसीने नहीं टोका और उनको दर्शन अच्छी तरह मन्दिरमें हुए। यात्रियोंके नाम धाम आदि लिखनेकी वहाँ कुछ विधि है, जब भगवद् दर्शन करके बाहर आने लगे, तो उनको नाम धाम लिखवाने के लिये रोका गया और एक जगह बैठा दिया गया। वे दोनों पतिपत्नी तब कुछ भयभीत होकर आपसमें सलाह करने लगे कि झूठ बोलना तो उचित नहीं है और सच बोलनेसे बड़ी दुर्गति होना सम्भव है। इतना वे सोच ही रहे थे कि, एक अति भव्यमूर्ति पुरुष उनके सामने कहने लगा कि, तुम बाहर जाना चाहते हो, हमारे साथ आओ। तब वे दोनों उस दिव्य पुरुषके साथ बाहर आये, बाहर आते ही वह पुरुष अन्तर्धान हो गया और बहुत कुछ खोजने पर भी उसका पता नहीं चला। इस प्रकारसे श्रीभगवान् श्रीनाथजीकी लीला अब भी समय-समय पर प्रकाशित होकर इस घोर कलियुगमें भी आधिदैविक-जगत्की दैवी क्रिया पर लोगोंको विश्वास दिलाया करती है।

श्रीभगवान् कृष्णचन्द्रकी जन्मभूमि पर आसुरी आक्रमण होते रहने पर भी वहाँकी दैवी-सत्ता तिरोभावको प्राप्त न होकर श्रीनाथद्वारमें जागृत है। वस्तुतः पीठ-विज्ञानका रहस्य यह है कि—सनातन-धर्मके अनुसार दैवपीठमें सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् भगवान्की अधिदैव सत्ताकी पूजा उपासक किया करते हैं। दैवीपीठ उसको कहते हैं कि जहाँ प्राणमय आसन रहे जिस पर दैवी सत्ता विद्यमान हो सके। दैवीपीठके प्रकट होनेके जो स्थान हैं उनको दिव्य देश कहते हैं। तन्त्रशास्त्र और पुराणशास्त्रमें दिव्य देशके १६ भेद कहे हैं। जैसे कि, मूर्ति, पट, स्थण्डिल, जल, अग्नि, भक्तका हृदय, मूर्धा, नाभिप्रदेश भावयंत्र यथा—श्रीयंत्रादि और नित्ययंत्र यथा—शालिग्राम-शिला नर्मदेश्वर तथा खास-खास पुण्यक्षेत्रादि। इस प्रकारसे पीठके प्रकट होनेके स्थानोंके कई भेद हैं। सनातन-धर्मी वस्तुतः जड़ पदार्थकी पूजा नहीं करते हैं, नाना दिव्य देशोंमें सर्वव्यापक भगवान्की सत्ताकी पीठके अवलम्बनसे पूजा किया करते हैं। वह पीठ सदा दैवीसत्तासे पूर्ण रहता है। जैसे रेडियो द्वारा सर्वव्यापक शब्दसत्ता प्रगट हो जाती है, उसी प्रकार पीठ जितना शक्तिशाली होता है सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक भगवान्की उतनी दैवीसत्ता उस पीठमें प्रगट रहती है। यह पीठ-विज्ञान और मूर्ति-पूजाका अलौकिक रहस्य है। भक्तोंके हृदयका विश्वास और उनके मनकी श्रद्धा और भावके अनुसार ही पीठमें प्रकाशित भगवत्-सत्ता भक्तको फल देकर कृतार्थ करती है। यही मंत्रशास्त्र और भक्तिशास्त्रका रहस्य है।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्त्री और पुरुषका अधिकार विज्ञान।

कर्म मीमांसादर्शनमें स्त्रीधारा और पुरुषधारा का विज्ञान विस्तार पूर्वक बताया गया है। उसीका संक्षेप यहां दिया जाता है।

मनुष्य सृष्टिमें पुरुष और स्त्री, ये दो विभाग हैं। और दोनों के धर्म भिन्न भिन्न हैं। कैवल्य प्राप्तिके लिये पुरुष स्वतन्त्र है; परन्तु स्त्री पुरुष होनेकी अपेक्षा रखती है। वह पतिमें तन्मय होकर जब पुरुष होगी, तभी कैवल्य प्राप्त कर सकेगी। पुरुष स्वतन्त्र होनेसे उसका धर्म यज्ञ प्रधान है, कैवल्य प्रदान करनेवाले ज्ञानका यज्ञके साथ साक्षात् सम्बन्ध है। यज्ञ धर्म कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीन काण्डोंमें विभक्त है। स्मृति शास्त्र कहता है:—

यज्ञ प्रधानतामेवं नृणां धर्म इति श्रुतिः।

नारीधर्म एक विशेष धर्म है। आदि सृष्टि जब आदि पुरुष परमात्मा और प्रकृति महामायाके सम्बन्धसे आरम्भ होती है, तब जीवकी प्रथमोत्पत्तिमें भी वे ही दो सत्ताएँ विद्यमान रहेंगी, इसमें सन्देह ही क्या है? उद्भिज्जादि जीवोंमें भी पुरुष और नारीकी दो स्वतन्त्र शक्तियां देख पड़ती हैं। मनुष्ययोनिमें पहुँच कर जीव जब तक स्वाधीनता प्राप्त नहीं कर सकता, तब तक नवीन संस्कार भी संग्रह नहीं कर सकता। सहज कर्म परिवर्तित भी नहीं होते इस कारण साधारण स्त्री, स्त्री होकर और पुरुष पुरुष होकर ही अग्रसर होता है। अद्वैत भावके बिना कैवल्य की प्राप्ति नहीं होती। वह स्थिति परम पुरुषके स्वस्वरूपमें ही विद्यमान है। इस कारण कैवल्याधिगमके लिये पुरुषको आत्मज्ञानके अवलम्बनसे स्व स्वरूपको प्राप्त करना होता है और स्त्री को पुरुषमें तन्मयता प्राप्त कर पुरुष धारामें पहुँचने पर आत्मज्ञानके अवलम्बनसे अद्वैतभावमय स्वस्वरूप की उपलब्धि करनी पड़ती है। इस प्रकार जब स्त्री को अपनी धारा बदलनी पड़ती है, तब उसके लिये तपोधर्मका आश्रय लेना अनिवार्य है। स्मृतिशास्त्र में कहा है:—

तपः प्रधानतामेति नारीधर्मो यतः सदा।

आदि सृष्टिसे ही स्वाभाविक संस्कार और सहज कर्मके अनुसार पुरुषधारा और स्त्रीधारा दोनों पृथक् पृथक् प्रवाहित हुआ करती हैं। परम पुरुष स्वाधीन, निःसङ्ग तथा चेतन स्वरूप है और मूल प्रकृति जड़ा, सङ्ग की अपेक्षा रखने वाली और पराधीना है। इसी कारण कार्यरूपी सृष्टि-प्रवाहमें ये ही गुण विद्यमान रहनेसे नारीका पराधीन होना विज्ञान सिद्ध है। यही कारण है कि, हिन्दूजातिमें कन्यावस्थासे लेकर वृद्धावस्था तक पिता, तदनन्तर पति और तदनन्तर पुत्रों तथा आत्मीय स्वजनोंके संरक्षणमें नारी को रहनेकी विधि है और यही आर्य जातिकी प्राचीन संस्कृति है।

वैदिक दर्शनोंने यह भी सिद्ध किया है कि इस संसारके स्थूल-सूक्ष्म प्रपञ्चके सब अङ्गोंमें दो प्रकारकी शक्तियां देखनेमें आती हैं,—एक आकर्षण शक्ति और दूसरी विकर्षण शक्ति। स्थूल प्रपञ्चमें परमाणु से लेकर ग्रह-उपग्रहों तक में आकर्षण और विकर्षण-रूपी दोनों शक्तियोंका कार्य स्पष्ट देखनेमें आता है। ग्रह-उपग्रहादिकी सृष्टि दशामें परमाणु एकत्र होते हैं और प्रलय दशामें पृथक् पृथक् होकर ब्रह्माण्ड का प्रलय संसाधन करते हैं। इसी स्थूल उदाहरणके अनुसार सूक्ष्म अन्तः करण की वृत्तियोंमें रागकी वृत्तियां आकर्षण जनित और द्वेषकी वृत्तियां विकर्षण जनित होती हैं। रागमूलक आकर्षण शक्ति रजोगुण समुद्भूत और द्वेषमूलक विकर्षण शक्ति तमोगुण समुद्भूत है। इन्हीं दोनों शक्तियोंसे समस्त पिण्ड और ब्रह्माण्ड आच्छन्न हैं। दोनों शक्तियोंका विकाश पुरुष शरीर और स्त्री शरीरमें होता रहता है। पुरुष विकर्षण शक्ति रूप और स्त्री आकर्षण शक्ति रूप है।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्ततः दोनों के अधिकार और धर्म भी स्वतन्त्र हैं। आकर्षण शक्तिसे सृष्टि क्रिया होती है और विकर्षण शक्तिसे लय क्रिया । स्मृति शास्त्र कहता है:—

आकर्षण स्वरूपं हि शरीरं योषितामिह ।
तथा विकर्षणं नृणां शरीरं स्यात्स्वरूपतः ॥

जिस प्रकार अन्तर्जगतमें राग और द्वेष, दोनोंके समन्वयसे मुक्तिका उदय होता है; अर्थात् साधक रजोगुण सम्भूतराग और तमोगुण सम्भृत राग और तमोगुण सम्भूत द्वेषका जयकर सत्वगुणके अवलम्बनसे द्वन्द्वातीत हो जाता है, मुक्त हो जाता है; उसी प्रकार बहिर्जगतमें ऊर्द्ध्वरेता होकर वह दाम्पत्य सम्बन्धके आकर्षण और विकर्षण शक्तिका जय कर द्वन्द्वातीत मुक्तिभूमिमें पहुँच जाता है । इसीसे वानप्रस्थाश्रममें सस्त्रीक रहकर स्त्री सम्बन्धी कामका जय करके मुक्ति मार्गमें अग्रसर होनेकी विधि शास्त्रोंमें पायी जाती है । पतिभक्ति और सतीत्व की सहायता से स्त्री मुक्ति मार्ग में अग्रसर होती है और पुरुष स्त्री दुर्गद्वारा सुरक्षित होकर मुक्तिमार्ग पर विजय लाभ करनेमें समर्थ होता है। दोनों शक्तियों की जहां सुन्दर समता होती है, वही सत्वगुणमय ज्ञान और आनन्दका स्थान है ।

सृष्टिकार्यमें प्रकृतिका प्राधान्य होता है, यह कहा जा चुका है। चाहे कोई दर्शनशास्त्र उसको मूल प्रकृति कहे, कोई महामाया कहे, कोई ब्रह्मशक्ति कहे, सब दर्शन शास्त्र प्रकृतिका प्राधान्य मानते हैं। यही कारण है कि, वेद, पुराण, तन्त्रादि सब शास्त्र एक वाक्य होकर नारीका सम्मान करने और उनको जगदम्बाका स्वरूप समझकर उनकी पूजा करने की आज्ञा देते हैं । आर्यजातिके सदाचारोंमें और उसके पूजाप्रकारमें कुमारी पूजा और सुवासिनी पूजाकी सर्वमान्य विधि पायी जाती है । पश्चिम देश की वर्तमान सभ्य जातियोंमें इन सब दार्शनिक सिद्धान्तोंकी कल्पना भी नहीं पायी जाती। आर्यजाति स्त्री जातिको जगदम्बाकी प्रतिकृति समझकर उसकी पूजा करती है; परन्तु पश्चिमी सभ्य जातियाँ स्त्री जातिको केवल भोग विलासकी एक सामग्री समझती है और उसकी पवित्रता और अपवित्रताका भी कुछ विचार नहीं रखती ।

सृष्टिप्रकरणमें स्त्री और पुरुष इन दोनोंके पृथक् पृथक् अधिकारके विचारका स्थान सबसे प्रधान माना गया है । क्या प्राचीन साहित्य और क्या नवीन साहित्य क्या प्राचीन वैदिक शास्त्रसमूह और क्या नवीन अर्थादिशास्त्रसमूह और क्या प्राचीन संस्कृतिकी विद्वन्मण्डली और क्या नवीन संस्कृतिके विद्वज्जन सबकी एकवाक्यता इस विषय में होगी कि, स्त्री और पुरुष इन दोनोंका अधिकार सब तरहके सृष्टिप्रकरणमें सबसे प्रधान और परमावश्यकीय है । परन्तु अज्ञानके कारण ऐसे बड़े आवश्यकीय विषय पर बहुत कम लोग ध्यान दे रहे हैं। वर्तमान समयकी राजनीतिक उथल-पुथल, सामाजिक उथल-पुथल, तथा धार्मिक उथल-पुथल, की सन्धिमें सबसे पहिले स्त्री और पुरुषके अधिकार-विज्ञानपर ध्यान देनेकी आवश्यकता है।

वेद और वेदसम्मत शास्त्रसमूह एकवाक्य होकर यह बताते हैं कि सृष्टिकी आदि-अवस्थामें सृष्टिकर्ता भगवान् ब्रह्माजीने जब सृष्टिका प्रारम्भ किया तो उस समय सबसे पहिले सनक सनन्दन आदि पूर्णावयव मनुष्यरूपी महात्माओं की सृष्टि हुई । वे पूर्णावयव होनेके कारण उनमें सृष्टिकी वासनातकका सम्बन्ध नहीं पाया गया और न उनसे सृष्टि बढानेका कार्य ही हुआ । तदनन्तर भगवान् ब्रह्माजीने दुबारा सृष्टिकी इच्छा की तो प्रजापतिगण उत्पन्न हुए। ये एकप्रकारके देवता थे । उनको आज्ञा देनेपर उनसे मानसिक सृष्टि उत्पन्न हुई। यह सृष्टि की दूसरी अवस्था है। तदनन्तर सृष्टिकी तीसरी अवस्थामें जबकि सृष्टिके पूर्णावयव जीव उत्पन्न हो गये थे, उस दशामें स्त्री-पुरुषके संयोगसे वैजी सृष्टिका प्रारम्भ हुआ । यही साधारण मैथुनी (लौकिकी) सृष्टिकी पहिली अवस्था है। हिन्दुदर्शनशास्त्र इसके पहिलेकी सृष्टिकी अवस्था दैवी सृष्टि की अवस्था मानते हैं। लौकिकी सृष्टिकी अवस्थामें स्त्री और पुरुष दोनोंके अधिकार समान रहने पर

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी नारीजातिका स्थान प्रधान माना गया है। साधारण तौर पर देखा भी जाता है कि सृष्टिप्रकरणमें पुरुषोंका कार्य मिन्टोंका है और नारीजातिका बर्षोंका है क्योंकि उनको गर्भपालन शिशुपालन आदि कार्य करना पड़ता है। आजकल साइन्सकी उन्नतिके साथ ही साथ इस विज्ञानकी पुष्टि भी हो चुकी है कि उद्भिज्ज स्वेदज अण्डज और जरायुज इन चार प्रकारके जीवयोनियोंमें स्त्री और पुरुष का होना समानरूपसे पाया जाता है निम्नश्रेणीके उद्भिज्ज जीवोंमें स्त्रीरेणु और पुंरेणु दोनोंके सङ्गम से सृष्टि होनेके जाज्वल्यमान प्रमाण बताये गये हैं। स्वेदज अण्डज और जरायुज पिण्डोंकी सृष्टि तथा पूर्णावयव मानवपिण्डोंकी सृष्टि सबमेंही इस विज्ञानकी सिद्धि होती है।

पिण्ड तीन प्रकार का होता है। उद्भिज्ज, स्वेदज अण्डज और जरायुजपशुका सहज पिण्ड, मनुष्योंका मानवपिण्ड और देवताओंका देवपिण्ड। दर्शनशास्त्र पदार्थविद्याका विज्ञानशास्त्र और लौकिक अनुभव सबसेही यह प्रमाणित है कि सृष्टिप्रकरणमें स्त्रीजातिकी जिम्मेवरी सबसे अधिक है। स्त्री भूमिरूप है और पुरुष वीजरूप है। यही कारण है कि वेद और शास्त्रोंने एकवाक्य हो कर स्त्रीजातिके लिये तपोमूलक आचार बताये हैं और पुरुषों के लिये यज्ञमूलक आचारोंका उपदेश दिया है। दानोंके लिये पृथक् २ धर्म और आचार का होना स्वतः सिद्ध है। इस विषयमें हिन्दूशास्त्र तो एकमत हैं ही किन्तु पृथ्वीके सब चिन्ताशील पण्डितों को भी एकमत होना ही पड़ेगा, क्योंकि सत्य सत्य ही है।

सृष्टिकार्यको पवित्र रखनेके लिये वेद, स्मृति, पुराण, तन्त्र, हिन्दुओंका ज्योतिःशास्त्र और आयुर्वेद आदि सब शास्त्रसमूह एकवाक्य होकर स्त्री पुरुषके पृथक् अधिकारविज्ञानकी पुष्टि करते हैं। इस अलौकिक और परमावश्यक विषयकी ओर आधुनिक शिक्षित समाजकी दृष्टि आकृष्ट नहीं हुई है।

सृष्टिप्रकरणमें स्त्रीजातिकी पवित्रता की रक्षा और धर्मानुकूल विवाहपद्धतिकी प्रथाको स्थायी रखना परमावश्यक है। हिन्दूजातिके अतिरिक्त पृथ्वीकी अन्यजातियोंमें स्त्रीजातिकी पवित्रतारक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं है। उन जातियोंमें जैसे युवकों की स्वतन्त्रता है वैसे ही युवतियोंकी भी स्वतन्त्रता रखी गयी है। वयः प्राप्त होने पर स्त्रियां अपनी इच्छासे मनमाने पुरुषोंसे सम्बन्ध कर लेती हैं और पीछेसे उनके अपने अपने धर्मानुकूल विवाह होता है। विवाह होते ही स्वतन्त्ररीतिसे विवाहित दम्पति आनन्दोत्सव मनानेके लिये बाहर चले जाते हैं और यथेच्छाचार विहार करते हैं। पति से अनवन होनेपर एक दूसरेसे अदालतके द्वारा विवाहविच्छेद भी करा लेते हैं। स्त्रीके विधवा होने पर उनके यहां विधवाओंका बार बार पुनर्विवाह होता है। पृथ्वीके अन्यधर्मावलम्बियोंमें जन्मान्तरबाद पर विश्वास न रहनेसे विवाहित दम्पतिके लोकान्तर होने पर पतिपत्नीका सम्बन्ध स्थायी नहीं मानते हैं। इन सब कारणोंसे अन्य जातियोंमें स्त्री और पुरुषका सम्बन्ध परलोकमें भी स्थायी रहता है, ऐसा विश्वास उनमें नहीं है। परन्तु वर्णाश्रमी हिन्दुजातिमें जन्मान्तर और लोकलोकान्तरबादका सम्बन्ध पूर्ण रूपसे माना गया है आर्य स्त्रियोंमें सतीत्वधर्मका सर्वोपरि अधिकार माने जानेसे उच्चश्रेणीकी आर्यनारियोंमें विधवाविवाहकी आज्ञा नहीं है बल्कि ऐसी आज्ञा है कि शरीरकी तो बातही क्या है मनसे भी परपुरुषका सम्बन्ध होना आर्यस्त्रियाँ गर्हित समझती हैं। स्वेच्छाचार विवाह और विहार न होने देनाही वेद और स्मृतिकी आज्ञा है।हिन्दुजातिका विवाह एक बड़ाभारी धर्मकार्य है। हिन्दूका विवाह इन्द्रियसुखभोगके लिये नहीं है। बल्कि परलोकगत पितरोंको चिरसहायता पहुँचानेके लिये माना गया है। हिन्दुशास्त्रके अनुसार विवाहकी आठ श्रेणियां बतायी गयी हैं। यथा—ब्राह्म, आर्ष, दैव, प्राजापत्य, गान्धर्व, आसुर, राक्षस और पैशाच इन आठ श्रेणीके विवाहोंमेंसे ब्राह्मणजातिमें प्रथम चार श्रेणिके विवाह उपादेय हैं और पीछेके चार श्रेणीके

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विवाह हेय हैं। क्षत्रियजातिके लिये अन्य विवाहोंके उदाहरण भी कहीं कहीं पाये जाते हैं। परन्तु उनके द्वारा कन्याका संग्रह होने परभी पीछेसे शास्त्रोक्त विवाह करनेकी विधि है। जैसे राजाओंके यहां गान्धर्व विवाह होजाने पर भी पीछेसे शास्त्रोक्त विवाहविधिकी पूर्णता की जाती थी। हिन्दुशास्त्र-समूहका सिद्धान्त यह है कि कन्या में रजोधर्म होने से पूर्व कन्याके चित्तको पतिदुर्गद्वारा सुरक्षित कर देना चाहिये। क्योंकि रजोधर्म पूर्णवयस्का का लक्षण है और पूर्णवयस्क कन्या होनेपर उनमें कामादिकी चेष्टा होना भी स्वाभाविक है। इस कारण आध्यात्मिक–उन्नतिशील हिन्दुजातिमें वाग्दानकी प्रथा पहिलेसे ही प्रचलित है। और पूर्णवयस्का होनेसे पहिले कन्याका चित्त पतिदुर्ग द्वारा सुरक्षित होनेपर उसमें अपवित्रता अनाचारका वीज पैदा ही नहीं होने पाता और सतीत्वका वीज सुरक्षित रहता है। इस कारण स्वेच्छाचार विवाहका अनादर आर्यसंस्कृतिमें चिरकालसे चला आता है। आर्यसंस्कृतिमें दम्पतिके भेदका कुछ दिग्दर्शन तन्त्र और पुराणोंके आधार पर नीचे कराया जाता है।

त्रिगुणसम्बन्धी भेदके अनुसार नर और नारी तीन प्रकारके होते हैं। सात्त्विक गुणमोहित, राजसिक रूपमोहित और तामसिक नरनारी काम मोहित होते हैं। नरनारियोंके मिथुनीभूतकालमें भी तीन दशायें होती हैं। सात्त्विककी प्राकृत दशा, राजसिककी विकृत दशा और तामसिककी उन्माद दशा होती है। प्राकृत दशा मुक्तिप्रद है, विकृत दशा स्वर्गप्रद है और उन्माददशा नरकप्रद है, ऐसा समझना चाहिये। सात्त्विक स्वल्प-मैथुन-सेवी, राजसिक कामुक किन्तु विचारवान् और तामसिक नरनारी घोर कामासक्त तथा अविचारी होते हैं सात्त्विक नरनारी ज्ञाननिरत तथा परस्परार्थी होते हैं, राजसिक भोगनिरत और स्वार्थी होते हैं तथा तामसिक नरनारी विचाररहित, प्रमादी, कामभोग-परायण और अनर्थकारी होते हैं। सात्त्विक नरनारी पवित्र ज्ञानकौशल, राजसिक अद्भुत क्रियाकौशल और तामसिक पशुताभावके सदा पक्षपाती होते हैं। सात्त्विक स्वभावतः धीर, राजसिक चञ्चल और तामसिक उन्मादी होते हैं। सात्त्विक नित्य प्रेमिक, राजसिक कुटिल और तामसिक निर्लज्ज होते हैं। सात्त्विक नरनारीको सङ्गमदशामें अध्यात्म लक्ष्य और एक दूसरेके आनन्दमें तत्परता, राजसिकको एकमात्र कामज सुख लक्ष्य और भोगमें तत्परता तथा राजसिक तथा तामसिकको केवल अपना अपना लक्ष्य और प्रमादजनित सुखमें तत्परता रहती है। सात्त्विक नरनारियोंके चित्तमें ही आत्म-ज्ञान और धर्मका पूर्णस्वरूप प्रकाशित हो सकता है। स्त्री और पुरुष यदि समान प्रकृति प्रवृत्ति और धर्म वाले होकर सात्त्विक लक्षणोंको धारण कर सकें तो उनके लिये अभ्युदयकी तो बात ही क्या मुक्ति भी अतिसुलभ है। यदि दोनों स्त्रीपुरुष ज्ञानी भक्त होकर जन्मग्रहण करें तो ऐसा लोकातीत मेल हो सकता है। साधारणतः शास्त्रमें पुरुष और स्त्रीके जो चार श्रेणी बांधी है इसमें उनके शरीरके लक्षण और मापका हिसावभी दिया गया है। जिनका माप कम है, वह उत्तम समझे जाते हैं। यह विचित्रता है जो ध्यान देने योग्य है। तन्त्रपुराणादि शास्त्रोंमें पुरुष और स्त्रीके सोलह सोलह भेद कहे गये हैं। शश, मृग, वराह और अश्व ये पुरुषकी चार श्रेणियाँ होती हैं। प्रत्येक श्रेणीमें प्रत्येकका अन्तर्भाव होनेसे पुरुषकी सोलह श्रेणियाँ होती हैं। पद्मिनी, चित्रिणी, शङ्खिनो, और हस्तिनी ये चार श्रेणियाँ स्त्रियोंकी होती हैं। इन चारोंमें प्रत्येकमें प्रत्येकका अन्तर्भाव होनेसे स्त्रीकी भी सोलह श्रेणियाँ हुईं। यदि इन सोलह प्रकारके पुरुष और सोलह प्रकारकी स्त्रियोंमें ठीक ठीक समान श्रेणीमें दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित हो तो दोनोंके अभ्युदय और निःश्रेयस होते हैं। दोनोंमें स्त्रीकी श्रेणी यदि उच्च हो तो सात श्रेणी तक नारीकी प्रकृति सामञ्जस्यकी रक्षा करती है और अभ्युदयका क्रम बना रहता है। सात श्रेणीके अनन्तर अशान्ति, रोग और दुःख होता है। पुरुषका यथाक्रम सामञ्जस्य

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बना रहता है। तदनन्तर सृष्टिकी सामञ्जस्यरक्षामें बाधा होती है। स्त्रियाँ और पुरुष यदि अपने अपने धर्मसे च्युत हो तो सृष्टिका सामञ्जस्य ठीक ठीक नहीं रहने पाता। क्योंकि नारीधर्म तपःप्रधान है, और पुरुषधर्म यज्ञप्रधान है। नारीके लिये ही, श्री-मधुर वचन, त्रिविध पवित्रता, स्वार्थरहित पाति-व्रत्य, वात्सल्यभाव, सेवापरायणता और पुरुषोंके उपयोगी भावोंमें भावित होनेमें सदा अरुचि ये आठ ही उत्तम गुण कहे गये हैं। पुरुषोंके लिये अपना वर्णाश्रमाचारका सर्वदा प्रतिपालन ही उत्तम गुण कहा गया है। स्त्री और पुरुषोंकी परीक्षा बहुत ही कठिन है। ऋतम्भरा-प्रज्ञायुक्त ज्ञानी भक्त ही यथार्थ रूपसे स्त्रीपरीक्षा और पुरुषपरीक्षा करनेमें समर्थ होते हैं। सामुद्रिक विद्या, स्वरोदय विद्या और ज्योतिषविद्या आदिके द्वारा भी दोनोंकी परीक्षा की जाती है।

दाम्पत्य-सम्बन्ध करनेके लिये जिन पचीस बातों पर ध्यान देना अभ्युदय और कैवल्यकी इच्छा रखनेवालोंको आवश्यक है, वे ये हैं, यथा—कुल, शरीर, गण, योनि, ग्रह, राशि, दिन, माहेन्द्र, स्त्रीदीर्घ, राशिका अधिपति, रज्जु, वश्य, वेध, वर्णकूट, नाडी, भूतलिङ्गाख्यकूट योगिनी गोत्र, जाति, पक्षिकूटक, तारा, भकूट, प्रवृत्ति, इन्द्रियदार्ढ्य, बुद्धि और पचीसवाँ भाव। यदि समानाधिकारमें कल्याणकारी दाम्पत्यसम्बन्ध हो तो अभ्युदयकी तो बात ही क्या है, निःश्रेयस भी सुलभ है, ऐसा दाम्पत्यसम्बन्ध होने पर देवता, ऋषि, और पितरों-की प्रसन्नता होती है, कुल पवित्र होकर स्वयं ज्ञान-वान् होकर पूर्णज्ञानसम्पन्न सन्तान प्राप्त कर जगत्को धन्य करते हुए स्वयं भी धन्य होते हैं।

जिस दार्शनिक विज्ञान और सत्यपर वर्णाश्रमी आर्यजातिके स्त्रीपुरुषोंका विवाहसंस्कार प्रतिष्ठित है, उसकी कल्पना तक पृथ्वीकी अन्य जातियोंमें नहीं हैं और न उनके आचार विचारमें हो सकता है। इस कारण पृथ्वीके इस वर्तमान उथल पुथलके दिनोंमें केवल इन्द्रियसुखको लक्ष्य करके हिन्दुस्थानके नेतृवृन्दोंको विना पूर्वापर विचारके विपथगामी नहीं होना चाहिये। उनको यह विचार लेना चाहिये कि आर्यजातिका आध्यात्मिक लक्ष्य कहांसे कहां तक है और आर्योंको नारीधर्म और पुरुषधर्मके अधिकार निर्णय करनेमें हमारे पूर्वजोंने कितना सूक्ष्म विचार और दूरदर्शिताका अनुभव किया है।

हिन्दुस्थानके हिन्दुलोग स्त्रीपुरुषोंके अधिकार-विज्ञान और विवाहपद्धतिके सिद्धान्तको परम आवश्यक धार्मिक सिद्धान्त समझते हैं। क्योंकि ये सब मौलिक विचार स्त्रीपुरुषोंके भविष्यत्को सम्हा-लनेवाले हैं वंशकी संस्कृति स्थिर रखनेवाले हैं और जातिको पवित्र रखने वाले हैं। कन्या और वर दोनोंका स्वेच्छाचारी होकर विवाह करनेकी आज्ञा आर्यजातिमें नहीं है। क्योंकि काम पशुभावका स्वाभाविक प्रेरक है। युवती कन्या और युवक दोनों-में संसारका अनुभव नहीं होता, इस कारण उनसे बड़ी बड़ी भूलें हो सकती हैं। पिता माता और पारिवारिक गुरुजनमें अनुभव अधिक होता है, अतः उनसे प्रमाद होनेकी सम्भावना कम होती है। इस कारण विवाह प्रथामें युवक युवतियोंको स्वाधीनता न देकर उनको नियन्त्रित किया जाय, यही आर्य संस्कृति है। कन्यावस्थामें बालिकाओंको देवीरूप समझना, उनके सामने कभी कामचेष्टाकी बातें करनेको भी पापजनक समझना, बाल्यावस्थासे ही उन्हें धार्मिक शिक्षा देना और धार्मिक व्रतादि कराना, तुलसी, अन्नपूर्णा आदिकी पूजा कराना, कन्याके रजस्वला होनेसे पहलेही उनका विवाह संस्कार कर देना, प्रथम रजोदर्शनमें गर्भाधान संस्कार कराके देवता, ऋषि और पितरोंका संवर्धन कराके गर्भाधान संस्कारकी विधि सम्पन्न करना, ये सब बातें आध्यात्मिक उन्नतिकी सहायक हैं। पृथ्वीकी अन्य जातियोंमें इस प्रकारकी पवित्रताके साधक संस्कारोंका नाम तक नहीं है। वहां विवाह पशुधर्म-का एक सहायक मात्र है। ये सब बातें नेतृवृन्दको ध्यानमें रखनी चाहिये।

जिसके हाथमें इस समय शासन शृङ्खलाकी बागडोर है, वे सफल न होने परभी जो चाहें कर सकते हैं। परन्तु सत्य सत्यही है इस कारण उनको अन्तमें परास्त होना पड़ेगा। इस कारण उनको धर्म और ईश्वर पर विश्वास रखकर विशेष सावधान होकर काम करना चाहिये।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आर्यमहिलाओंकी संस्था ।

श्री भारतधर्ममहामण्डलसे सम्बन्धयुक्त कई एक स्वतंत्र स्वतन्त्र संस्थायें काशीपुरीमें ऐसी हैं जिनका कार्यालय श्री भारतधर्म महामण्डलके विशाल भवन में स्थापित है। यथा श्रीअन्नपूर्णादानभण्डार, भारतवर्षीय आर्यधर्मप्रचारिणी सभा, काशी आयुर्वेद सम्मिलनी, महामाया ट्रस्ट, अन्नपूर्णा ट्रस्ट, वेनीमाधवपुर ट्रस्ट, भारत सम्राट् ट्रस्ट, विश्वेश्वर ट्रस्ट। ये सब कानूनके अनुसार रजिस्ट्री की हुई संस्थायें हैं। यह आर्य महिलाहितकारिणी—महापरिषद भी रजिस्टर्ड संस्था है, जिसका प्रधान कार्यालय महामण्डल भवनमें ही है और जिसका कालेज, हाई स्कूल, ट्रेनिङ्ग स्कूल, विद्यापीठ, स्त्रियोंका अन्न, सत्र, स्त्रियोंका छात्रावास आदि श्रीमहामण्डल नगर और पिशाचमोचन नामक तालावके निकट एक विस्तृत भवनमें स्थापित है। इन सब विभागोंमें ५०० से ऊपर छात्रायें पढ़ती हैं और अन्नसत्रमें बाहरकी विधवा आदिको अन्नकी नियमित सहायता दी जाती है। इस संस्थाकी संचालिका श्रीमती विद्यादेवी महोदया हैं। उन्हींके कारण इस संस्था की इतनी उन्नति हुई है। कालेज और स्कूल आदि की प्रधान अध्यापिका (प्रिंसिपल) श्रीमती सुन्दरी देवी एम० ए०, बी० टी० हैं और कालेज तथा स्कूलोंमें अनेक एम० ए० और बी० ए० अध्यापिकाएँ हैं। छात्रावासका भी प्रवन्ध अच्छा है। इस संस्थाके निम्नलिखित विभाग हैं यथा—(१) कालेज विभाग, जिसमें बाहरकी लड़कियाँ पढ़ती हैं और छात्रा निवासमें रह कर भी पढ़ती हैं, (२) हाई स्कूल विभाग-जिसमें नीचेसे लेकर सब श्रेणीकी लड़कियां पढ़ती हैं, (३) नार्मलस्कूल विभाग जिसमें शिक्षण कलाकी शिक्षा दी जाती है जिनको गवर्नमेन्ट से छात्रवृत्ति मिलती है और परीक्षोत्तीर्ण होने पर उनको सरकारी नौकरी भी मिलती है, (४) धर्मसेविकाविद्यापीठ विभाग इसमें उच्चजातिकी विधवा लड़कियां पढ़ती हैं और उनके आजीवनका भार यह संस्था लेती है। उनसे यह आशा की जाती है कि वे परीक्षोत्तीर्ण होकर हिन्दू गृहस्थोंके अन्तःपुरमें जाकर धर्मशिक्षा और धर्मप्रचारका काम उत्तम रीतिसे कर सकें। (५) आर्यमहिला अन्नसत्रविभाग, काशीमें पुरुषोंके लिये और साधुओंके लिये अनेक अन्नसत्र हैं किन्तु दुःखी दरिद्र स्त्रियोंके लिये कोई भी अन्न सत्र नहीं है। इस अभावको दूर करनेके लिये यह अन्नसत्र विभाग खोला गया है। प्रति सप्ताह अभावग्रस्त स्त्रियोंको सूखा अन्न दिया जाता है जिससे उनका निर्वाह हो सके। (६) आर्यमहिला धार्मिक विश्वविद्यालय विभाग। इस विभागके द्वारा स्त्रियोंमें धार्मिक विश्व विद्यालयका बीजारोपण किया गया है। सब प्रान्तोंकी आर्यमहिलायें अपने घरमें ही बैठ कर इस संस्थाकी परीक्षाओंमें सम्मिलित हो सकती हैं और उपाधिआदिसे सम्मानित होकर धर्मोन्नति कर सकती हैं। (७) पुस्तक प्रकाशन विभाग, इस विभागद्वारा अनेक छोटी बड़ी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं और नियमित हो रही हैं। अपने विश्वविद्यालय, कालेज पीठ आदिमें ये सब पाठ्य पुस्तकें काममें आती हैं तथा धर्म प्रचारकार्य में उनके द्वारा बहुत कुछ सहायता मिलती है (८) आर्यमहिला मासिकपत्र विभाग, आर्यमहिलाओंकी सेवाके लिये तथा धार्मिक जगतकी सेवाके लिये 'आर्यमहिला' नामक मासिक पत्रिका हिन्दीभाषामें नियमित प्रकाशित होती है। इस धर्म कार्यके साथ सनातनधर्मी सज्जन तथा आर्यमहिलाओंको हर तरह से सहयोग देना चाहिये क्योंकि आर्यमहिलाओंकी यह अनोखी संस्था है।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिक्षाशैलीमें सुधारकी आवश्यकता।

मनुष्यका अन्तः करण जैसा विश्वका माध्यम है, जीवके पञ्चकोशोंका चालक है, मनुष्यकी सब इन्द्रियोंका प्रेरक है, मूढ योनियोंके सहज पिण्ड, देवताओंके देवपिण्ड और मनुष्योंके मानवपिण्ड सबमें यही प्रधान वस्तु है, वैसे ही मनुष्यकी क्रमोन्नति करानेमें एकमात्र कारण शिक्षा प्रणाली है। चाहे मनुष्य को उन्नतिके मार्गमें या अवनतिके मार्गमें ले जाया जाय, शिक्षाप्रणाली ही इसका एकमात्र कारण है। शास्त्रोंमें कहा है—'राजा कालस्य कारणम्' इसका प्रधान कारण यह है कि, राजा नाना प्रकारसे जिस प्रकारकी शिक्षा प्रणाली चलाता है उसके अनुसार प्रजा वैसीही बन जाती है। १७२८००० मानववर्षोंका सत्ययुग, १२९६००० वर्षोंका त्रेतायुग, ८६४००० वर्षोंका द्वापरयुग और ४३२००० वर्षोंका कलियुग होता है। इस नियमके अनुसार यद्यपि इन चारों युगोंके धर्मके अनुरूप मनुष्योंकी आयु, आरोग्य, धृति बुद्धि आदिमें बहुत कुछ हेर फेर हुआ करता है। इसीं नियमके अनुसार भगवान्‌के पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्णका आविर्भाव द्वापरके अन्तमें हुआ था और महाभारतका युद्ध हुआ था, उस समयसे लेकर वर्तमान समय तक कितना घोर परिवर्तन हुआ है, इसको बुद्धिमान् सज्जन समझ सकते हैं। भगवान् बुद्धदेवके अवतार के बाद नाना कारणोंसे भारत द्वीपमें बहुत ही परिवर्तन हुआ था। उस समयके बौद्ध राजाओंके प्रभावसे भारतकी बहुसंख्यक प्रजाने बौद्धधर्मको ग्रहण किया था। ऐसा होनेपर भी पूज्यपाद महर्षियोंकी स्थापित की हुई आर्यसंस्कृति और सनातनधर्मकी वर्णाश्रमश्रृंखलाके प्रभावसे हिन्दुसमाजमें कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हो सका। इसी कारण बौद्ध धर्मका आधिपत्य भारतसे उठ गया और अन्यान्य अनार्य देशोंमें बौद्धधर्म का प्रचार हुआ। उस समय विदेशोंके जो विद्वान् भारतखण्डमें ज्ञानोन्नतिके लिये आया करते थे, उनके लेखों और पुस्तकोंसे ज्ञात होता है कि, उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों और ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास इन चार आश्रमोके अनुसार विधि पूर्वक शिक्षा यहां प्रचलित थी। यही कारण है कि, बौद्धधर्मके उसकी जन्मभूमिसे उठजानेके पश्चात् इस धर्म भूमिमें कुछ भी उथल-पुथल नहीं हो सकी थी, मनुष्यसमाजमें सर्वोन्नत पदको प्राप्त ब्राह्मण जाति धन और ऐश्वर्य तथा राजसिक सुखसे अपने को बचाये रहती और दरिद्रवृत्तिसे अपना योगक्षेम चलाकर सम्पूर्ण जगत्‌के कल्याणार्थ नाना प्रकारसे विद्याप्रचारका प्रयत्न किया करती थी, उनके परामर्शानुसार राज शासन चलता था, परन्तु उनपर राजशासनका प्रभाव डालनेकी आवश्यकता नहीं रहती थी। भारतखण्डकी प्रजा न चोरी करना जानती न झूठ बोलना ही जानती थी। उसके अनन्तर जब रत्नगर्भा भारतभूमिका ऐश्वर्य बढ़ता रहा और राजा तथा प्रजा आलसी हो गये, तब मुसलमान साम्राज्य भारतखण्डमें स्थापित हुआ था। उस समय राजा और प्रजाकी सत्यपरायणता और वीरता इतनी बढ़ी थी कि, मुसलमान आक्रमणकारियोंने झूठ बोलकर धोखा देकर और अपनी प्रतिज्ञाओंको बदलकर दिल्लीके हिन्दुसम्राट्‌का बधकर दिया, किन्तु हिन्दुजाति अपनी सत्यपरायणता से नहीं डिगी मुसलमानी साम्राज्यमें राजा और प्रजा दोनों हिन्दुस्थानको ही मातृभूमि मानते थे। इस कारण मुसलमान राजाओंने हिन्दु प्रजाको अपनी वास्तविकतासे गिरानेका कोई प्रयत्न नहीं किया। मुसलमान सम्राट और शासकगण हिन्दुजातिकी सत्यप्रियता, अचौर्यवृत्ति, अहिंसाप्रवृत्ति, सतीत्वपक्षपात आदि सद्वृत्तियों का आदर करते थे। वर्तमान समयमें तो राजशासन

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का इतना कुफल फैला है कि, अब झूठ-सचका विचार ही नहीं रहा। अब तो राजनीतिका अर्थ झूठ ही हो रहा है। अदालतों, थानाओं, बाजारों, व्यक्तिगत व्यवहारोंमें नीचेसे लेकर ऊपर तक सब ओर झूठ और चालबाजोंका दौर दौरा है। अन्न और वस्त्र की कमी भारतखण्डमें कभी नहीं हुई थी। जिस भारतमें १) में मनों अन्न मिलता था, वहां सेर भर भी नहीं मिलता और लोग भूखे मर रहे हैं। लज्जानिवारणकेलिये वस्त्राभावके कारण स्त्रियां आत्महत्या तक कर रही हैं। मुसलमानी शासनकालमें स्वधर्मपालनकी जितनी सुविधा थी, उतनी भी अब नहीं रह गयी है। "राजा कालस्य कारणम्" इस सिद्धान्तके अनुसार राजशासकोंकी अदूरदर्शिता का ही यह परिणाम है।

दूसरी ओर सब जातियोंमें धर्मशिक्षाका अभाव नास्तिकताकी वृद्धि, बड़ोंका आदर न करनेकी प्रवृत्ति, सदाचारका त्याग, स्त्रियोंको पुरुष बनानेका प्रयत्न, स्त्रियोंमें सतीत्वधर्मका अनादर, स्वधर्मीविद्वेष, परधर्मियोंके साथ शत्रुताकी वृद्धि, शिक्षाप्रणालीमें भी कूटराजनीतिका प्रवेश, राजशासनमें कूटनीतिके बरतावसे दूसरोंके धर्मकी गुप्तरूपसे जड़ काटनेकी चेष्टा बालक-बालिकाओंको उच्छृङ्खल बनने का सुभीता, इत्यादि कुलक्षण दिखायी देते हैं, इसका प्रधान कारण वर्तमान शिक्षा प्रणाली ही है। वर्तमान शिक्षाप्रणालीका सबसे बड़ा दूषण, जो जगत्में दिखायी देता है और जिसकी नकल हिन्दुस्थानमें भी बड़े आग्रहसे की जा रही है, वह यह है कि, भगवच्चरणारविन्दसे विमुख करनेवाली पदार्थविद्या (साइन्स) की शिक्षाको प्रधानता दी जा रही है। युरोप और अमेरिकाकी शिक्षा-प्रणालीमें बहिर्जगतके चाकचिक्यमें अधिकसे अधिक फँसानेके निमित्त सब विषयोंमें पदार्थविद्याकी उन्नतिका लक्ष्य रखा गया है। सूक्ष्म विचारशक्ति बढ़े और अन्तर्जगत्का रास्ता सूझपड़े, ऐसा कोई उपाय नहीं किया जाता। भगवान्पर निष्ठा बढे, धृति, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धिशक्ति बढे, अन्तर्जगतमें प्रवेश करने योग्य बुद्धिकी वृद्धि हो, परलोकविचार बढ़े, इत्यादि बुद्धिको मार्जित करने की योग्यता प्राप्ति की ऐसी कोई बात वर्तमान शिक्षा प्रणालीमें नहीं पायी जाती, जिससे मनुष्यजाति नीचेकी ओर गिरती जा रही है। बुद्धिको उन्नत करनेके लिये और अन्तमें श्रीभगवान्के चरणकमलोंमें पहुँचनेकेलिये जो दार्शनिक शिक्षाप्रणाली पूज्यपाद महर्षियोंने हिन्दु शास्त्रोंमे स्थान स्थानपर प्रदर्शित की है, उसकीओर विदेशीविद्वानोंकी तो क्या, इस देशके विद्वानोंकी भी दृष्टि आकृष्ट नहीं हुई है।

पराधीनताका सबसे बड़ा दोष यह है कि, पराधीन मनुष्य शरीरसे ही नहीं, किन्तु अन्तःकरणसे भी पराधीन हो जाते हैं। वे अपनी दृष्टिसे नहीं; किन्तु विजेताओंकी दृष्टिसे संसारको देखते और उन्हींकी विचार धारामें बहने लगते हैं। इस देशमें मुसलमानी साम्राज्यसे लेकर अंग्रेजी शासनकाल तक पराधीनता बनी रही, इस कारण यहाँके पढ़े लिखे विद्वान लोग भी अपनी विद्याका दुरुपयोग करने लगे। यह शिक्षा शैलीका ही कुफल है। जब भारत स्वतन्त्र हो गया है, तब उसे अपनी शिक्षा शैलीमें ऐसा परिवर्तन करना आवश्यक है, जिससे उक्त सब दोष दूर किये जा सकें। थोड़ेसे धैर्यसे यह विचार किया जाय तो साधारण बुद्धिके लोगोंकी समझमें भी यह बात आ सकती है कि इस समयके बड़े बड़े अंग्रेजी शिक्षित विद्वान् कितने ही शास्त्रज्ञ हो जायं, परन्तु उनके विचारोंका दृष्टिकोण विजेताओंके ही ढङ्ग पर रहता है। चाहे सम्बद्ध हो या असम्बद्ध, वे शास्त्र वचनोंका अर्थ बिना सोचे समझे उलटा ही लगाया करते हैं। चाहे कितने ही उन्नत अन्तःकरणके साधु महात्मा हों; वे अपनी राजसिक बुद्धि और राजनीतिक स्वार्थपरताके कारण बिना सोचे-समझे शास्त्र वचनोंका उलटा अर्थ लगाते हैं। शास्त्रके अर्थ न समझनेसे उस शास्त्रकी वे पूरी मर्यादा नहीं रख सकते और स्वयं न समझनेसे अज्ञानी प्रजाको भी गड्ढेमें गिरा देते हैं। उदाहरणार्थ, गीताशास्त्रमें भगवान्ने कहा है कि, गुण और कर्म विभागसे मैंने चातुर्वर्ण्यकी सृष्टि

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की है। यहाँ गुणका अर्थ है सत्व, रजस् और तमोगुण और कर्मका अर्थ है, मनुष्यके पूर्व संस्कारार्जित स्वाभाविक कर्म। परन्तु उक्त प्रकारके शास्त्रानभिज्ञ व्यक्ति इसका उलटा अर्थ करते हैं। ये गुणका अर्थ करते हैं, सदसद्वृत्तियां। सत्व, रज और तम इन तीन गुणोंका जो गीतामें उल्लेख है—रहस्य न समझ कर वे स्वयं भूल भुलैयामें पड़ते और लोगोंको भूलभुलैयामें डाल देते हैं। हिन्दुस्थानका जो शास्त्र पठित विद्वानोंका दल है उसकी भी विचित्र दशा है। संस्कृत विद्वानोंमें आज कलकी शिक्षाप्रणालीके अनुसार ईश्वर ज्ञान, परलोक ज्ञान, कर्म विज्ञानका ज्ञान न होनेसे और उनमें आर्यसाहित्य की अपेक्षा लौकिक साहित्यका अधिक प्रचार हो जानेसे 'इन सब विषयों पर वे न स्वयं ध्यान दे सकते, न दूसरोंका ध्यान आकृष्ट कर सकते हैं। वे शास्त्रकी महिमा भूल ही गये हैं। पृथ्वीके अन्य जितने धर्म मार्ग हैं, उनके आचार्योंके वचन और उनके ग्रन्थ हैं अब ये वैसे ही प्रमाण माने जाते है, परन्तु हमारे वैदिक सनातन धर्ममें यह बात नहीं है, उनका सब विषय दार्शनिक युक्तिसे सिद्ध किया जा सकता है। दर्शन अर्थात् नेत्ररूप होनेसे शास्त्रीय ऐसा कोई विषय नहीं है, जो दार्शनिक युक्तिसे सिद्ध न किया जा सके। इस समय दर्शन शास्त्रकी शिक्षाका अभाव है, यही इस दुःखका कारण है।

इस समय संसारभरकी शिक्षाशैलीमें इसी सुधारकी आवश्यकता है कि नाना पदार्थ विद्याओंके साथ ही साथ अन्तर्जगत् में प्रवेश करानेवाली दार्शनिकशिक्षाका प्रचार किया जाय। हिन्दुओंके शास्त्रोंमें दार्शनिकशिक्षाकी जो यथाक्रम व्यवस्था है उसके अनुसार सब प्रान्तीय भाषाओं और सब देशभाषाओंमें यथायोग्य सुगम बोध्य पाठ्य ग्रन्थ बना कर शिक्षाप्रणालीमें योग्य परिवर्तन करनेकी नितान्त आवश्यकता है। इस विषयमें चिन्ताशील व्यक्ति जितना विचार करेंगे हमारे मतसे ही उन्हें सहमत होना पड़ेगा।

हिन्दी भाषाकी सेवा।

पिछली शताब्दीके अन्तिम हिस्सेसे श्रीभारतधर्ममहामंडल हिन्दीभाषाको राष्ट्रभाषा बनाने, उसकी मर्यादा बढ़ाने और उसकी सब प्रकारसे सेवा करनेका उद्योग करता रहा है। तबसे लेकर अब तक कमसे कम दो सौ पुस्तकें और पुस्तिकाएँ और मौलिक ग्रन्थ छापकर प्रकाशित किये गये हैं। आध्यात्मिक उन्नतिशील हिन्दूजातिका स्वदेश हिन्दुस्तान है। हिन्दी उसकी मातृभाषा है। उस मातृभाषामें जब तक आध्यात्मिक ग्रन्थ नही प्रकाशित होंगे तब तक उस भाषा की यथार्थ उन्नति नहीं होगी। इसी विचारको सदा सम्मुख रखकर श्रीभारतधर्ममहामंडलने अनेक दार्शनिकग्रंथ, उपनिषद्ग्रंथ और नाना शास्त्रीयग्रंथ, पुराण आदिका हिन्दी अनुवाद और मौलिकभाष्य आदि सहित प्रकाशित किया है।

सबसे पहले इस महासभाने एक विस्तृत हिन्दी शब्द कोष प्रकाशित करनेका आयोजन किया था। उसी समय काशीदेवनागरीप्रचारिणीसभाका जन्म हुआ था। जब इस शताब्दीके पहले श्रीमथुरापुरीमें श्रीभारतधर्ममहामंडलका अ० भा० महाधिवेशन हुआ था। उस समय उस महाधिवेशनमें सहयोग देनेके लिये और अपनी अपनी संस्थाओंके सम्मानवृद्धिके अभिप्रायसे हिन्दूकालेज जो अब हिन्दू यूनीवर्सिटी बनी है उसकी ओर से डा०

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भगवानदास साहब और काशी देवनागरीप्रचारिणी सभाकी ओरसे उसके मन्त्री स्व० बा० राधाकिशनजी मथुराके महाधिवेशनमें पहुँचे थे। कर्मयोगी डा० भगवानदास साहब ने कार्यकर्ताओंको उस महाधिवेशनके प्रबन्ध करनेमें बहुत कुछ सहायता दी थी जो कृतज्ञतासे स्वीकार करने योग्य है। काशीदेवनागरीप्रचारिणीसभाके मन्त्री श्रीमान् स्व० बा० राधाकिशनजीने उस समय महामंडलके कार्यकर्त्ताओंसे प्रस्ताव किया था कि महामंडलके पास काम बहुत है और देवनागरी-प्रचारिणी सभा हिन्दीका एक कोश निकालना चाहती है। इस कारण महामंडल इस कार्यको देवनागरी प्रचारिणी सभाको सौंप देवे और इस सम्बन्धमें जो कुछ मसाला संगृहीत हुआ हो कृपा कर मुझे दे दिया जावे। श्रीमान् बाबू साहबके इस शुभ प्रस्तावको स्वीकार करके महामंडलके कार्य-कर्त्ताओंने इस शुभकार्यके लिये जितनी पुस्तकें संग्रह की थीं और जो जो रजिस्टर खोले थे सबको इकट्ठा करके श्रीमान् बाबू साहबको मथुरा पुरीमें दे दिये थे उसके बाद काशीदेवनागरी प्रचारिणी सभासे जो हिन्दी कोश निकला है वह सबको विदित ही है।

श्रीमान् शारदाचरण मित्र महाशय जो कलकत्ता हाईकोर्टके एक नामी और न्यायपरायण जज थे वह अपने जीवनके अन्त पर्यन्त बड़ी योग्यताके साथ महामण्डलके चीफ सेक्रेटरीका कार्य सम्पन्न करते रहे। सबसे पहले उन्होंने देवनागरी अक्षरोंके प्रचारार्थ और हिन्दीकी उन्नतिके अभिप्रायसे एकलिपि विस्तार परिषद् स्थापन किया था और बड़ी योग्यतासे और अपने खर्चेसे नियमित रूपसे त्रैमासिक पत्र निकाल कर हिन्दुस्तान भरमें बांटा करते थे। इसके लिये सब हिन्दी भाषा भाषी उनके कृतज्ञ हैं।

इन सब शुभ कार्योंके विषयमें काशी देवनागरी प्रचारिणी सभाके कार्यकर्तागण परिचित हैं या नहीं सो मालूम नहीं।

श्रीभारतधर्म महामण्डलने यह विचार किया है कि जब हिन्दुस्तानकी राष्ट्रीयभाषा हिन्दी होने वाली है तो उसको संस्कृत गुम्फित बनाया जाय और उसमें विदेशीय शब्दोंका सम्मेलन कम हो तभी ऐसी भाषाकी हिन्दुस्तानकी राष्ट्रभाषा होनेसे शोभा होगी। हिन्दुस्तान जगत्का आदि गुरु है और आध्यात्मिक उन्नतिशील हिन्दू जातिकी भाषा, धर्म तथा आध्यात्मिक विषयोंसे पूर्ण होना चाहिये। इसी कारण श्रीभारतधर्ममहामण्डलने अब तक जितनी बड़ी बड़ी पुस्तकें, छोटी बड़ी पाठ्य पुस्तकें तथा प्रचारार्थ छोटी छोटी पुस्तकें प्रकाशित की हैं, उसमें यही शुभ लक्ष्य रखा गया है। सबसे पहले सनातनधर्मका एक बृहत् विश्वकोश जो रायल साइजके बड़ी बड़ी आठ जिल्दोंमें प्रकाशित हुआ है जिसका नाम 'धर्मकल्पद्रुम' है उसके द्वारा हिन्दी भाषामें आध्यात्मिक उन्नतिसम्बन्धी विचारोंकी दृढ नीव डाली गई है। हिन्दी भाषाकी पुष्टि और अंग्रेजी पढ़े लिखे विद्वज्जनोंके उपकारार्थ 'धर्म-विज्ञान' नामक दूसरा ग्रन्थ डबल क्राउन आठ पेजी आकारमें तथा तीन बड़े बड़े खण्डोंमें प्रकाशित हुआ है। जिस ग्रन्थमें विदेशीय अंग्रेजी भाषाभाषी विद्वानोंकी सम्मति साथ ही साथ देनेसे विदेशीय भाषा और भावसम्पन्न विद्वानोंके निकट धर्म विज्ञानका आदर और भी बढ़ गया है। कई उपनिषदों पर मौलिक हिन्दी भाष्य प्रकाशित हुए हैं। अनेक पौराणिक ग्रन्थ भी टीका टिप्पणी सहित छपनेसे पुराणके पाठकोंको बहुत कुछ लाभ पहुँचा है। छोटी बड़ी पाठ्य पुस्तकें इतनी संख्यामें बन गई हैं कि उनके द्वारा ,स्कूल, कालेज, हिन्दी और संस्कृत पाठशालाओंमें तथा सब प्रान्तोंके विश्वविद्यालयोंमें नीचेकी श्रेणीसे लेकर उच्चसे उच्च श्रेणी तक सनातनधर्म अध्यापनका काम अच्छी तरह हो सकता है। वैदिक सप्त-दर्शनोंका यथाक्रम सिलसिला बांधकर हिन्दीमें टीकाग्रन्थ और भाष्यग्रन्थ छप रहे हैं, जिनकी सहायतासे हिन्दुस्तानकी शिक्षा-प्रणालीमें बहुत कुछ सुधार होना संभव है।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सामाजिक सुधारमें सावधानता ।

हिन्दुस्थानके सब श्रेणीके नेतृवृन्दसे सविनय निवेदन यह है कि वे भारतद्वीपमें जो कुछ नवीन परिवर्तन करना चाहें, वह बहुत सोच समझ कर करें। नहीं तो उन्हें बहुत विपत्तिका सामना करना पड़ेगा और वे 'इतोभ्रष्टस्ततोनष्टः' हो जायंगे। उनको पहलेसे ही यह समझ लेना चाहिये कि हिन्दु-जाति करोड़ों वर्षोंसे अपने स्वरूपमें जीवित है। उसके प्राचीन ग्रन्थोंसे युग युगान्तर, मन्वन्तर मन्व-न्तरान्तर और कल्प कल्पान्तरका सीधा हिसाब मिलता है। इन सब बातोंको वे कमसे कम सुन तो लिया करें। युरोप या अमेरिकाकी नकल करके एकाकार फैलाकर, सब प्राचीन संस्कृतिको तोड़ मरोड़कर यदि हिन्दुस्तानमें वे नयी संस्कृति फैलाना चाहेंगे, तो विफलकाम ही नहीं होंगे, किन्तु विपत्तिमें पड़ जायंगे। हिन्दुजातिका शास्त्रीयज्ञान किस प्रकार महान् देश और महान् काल का विभाग करता है, अनादि अनन्तकालको कैसे विभक्त करता है, कालको चतुर्युग, महायुग, मन्वन्तर,कल्प आदिमें बांटकर प्रमाणके साथ बताता हैं, वैसे ही देशको चतुर्दशभुवनोंमें विभाजित करता है, तथा पूर्णावयव जीव मानव-पिण्डके सदृश हमारे ब्रह्माण्डके सातों अधोलोकोंको बिलस्वर्ग नामसे असुरोंका निवास बताता है और ऊपरके सातों लोकों को भौमस्वर्ग, माहेन्द्रस्वर्ग, प्राजापत्यस्वर्ग, और ब्राह्मस्वर्ग रूपसे चार विभागों में विभक्त कर प्रमाणसहित विस्तृत रूपसे निर्णय करता है, जैसा कि, भूः और भुवः ये दो लोक भौमस्वर्ग कहाते है, इनमें यहां के सब ग्रह नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र आदि सम्मिलित हैं। उसका अन्तिम लोक ध्रुवलोक है, जो रात्रिमें उत्तरदिशामें दिखायी देता है। उसके ऊपर अन्यान्य स्वर्ग हैं, और योग शक्तिसे ये कैसे निश्चित किये गये हैं, जिनकी साधन प्रणाली योगदर्शनमें संक्षिप्त रूपसे बतायी गयी है। मानव पिण्डकी तरह ब्रह्माण्डका भी उसी तरह का स्वरूप दर्शनशास्त्रमें निश्चित किया गया है। ये सब असाधारण बातें समाज-संस्कारकी इच्छा रखने वाले नेताओं को पहले स्वयं समझ लेना चाहिये। राजनीतिक संस्कार करनेके विषयमें युरोपकी वर्तमान डिमाक्रसी, सोशियालिज्म, कम्युनिज्म आदिको अपने दृष्टिकोणमें रख कर इस देशकी गवर्नमेण्ट में वे उचित संस्कार अवश्य कर सकते हैं, परन्तु अन्य बातोंमें विना विचारके संस्कारकी इच्छा करना बवनेका चन्द्रमाको छूनेकी इच्छा करना जैसा बाल चापल्यमात्र है।

सबको एकाकारमें लाकर समाजको एक सांचेमें ढाल कर नयी समाजरचनाका जो उद्योग किया जाता है, वह ईश्वराज्ञा और प्रकृतिके विरुद्ध है, हिन्दु जातिकी संस्कृति इसको स्वीकार नहीं करेगी। ईश्वरविहीन शिक्षा देनेका जो प्रयत्न हो रहा है, जिसका कुफल सारे संसारमें दिखायी दे रहा है, उससे मनुष्यसमाजकी दिन दिन हानि ही होगी, कदापि अभ्युदय नहीं होगा। राजनीतिक्षेत्रमें समानाधिकारके लिये उन्हें जो कुछ करना हो, भले ही करें, परन्तु हिन्दुसमाजमें एकाकारको फैला कर उसे नष्ट न करें। शिक्षाप्रणालीमें जो कुछ संस्कार किया जाय, उसमें निम्नलिखित बातों पर अवश्य ध्यान दिया जाय, १· बालक-बालिकाओंको एक साथ एक ही सांचेमें ढालनेकी जो प्रवृत्ति हो रही है, वह मनुष्यत्वका नाश कर देगी। युरोप और अमेरिकाके मेडिकल रिपोर्टोंसे विदित होता है कि, वहांके विद्यार्थी और विद्यार्थिनियोंमें व्यभिचार का स्रोत कैसा बह रहा है, जो अब रोका नहीं जा सकता और त्रिलोक पवित्रकारी सतीत्वका उन देशोंमें लोप ही हो गया है। अतः हिन्दुस्तानमें

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस कुप्रथाका कदापि अनुसरण नहीं होना चाहिये। जगदीश्वरके चरणोंमें जीवकी भक्ति बढ़े, इसके लिये ऐसी सुकौशलपूर्ण धार्मिक शिक्षा देनी चाहिये, जिससे किसी धर्म संप्रदायका मतभेद न हो। निम्न कक्षाओंमें सर्व शक्तिमान् भगवान्‌की व्यापक सत्ता और उनके सर्वशक्तिमान होनेका वर्णन पाठ्य ग्रन्थोंमें आने और साथही साथ साधारण धर्मके लक्षण, यथा-धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध इन दश धर्मके लक्षण दैवी और आसुरी सम्पत्तिके लक्षण और भेद इत्यादि बातें यदि बालक-बालिकाओंको सिखायी जाय, तो हिन्दुस्थानकी मुसलमान, पारसी आदि किसी जातिका उनसे मतभेद नहीं हो सकता। उच्च शिक्षाके लिये दर्शन-शास्त्रका यथार्थ में अभ्यास करानेसे विद्यार्थी और विद्यार्थिनियोंकी बुद्धि दृढ़ताको प्राप्त करेगी और उन्हें कोई नास्तिकताको ओर नहीं ले जासकेगा।

सृष्टिके आदिसे लेकर अबतक हिन्दुजातिमें जो रजोवीर्यकी शुद्धिकी व्यवस्था चली आरही है और जिस संस्कृतिके कारण हिन्दुजाति जगत्पूज्य और आदि जगद्गुरु कहाती आयी है, उस त्रिलोक पवित्रकारी संस्कृतिका नाश करनेका कदापि प्रयत्न नहीं होना चाहिये। एकाकार फैलानेके प्रच्छन्न अभिप्रायसे जो सगोत्रविवाह करनेका प्रयत्न हो रहा है वह महापापकारी हैं, क्योंकि सृष्टिके प्रारम्भके आदि ऋषियोंसे ही गोत्र चला है और गोत्र-रक्षा से ही आज तक हिन्दुजाति जीवित है। इसको चिरजीवी बनाये रखनेके लिये गोत्र-प्रवरोंकी रक्षा और रजोवीर्य शुद्धि मूलक जन्मसे जाति माननेकी रीतिकी रक्षा बहुत ही आवश्यक है।

इस समय हिन्दुजातिकी प्राचीन संस्कृति और हिन्दुजातिके सर्वजीव-हितकारी धर्ममें हस्तक्षेप किया जा रहा है, इसका मुख्य कारण हमारा पतन और हमारी दुर्बलता है। हिन्दुस्थानमें और भी जातियां हैं उनके धर्ममें हस्तक्षेप करनेका कोई साहस नहीं करता; क्योंकि वे संघटित हैं और हिन्दु असंघटित हैं। अन्य जातिके बालक-बालिकाओंको बचपनमें ही उनके धर्मकी कुछ न कुछ शिक्षा दी जाती हैं; परन्तु हमारे सनातनधर्मका महान् सर्वजीवहितकारी स्वरूप कैसा है और उसके प्रधान १६ अङ्ग कौन से हैं, इसका परिज्ञान अंग्रेजी शिक्षित या संस्कृतशिक्षित किसीको भी नहीं है। अतः हमारे सब सामाजिक नेताओंको अपने साधारण धर्मका ज्ञान तो अवश्य होना चाहिये और हिन्दु-गृहस्थके बालक-बालिकाओंको पहली ही अवस्थामें वह कण्ठस्थ करा देना चाहिये। हिन्दुधर्म और संस्कृतिके अनुसार जो समाजसंघटन ग्रामसंघटन करना चाहते हैं, वे यदि मांगें, तो श्रीभारतधर्ममहामण्डल इस प्रकारके साहित्यको देकर सहायता कर सकता है।

भगवत् अवतार और भगवान् रामचन्द्रका समय।

पुराणशास्त्र वेदका भाष्यरूप है। वर्तमान समय में जितना वेदका रहस्य पुराणोंमें मिल सकता है उतना और किसी शास्त्रमें नहीं मिल सकता, परन्तु अफसोसकी बात यह है कि आज कलके विद्वज्जन पुराणोंको प्रेमसे न पढ़ते हैं न उनको समझनेका प्रयत्न करते हैं। वेदकी तरह समाधिभाषा, लौकिक-भाषा और परकीयभाषा यह भाषात्रय और अध्यात्मभाव, अधिभूतभाव और अधिदैवभाव यहभावत्रय, सात्त्विक अधिकारी राजसिक अधिकारी और तामसिक अधिकारीके लिए गुणत्रयकी भाषा, सप्त वैदिक दर्शनों का सिद्धान्त आदि न समझनेसे और सब पुराणोंका प्रचार बन्द होकर एक दो पुराणका प्रचार बने रहनेसे साधारण लोगोंको तो बात ही क्या बड़े बड़े विद्वानोंकी समझमें भी पुराण अच्छी तरह नहीं आते।

सर्वमय, तथा सर्वशक्तिमान् भगवान्‌के लिये

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जैसे सगुणरूप धारण करना सुगम ही है वैसे ही लीलामय अवताररूपसे प्रगट होना खेलमात्र है। श्रीभगवान्ने निजमुखसे अपने कृष्ण अवतारमें भक्त अर्जुनसे कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

अर्थात् हे भारत! जब जब धर्मकी हानि होती है और अधर्मकी उन्नति होती है तब तब मैं अवतार ग्रहण करता हूँ। मैं प्रत्येक युगमें सज्जनोंकी रक्षाके लिये और पापियोंके विनाशके लिये और धर्मके स्थापनके लिये अवतार लेता हूँ। इस भगवद् वचनसे यह सिद्ध हुआ कि अवतारका आविर्भाव क्यों होता है और जिस केन्द्रमें अवतारका आविर्भाव होता है उनका भी जन्म जन्मान्तर होता है जैसे कि पूर्व जन्ममें नारायण ऋषि और नर ऋषि ही पीछेसे कृष्ण और अर्जुन होकर प्रगट हुए थे। सुतरां अवतारोंमें कर्मका दो प्रवाह स्वतन्त्ररूपसे कार्य करता है। एक तो अवतारकी भगवत् शक्ति और दूसरा उस केन्द्रकी जन्म जन्मान्तर लेनेकी शक्ति। सबसे प्राचीन महापुराण श्री मद्देवीभागवतमें अवतारोंके प्रगट होनेके विषयमें जो कालका निर्णय किया गया है वह निम्नलिखित है—

जनमेजय उवाच

भृगुशापान्मुनिश्रेष्ठ! हरेरद्भुतकर्मणः।
अवताराः कथं जाताः कस्मिन् मन्वन्तरे विभो॥१॥
विस्तराद्वद धर्मज्ञ! अवतारकथां हरेः।
पापनाशकरीं ब्रह्मञ्छृतां सर्वसुखवहाम्॥२॥

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि अवतारान् हरेर्यथा।
यस्मिन् मन्वन्तरे जाता युगे यस्मिन्नराधिप॥३॥
येन रूपेण यत्कार्यं कृतं नारायणेन वै।
तत्सर्वं नृप वक्ष्यामि संक्षेपेण तवाधुना॥४॥

जनमेजयजी बोले

हे मुनिश्रेष्ठ! अद्भुत कर्मवाले भगवान्के भृगुऋषिके शापसे कौनसे अवतार किस मन्वन्तरमें किस प्रकार हुए इस बातको हे विभो! विस्तार पूर्वक कहिये॥१॥

हे धर्मज्ञ ब्राह्मणदेव! भगवान्केअवतारोंकी कथाकोविस्तार पूर्वक कहिये, क्योंकि वह सुनने पर पापोंको नष्ट करती है। और सब प्रकारके सुखोंको देती है॥२॥

धर्मस्यैवावतारोऽभूच्चाक्षुषे मनुसम्भवे।
नरनारायणौ धर्मपुत्रौ ख्यातौ महीतले॥५॥
अथ वैवस्वताऽऽख्येऽस्मिन् द्वितीये तु युगे पुनः।
दत्तात्रेयोऽवतारोऽत्रेः पुत्रत्वमगमद्धरिः॥६॥

व्यासजी बोले—

हे राजन्! भगवान्के अवतार जिस मन्वन्तरमें जिस युगमें, जिस प्रकार हुए इन बातोंका मैं वर्णन करूंगा। हे नराधिप! तुम सुनो॥३॥ हे राजन्! नारायणने जिस रूपसे जो काम किया है उसका वर्णन मैं संक्षेपके साथ इस समय तुम्हारे सामने करूंगा॥४॥

चाक्षुष मनुके समय धर्मका ही अवतार हुआथा। इसपृथ्वी तलमें नरनारायण धर्मके पुत्रके रूपमें प्रसिद्ध हुए थे॥५॥

उसके बाद वैवस्वत नामके इस दूसरे युगमें भगवान्ने दत्तात्रेय नामक अवतारको ग्रहण किया जोकि अत्रि ऋषिके पुत्रके रूपमें प्रसिद्ध हुए॥६॥

ब्रह्माविष्णुस्तथा रुद्र स्त्रयोऽमी देवसत्तमाः।
पुत्रत्वमगमन् देवास्तस्यात्रेर्भार्य्यया वृताः॥ ७॥
अनुसूयात्रिपत्नी च सतीनामुत्तमा सती।
यया सम्प्रार्थिता देवाः पुत्रत्वमगमंस्त्रयः॥ ८॥
ब्रह्माऽभूत्सोमरूपस्तु दत्तात्रेयो हरिः स्वयम्।
दुर्वासा रुद्ररूपोऽसौ पुत्रत्वं वै प्रपेदिरे॥ ९॥

अत्रि ऋषिकी पत्नीने वर माग लिया था, इसलिये देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा, विष्णु और ये तीनों ही उनके पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए थे॥ ७॥ अत्रि ऋषिकी पत्नी अनुसूया सतियोंमें श्रेष्ठ थी उससे प्रार्थित होने पर तीनो देवता उसके पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए थे॥ ८॥

ब्रह्माजी सोम (चन्द्र) रूपसे, स्वयं भगवान् दत्तात्रेय रूपसे, रुद्र दुर्वासा रूपसे उत्पन्न हुए थे। इस प्रकार तीनों देवता पुत्रत्वको प्राप्त हुए थे॥ ९॥

नृसिंहस्यावतारस्तु देवकार्यार्थसिद्धये।
चतुर्थे तु युगे जातो द्विधारूपो मनोहरः॥ १०॥

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हिरण्यकशिपोः सम्यग्वधाय भगवान् हरिः ।
चक्रे रूपं नारसिंहं देवानां विस्मयप्रदम् ॥ ११ ॥
बले र्नियमनार्थाय श्रेष्ठे त्रेतायुगे तथा ।
चकार रूपं भगवान् वामनं कश्यपान्मुनेः ॥ १२ ॥

चौथे युगमें देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये नृसिंह अवतार हुआ था, यह मनुष्य और सिंह दोनोंरूपोंसे शोभायमान था ॥ १० ॥

भगवान् हरिने हिरण्यकशिपुके अच्छी तरहसे वधके लिये नरसिंह रूपको धारण किया था; यह रूपभी देवताओं-को विस्मयमें डाल रहा था ॥ ११ ॥

उसी प्रकार श्रेष्ठ त्रेतायुगमें बलिको बांधनेके लिये भगवान्का कश्यप ऋषिसे वामन अवतार हुआ था ॥१२॥

छलयित्वा मखे भूपं राज्यं तस्य जहारह ।
पाताले स्थापयामास बलिं वामनरूपधृक् ॥ २३ ॥
युगे चैकोनविंशोऽथ त्रेताख्ये भगवान् हरिः ।
जमदग्निसुतो जातो रामोनाम महाबलः ॥ १४ ॥
क्षत्रियान्तकरः श्रीमान् सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
दत्तवान् मेदिनीं कृत्स्नां कश्यपाय महात्मने ॥ १५ ॥

वामनरूपको धारण करनेवाले भगवान्ने यज्ञमें छलकरके राजा बलिके राज्यको छीन लिया । उसके बाद उसे पातालका राजा बनाया ॥ १३ ॥

उसके बाद भगवान् हरि त्रेता नामक उन्नीसवें युगमें जमदग्निके पुत्र महाबली रामनामसे उत्पन्न हुए थे ॥ १४ ॥

क्षत्रियोंका अन्त करनेवाले श्रीमान् सत्यवादी जितेन्द्रिय रामने समूची पृथ्वीको महात्मा कश्यपके लिये दान कर दिया था ॥ १५ ॥

यो वै परशुरामाख्यो हरेरद्भुतकर्मणः ।
अवतारस्तु राजेन्द्र कथितः पापनाशनः ॥ १६ ॥
त्रेतायुगे रघोर्वंशे रामो दशरथात्मजः ।
नरनारायणांशौ द्वौ जातो भुवि महाबलौ ॥१७॥
अष्टाविंशे युगे शस्तौ द्वापरेऽर्जुन शौरिणौ ।
धराभारावतारार्थं जातौ कृष्णाऽर्जुनौ भुवि ॥ १८ ॥

हे राजेन्द्र ! अद्भुत कर्मवाले भगवान्का परशुराम-नामक जो अवतार है वह पापोंको विनष्ट करनेवाला है ऐसा कहा गया है ॥ १६ ॥

त्रेता युगमें रघुवंशमें दशरथके पुत्र रामचन्द्रजी भगवान्के अवतारस्वरूप थे ॥ अठाइसवें द्वापरयुगमें अर्जुन और कृष्ण इस पृथ्वीतलमें नरनारायणके अंशस्वरूप महाबली उत्पन्न हुए थे । कृष्ण और अर्जुन पृथ्वीके भारको दूर करने-के लिये इस पृथ्वीतलमें अवतीर्ण हुए थे ॥ १७ १८ ॥

कृतवन्तौ महायुद्धं कुरुक्षेत्रेऽतिदारुणं ।
एवं युगे युगे राजनवतारा हरेः किल ॥ १६ ॥
भवन्ति बहवः कामं प्रकृतेरनुरूपतः ॥
देवीभागवत चतुर्थस्कन्ध षोड़शाध्याये ।

इन दोनोंने कुरुक्षेत्रमें अतिभीषण महायुद्ध किया था । हे राजन् इस प्रकार प्रत्येक युगमें भगवान्के अनेको अवतार प्रकृतिके अनुसार हुआही करते हैं ॥ १६ ॥

देवीभागवतके ऊपर लिखित वर्णनमें वैवस्वत मन्वन्तरके त्रेता युगमें परशुरामावतार और उनके बाद रामावतारका होना लिखा है और सत्य, द्वापर, त्रेता और कलि इन चारो युगोंको मिलाकर एक महायुग कहलाता है । ऐसे इकहत्तर महायुगोंका एक मन्वन्तर होता है । प्रत्येक मन्वन्तरके अन्तमें देवलोकके सभी बड़े बड़े अधिकारी त्रिमूर्तिको छोड़कर बदल जाते हैं और उनकी जगह पर नये पदाधिकारी आते हैं । ऊपर लिखित देवीभागवतके हिसाबसे इस मन्वन्तरके इकहत्तर महायुगोंमेंसे यदि उन्नीसवें मन्वन्तरमें श्री भगवान् रामचन्द्रके आविर्भावका काल समझा जाय और उसी युगमें भगवान् परशु-रामका भी अवतार समझा जाय जो उनसे पहले हुआ है तो उस त्रेतायुगके पूर्वार्धमें भगवान् परशुराम का और उत्तरार्धमें भगवान् रामका आविर्भाव माना जायगा । वर्त्तमाना समयका जो महायुग है वह इस मन्वन्तरका अठाइसवां महायुग है और यदि उन्नी-सवें महायुगमें भगवान् रामचन्द्रका आविर्भाव हुआ है तो बीचके मन्वन्तरोंका हिसाब जोड़कर यही सारांश निकलेगा कि लग भग साढ़ेचार करोड़ ४५०००००० वर्ष बीते हैं उस समय भगवान रामचन्द्रका अवतार हुआ है। श्री भगवान् व्यासजीकी लेखनीसे जब यह हिसाब निकला है तो इसमें संदेह करनेका किसीको अधिकारही नहीं है।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सामाजिक सुधारकी परम आवश्यकता

इस समय आपसकी राजनैतिक लड़ाई न लड़ कर सबसे पहले हमारे धर्मके धर्माचार्यों हमारे समाजके सामाजिक प्रमुखों और हिन्दुस्तानका सच्चाहित चाहने वाले राजनैतिक पुरुषोंको समाज सुधारकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये और यह सब कार्य ग्रामसुधार जैसे कार्योंके साथ सहयोग देते हुए बहुत सुगमतासे सिद्ध हो सकते हैं। कैसे २ कार्योंके विषयमें प्रथम ध्यान देना चाहिये नीचे उसका कुछ दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

(१) हिन्दू गृहस्थोंके बालक और बालिकाओंमें जिससे बाल्यावस्थासे ही सनातनधर्म और सदाचार दृढताके साथ प्रचलित हो इसके लिये सुकौशलपूर्ण उपाय द्वारा प्रयत्न करना। इसके लिये जहाँ तक संभव होगा श्री महामण्डल कार्यालय से पुस्तकों और सत्परामर्शकी सहायता मिल सकेगी।

(२) सब प्रान्तके कालेजोंमें, स्कूलोंमें, विश्वविद्यालयोंमें, संस्कृतपाठशालाओं और मातृभाषाके छोटे बड़े विद्यालयों में विशेष प्रयत्न करते हुए ईश्वर भक्ति और ऐसे साधारण धर्म जिसको सब धर्मावलम्बी स्वीकार कर सकें ऐसी ग्रन्थावली तत्तत् प्रान्तों की देशभाषामें प्रकाशित करा कर ईश्वर ज्ञान विहीन शिक्षा देनेका कलंक मिटाया जाय। जिनको आवश्यकता होगी इसकी सामग्री महामण्डल कार्यालयसे मिल सकेगी।

(३) हिन्दूसंस्कृति क्या है और इसकी रक्षाके लिये किस प्रकारका उद्योग होना चाहिये इसका बार बार दिग्दर्शन इस अङ्कमें कराया गया है। नेतृवृन्दों तथा धर्मप्रतिष्ठानोंके संचालकों को इन सब प्रबन्धोंका अध्ययन करके निश्चय करना चाहिये कि सच्ची हिन्दूसंस्कृति क्या है और उसकी रक्षाके लिये क्या क्या पुरुषार्थ करना चाहिये। हिन्दूसंस्कृतिके मौलिक सिद्धान्तके निश्चय करनेमें इस अङ्कके द्वारा बहुत कुछ सहायता मिलेगी। छोटी छोटी पुस्तिकाओंके प्रकाशन और व्याख्यान आदि द्वारा इसका प्रचार प्रजामें किया जाय। हिन्दूसंस्कृतिके प्रचारमें हमारे शास्त्र ही एकमात्र अवलंबन हैं। आजकल बहुतसे अनभिज्ञ सज्जन कहीं कहीं ऐसा कहने लगे हैं कि शास्त्रोंमें बहुतसी अंडबंड बातें हैं। हिन्दूसंस्कृतिके निश्चय करनेमें उन सब बातोंको त्याग देना चाहिये। ऐसी भयानक भूल होनेका प्रधान कारण यह है कि वेद और पुराण आदिकी भाषा उनकी समझमें नहीं आती। शास्त्रोंका त्रिविध भाषाभेद और त्रिविध भाव भेद आदिके लक्षण कुछ भी न जाननेसे और दैवी राज्य और दैवीश्रृंखला पर उनका विश्वास न रहने से और हिन्दुओंके नित्यसंकल्पमें इसका दिग्दर्शन रहने पर भी उसका रहस्य न समझनेके कारण वे नेत्रविहीन मनुष्योंकी तरह इधर उधर भटकने लगते हैं। इसकारण जो नेतृवृन्द किसी विषयका सुधार करना चाहें उनको पहले समझ लेना चाहिये कि किस विषयमें हम सुधार कर रहे हैं। हिन्दूसंस्कृति क्या है और हिन्दुधर्म क्या है इसका यथेष्ट वर्णन इस विशेषाङ्कमें आ चुका है। जिन सज्जनोंके चित्तमें शंका रह जायगी वे यदि श्री महामण्डल कार्यालय को लिखेंगे तो वैसी शंकाओंका समाधान पत्र द्वारा अथवा आवश्यक होगा तो अगले विशेषाङ्कमें प्रकाशित कर दिया जायगा। हिन्दूधर्म और हिन्दूजातिका सबसे प्राचीन प्रतिष्ठान श्री भारतधर्ममहामण्डल, हिन्दुसंस्कृतकी रक्षाके लिये यथा संभव सहायता देनेको हर समय प्रस्तुत है।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीमहामण्डल-संवाद ।

श्रीभारतधर्ममहामण्डलके प्रधान प्रधान कार्य विभाग निम्नलिखित हैं। यथा—

(१) धर्मशिक्षा विभाग, (२) धर्मप्रचार विभाग, (३) उपदेशक महाविद्यालय विभाग, (४) धर्मरक्षा-विभाग, (५) धर्मविद्यामानार्पण विभाग, (६) अखिल-भारतीय धार्मिकाध्यात्मिकसंस्कृत विश्वविद्यालय-विभाग (७) धर्मव्यवस्थादान विभाग, (८) धर्मालय संस्कार विभाग, (९) शास्त्रीयअनुसन्धान विभाग, (१०) शास्त्रप्रकाशन विभाग इत्यादि।

श्री भारतधर्ममहामण्डलका प्रधान कार्यालय काशीपुरीमें स्थापित है। इसका मुखपत्र तीन भाषाओं में प्रकाशित होता है। मासिक संस्कृत मुखपत्र प्रतिमासकी संक्रान्तिमें प्रकाशित होता है और उसका अंग्रेजी तथा हिन्दी विशेषाङ्क प्रतिवर्ष कई वार प्रकाशित होता है। उसके संरक्षकों तथा सभ्य, सभ्याओंको विना मूल्य भेजा जाता है।

श्रीमहामण्डलके धर्मव्यवस्थादानविभागसे हिन्दूधर्म, हिन्दूसंस्कृति या किसी जटिल विषय पर प्रार्थना करने पर विना कोई शुल्क लिये उचित समाधान किया जाता है।

वर्तमान हिन्दी विशेषाङ्क विशेष रूपसे इसी श्रेणीके शङ्का-समाधान करने और सब श्रेणीके अधिकारियोंको सहायता देनेके लिये प्रकाशित हुआ है।

आर्यमहिलाओंको हर तरहकी सहायता देनेके अभिप्रायसे अखिलभारतीयआर्यमहिलाहितकारिणी-महापरिषद् नामक स्वतन्त्ररजिस्टर्ड संस्था स्थापित है। उसकी सहायता लेकर हिन्दूगृहस्थ गण अपने घरमें ही अन्तःपुरमें धर्मशिक्षाका विस्तार कर सकते हैं।

अखिल भारतीय धार्मिकाध्यात्मिक संस्कृत विश्व-विद्यालयका सहयोगी सभ्य बनने से हर एक हिन्दू सद् गृहस्थ अपने बालक बालिकाओंको उनकी बाल्यावस्थासे ही उन्हे धार्मिक शिक्षा देनेकी सुविधा प्राप्त कर सकते हैं।

———

देवार्चनकार्य।

वेद, स्मृति, वेद और शास्त्र सम्मत आर्य-संस्कृति के अनुसार दैवी जगत् और दैवी शृङ्खलाको अति-महान् और अतिशक्तिशाली माना गया है। वैदिक दर्शन वेद और स्मृति आदि शास्त्रोंसे तथा योगियों के स्वानुभवसे यह निश्चित माना गया है कि दैवी पदधारियोंकी सुव्यवस्थाके अधीन होकर इस स्थूल जगतका काम चला करता है। इसी विचारके अधीन होकर श्रीमहामण्डलका यज्ञ अनुष्ठान विभाग, देवपूजनविभाग और नित्यनैमित्तिक उपासना कार्य नियमित चला करता है। श्रीमहा-मण्डल प्रधान कार्यालयके बगीचेमें जो स्थायी यज्ञमंडप है, उसमें दो सौ से अधिक वैदिक और स्मार्त यज्ञ हो चुके हैं और देश, काल तथा पात्रके विरुद्ध होने पर भी अब भी समय समय पर होते ही रहते हैं। महामण्डलभवनके तीसरे मंजिलमें श्रीभगवान् हनुमानजीका एक छोटासा मन्दिर है। उसमें श्रीभगवान् हनुमान्जीकी मूर्ति स्थापित है। वह बड़ी जागृत समझी जाती है। सुप्रसिद्ध धर्म-वक्ता ब्रह्मीभूत श्रीस्वामीदयानन्दजी महाराज पर धर्मशत्रुओंके षड्यन्त्रसे ऐसे समय, जब कि कोई आदमी मकानमें नहीं था और श्रीस्वामीजी अकेले छत पर उपासना कर रहे थे, एक व्यक्तिने एक बड़ा छूरा लेकर उन पर आक्रमण किया था। वह छुरा इतना बड़ा था कि, उस एकही छूरेके आघातसे श्री स्वामीजीकी मृत्यु हो सकती थी किन्तु उस पापी पुरुषके सोलह वार आघात करने पर भी श्री भगवान् हनुमान्जीकी कृपासे श्री स्वामीजीके श्रीअंग पर सोलह मामूली घाव लगे और

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आघात करते समय न जाने किसने उसके हाथको रोका, जिससे वह प्रबल वेगसे मार नहीं सका। सब लोग इस अपूर्व घटनाको श्रीभगवान् हनुमान् जीकी ही कृपा मानते हैं। इसी मन्दिरके साथ श्रीमहामण्डलकी ध्वजाकी स्थापना है। इस तिरंगा ध्वजाका विस्तारित वर्णन इस सूर्योदयके अन्य स्थानमें आ चुका है। वीरराज भगवान् हनुमान् जीकी महिमाके वर्णनके विषयमें इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि सृष्टिकर्ता भगवान् ब्रह्मा अपना कार्य समाप्त करके ३११०४०००००००००० मानव वर्षोंके अन्तमें ब्रह्मीभूत हो जाते हैं और उनकी जगह एक नये पदधारी आ जाते हैं। हिन्दूशास्त्रोंमें यह मिलता है कि भगवान् हनुमान् जी ने इस वीचमें ऐसी तपस्या की है कि इस तपस्याके बलसे भविष्यत्‌में वे ब्रह्मा होंगे जो लोग हिन्दूशास्त्र का रहस्य नहीं समझनेसे श्री हनुमान् जी की महिमा नहीं जानते हैं, उनके लिये ऊपर लिखित कथन यथेष्ट होगा। श्री महामण्डल भवनके दूसरे मंजिलमें एक देवालय है, जिसमें ओंकारमयी मूर्तिमें सशक्ति भगवान् ब्रह्मा, सशक्ति भगवान् विष्णु, और सशक्ति भगवान् शिव ये त्रिमूर्ति विराजते हैं। सिंहासन पर चारों वेद, स्मृति, पुराण, वेदाङ्ग, वेदो उपाङ्ग, दर्शन और तन्त्रशास्त्र आदि सुन्दर वेष्टनमें विराजते हैं। तथा इसके अतिरिक्त सगुण पंचउपासनाके पंच मूर्तियां अलग अलग विराजती हैं तथा गंगाजलीमें गंगा रूपिणी जलमयी गंगादेवी भी विराजती हैं अलग अलग सिंहासनों पर शालग्रामशिला और नर्मदेश्वर विराजते हैं और नीचेके पूर्वकथित यज्ञमण्डपमें ब्रह्ममयी भगवतीगायत्री देवीका पीठ है। सब स्थानोंमें नित्य नैमित्तिक पूजाएँ होती हैं। दो शतचण्डीका अनुष्ठान भी होता है। इसके अतिरिक्त रोज वेद-पाठ और पुराण पाठ का भी नियम है इन शुभ कार्योंके लिये तथा अन्नसत्रके लिये यथेष्ट न होने पर भी नियमित मासिक सहायता 'महामाया ट्रस्ट'से प्राप्त होती है। दैवी जगत् की महिमा-कीर्तनके लिये यथायोग्य पुण्य तिथियोंमें देव और दैवी मूर्तियोंकी नैमित्तिक पूजा हुआ करती है। यथा (१) सृष्टिकर्ता भगवान् ब्रह्माकी पूजा चैत्र शुक्ला प्रतिपद्। (२) वासन्तिक नवरात्रपूजा, चैत्रशुक्ला १-से ९ तक (३) भगवती अन्नपूर्णाकी पूजा चैत्रशुक्ला अष्टमी, (४) श्री रामनवमी पूजा, चैत्रशुक्ला नवमी (५) श्री शिवपार्वती पूजा, चैत्रशुक्ला चतुर्दशी (६) श्री हनुमान् जयन्ती पूजा, चैत्रशुक्ला पूर्णिमा (७) श्री गायत्रीदेवी पूजा, वैशाखशुक्ला तृतीया (८) श्री वैवस्वत मनु पूजा, वैशाखशुक्ला तृतीया (९) श्री आदिशङ्कराचार्य पूजा, वैशाखशुक्ला पंचमी (१०) श्री नृसिंह पूजा, वैशाखशुक्ला पंचमी (११) श्री गंगा देवी पूजा, ज्येष्ठशुक्ला दशमी (१२) श्री गुरु पूजा आषाढ़ पूर्णिमा (१३) श्रीव्यासपूजा आषाढ़ पूर्णिमा (१४) ऋषियोंकी पूजा श्रावणपूर्णिमा (१५) श्रीकृष्णजन्माष्टमी पूजा भाद्रपदकृष्णाष्टमी (१६) श्रीगणेश जयन्ती पूजा भाद्रपदशुक्ला चतुर्थी (१७) श्रीमहालक्ष्मी पूजा आश्विनकृष्णाष्टमी (१८) अर्यमा आदि नित्य पितृपूजा-आश्विन अमावास्या (१९) श्री शारदीय-नवरात्रपूजा आश्विनशुक्ला १ से ९ तक (२०) श्रीललिताम्बिका पूजा आश्विनशुक्ला पंचमी (२१) श्री इन्द्रपूजा आश्विन पूर्णिमा दिन में (२२) श्री लक्ष्मी पूजा आश्विनपूर्णिमा रातमें। (२३) श्री महाकाली पूजा कार्तिक अमावास्या (२४) श्री यम धर्मराजपूजा कार्तिक शुक्ला द्वितीया (२५) श्री जगद्धात्री पूजा कार्तिक शुक्ला नवमी (२६) श्री कार्तिकेय पूजा कार्तिक पूर्णिमा दिनमें (२७) महारास पूजा लक्ष्मीनारायणकी (२८) श्रीकालभैरव पूजा मार्गशीर्ष कृष्णाष्टमी (२९) श्री दत्तात्रेय पूजा मार्गशीर्ष पूर्णिमा (३०) श्री महासरस्वतीपूजा माघशुक्ला पंचमी (३१) श्रीसूर्यजयन्ती पूजा माघशुक्ला सप्तमी (३२) श्री महाशिवरात्रि पूजा फाल्गुनकृष्ण चतुर्दशी (३३) श्री राधाकृष्णपूजा फाल्गुनपूर्णिमा (३४) पीताम्बरापूजा चैत्रकृष्ण द्वितीया (३५) श्री सत्यनारायण पूजा प्रतिमासकी पूर्णिमा (३६) याज्ञिकोंके द्वारा यज्ञोंकी क्रियात्मक इष्टि प्रायः प्रतिसौरमासको संक्रान्तिके दिन (३७) श्री गीताजयन्ती पूजा मार्ग

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शीर्ष शुक्ला एकादशी। शास्त्रोंमें जिन जिन पुण्य तिथियोंमें जिन जिन देवताओंकी पूजा विहित है; उन उन पुण्य तिथियोंमें उन उन देवताओंकी पूजा हुआ करती है। इन सब उपासना यज्ञोंके लिये योग्य और विद्वान् पुरोहित नियुक्त हैं। भगवान् कृष्णचन्द्रने भगवद्गीतामें कहा है —अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग् विधम्। विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्।

शरीर वाङ्मनोभिर्यत् कर्म प्रारभते नरः।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः।

अर्थात् देह रूपी अधिष्ठान, जीवात्मा रूपी कर्ता पृथक् पृथक् इन्द्रिय रूप करण, नाना प्रकारकी उनकी चेष्टा और दैव, ये पाँचो मिलकर कर्म करते हैं। मनुष्य शरीर, वाक, और मन द्वारा धर्म अथवा अधर्म—जो कुछ काम करता है ये पाँच उसके हेतु हैं। परन्तु ज्ञानी भक्तजन उनसबोंमें दैवको ही प्रधान करके मानते हैं। दैव पुरुषोत्तम रूपसे, पुरुष रूपसे, अन्तर्यामी रूपसे और कर्म प्रेरक नाना देवतारूपसे जीवके सब कर्मोंके सहायक होते हैं। यद्यपि साधारण तौर पर जीवको कर्म करनेकी स्वाधीनता है। उसमें भी यदि जीव भगवद् भावसे युक्त हो तो, वह कर्म कल्याण-प्रद होता है। मनुष्य पूर्वापर सम्बन्ध युक्त शारीरिक, वाचनिक, मानसिक और बौद्धिक कर्म करता है उनमें तो करुणामय भगवत्कृपारूपी दैवकी ही अपेक्षा रहती है, यही ज्ञानीभक्तका विश्वास है इसी कारण सनातनधर्मियोंकी आदि महासभा-दैव को कृपा प्राप्तिके लिए याग, यज्ञ और देवपूजन आदिकी पक्षपातिनी है और अपने पुरुषार्थोंमें उसको मुख्य स्थान देती है।

परमावश्यक ग्रन्थ प्रकाशन।

कलियुग की आयु ४३२००० मानव वर्षोंकी है। उनमेंसे अभी केवल ५४८०० मानव वर्ष बीत चुके हैं किन्तु उनमेंसे अभी बहुत हिस्सा बीतना बाकी है। वर्तमान घोर परिवर्तनके समयमें ऐसे धर्म ग्रन्थोंके प्रकाशनकी आवश्यकता है कि जिनके द्वारा कलिकालके अन्तपर्यन्त आध्यात्मिक उन्नतिशील मनुष्य जाति वर्णाश्रमधर्मियों को पूरी सहायता मिलती रहे। इस शुभ देवकार्यके पूर्ण करनेके लिये श्रीभारतधर्म-महामण्डलका प्रयत्न बहुत दिनोसे होरहा है। हिन्दू जातिकी ऐसी प्रमुख संस्कृति पहलेसे चली आ रही है कि वे हिन्दु सबसे पहले योगसाधन पथमें अग्रसर होकर श्रीभगवान्‌की कृपा-लाभ करने का प्रयत्न करते हैं और अपने अन्तःकरणको समाहित करके भगवद् सेवारूपा आध्यात्मिक ग्रन्थ रचना का कार्य करनेमें प्रवृत्त होते हैं। इसी कारण सबसे पहले योगसाधनकी चार संहितायें यथा मंत्रयोग-संहिता, लय योगसंहिता, हठयोगसंहिता और राज-योग संहिताके प्रकाशनका उद्योग किया गया है। जिनमेंसे मन्त्र योग संहिता और हठ योगसंहिता अनुवाद सहित छप चुके हैं, बाकी दो संहितायें अब छपेंगी। सनातनधर्मके उपासनाविज्ञानके अनुसार हिन्दू जाति ईश्वर को निर्गुणभी मानती है और सगुणभी मानती है। श्रीभगवान्‌के मन और बुद्धि दोनोसे परे होने के कारण ज्ञानी भक्त उनके निर्गुण रूपको मानते हैं। चाहे सगुण भगवद्रूप हो चाहे निर्गुण भगवद् रूप हो। इसका दार्शनक रहस्य जीव के न समझने पर भी और श्रीभगवान्‌का निर्गुण रूप वाणी, मन और बुद्धिसे सर्वथा अतीत होने पर भी श्रीभगवान् के निर्गुणत्वके विषयमें किसीको मतभेद नहीं है; परन्तु साथ ही साथ सर्वेश्वर होनेके कारण उनको सर्वशक्तिमान् करके सभी लोग मानते हैं। जो सर्वशक्तिमान् है उसको भक्तके मंगलके लिये कोई भी सगुणरूप धारण करनेमें आपत्ति क्या है। अतः थोड़ी बुद्धिवाला मनुष्यको सर्वशक्तिमान् सर्वेश्वर श्री भगवान्‌के एक ओर सगुण और दूसरी ओर निर्गुण रूप माननेमें मत भेद हो ही नहीं सकता है। इसी

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आधि दैविक विज्ञानको सामने रख कर पूज्यपाद त्रिकालदर्शी महर्षियोंने श्रीभगवान्के सगुणरूपको श्रीगणपति, श्रीसूर्य, श्रीदेवी, श्रीविष्णु, और श्रीशिव इस प्रकारसे पांच सगुण रूपकी प्रधानता हिन्दू शास्त्रोंमें दी है। हमारे पुराण और तन्त्रशास्त्र भी इन्हीं पंचोपासनाके ज्ञान और विज्ञानसे पूर्ण हैं। अतः इस सगुण विज्ञानकी दृढ़ता सम्पादनके लिये पंचगीता यथा श्रीधीशगीता, श्रीसूर्यगीता, श्रीशक्ति गीता, श्रीविष्णुगीता और श्रीशम्भुगीता ग्रन्थ जो बहुत दिनोंसे लुप्त थे, वे हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित किये गये हैं। संन्यास आश्रम जो सब आश्रमोंमें परम माननीय है, उसका न कोई सिद्धान्त ग्रन्थ मिलता था और न कोई पद्धतिग्रन्थ मिलता था ! दूसरी ओर आज कल साधु संन्यासियोंकी संख्या बहुत बड़ी हैं। अतः सन्यासगीता और संन्यास पद्धति-ऐसे दो ग्रन्थका उद्धार हुआ है जिससे यह अभाव दूर हो गया है। जिससे साधु संन्यासियोंको सदा उचित और यथायोग्य सहायता मिला करेगी। सनातनधर्मकी अनेक वेदकी संहिताएँ ब्राह्मण और उपनिषद् हैं जिनमें सब कुछ था; परन्तु उनमें इस समय बहुत हिस्सा लुप्त हो गया है। पुराण और तन्त्रभी सब नहीं मिलते हैं। सनातनधर्म जिसका विस्तार बहुत बड़ा है और जिसके ग्रन्थ इतने अधिक हैं, वे सब नहीं मिलते हैं। यही कारण हैकि सनातन-धर्मी विद्वान् और अविद्वान् सभी धर्मके यथार्थ स्वरूपके निर्णय करनेमें सन्दिग्ध रहते हैं। इस कारण सम्यक् प्रकारसे धर्मका स्वरूप और हिन्दू-धर्मके सब अंगोंका वर्णन और जितने प्रकारकी शङ्काएँ हो सकती हैं उनका समाधान करके 'श्रीदत्तात्रेयधर्ममीमांसा' नामका एक वृहत् धर्मग्रन्थ श्रीसूर्य ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो रहा है। जो सज्जन इस धर्मग्रन्थको चाहेंगे श्रीमहामण्डल कार्यालयको लिखने पर उनको नियमित मिल सकेगा, तथा जिन सज्जनोंका नाम रजिस्टरमें दर्ज है उनके पास श्रीदत्तात्रेयधर्ममीमांसाके जितने अध्याय अब तक छप चुके हैं वे भेजे जायंगे। यह ग्रन्थमाला डवल क्राउन अठपेजी आकारमें नियमित छपती रहेगी। इसके अतिरिक्त श्रीदत्तात्रेयग्रन्थमाला नामक दूसरी ग्रन्थमाला डवल क्राउन सोलह पेजी आकार-में अलग छप रही है। उसमें 'श्रीदत्तात्रेय दर्शनादर्श' नामक उपनिषत् तुल्य एक संस्कृत ग्रन्थ हिन्दी अनुवाद सहित छप चुका है। इस ग्रन्थमालामें वैदिक सप्त दर्शन अर्थात् न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्श, योग दर्शन, सांख्य दर्शन, वेदके तीन काण्डोंके तीन दर्शनग्रन्थ यथा–कर्ममीमासा दर्शन, दैवी मीमांसादर्शन, और ब्रह्ममीमांसा दर्शन.—इस प्रकारसे वैदिक सप्त दर्शन विस्तृत भाष्य भूमिका अलग अलग हिन्दी अनुवादों सहित और प्रत्येकको अलग अलग सरल संस्कृत टीका हिन्दी अनुवाद सहित अभी प्रकाशित हो रहा है। जगत्भरमें दार्शनिक विज्ञानके प्रचारार्थ और वर्त-मान-शिक्षा सम्बन्धी सुधारके अभिप्रायसे श्री महा-मण्डलका यह उद्योग है। इस समय श्रीदत्तात्रेय और दर्शनादर्श नामक ग्रन्थ हिन्दी अनुवाद सहित छप ही चुका है और योगदर्शन, सांख्यदर्शन, वेदके उपासना काण्डकी मीमांसा कर्ममीमांसा दर्शन, और दैवीमी-मांसादर्शन, भाष्यभूमिकासहित ये चारों ग्रन्थ छपना प्रारम्भ हो गया है। ये सभी ग्रन्थ हिन्दू जातिको कलिकालके अन्तपर्यन्त सहायता देंगे। और यदि अंग्रेजीभाषामें उनका विशद अनुवाद स्वतन्त्र प्रकाशित हो सका तो अन्य मनुष्य जातियोंकी विद्वज्जन मण्डलीको अपनी अपनी शिक्षाशैलीके सम्हालनेमें श्रीभारतधर्म महामण्डलका यह उद्योग अति सहायता कारी होगा। देशके विद्वन्मंडल विद्यानुरागी धनीमानी सज्जन और सच्चे तथा उदारबुद्धि नेतृवृन्द इस प्रतिष्ठानके शुभ उद्योगका अनुशीलन करेंगे तो उनके लिये आध्यात्मिक पथका प्रदर्शक होगा। हिन्दुस्तान और हिन्दूजातिको कृपामय सर्वशक्तिमान् भगवानकी कृपा प्राप्त होगी।

———

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गोत्रप्रवरविवेकः ।

[संस्कृत-"सूर्योदया"ऽङ्केभ्य उद्धृतः]

"सूर्योदय"-सम्पादकेन श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादशास्त्रिणा लिखितः ।

काशीस्थश्रीभारतधर्ममहामण्डल-प्रधानकार्यालयतः प्रकाशितः ।

पण्डित रामेश्वरपाठकद्वारा काश्यां तारायन्त्रालये मुद्रितः ।

प्रथमसंस्करणं सहस्रद्वयम्] ज्येष्ठपूर्णिमा, २००५ [मूल्यम् आणकचतुष्टयम्

आर्यजातीयसंस्कृतौ गोत्रप्रवरपरिज्ञानं नितान्तमहत्त्वपरिपूर्णमङ्गीकृतमास्ते । सनातनधर्मावलम्बिन्या आर्यजातेः संरक्षणकृते निर्धारितेषु चतुर्ष्वपि दुर्गेषु, प्रथमं गोत्रप्रवरपरिज्ञानमेवास्ति, येन स्वस्वकुलपरम्परापवित्रतायाः संरक्षणं क्रियते । द्वितीयं किल रजोवीर्यशुद्धिमूलकं वर्णव्यवस्थापनमवगन्तव्यम्, यत्र जन्मना वर्णनिर्धारणव्यवस्था स्वीकृता, तपःस्वाध्यायनिरतानां वेदशास्त्रतत्त्वमर्मज्ञानां तत्रभवतां भूसुराणां नेतृत्वेन समाजसञ्चालनपद्धतिश्च निर्धारिता वर्तते । तृतीयमाश्रमधर्मव्यवस्थापनमवधेयम्, येन हिन्दुजातिरियं सुव्यवस्थितरूपेण धर्ममूलकं प्रवृत्तिमार्गमाश्रयन्ती निवृत्तिमार्गस्य परां काष्ठां प्राप्य परमानन्दमनुभवति । चतुर्थं किल सतीत्वमूलकनारीधर्मसाहाय्येन हिन्दुजातिपवित्रतापरिरक्षणम् । आर्यजातिरक्षकेषु चतुर्ष्वपि दुर्गेषु गोत्रप्रवरविज्ञानं नाम प्रथमं दुर्गं कीदृशमावश्यकमिति नूनं विवेचनीयमवगम्यते । सम्प्रति तत्प्रकाशनमप्यत्यावश्यकं प्रतिभाति ।

गोत्रप्रवरमाहात्म्यमजानन्तो राजनीतिज्ञमानिनः केचन पुरुषपुङ्गवाः प्रजावर्गं विपथीकुर्वन्तो विलोक्यन्ते । अज्ञानान्धतमसे निमग्नाश्च ते प्रवरान् विस्मरन्तः सगोत्रविवाहमपि विधानद्वारा परिचालयितुमिच्छन्ति । महायुगमन्वन्तरादीनां का कथा, कल्पमहाकल्पादिसृष्टिप्रारम्भतएव गोत्रप्रवरसम्बन्धेनेयमार्यजातिः सुसम्बद्धा विद्यते । ब्रह्मणः समुत्पत्तिसमयानन्तरं तदीयमानसपुत्ररूपतः प्रादुर्भूतेभ्य ऋषिभ्य एव गोत्रप्रवरविचार आर्यजातिषु प्रवर्त्तमानो निभाल्यते । गोत्रप्रवरमाहात्म्येनैव हिन्दुजातिरियं सृष्टिकालत इदानीं यावत् स्वरूपे तिष्ठन्ती जीवति । तत्कालादिदानीं यावत् संख्यातीताः जातयः समुत्पद्यमाना गोत्रप्रवरसम्बन्धशून्याः कालकवलिता अभूवन् । दैवेषु जगत्सु विश्वासं कुर्वन्त्याः, वर्णाश्रमशृङ्खलया सुरक्षितायाः, गोत्रप्रवरपवित्रपरिपाटीमङ्गीकुर्वन्त्याः, सनातनधर्मावलम्बिन्या आर्यजातेरस्तित्वरक्षणं देवाधीनमवधेयम् । यत्र मनुष्यजातौ वर्णाश्रमबन्धसम्बन्धो गोत्रप्रवरव्यवस्था च नास्ति, न तत्र नित्यपितृणामर्यमादीनामनुकम्पा भवितुमर्हति, न च तया विना क्वापि जातिश्चिरं जीवितुं शक्नोति । वेदेषु, वैदिककल्पसूत्रेषु, स्मृतिषु, पुराणेषु चापि गोत्रप्रवरप्रवर्त्तकमहर्षीणां वंशपरम्पराया निर्देशो निभाल्यते । गोत्रप्रवरमर्यादयैव हिन्दुजातिश्चिराय सुरक्षिता तिष्ठति ।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धर्मशास्त्रेषु गोत्रप्रवरविज्ञानस्य प्रयोजनीयत्वं प्रायशः सर्वत्रैव प्रतिपादितं दृश्यते। समानगोत्रेषु समानप्रवरेषु च समान एव रक्तप्रवाहो विज्ञायते। यत्र कुत्रापि निवसत्सु समानार्षगोत्रसमुत्पन्नेषु द्विजश्रेष्ठेषु एक एव रक्तप्रवाह इत्यत्र नाऽणीयानपि संशीतिलेशः। सुतरां धर्मकार्येषु विवाहादिषु च गोत्रप्रवरविज्ञानमत्यावश्यकमिति सर्वएव धर्मशास्त्रप्रवर्त्तका महर्षयः समामनन्ति। तथाहि भगवानापस्तम्बः—

"धर्माधिकारः सर्वेषां गोत्रप्रवरहेतुकः।
विवाहश्चेति मन्वानः प्रवरानाह सूत्रकृत्॥
गोत्रप्रवरविज्ञानं स्वधर्मफललिप्सुभिः।
सम्पाद्यमाहुर्धर्मज्ञाः प्रत्यवायजिघांसया॥" इति।

भगवान् शातातपोऽपि—

"आदौ गोत्रविशुद्धिः स्यात् ततः सप्तमपञ्चमम्।
राशिकूटं ततश्चैव त्रेधा सम्बन्धलक्षणम्॥" इति।

गोत्रविशुद्धिरसमानगोत्रत्वेन भवति। गोत्रमिति प्रवरस्याप्युपलक्षणं विज्ञातव्यम्। "ब्रह्मचारी वेदानधीत्य, उपहृत्य, गुरोरनुज्ञातो दारान् कुर्वीत असगोत्रान्, मातुरसपिण्डान्, नग्निका तु श्रेष्ठा।" इति गोभिलगृह्यसूत्रम्। अनागतार्त्तवा नग्निका प्रोच्यते।

मनुस्मृतावपि—

"असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने।" इति।

योगी याज्ञवल्क्योऽपि—

"अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम्।
पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा॥" इति।

महर्षिर्व्यासोऽपि—

"स्नात्वा समुद्वहेत् कन्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्।
यवीयसीं भ्रातृमतीमसगोत्रां प्रयत्नतः॥" इति।

विष्णुधर्मोत्तरेऽपि—

"नैकगोत्रां च वरयेन्नैकार्षेयां च भार्गव।
पितृतः सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पञ्चमात्तथा।
वरयेल्लक्षणोपेतां सदा लोकद्वयेच्छया॥" इति।

"गृहस्थः सदृशीं भार्यां विन्देत अनन्यपूर्वां यवीयसीम्, असमानप्रवरैर्विवाहः, ऊर्ध्वं सप्तमात् पितृबन्धुभ्यो बीजिनश्च मातृबन्धुभ्यः पञ्चमादिति" महर्षिर्गौतमः। यवीयसीं—वरस्यावस्थातः शरीरप्रमाणतश्च लघ्वीमित्यर्थः। विस्तरभयात्प्रमाणान्तराणि नोपस्थाप्यन्ते।

विवाहो नाम संस्कारविशेषजनिता क्रिया, तया च देवर्षिपितृसंवर्धनं हिन्दुजातिलक्ष्यभूतमनुष्ठीयते। न च सगोत्रायां वैवाहिको धार्मिकः संस्कारः समुत्पद्यते श्रुतिस्मृतिविरोधात्। ज्ञानतोऽज्ञानतोपि वा सगोत्रायाः समानप्रवरायाश्च परिणयने को दोष इत्यधोनिर्दिश्यते। तथाहि भगवानापस्तम्बः—

"परिणीय सगोत्रां तु समानप्रवरां तथा।
कृत्वा तस्याः समुत्सर्गं पालयेज्जननीमिव"॥ इति।

महर्षिः शातातपोऽपि—

"समानगोत्रप्रवरां कन्यामूढ्वोपगम्य च।
तस्यामुत्पाद्य चाण्डालं ब्राह्मण्यादेव हीयते॥
कामाद् विवाहमात्रे वा प्रजाऽनुत्पादनेऽपि वा।
तस्य चाण्डालत्वासः स्याद् व्रतं प्राणान्तिकं चरेत्"॥ इति।

मदनपारिजातेऽपि—

"परिणीय सगोत्रां तु समानप्रवरां तथा।
त्यागं कृत्वा द्विजस्तस्यास्ततश्चान्द्रायणं चरेत्"॥ इति।

"सगोत्रप्रवरां ज्ञात्वा गच्छंस्तु गुरुतल्पगः।
तत्र चाण्डालमुत्पाद्य ब्राह्मण्यादेव हीयते॥
सगोत्रायां प्रजां जातां चाण्डालेषु विनिक्षिपेत्।
गुरुतल्पव्रतं कृत्वा तां रक्षेज्जननीमिव"॥

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इति त्रिकाण्डमण्डनः । स्मृत्यर्थसारेऽपि—

"यदि कश्चिज्ज्ञानतस्तां कन्यामूढ्वोपगच्छति ।
गुरुतल्पव्रताच्छुद्धिर्गर्भस्तज्जोऽन्त्यतां व्रजेत् ॥
भोगतस्तु परित्यज्य पालयेज्जननीमिव ।
अज्ञानादैन्दवैः शुद्धिस्त्रिभिर्गर्भस्तु काश्यपः" इति ॥

एवं हि चान्द्रायणातिकृच्छ्रप्रायश्चित्तं सगोत्रप्रवरायाः परिणयनमात्र एव, तदुपगमनापत्योत्पादनयोस्तु ब्राह्मण्यहानिरेवेत्यापस्तम्बः । त्यागश्चोपभोगधर्मकार्ययोर्नतु तस्या एव । अज्ञानतः सगोत्रादिषूत्पन्नानां जनकप्रायश्चित्तोत्तरं काश्यपगोत्रेण व्यवहारः कार्यो न तु त्यागः । ज्ञानतस्तु सगोत्रप्रवरायाम् उत्पन्नानां चाण्डालत्वमेव । तथाहि यमः—

आरूढपतितापत्यं ब्राह्मण्यां यस्तु शूद्रजः ।
सगोत्रोढासुतश्चैव चाण्डालास्त्रय ईरिताः" ॥ इति ।

समानगोत्रप्रवरया कन्यया विवाहं कृत्वा ब्राह्मणो गुरुतल्पगप्रायश्चित्तादिना शुध्यति । तादृशकन्यातः समुत्पन्ना सन्ततिश्चाण्डालतां गच्छति । अज्ञानतश्चेत्समानगोत्रप्रवरां कन्यां यदि कश्चिदुद्वहति, तस्यां च सन्तानमुत्पादयति, तर्हि विवाहकर्त्तुस्त्रिभिश्चान्द्रायणैः शुद्धिः सन्तानश्च काश्यपगोत्रीयः स्यात्, काश्यपगोत्रेणोपनेयो भवेत् "सर्वेयं काश्यपी प्रजे"ति निर्देशात् । सुतरां समानगोत्रप्रवरासु कन्यासु भार्यात्वमेव नोत्पद्यते, तथात्वे तु सर्वश्रौतस्मार्त्तकर्मसु तदधिकाराभावः, विवाहसंस्कारस्य वैयर्थ्यापत्तिश्चेति गोत्रप्रवरविवेकोऽयमभिनवमाधवप्रोक्तबोधायनमतमनुसृत्य बालानामपि सुखबोधाय प्रस्तूयते—

ब्राह्मवर्षमानेनैकस्य ब्रह्मणः शतवर्षात्मकमायुः, तद्धि महाकल्पमभिधीयते । ब्रह्मणो दिनमेकं कल्पम् इत्युच्यते। तत्र चतुर्दश मनवो व्यतिगच्छन्ति । श्वेतवाराहकल्पेऽत्र स्वायम्भुव-स्वारोचिषोत्तम-तामस-रैवत-चाक्षुषाख्याः षण्मनवो व्यतीताः । सम्प्रति वैवस्वतो मनुः । एकत्र कल्पे मनुसदृशा इन्द्रा अपि चतुर्दश भवन्ति । तेऽपि षडतीताः । अस्मिन् वैवस्वतमन्वन्तरे पुरन्दराभिधान इन्द्रो वर्तते । एकस्मिन् मन्वन्तरे परिवर्त्तमाने सर्वेऽपि देवा ऋषयः पितरश्च परिवर्त्तन्ते ।

अत्र मन्वन्तरे सप्तर्षिपदाधिष्ठिताः सप्त ऋषयोऽगस्तिश्चेत्यष्टौ गोत्रकृतः समाम्नाताः । विष्णुपुराणे तृतीयांशे प्रथमाध्याये वर्त्तमानमन्वन्तरीयसप्तर्षीणां नामानि प्रोक्तानि । तथाहि—

"वशिष्ठः कश्यपोऽथाऽत्रिर्जमदग्निश्च गौतमः ।
विश्वामित्र-भरद्वाजौ सप्त सप्तर्षयोऽत्र तु" ॥ इति ।

श्रीमद्भागवतेऽष्टमस्कन्धे त्रयोदशाध्यायेऽपि—

"कश्यपोऽत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वामित्रश्च गौतमः ।
जमदग्निर्भरद्वाज इति सप्तर्षयः स्मृताः" ॥ इति ।

वैवस्वतमन्वन्तरेऽत्र विश्वामित्रजमदग्निभरद्वाजगौतमात्रिवशिष्ठकश्यपागस्तयो बौधायनादिभिर्गोत्रकृतः प्रकीर्त्तिताः । स्मृत्यर्थसारसंगृहीतः श्लोको यथा—

"जमदग्निर्भरद्वाजो विश्वामित्रात्रिगौतमाः ।
वशिष्ठः कश्यपोऽगस्त्यो मुनयो गोत्रकारिणः" ॥ इति ।

भृगुरङ्गिराश्चेति द्वौ वशिष्ठकश्यपादिवद् गोत्रकृतौ नोक्तौ । तत्कारणमग्रे वक्ष्यते ।

एतेषामगस्त्यष्टमानां मध्ये यस्यापत्यं (सन्तानः) ऋषिं (मन्त्रद्रष्टृ) भजते, तदपत्यं तस्य ऋषेर्गोत्रमिति बोधायनादिभिरभिहितम् ।

"सप्तानाम् ऋषीणामगस्त्यष्टमानां यदपत्यं तद्गोत्रमित्याचक्षते" इत्याश्वलायनसूत्रेऽपि प्रमाणितम् । "अपत्यं पौत्रप्रभृतिगोत्रम्" इति पाणिनीयसूत्रमपि व्याचष्टे । माधवस्तु—

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"ऋषयो दश तेषां तु सन्ततावृषितां गताः ।
यज्ञे प्रव्रीयमाणास्ते प्रवरा इति कीर्त्तिताः" ॥ इति ॥

सप्तर्षयोऽगस्तिश्चेत्यष्टौ गोत्रकृतो मुनयः, भृगुरङ्गिराश्चेति द्वौ मिलित्वा दश । एतेषां दशमुनीनां सन्ततिपरम्परायां ये समुत्पन्नास्ते च यज्ञे प्रव्रीयमाणाः प्रवरा इति बोधायनादिभिरङ्गीकृताः । गोत्रभूतस्य ऋषेः पितृपितामहप्रपितामहादय एव प्रवराः, पित्रादीनामपि मन्त्रकृतामेव प्रवरत्वमिति प्रवरदर्पणकारः ।

"गोत्राणां तु सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
ऊनपञ्चाशदेवैषां प्रवरा ऋषिदर्शनात्" ॥

इति बोधायनमते ऊनपञ्चाशदेव प्रवराः सन्ति । तथाहि—शुद्धभृगवश्चत्वारः,—जमदग्नयस्त्रयः, एते सप्त भृगुगणा भवन्ति । गौतमाः सप्त,—भरद्वाजास्त्रयः, शुद्धाङ्गिरसः सप्त,—एते सप्तदश अङ्गिरोगणाः सन्ति । अत्रयश्चत्वारः, विश्वामित्रा दश, कश्यपास्त्रयः, वशिष्ठाश्चत्वारः, अगस्तयश्चत्वारः । इत्यूनपञ्चाशत् प्रवराः कथिताः ।

प्रवरे एको वा, द्वौ वा, त्रयो वा, पञ्च वा, ऋषयो भवन्ति । न चत्वारो न षडाद्या भवन्ति । "एकं वृणीते, द्वौ वृणीते, त्रीन् वृणीते, न चतुरो वृणीते, न पञ्चाति वृणीते" इति श्रुतौ नियमितत्वात् । भृगुगणे यास्कस्य, विदस्य, आर्टिषेणस्येति त्रयाणां पञ्चार्षेयप्रवरः । अङ्गिरोगणे कौमण्डस्य, दीर्घतमसः, काक्षायणस्य, गर्गस्येति चतुर्णां पञ्चार्षेयप्रवरः । गर्गस्य त्र्यार्षेयप्रवरोऽपि भवति । विश्वामित्रगणे पूरणाख्यस्य द्व्यार्षेयप्रवरः । शुनकानां वशिष्ठानां च एकार्षेयप्रवरः । इतरेषां त्र्यार्षेयप्रवर इति संक्षेपः ।

"एक एव ऋषिर्यावत् प्रवरेष्वनुवर्त्तते ।
तावत्समानगोत्रत्वम् ऋते भृग्वङ्गिरोगणात्"

इति बोधायनः ।

अस्य भावार्थः—आङ्गिरसो भृगोश्चान्यत्र, भृग्वङ्गिरोगणौ विहायेत्यर्थः, इतरेषु प्रवरेषु एक ऋषिर्यावद् वर्त्तते तावत्समानगोत्रत्वं भवति । भरद्वाजो जमदग्निरत्रिर्विश्वामित्रोवशिष्ठकश्यपोऽगस्त्यश्चेत्यष्टौ गोत्रकर्त्तारः, भृगुरङ्गिराश्चापि द्वौ गोत्रकर्तृवदवगन्तव्यौ । एवं दश गोत्रहेतवः समाम्नाताः । तत्र शुद्धभृगुगणं शुद्धाङ्गिरसं च विहायेतरेष्वष्टसु गणेषु एकऋष्यनुवर्त्तने समानगोत्रत्वम् । भृग्वङ्गिरोगणयोस्तु एकऋष्यनुवर्त्तनेऽपि न समानगोत्रत्वम् । यथा जमदग्निप्रवरे भृगुप्रवरे च भृगुरनुवर्त्तते, तथापि जमदग्नेः शुद्धभृगूणां च न समानप्रवरत्वम्, भृगोर्गोत्रकर्तृत्वाभावात् । एवं गौतमप्रवरेषु शुद्धाङ्गिरोगणेषु च अङ्गिरोऽनुवर्त्तनेऽपि गौतमानां भरद्वाजानां शुद्धाङ्गिरसां च मिथो विवाहोऽस्ति, अङ्गिरसो गोत्रकर्तृत्वाभावादिति । अपिच माधवीये—

"द्व्यार्षेयसन्निपातान्न त्र्यार्षेयाणां करग्रहः ।
त्र्यार्षेयसन्निपातान्न पञ्चार्षेयकरग्रहः ।
भृग्वङ्गिरोगणेष्वेवं शेषेष्वेकोऽपि वार्यते ॥" इति ।

अस्य तात्पर्यार्थो यथा—भृग्वङ्गिरोगणेषु वधूवरयोस्त्र्यार्षेयप्रवरयोर्मध्ये द्वौ ऋषी यदि समानौ स्यातां तदा न विवाहः । पञ्चार्षेयप्रवरयोर्मध्ये त्र्यार्षेयसन्निपाते न विवाहः । भृग्वङ्गिरोगणेषु वधूवरप्रवरयोरर्धाधिकऋषिसाम्ये न करग्रह इत्यर्थः । सुतरां त्र्यार्षेयप्रवरसन्निपाते ऋषिद्वयसाम्ये न करग्रहः, पञ्चार्षेयसन्निपाते प्रवरस्थऋषित्रयसाम्येऽपि न करग्रहः । फलतः एकस्य पञ्चार्षेयत्वे त्र्यार्षेयत्वे च प्रवरस्थऋषीणाम् अर्धाधिकसाम्ये न विवाहः। अयं नियमो भृग्वङ्गिरोगणेषु बोद्धव्यः, इतरत्र एकऋषिसाम्येऽपि न करग्रह इत्यर्थः । एतत्सिद्धान्तसमर्थकं प्रमाणं माधवीये स्मृत्यन्तरेऽपि । तथाहि—

"पञ्चानां त्रिषु सामान्यादविवाहस्त्रिषु द्वयोः ।
भृग्वङ्गिरोगणेष्वेवं शेषेष्वेकोऽपि वारयेत्" इति ।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बोधायनप्रदर्शिताः पूर्वोक्ताः के त ऊनपञ्चाशत् प्रवरा इति निर्णीयते, तथाहि—यास्काः, मित्रयवः, वैनाः, शुनकाश्चेति चत्वारः शुद्धभृगवः सन्ति। यास्क-मौन-मौक-वाधूल-संकृतीनां भार्गववैतहव्यसावेदसेति त्र्यार्षेयप्रवरः। वैनानां भार्गव-वैनपार्थेति त्र्यार्षेयप्रवरः। शुनकानां शौनकेति वा गार्त्समदेति वा एकार्षेयप्रवरः। भृगोर्गोत्रकर्तृत्वाभावाद् यास्कादिषु त्रिषु प्रवरेषु भृगोरनुवर्त्तनेऽपि न समानगोत्रता, त्र्यार्षेयेषु त्रिषु प्रवरेषु ऋषिद्वयानुवर्त्तनाभावात् समानप्रवरताऽपि नास्ति। शुनकानां यास्कादिभिस्त्रिभिर्न समानगोत्रता। अतो यास्कादीनां चतुर्णां गणानां विहाय स्वं स्वं गणमितरैस्त्रिभिर्विवाहो भवितुमर्हति। अत्र स्मृत्यर्थसारवचनं यथा—

"यास्का मित्रयवो वैन्याः शुनकाः प्रवरैक्यतः।
स्वं स्वं हित्वा गणं सर्वे विवहेयुः परस्परम्।" इति।

वत्सा विदा आर्ष्टिषेणा इत्येते त्रयो जामदग्न्याः सन्ति। मार्कण्डेयमाण्डव्यदार्भायणपौलस्त्यकाशकृत्स्नपाणिनिवाल्मीकिरजतवाहप्रभृतयो वत्साः। तेषां भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वजामदग्न्येति पञ्चार्षेयप्रवरो भवति। विदप्रभृतीनां भार्गवच्यावनाप्नवानौर्ववैदेति पञ्चार्षेयप्रवरः। आर्ष्टिषेणप्रभृतीनां भार्गवच्यावनाप्नवानार्ष्टिषेणेति पञ्चार्षेयप्रवरो भवति। एषु प्रवरेषु भार्गवच्यावनाप्नवानेति ऋषित्रयसाम्येन "त्र्यार्षेयसन्निपातान्न पञ्चार्षेयकरग्रहः" इतिन्यायात् वत्सविदार्ष्टिषेणानां त्रयाणां परस्परमविवाहः। एतेषां स्वस्वगणैरितरगणाभ्यां च न विवाहः। एतेषां त्रयाणां पूर्वोक्तानां चतुर्णां भृगुगणानां च न समानप्रवरत्वं भृगोर्गोत्रकर्तृत्वाभावात्। इत्थं सप्त भृगवो व्याख्याताः।

इदानीं भृगुगणविवेचनानन्तरम् अङ्गिरोगणाः कथ्यन्ते। तत्र गौतमाः सप्तविधाः—आयास्याः, शरद्वन्तः, कौमण्डाः, दीर्घतमसः, करेणुपाल्यः, वामदेवाः, औशनसाश्चेति। तत्रायास्यगौतमानाम् आङ्गिरसायास्यगौतमेति त्र्यार्षेयप्रवरः। शरद्वतगौतमानाम् आङ्गिरसशारद्वन्तगौतमेति त्र्यार्षेयप्रवरः। कुमण्डगौतमानाम् आङ्गिरसौचिथ्यकाक्षीवातगौतमकौमण्डेति पञ्चार्षेयः प्रवरः। दीर्घतमोगौतमानाम् आङ्गिरसौचिथ्यकाक्षीवातगौतमदैर्घतमसेति पञ्चार्षेयप्रवरः। कारेणुपालगौतमानाम् आङ्गिरसगौतमकारेणुपालेति त्र्यार्षेयप्रवरः। वामदेवगौतमानाम् आङ्गिरसवामदेवगौतमेति त्र्यार्षेयप्रवरः। औशनसगौतमानाम् आङ्गिरसौशनसगौतमेति त्र्यार्षेयः प्रवरः। एषु सप्तसु प्रवरेषु गोत्रकर्तुर्गौतमस्यानुवृत्तेः "एक एव ऋषिर्यावत् प्रवरेष्वनुवर्त्तते तावत् समानगोत्रत्वम्" इति परिभाषया सप्तानामपि समानगोत्रत्वम्। अत एषां सप्तानामपि परस्परमविवाह इति। अथ भारद्वाजास्त्रयः—शुङ्गाः, गर्गाः, रौक्षायणाश्चेति। शुङ्गानाम् आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजेति त्र्यार्षेयप्रवरः। गर्गाणाम् आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजगार्ग्यशैन्येति पञ्चार्षेयो वा, आङ्गिरसगार्ग्यशैन्येति वा, आपस्तम्बमते भारद्वाजगार्ग्यशैन्येति वा त्र्यार्षेयोऽपि वा प्रवरः। रौक्षायणानाम् आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजवान्दनमातवचसेति पञ्चार्षेयः प्रवरः। एषु त्रिष्वपि गोत्रकर्तुर्भरद्वाजस्यानुवर्त्तनात् "एक एव ऋषिर्यावत्" इति परिभाषया त्रयाणामप्येतेषां समानगोत्रत्वादविवाहः। अन्यच्च—भरद्वाजगोत्रोत्पन्नेन शुङ्गाख्येन मुनिना विश्वामित्रगोत्रोद्भवस्य कतमुनिसुतस्य शैशिराख्यस्य मुनेर्भार्यायां तन्नियोगेनोत्पादितः शुङ्गस्य शैशिरेश्च सुतत्वाद् द्व्यामुष्यायणत्वेन शौङ्गशैशिरिरिति संज्ञामलभत। अयं शौङ्गशैशिरिः भरद्वाजविश्वामित्रयोः सन्तानत्वाद् द्विगोत्रो भवति। अतः शौङ्गशैशिरिजातानां विश्वामित्रैर्भरद्वाजैश्च न विवाहः। मतान्तरश्लोकोऽप्यालोच्यते। तथाहि—

"भारद्वाजाश्च कपयो गर्गा रौक्षायणा इति।
चत्वारोऽपि भरद्वाजा गोत्रैक्यान्नान्वयुर्मिथः।" इति

अस्मिन् अर्थे दीपिकायां—

"कपी प्रसिद्धावुदिताविह द्वौ
स्वतन्त्र एकस्त्वपरोऽस्वतन्त्रः।
तत्र स्वतन्त्रस्य कपेर्विवाहो
मिथो भरद्वाजकुलस्य चाद्धः" इति।

Bharat Dharma Mahà Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अस्वतन्त्रकपीनाम् भरद्वाजगर्गरौक्षायणैः सह न विवाहः। स्वतन्त्रकपिगणस्य तु भवत्येवेति। अथ शुद्धाङ्गिरोगणाः सप्त,—विष्णुवृद्धाः, कण्वाः, रथीतराः, हरिताः, मुद्गलाः, संकृतयः, कपय इति । तत्र विष्णुवृद्धगणस्य आङ्गिरसत्रासदस्यपौरुकुत्सेति त्र्यार्षेयप्रवरः । कण्वगणस्य आङ्गिरसाजमीढकाण्वेति त्र्यार्षेयप्रवरः । रथीतरगणस्य आङ्गिरसवैरूपराथीतरेति वा, आङ्गिरसवैरूपपार्षदश्वेति वा त्र्यार्षेयः प्रवरः । हरितगणस्य आङ्गिरसाम्बरीषयौवनाश्वेति त्र्यार्षेयः प्रवरः । मुद्गलगणस्य आङ्गिरसभार्म्यश्वमौद्गल्येति त्र्यार्षेयः प्रवरः । संस्कृतिगणस्य आङ्गिरससाङ्कृत्यगौरिवीतेति त्र्यार्षेयः प्रवरः । स्वतन्त्रकपिगणस्य आङ्गिरसामहीयोरुक्षय्येति त्र्यार्षेयः प्रवरः । तत्र विष्णुवृद्धकण्वरथीतरहरितमुद्गलानां पञ्चानां स्वतन्त्रकपिगणस्य च स्वं स्वं गणं हित्वा इतरैः सह विवाहोऽस्ति । संकृतयो द्व्यामुष्यायणाः, कश्यपाः वसिष्ठाश्च । अतः संस्कृतीनां कश्यपैर्वसिष्ठैश्च विवाहो निषिद्धः । एवं हि गौतमगणाः सप्त, भरद्वाजगणास्त्रयः, शुद्धाङ्गिरोगणाः सप्तेति सप्तदशाङ्गिरसः सम्यग्विवेचिताः । अथ चत्वारोऽत्रयो निरूप्यन्ते—अत्रिः, गविष्ठिरः, बाहूदकः, मुद्गलश्चेति चत्वारोऽत्रयः । तत्रात्रीणाम् आत्रेयार्चनानसश्यावाश्वेति त्र्यार्षेयः प्रवरः । गविष्ठिराणाम् आत्रेयार्चनानसगाविष्ठिरेति त्र्यार्षेयः प्रवरः । बाहूदकानाम् आत्रेयार्चनानसबाहूदकेति त्र्यार्षेयः प्रवरः । मुद्गलानाम् आत्रेयार्चनानसपौर्वातिथेति त्र्यार्षेयः प्रवरः । एषु चतुर्षु अत्रेरनुवर्त्तनात् "एक एव ऋषिर्यावत्" इति परिभाषया सगोत्रत्वान्न विवाहः । वैश्वामित्रबीजादात्रेयक्षेत्रउत्पन्नत्वाद्धनञ्जयः शौङ्गशैशिरिवद् द्विगोत्रो भवति । अतस्तस्य सन्ततेश्च विश्वामित्रैरत्रिभिश्च न विवाहः । अथ च—

'अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलङ्कृताम् ।
अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भविष्यति ॥'

इति नियमपूर्वकं दत्तायामत्रिगोत्रकन्यायां वैश्वामित्रबीजादुत्पन्नत्वाद् वामरथ्यादयो द्व्यामुष्यायणाः । तेषामपि विश्वामित्रैरत्रिभिश्च नान्वयः । एवं जातूकर्ण्याश्च द्व्यामुष्यायणत्वाद् वसिष्ठैरत्रिभिश्च नोद्वाह्याः इति ॥

अथ दश विश्वमित्राः कथ्यन्ते—कुशिकाः, रौहिताः, रौक्षकाः, कामकायनाः, अजाः, धनञ्जयाः, कताः, इन्द्रकौशिकाः, अघमर्षणाः, पूरणाश्चेति । तत्र कुशिकानां वैश्वामित्रदैवरातौदलेति त्र्यार्षेयः प्रवरः । रौहितानां वैश्वामित्राष्टकरौहितेति त्र्यार्षेयः प्रवरः । रौक्षकानां वैश्वामित्ररौक्षकरैवतकेति त्र्यार्षेयः प्रवरः । कामकायनानां वैश्वामित्रदैवश्रवसदैवतरसेति त्र्यार्षेयः प्रवरः । अजानां वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाजेति त्र्यार्षेयः प्रवरः । धनञ्जयानां वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसधानञ्जयेति त्र्यार्षेयः प्रवरः । कतानां वैश्वामित्रकात्याक्षीलेति त्र्यार्षेयः प्रवरः । इन्द्रकौशिकानां वैश्वामित्रैन्द्रकौशिकेति त्र्यार्षेयः प्रवरः । अघमर्षणानां वैश्वामित्राघमर्षणकौशिकेति त्र्यार्षेयः प्रवरः । पूरणानां वैश्वामित्रपौरणेति द्व्यार्षेयः प्रवरः । एषु दशसु प्रवरेषु गोत्रकर्त्तुर्विश्वामित्रस्यानुवर्त्तनात् 'एक एव ऋषिर्यावत्' इति परिभाषया सगोत्रत्वादविवाहः । अथात्र विशेषः कथ्यते—देवरातः पनसश्चेति द्वौ जामदग्न्यौ, विश्वामित्रेण पालितत्वाद् वैश्वामित्रौ चापि स्तः। अतस्तयोर्जामदग्न्यैर्विश्वामित्रैश्च न विवाहः । तौ विहाय विश्वामित्राणां जमदग्नीनां च मिथो विवाहः । तथा च धनञ्जयं वामरथ्यमुल्यांश्च विहाय विश्वामित्रगणस्य अत्रिगणस्य च मिथो विवाहः । धनञ्जयवामरथ्यादीनां विश्वामित्रैरत्रिभिश्च न विवाहः । कतादिकान् शौङ्गशैशिरीन् कपिलांश्च विहाय विश्वामित्राणां भरद्वाजानां च मिथो विवाह इष्टः । अथ कश्यपास्त्रिविधा—निध्रुवाः, रेभाः, शण्डिलाश्चेति । निध्रुवाणां काश्यपावत्सारनैध्रुवेति त्र्यार्षेयः प्रवरः । रेभाणां काश्यपावत्साररैभेति त्र्यार्षेयः प्रवरः । शण्डिलानां काश्यपावत्सारशाण्डिल्येति वा, काश्यपावत्सारदैवलेति वा, काश्यपावत्सारासितेति वा शाण्डिल्यासितदैवलेति वा, त्र्यार्षेयः प्रवरः । दैवलासितेति द्व्यार्षेयप्रवरोऽपि वा । एषां त्रयाणां गोत्रकर्त्तुः कश्यपस्यानुवृत्तेः 'एक एव ऋषिर्यावत्' इति परिभाषया समानगोत्रत्वान् मिथो नाऽन्वयः । शण्डिलगोत्रस्य चतुर्थे प्रवरे कश्यपानुवृत्त्यभावेऽपि शण्डिलगोत्रस्य पूर्वोक्तप्रवरत्रये कश्यपस्यानुवृत्तेर्विद्यमानत्वादनु-

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वृत्तिरस्ति । अतस्त्रिविधानामपि कश्यपानां मिथो न विवाहः । अथात्र विशेष उच्यते, लौगाक्षिर्नाम कश्यपसन्तानो वसिष्ठेनोपनीतः अहर्वसिष्ठो रात्रौ कश्यपो जातः । उपनयनं द्वितीयं जन्म, तस्य दिवा विहितत्वात्, निषेकः प्रथमं जन्म, तस्य रात्रौ विहितत्वात् । अतो लौगाक्षिगणस्य कश्यपैर्वसिष्ठैश्च न विवाहः । लौगाक्षीणां द्वयामुष्यायणत्वात् काश्यपावत्सारवासिष्ठेति वा वासिष्ठकाश्यपावत्सारेति वा त्र्यार्षेयः प्रवरः । भिन्नगोत्रे ह्युपनीतस्याऽहरुपदेष्टृ रात्रौ निषेक्तुरिति द्वयामुष्यायणत्वम् । अत एव निध्रुवरेभशण्डिललौगाक्षीणां मिथो नान्वयः । तथा च प्रयोगपारिजाते ह्यापस्तम्बः—

"कश्यपो रेभरैभौ च शण्डिलो देवलोऽसितः ।
संस्कृतिः पूतिमाषश्चावत्सारो निध्रुवो दश
गोत्राणि कश्यपगणाः, अन्योन्यं न करग्रहः" । इति ।

अस्यार्थः—संस्कृतिपूतिमाषौ बोधायनसूत्रे शुद्धाङ्गिरोगणे कश्यपगणे च पठितौ । आपस्तम्बसूत्रे वसिष्ठगणे पठितौ । अतस्तयोश्शुद्धाङ्गिरोभिः कश्यपैर्वसिष्ठैश्च नान्वयः । लौगाक्षिगण आपस्तम्बे पठितः । तथाहि—

"अनघ्योऽराकुलयस्तातयो राजवारयः ।
शैराश्च क्षीरजाश्चापि वाहवस्तदनन्तरम् ॥
तथा चाशुचयः प्रोक्तास्सरन्ध्रयो राजसेवकाः ।
खापुलिङ्गाश्च लौगाक्षिस्तथैव शरदम्बराः ॥
एते त्रययोदश प्रातर्वसिष्ठा निशि कश्यपाः ।
गायत्रीयोनिसम्बन्धावङ्गीकृत्य प्रवर्त्तकाः ॥
तेषां गोत्रद्वयं मुक्त्वा वसिष्ठं कश्यपं तथा ।
सर्वत्रापि विवाहः स्यादिति वेदविदो विदुः" ॥

अस्यार्थः—त्रयोदशानामेतेषां गायत्रीसम्बन्धादहर्वसिष्ठत्वं, योनिसम्बन्धान्निशि कश्यपत्वम् । तेषां वसिष्ठैः कश्यपैश्च नान्वय इति । अथ वसिष्ठगणाः कथ्यन्ते केवलवसिष्ठाः, कुण्डिनाः, उपमन्यवः, पराशराश्चेति । तत्र केवलवसिष्ठानां वासिष्ठेत्येकार्षेयः प्रवरः । कुण्डिनानां वासिष्ठमैत्रावरुणकौण्डिन्येति त्र्यार्षेयः प्रवरः । उपमन्यूनां वासिष्ठेन्द्रप्रमदाभरद्वाव्येति त्र्यार्षेयः प्रवरः । पराशराणां वासिष्ठशाक्त्यपाराशर्येति त्र्यार्षेयः प्रवरः । एतेषां चतुर्णां गोत्रकर्तुर्वसिष्ठस्यानुवृत्तेः समानगोत्रत्वान्न मिथो विवाहः ।

जातूकर्ण्यो विवाहात्पूर्वम् अत्रेः पुत्र्यां वसिष्ठवीर्योत्पन्नः । कन्यकानां दानेनान्यगोत्रं, दानाभावे जनकगोत्रमेव । अतो जातूकर्ण्यः अत्रिगोत्रो वसिष्ठगोत्रश्चेति द्वयामुष्यायणः, अतस्तत्सन्ततेस्तस्य च वसिष्ठैरत्रिभिश्च न विवाहः । अथेदानीं चत्वारोऽगस्तयो निरूप्यन्ते—इध्मवाहाः, शाम्भवाहाः, सोमवाहाः, यज्ञवाहाश्चेति । तत्रेध्मवाहानाम् आगस्त्यदार्ढ्यच्युतैध्मवाहेतित्र्यार्षेयः प्रवरः । शाम्भवाहानाम् आगस्त्यदार्ढ्यच्युतशाम्भवाहेति त्र्यार्षेय प्रवरः । सोमवाहानाम् आगस्त्यदार्ढ्यच्युतसौमवाहेति त्र्यार्षेयः प्रवरः । यज्ञवाहानाम् आगस्त्यदार्ढ्यच्युतयाज्ञवाहेति त्र्यार्षेयः प्रवरः । एषां चतुर्णां गोत्रकर्त्तुरगस्तेरनुवृत्तेः समानप्रवरत्वात्समानमुनिभूयस्त्वाच्च न विवाहः इति । इत्थम् ऊनपञ्चाशत् प्रवरा बोधायनमतेन प्रदर्शिता अस्माभिः । एतेषां प्रत्येकस्यावान्तरगणविभागाः प्रवरमञ्जरीप्रवरदर्पणादिषु द्रष्टव्याः विस्तरभयान्नात्रास्माभिः प्रकाशिता इति । क्षत्रियाणां मनुगोत्रं, वैश्यानां च भालन्दनगोत्रमस्तीति निर्दिष्टम् । क्षत्रियवैश्यादीनां स्वस्वपुरोहितगोत्रप्रवरौ भवत इत्यपि व्यवस्थितम् । अयमेव द्वितीयपक्षो विज्ञानेश्वराद्यनुमतः । "स पुरोहितप्रवरस्त्वेवं न्यायेन" इत्यापस्तम्बोक्तेः । सर्वेषां क्षत्रियाणां मनुगोत्रत्वेन वैश्यानां भालन्दनगोत्रत्वेन च सगोत्रत्वाद् विवाहाप्रसङ्गः प्रसज्येत । तस्मात् क्षत्रियवैश्यादीनां पुरोहितगोत्रेणैव सगोत्रता सर्वसम्मता । अज्ञातगोत्राणां पुरोहितगोत्रम्, आचार्यगोत्रं वा विज्ञेयम् । यत्तु "गोत्रस्य त्वपरिज्ञाने काश्यपं गोत्रमिष्यते" इति, तदाचार्यगोत्राज्ञाने श्राद्धादिविषयमवधेयम् ।

"गोत्राणां तु सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च
ऊनपञ्चाशदेवैषां प्रवरा ऋषिदर्शनात्"

इति बोधायनेन प्रवरगणे संख्या प्रोक्ता । किन्तु कात्यायनापस्तम्बाश्वलायनबोधायनसत्याषाढलौगाक्षिप्रभृतिश्रौतसूत्राणां मत्स्यादिपुराणानां च समालोचनेन गोत्रप्रवराणां गणसंज्ञास्वरूपसंख्याक्रम-प्रवरविकल्पादिभिर्विसंवादो दृश्यते । अतोऽग्रेऽत्रास्मत्प्रकाशितां सर्वशास्त्रसम्मतां गोत्रप्रवरसूचीं निभाल्य विवाहादिधर्मकार्यनिर्णयोऽनुष्ठातव्य इति ।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आश्वलायनापस्तम्बबोधायनकात्यायनलौगाक्षिसत्याषाढमत्स्योक्ताः प्रवरदर्पणकारदर्शिताश्च गोत्रप्रवरर्षयः ।

गोत्राणामग्रे ग्रन्थप्रमाणविषये साङ्केतिकाक्षराणि लिखितानि तेषामाशयः निम्नभागे द्रष्टव्यः ।

प्रमाणग्रन्थाः—	साङ्केतिकं—	प्रमाणग्रन्थाः—	साङ्केतिकं—
आश्वलायनः	आ.	लौगाक्षिः	लौ.
आपस्तम्बः	आप.	सत्याषाढ़ः	स.
बोधायनः	बो.	मत्स्यः	म.
कात्यायनः	का.		

संख्या	गोत्रर्षयः		प्र०सं०	प्रवरर्षयः				
१	अगस्तिः	आप.	१	आगस्त्यः				
२	अगस्तिः	बो.	३	आगस्त्यः		दार्ढयच्युतः		ऐध्मवाहः
३	,,	का.	३	आगस्त्यः		माहेन्द्रः		मायोभुवः
४	अगस्त्यः	म.	३	,,		,,		,,
५	अघमर्षणः	बो.	३	वैश्वामित्रः		आघमर्षणः		कौशिकः
६	अजः	का.लौ.	३	वैश्वामित्रः		माधुच्छन्दसः		आजः
७	आजमीढ़ः	आप.	३	आङ्गिरसः		आजमीढः		काण्वः
८	अत्रिः	म.बो.	३	आत्रेयः		आर्चनानसः		श्यावाश्वः
९	अनूपः	का.लौ.	५	भार्गवः	च्यावनः	आप्नवानः	आर्ष्टिषेणः	आनूपः
१०	अप्नवानः	म.	५	भार्गवः	च्यावनः	आप्नवानः	और्वः	जामदग्न्यः
११	अयास्यः	का.लौ.	३	आङ्गिरसः		आयास्यः		गौतमः
१२	अरुणपराशरः	बो.म.	३	वासिष्ठः		शाक्त्यः		पाराशर्यः
१३	आंगस्त्यः	म.	३	आगस्त्यः		दार्ढयच्युतः		ऐध्मवाहः
१४	आत्रेयः	का.	३	आत्रेयः		आर्चनानसः		श्यावाश्वः
१५	आपस्तम्बः	बो.म.	३	आङ्गिरसः		बार्हस्पत्यः		भारद्वाजः
१६	आपस्तम्बिः	लौ.का.	५	भार्गवः	च्यावनः	आप्नावनः	आर्ष्टिषेणः	आनपः
१७	आयास्यः	बो.	३	आङ्गिरसः		आयास्यः		गौतमः
१८	आर्ष्टिषेणः	बो.आप.म.	५	भार्गवः	च्यावनः	आप्नवानः	आर्ष्टिषेणः	आ-पः

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संख्या	गोत्रर्षयः		प्र०सं०	प्रवरर्षयः
१९	आर्ष्टिषेणः	आप.	३	भार्गवः आर्ष्टिषेणः आनूपः
२०	आश्वलायनः	लौ.का.	३	भार्गवः वाध्र्यश्वः दैवोदासः
२१	,,	आप.	३	वासिष्ठः ऐन्द्रप्रमदः आभरद्वसव्यः
२२	,,	बो.	१	वासिष्ठः
२३	उच (त) थ्यः	म.	३	आङ्गिरसः औच (त) थ्यः औशिजः
२४	,,	आ. का.	३	आङ्गिरसः औच (त) थ्यः गौतमः
२५	,,	आ.	५	आङ्गिरसः औच (त) थ्यः गौतमः औशिजः काक्षीवतः
२६	उद्वाहः	म.	३	वासिष्ठः ऐन्द्रप्रमदः आभरद्वसव्यः
२७	उद्दालकः	म.	३	आत्रेयः आर्चनानसः श्यावाश्वः
२८	उपमन्युः	बो.म.	३	वासिष्ठः ऐन्द्रप्रमदः आभरद्वसव्यः
२९	और्वः	म.	५	भार्गवः च्यावनः आप्नवानः और्वः जामदग्न्यः
३०	औशिजः	आप.	३	आङ्गिरसः औशिजः काक्षीवतः
३१	कण्वः	बो.का.लौ.	३	आङ्गिरसः आजमीढः काण्वः
३२	,,	म.	३	आङ्गिरसः आ (सा) महीयवः औरुक्षयः
३३	,,	आ.	३	आङ्गिरसः घौरः काण्वः
३४	काण्वः	म.	३	वासिष्ठः ऐन्द्रप्रमदः आभरद्वसव्यः
३५	कर्णः	म.	५	आङ्गिरसः वार्हस्पत्यः भारद्वाजः वान्दनः मातवचसः
३६	कर्दमः	म.	३	काश्यपः आसितः दैवलः
३७	कश्यपः	बो.आप.	३	काश्यपः आवत्सारः नैध्रुवः
३८	,,	म.	३	काश्यपः आसितः दैवलः (शाण्डिलः)
३९	,,	आ.	३	काश्यपः आवत्सारः आसितः
४०	कश्यपिः	म.	३	भार्गवः वैतहव्यः सावेदासः
४१	क्रतुः	म.	३	आगस्त्यः माहेन्द्रः मायोभुवः
४२	कात्यायनः	म.लौ.का.	३	आङ्गिरसः आ (सा) महीयवः औरुक्षयः
४३	,,	आप.का.	३	वैश्वामित्रः कात्यः आक्षीलः
४४	,,	बो.का.	५	भार्गवः च्यावनः आप्नवानः आर्ष्टिषेणः आनूपः
४५	,,	आप.	३	भार्गवः आर्ष्टिषेणः आनूपः
४६	काविष्ठिरः	बो.	३	आत्रेयः आर्चनानसः श्यावाश्वः
४७	कावेपावः	आप.	३	वैश्वामित्रः दैवरातः औदलः
४८	काश्यपिः	म.	३	भार्गवः वैतहव्यः रैवसः
४९	काश्यपेयः	म.	३	काश्यपः आवत्सारः नैध्रुवः
५०	कुण्डिनः	बो.आ.	३	वासिष्ठः मैत्रावरुणः कौण्डिन्यः
५१	कुत्सः	आ.	३	आङ्गिरसः आम्बरीषः यौवनाश्वः
५२	,,	आप.	३	आङ्गिरसः मान्धात्रः कौत्सः

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संख्या:	गोत्रर्षय:		प्र०सं०	प्रवरर्षय:				
५३	कुशिक:	बो.का.लौ.	३	वैश्वामित्र:	दैवरात:	औदल:		
५४	,,	आप.	३	वैश्वामित्र:	आघमर्षण:	कौशिक:		
५५	कृष्णपराशर:	बो.म.	३	वासिष्ठ:	शाक्त्यं:	पाराशर्य:		
५६	कृष्णात्रेय:	बो.	३	आत्रेय:	आर्चनानस:	श्यावाश्व:		
५७	कौण्डिन्य:	बो.	३	आङ्गिरस:	वार्हस्पत्य:	भारद्वाज:		
५८	कौथम:	म.	५	आङ्गिरस:	वार्हस्पत्य:	भारद्वाज:	वान्दन:	मातवचस:
५९	कौथुम:	का.लौ.	५	,,	,,	,,	,,	,,
६०	कौशिक:	म.	३	वैश्वामित्र:	आश्मरथ्य:	वाघुल:		
६१	गर्ग:	का.लौ.बो.	५	आङ्गिरस:	वार्हस्पत्य:	भारद्वाज:	शैन्य:	गार्ग्य:
६२	,,	आ.	५	आङ्गिरस:	वार्हस्पत्य:	भारद्वाज:	गार्ग्य:	शैन्य:
६३	,,	आ.	३	आङ्गिरस:	शैन्य:	गार्ग्य:		
६४	गर्दभ्य:	का.लौ.	५	भार्गव:	च्यावन:	आप्नवान:	आर्ष्टिषेण:	आनूप:
६५	गर्दभामुख:	का.लौ.	३	काश्यप:	आवत्सार:	वासिष्ठ:		
६६	गर्दभ:	म.	३	आङ्गिरस:	आजमीढ:	काण्व:		
६७	,,	आ.	३	आङ्गिरस:	घौर:	काण्व:		
६८	गर्दभीमुख:	का.लौ.म.	३	काश्यप:	आसित:	दैवल:		
६९	,,	का.लौ.	३	शाण्डिल:	आसित:	दैवल:		
७०	गविष्ठिर:	आप.बो.	३	आत्रेय:	आर्चनानस:	पौर्वातिथि:		
७१	,,	म.का.लौ.	३	आत्रेय:	गाविष्ठिर:	पौर्वातिथि:		
७२	,,	आप.	३	आत्रेय:	आर्चनानस:	गाविष्ठिर:		
७३	गाधिन:	आप.	३	वैश्वामित्र:	गाधिन:	रैवण:		
७४	गार्गीय:	म.	३	भार्गव:	वैतहव्य:	रैवस:		
७५	गार्ग्य:	म.	३	आङ्गिरस:	तैत्तिर:	कापिभुव:		
७६	,,	बो.	५	आङ्गिरस:	वार्हस्पत्य:	भारद्वाज:	शैन्य:	गार्ग्य:
७७	,,	आ.	३	आङ्गिरस:	शैन्य:	गार्ग्य:		
७८	गार्त्समद:	बो.	१	शौनक:				
७९	,,	बो.	१	गार्त्समद:				
८०	गार्दभ्य:	म.	५	भार्गव:	च्यावन:	आप्नवान:	आर्ष्टिषेण:	आनूप:
८१	गालव:	म.	५	भार्गव:	च्यावन:	आप्नवान:	और्व:	जामदग्न्य:
८२	,,	का.लौ.	३	वैश्वामित्र:	दैवरात:	औदल:		
८३	गृत्समद:	आ.	३	भार्गव:	शौनहोत्र:	गार्त्समद:		
८४	,,	लौ.का.म.	२	भार्गव:	गार्त्समद:			
८५	,,	लौ.का.	१	गार्त्समद:				
८६	गोभिल:	म.	३	काश्यप:	आसित:	दैवल:		

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संख्या:	गोत्रर्षयः		प्र०सं०	प्रवरर्षयः				
८७	गौतमः	आ.	३	आङ्गिरसः		आयास्यः		गौतमः
८८	,,	म.	३	आङ्गिरसः		औच (त) थ्यः		औशिजः
८९	,,	का.	३	आङ्गिरसः		औच (त) थ्यः		गौतमः
९०	गौर पराशरः	बो.म.	३	वासिष्ठः		शाक्त्यः		पाराशर्यः
९१	गौरिवीतः	बो.	३	आत्रेयः		आर्चनानसः		पौर्वातिथिः
९२	घृतकौशिकः		२	वैश्वामित्रः	कापातरसः			
९३	घोरः	आ.	३	अङ्गिरसः	घोरः	काण्वः		
९४	चान्द्रायणः	बो.	३	आङ्गिरसः		गौरुवीतः		साङ्कृत्यः
९५	चैकः	का.लो.	३	वासिष्ठः		ऐन्द्रप्रमदः		आभरद्वसव्यः
९६	च्यवनः	म.	५	भार्गवः	च्यावनः	आप्नवानः	और्वः	जामदग्न्यः
९७	जमदग्नि(वत्सः)	लो.का.म.	५	,,	,,	,,	,,	,,
९८	,, (अवत्सः)	म.	३	भार्गवः		च्यावनः		आप्नवानः
९९	जातुकर्ण्यः	म.	३	वासिष्ठः		आत्रेयः		जातूकर्ण्यः
१००	जातूकर्ण्यः	बो.	१		वासिष्ठः			
१०१	,,	का.लो.	३	वासिष्ठः		आत्रेयः		जातूकर्ण्यः
१०२	,,	आप.	३	वासिष्ठः		ऐन्द्रप्रमदः		आभरद्वसव्यः
१०३	जाबालः	का.लो.	३	वैश्वामित्रः		दैवरातः		औदलः
१०४	जाबालिः	बो.	३	,,		,,		,,
१०५	,,	म.	३	भार्गवः		वैतहव्यः		रैवसः
१०६	,,	बो.	५	भार्गवः	च्यावनः	आप्नवानः	और्वः	जामदग्न्यः
१०७	जामदग्न्यः	आप.	५	,,	,,	,,	,,	,,
१०८	,,	आप.	३	भार्गवः		और्वः		जामदग्न्यः
१०९	जैमिनिः	आ.	३	भार्गवः		वैतहव्यः		सावेदसः
११०	दक्षः	का.लो.	३	आत्रेयः		गाविष्ठिरः		पौर्वातिथिः
१११	दत्तात्रेयः	बो.	३	आत्रेयः		आर्चनानसः		श्यावाश्वः
११२	दार्ढच्युतः	बो.	३	आगस्त्यः		दार्ढ्यच्युतः		ऐध्मवाहः
११३	दालभ्यः	का.लो.	३	आङ्गिरसः		आम्बरीषः		यौवनाश्वः
११४	,,	का.ल.	३	मान्धात्रः		आम्बरीषः		यौवनाश्वः
११५	दिवावसिष्ठः	म.	३	काश्यपः		आवत्सारः		वासिष्ठः
११६	दिवोदासः	म.	३	भार्गवः		वाध्र्यश्वः		दैवोदासः
११७	दीर्घतमसः	बो.	५	आङ्गिरसः	औचः (त)थ्यः	काक्षीवतः	गौतमः	दैर्घतमसः
११८	,,	आ.	३	आङ्गिरसः		औच (त) थ्यः		दैर्घतमसः
११९	देवरातः	आप.	३	वैश्वामित्रः		दैवरातः		औदलः
१२०	,,	का.लो.	३	वैश्वामित्रः		दैवश्रवसः		दैवतरसः

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संख्याः	गोत्रर्षयः		प्र०सं०	प्रवरर्षयः				
१२१	धनञ्जयः	आप. स.	३	वैश्वामित्रः		माधुच्छन्दसः		धानञ्जयः
१२२	,,	म.	३	वैश्वामित्रः		माधुच्छन्दसः		आघमर्षणः
१२३	धन्वन्तरिः	बो.	३	काश्यपः		आवत्सारः		शाण्डिल्यः
१२४	,,	बो.	३	शाण्डिलः		आसितः		दैवलः
१२५	धूम्रपाराशरः	बो.म.	३	वासिष्ठः		शाक्त्यः		पाराशर्यः
१२६	निध्रुवः	बो.	३	काश्यपः		आवत्सारः		नैध्रुवः
१२७	नैध्रुवः	आ.	३	,,		,,		,,
१२८	पतञ्जनः	का.लो.	३	आत्रेयः		आर्चनानसः		श्यावाश्वः
१२९	पतञ्जलः	का.लो.बो.	३	आङ्गिरसः		आ(सा) महीयवः		औरुक्षयः
१३०	पराशरः	आप.बो.म.	३	वासिष्ठः		शाक्त्यः		पाराशर्यः
१३१	पाणिनिः	बो.	५	भार्गवः	च्यावनः	आप्नवानः	और्वः	जामदग्न्यः
१३२	,,	स.का.लो.	३	वैश्वामित्रः		माधुच्छन्दसः		धानञ्जयः
१३३	,,	म.	३	वैश्वामित्रः		माधुच्छन्दसः		आघमर्षणः
१३४	पारणः	म.	३	आगस्त्यः		पौर्णमासः		पारणः
१३५	पार्थः	बो.	३	भार्गवः		वैन्यः		पार्थः
१३६	पुलस्तिः	बो.	५	भार्गवः	च्यावनः	आप्नवानः	और्वः	बैदः
१३७	,,	का.म.	३	आगस्त्यः		म.हेन्द्रः		मायोभुवः
१३८	पुलहः	म.	३	,,		,,		,,
१३९	पौर्णमासः	म.	३	आगस्त्यः		पौर्णमासः		पारणः
१४०	पौलस्तिः	लो.का.	३	आगस्त्यः		माहेन्द्रः		मायोभुवः
१४१	पौलस्त्यः	म.	३	,,		,,		,,
१४२	,,	म.	३	भार्गवः		च्यावनः		आप्नवानः
१४३	,,	लो.का.म.	३	भार्गवः		और्वः		जामदग्न्यः
१४४	पौलहः	म.	३	आगस्त्यः		माहेन्द्रः		मायोभुवः
१४५	विदः	आ.	५	भार्गवः	च्यावनः	आप्नवानः	और्वः	बैदः
१४६	,,	म.	३	भार्गवः		च्यावनः		आप्नवानः
१४७	बृहदुक्थः	आ.	३	आङ्गिरसः		बार्हदुक्थः		गौतमः
१४८	,,	का.लो.	३	आङ्गिरसः		बार्हदुक्थः		वामदेवः
१४९	बोधायनः	का.लो.	३	वासिष्ठः		आत्रेयः		जातूकर्ण्यः
१५०	बौधायनः	बो.	५	भार्गवः	च्यावनः	आप्नवानः	और्वः	बैदः
१५१	भरद्वाजः	का.लो.	५	आङ्गिरसः	वार्हस्पत्यः	भारद्वाजः	शौङ्गः	शैशिरः
१५२	,,	म.	५	आङ्गिरसः	वार्हस्पत्यः	भारद्वाजः	मान्त्रवरः	आत्मभुवः
१५३	भरद्वाजः	बो.आप.	३	आङ्गिरसः		वार्हस्पत्यः		भारद्वाजः
१५४	भरद्वाजाग्निवेश्यः	आ.	३	,,		,,		,,

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संख्याः	गोत्रर्षयः		प्र०सं०	प्रवरर्षयः
१५५	भार्गः	म.	५	भार्गवः च्यावनः आप्नवानः और्वः जामदग्न्यः
१५६	भारद्वाजः	म.	५	आङ्गिरसः बार्हस्पत्यः भारद्वाजः मौग्दल्यः शैशिरः
१५७	भारद्वाजनिः	बो.	३	आत्रेयः आर्चनानस श्यावाश्वः
१५८	भारद्वाजायनः	बो.	३	,, ,, ,,
१५९	भृगुः	लो.का.	५	भार्गवः च्यावनः आप्नवानः और्वः जामदग्न्यः
१६०	भृगवः	म.	३	काश्यपः आवत्सारः नैध्रुवः
१६१	मयोभुवः	लो.का.म.	३	आगस्त्यः माहेन्द्रः मायोभुवः
१६२	माण्डव्यः	बो.	५	भार्गवः च्यावनः आप्नवानः और्वः जामदग्न्यः
१६३	माधुच्छन्दसः	का.लो.	३	वैश्वामित्रः माधुच्छन्दसः आजः
१६४	माध्यन्दिनिः	बो.	३	वासिष्ठः मैत्रावरुणः कौण्डिन्यः
१६५	मान्धाता	आ.	३	मान्धात्रः आम्बरीषः यौवनाश्वः
१६६	,,	बो.	३	आङ्गिरसः आम्बरीषः यौवनाश्वः
१६७	मान्धातुः	बो.	३	,, ,, ,,
१६८	मारीचः	म.	३	काश्यपः आवत्सारः नैध्रुवः
१६९	मार्कण्डेयः	बो.	५	भार्गवः च्यावनः आप्नवानः और्वः जामदग्न्यः
१७०	माहुलः		३	वैश्वामित्रः साहुलः माहुलः
१७१	माहुलिः	बो.	३	आत्रेयः आर्चनानसः श्यावाश्वः
१७२	मित्रयुः	बो.	३	भार्गवः वाध्र्यश्वः दैवोदासः
१७३	मित्रावरुणः	का.लो.	३	वासिष्ठः मैत्रावरुणः कौण्डिन्यः
१७४	मुग्दलः	म.आ.	३	आङ्गिरसः भार्म्यश्वः मौग्दल्यः
१७५	,,	बो.	३	आत्रेयः आर्चनानसः पौर्वातिथिः
१७६	मैत्रेयः	का.	३	काश्यपः आवत्सारः रैभ्यः
१७७	मौग्दलः	लो.का.	३	भार्गवः वैतहव्यः सावेदासः
१७८	,,	लो.का.	३	आङ्गिरसः भार्म्यश्वः मौग्दल्यः
१७९	,,	लो.का.	३	वासिष्ठः मैत्रावरुणः कौण्डिन्यः
१८०	मौग्दल्यः	आप.	५	भार्गवः च्यावनः आप्नवानः और्वः जामदग्न्यः
१८१	यज्ञवल्क्यः	म.	१	वासिष्ठः
१८२	यस्कः	बो.	३	भार्गवः वैतहव्यः सावेदासः
१८३	याज्ञवल्क्यः	का.	१	वासिष्ठः
१८४	याज्ञवल्क्यः	आप.	३	वासिष्ठः ऐन्द्रप्रमदः आभरद्वसव्यः
१८५	,,	आप.का.लो.बो.	३	वैश्वामित्रः दैवरातः औदलः
१८६	यास्कः	आप.	३	भार्गवः वैतहव्यः सावेदासः
१८७	रथीतरः	का.लो.	३	आङ्गिरसः वैरुपः रथीतरः
१८८	,,	बो.	३	आङ्गिरसः वैरूपः पार्षदश्वः

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संख्याः	गोत्रर्षयः		प्र०सं०	प्रवरर्षयः				
१८९	रहूगणः	आ.	३	आंगिरसः		राहूगण्यः		गौतमः
१९०	रहूगणः	बो.	३	आंगिरसः		गौतमः		शारद्वन्तः
१९१	रेणूः	आ.	३	वैश्वामित्रः		गाधिनः		रैणवः
१९२	रेभः	का.आप.आ.	३	काश्यपः		आवत्सारः		रैभ्यः
१९३	लौगाक्षिः	बो.	३	काश्यपः		आवत्सारः		वासिष्ठः
१९४	लौगाक्षिः	का.लौ.	३	,,		,,		,,
१९५	,,	का.लौ.	३	आंगिरसः		औच (त) थ्यः		गौतमः
१९६	वत्सः	आप.	३	भार्गवः		और्वः		जामदग्न्यः
१९७	,,	आप.	५	भार्गवः	च्यावनः	आप्नवानः	और्वः	जामदग्न्यः
१९८	वसिष्ठः	आ. म. बो.	१		वासिष्ठः			
१९९	,,	म.	३	वासिष्ठः		आत्रेयः		जा कर्ण्यः
२००	वात्सायनः	आप.	३	भार्गवः		और्वः		जामदग्न्यः
२०१	,,	बो.	५	भार्गवः	च्यावनः	आप्नवानः	और्वः	जामदग्न्यः
२०२	वात्स्यः	बो.	५	,,	,,	,,	,,	,,
२०३	,,	का.लौ.	३	भार्गवः		च्यावनः		आप्नवानः
२०४	,,	का. लौ.	३	आंगिरसः		आम्बरीषः		यौवनाश्वः
२०५	,,	लौ.का.	३	मान्धात्रः		आम्बरीषः		यौवनाश्वः
२०६	,,	का.	३	काश्यपः		आवत्सारः		नैध्रुवः
२०७	वात्स्यायनः	म.	३	,,		,,		,,
२०८	,,	बो.	५	भार्गवः	च्यावनः	आप्नवानः	और्वः	जामदग्न्यः
२०९	,,	बो.	३	काश्यपः		आवत्सारः		शाण्डिल्यः
२१०	,,	बो.	३	काश्यपः		आवत्सारः		दैवलः
२११	,,	बो.	३	काश्यपः		आवत्सारः		आसितः
२१२	,,	बो.	३	शाण्डिल्यः		आसितः		दैवलः
२१३	वाध्र्यश्वः	आप.	१			वाध्र्यश्वः		
२१४	,,	आ.	३	भार्गवः		वाध्र्यश्वः		दैवोदासः
२१५	वाधूलः	बो.	३	भार्गवः		वैतहव्यः		सावेदासः
२१६	वामदेवः	आप.	३	आंगिरसः		वामदेवः		बार्हदुक्थः
२१७	वालखिल्यः	आप.	३	वैश्वामित्रः		दैवरातः		औदलः
२१८	वाल्मीकिः	बो.	५	भार्गवः	च्यावनः	आप्नवानः	और्वः	जामदग्न्यः
२१९	वासिष्ठः	बो.	१		वासिष्ठः			
२२०	,,	आपः	३	वासिष्ठः		ऐन्द्रप्रमदः		आभरद्वसव्यः
२२१	विदः	बो.	५	भार्गवः	च्यावनः	आप्नवानः	और्वः	वैदः
२२२	,,	लौ.का.	३	भार्गवः		और्वः		जामदग्न्यः

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संख्याः	गोत्रर्षयः		प्र०सं०	प्रवरर्षयः
२२३	विश्वामित्रः	का.लो.	३	वैश्वामित्रः दैवरातः औदलः
२२४	,,	बो.	३	वैश्वामित्रः माधुच्छन्दसः आजः
२२५	,,	का.	३	वैश्वामित्रः आश्मरथ्यः वाधुलः
२२६	विष्णुवृद्धः	म.आ.	३	आङ्गिरसः पौरुकुत्सः त्रासदस्यवः
२२७	,,	का.लो.	३	आङ्गिरसः पार्षदश्वः राथीतरः
२२८	वीतहव्यः	आप.	३	भार्गवः वैतहव्यः सावेदसः
२२९	,,	म.	५	भार्गवः च्यावनः आप्नवानः और्वः जामदग्न्यः
२३०	वेणुः	आ.	३	वैश्वामित्रः गाधिनः वैणवः
२३१	वैन्यः	बो.	३	भार्गवः वैन्यः पार्थः
२३२	वैरूपः	बो.	३	आङ्गिरसः वैरूपः राथीतरः
२३३	,,	बो.	३	आङ्गिरसः पार्षदश्वः वैरूपः
२३४	,,	आप.	३	आष्टादंष्ट्रः पार्षदश्वः वैरूपः
२३५	शक्तिः	का.लो.	३	आङ्गिरसः आ (सा) महीयवः औरुक्षयः
२३६	,,	आ.	३	शाक्त्यः गौरुवीतः सांकृत्यः
२३७	शाण्डिलः	बो.	३	काश्यपः आवत्सारः शाण्डिल्यः
२३८	,,	बो.	३	काश्यपः आवत्सारः दैवलः
२३९	,,	बो.	३	काश्यपः आवत्सारः आसितः
२४०	,,	आ.	३	काश्यपः आसितः दैवलः
२४१	,,	आ.बो.	३	शाण्डिल्यः आसितः दैवलः
२४२	शारद्वन्तः	बो.	३	आङ्गिरसः गौतमः शारद्वन्तः
२४३	,,	बो.का.	३	काश्यपः आवत्सारः वासिष्ठः
२४४	,,	बो.	३	काश्यपः आवत्सारः आसितः
२४५	शाक्त्यः	आ.	३	शाक्त्यः गौरुवीतः सांकृत्यः
२४६	शाण्डिल्यः	आप.म.	३	काश्यपः आसितः दैवलः
२४७	,,	आप.	२	आसित दैवलः
२४८	शाण्डिलिः	म.	१	वासिष्ठः
२४९	शिशिरः	बो.	३	वैश्वामित्रः कात्यः आक्षीलः
२५०	शुङ्गशैशिरः	आप.	५	आङ्गिरसः वार्हस्पत्यः भारद्वाजः कात्यः आक्षीलः
२५१	शुनकः	बो.आप.	१	गार्त्समदः
२५२	,,	आ.	३	भार्गवः शौनहोत्रः गार्त्समदः
२५३	,,	बो.	१	शौनकः
२५४	शृङ्गः	बो.	३	आङ्गिरसः वार्हस्पत्यः भारद्वाजः
२५५	शैशिरः	का.लो.	५	आङ्गिरसः वार्हस्पत्यः भारद्वाजः शौङ्गः शैशिरः
२५६	,,	म.	३	काश्यपः आवत्सारः वासिष्ठः

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संख्या:	गोत्रर्षयः		प्र०सं०	प्रवरर्षयः				
२५७	श्यामपराशरः	बो.म.	३	वासिष्ठः		शाक्त्यः		पाराशर्यः
२५८	श्वेतपराशरः	बो.म.	३	,,		,,		,,
२५९	सङ्कृतिः	का.लो.बो.	३	आङ्गिरसः		सांकृत्यः		गौरुवीतः
२६०	साङ्कृत्यः	लो.का.	५	भार्गवः	च्यावनः	आप्नवानः	और्वः	जामदग्न्यः
२६१	सावर्णिः	बो.	५	,,	,,	,,	,,	,,
२६२	,,	आ.	३	भार्गवः		वैतहव्यः		सावेदासः
२६३	साहुलः		३	वैश्वामित्रः		साहुलः		माहुलः
२६४	सुवर्णरेतसः		२	वैश्वामित्रः		कापातरसः		
२६५	सोमवाहः	बो.आप.	३	आगस्त्यः		दार्ढ्यच्युतः		सौमवाहः
२६६	सोमराजकः	आ.	३	आङ्गिरसः		सौमराजः		गौतमः
२६७	हरितः	बो.	३	आङ्गिरसः		आम्बरीषः		यौवनाश्वः
२६८	,,	आ.	३	मान्धात्रः		आम्बरीषः		यौवनाश्वः
२६९	,,	बो.	१			वासिष्ठ		
२७०	हरितयः	का.लो.	१			,,		
२७१	हरित्यः	बो.	३	काश्यपः		आवत्सारः		नैध्रुवः
२७२	हिरण्यः	म.	३	आत्रेयः		आर्चनानसः		गाविष्ठिरः
२७३	,,	का.	३	आत्रेयः		गाविष्ठिरः		पौर्वातिथिः
२७४	हिरण्यरेतसः		२	वैश्वामित्रः		हैरण्यरेतसः		
२७५	होता	बो.	३	काश्यपः		आवत्सारः		नैध्रुवः

॥ समाप्तेयं गोत्रप्रवरतालिका ॥

बटुकश्रमसम्पन्ना गोत्रप्रवरतालिका ।
प्राकट्यं नीयते लोके विश्वनाथः प्रसीदतु ॥

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

॥ ॐतत्सत् ॥

श्रीदत्तात्रेयधर्ममीमांसा ।

उपक्रमणिका ।

हे धर्मरूपे ! जगतामधीशे ! कृपाकटाक्षेण तवैव मातः ।
अनन्तब्रह्माण्डसमूह एष उत्पद्यते तिष्ठति लीयते च ॥
विकर्षणाकर्षणशक्तितोऽम्बिके ! ताराग्रहोपग्रहधूमकेतवः ।
स्थानाच्च्यवन्ते न च धर्मशक्तितो यतः स्वयं त्वं ह्यसि धर्मरूपिणी ॥

पिछली शताब्दीके शेष भागमें आबू गिरिके बनके वशिष्ठाश्रममें वर्तमान श्रीभारतधर्ममहामण्डलरूपी महायज्ञका बीजारोपण हुआ था । उससे वर्तमान भारतधर्ममहामण्डलका दिव्यदेह प्रकट हुआ है । उस देहका मेरुदण्डरूपी उसका शास्त्र-प्रकाशन विभाग है । उस स्वजातीय शास्त्र-प्रकाशन विभागसे सबसे प्रथम वैदिक दर्शन-शास्त्रोंका उद्धार किया गया । वैदिक दर्शनसिद्धान्त सब मिलकर सात हैं । यथा—न्याय और वैशेषिक ये दो पदार्थ-वादके दर्शन, योग और सांख्य–ये दो सांख्यप्रवचनके दर्शन और वेदके कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्डके अनुसार पूर्वमीमांसा, मध्यमीमांसा और उत्तरमीमांसा, ये तीन मीमांसादर्शन । इस प्रकार सात वैदिक दर्शनोंके द्वारा सप्त ज्ञानभूमिप्रदर्शक वैदिक दर्शनोंकी सात पौढ़ियां ज्ञानियोंकी अन्तर्दृष्टिके प्रकाशक हैं । इन सातोंमें पूर्वमीमांसा और मध्यमीमांसादर्शन असम्पूर्ण हो गये थे और उनके सब सूत्र उपलब्ध नहीं होते थे । श्रीमहामण्डलके इस कार्यविभागके द्वारा दोनोंके सब सूत्र उपलब्ध हुए हैं और तीनों मीमांसाओंके वर्तमान देशकालपात्रोपयोगी भाष्य प्रस्तुत हुए हैं । इसके अतिरिक्त अन्य चार दर्शनों पर भी देशकालोपयोगी भाष्य बने हैं और बन रहे हैं । इसीप्रकार वेदके उपनिषद् विभागके कई एक भाष्यग्रन्थ अध्यात्मविद्याको प्रकाशित करनेके निमित्त निर्मित हुए हैं । उपासनाकाण्डके शरीररूपी योगशास्त्रका औपपत्तिक अंश महर्षिपतञ्जलि-प्रणीत योगदर्शनमें यद्यपि मिलता था, परन्तु उसके क्रियासिद्धांशकी दशा बहुत शोचनीय थी । योगशास्त्रका क्रियासिद्धांश चार भागोंमें विभक्त है । यथा—मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग । यद्यपि उपनिषदों, पुराणों, तन्त्रों और अन्यान्यशास्त्रोंमें इन चारों सिद्धान्तोंका पता लगता है, तथापि इन चारोंके अलग अलग संहिताग्रन्थ अबतक उपलब्ध नहीं होते थे । अतः इन चारों योगोंके क्रियासिद्धांश पूर्णरूपमें अलग अलग प्राप्त होसकें और सब साधनोंका क्रमबद्ध पता लग सके, इसके निमित्त चार योगोंके चार संहिताग्रन्थ बहुत खोजके

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साथ हिन्दीअनुवाद सहित प्रकाशित हुए हैं। इसके अतिरिक्त वैदिक, तान्त्रिक और मिश्र इन तीनों सम्प्रदायोंके यज्ञसम्बन्धीकर्मकाण्डके पद्धतिग्रन्थ बहुत खोजके साथ संग्रहीत हुए हैं, जो सुभीतेके अनुसार प्रकाशित किये जायँगे। सगुण पञ्चोपासनाके उपासकोंका पारस्परिक अज्ञानजनक विरोध दूर करनेके निमित्त श्रीमहामण्डलके इस विभागके द्वारा शम्भुगीता, विष्णुगीता, धीशगीता, सूर्यगीता और शक्तिगीता रूपी पञ्च गीताओंका अनुसन्धान हुआ है, और वे हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित हुई हैं। उसी प्रकार शिष्योंके उपकारके लिये गुरुगीता और संन्यासियोंके कल्याणार्थ संन्यासगीता भी खोजसे निकाल कर प्रकाशित की गयी है। ये सब ग्रन्थ हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित होकर हिन्दी भाषाकी पुष्टि कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त संन्यासाश्रमके कल्याणार्थ कुटीचर, बहूदक, हंस और परमहंस इन चारों अधिकारोंकी साधन पद्धतिके ग्रन्थ और उपासकोंकी साधन पद्धतिके ग्रन्थ खोजकर निकाले गये हैं। श्रीमद्-भगवद्गीता, श्रीसप्तशतीगीता और रामगीता आदि गीताओंके तथा मार्कण्डेय पुराण, देवी भागवत आदि पुराणोंके ऐसे भाष्यग्रन्थ प्रकाशित हुए और हो रहे हैं, जैसे किसी भाषामें प्रकाशित नहीं हुए थे। भारतमें धार्मिक-शिक्षाविस्तारके निमित्त आबालवृद्ध स्त्री-पुरुष और पाठशालाओंकी सब श्रेणियोंके लिये पाठोपयोगी ५० से अधिक ग्रन्थ बने हैं और क्रमशः प्रकाशित होते जाते हैं। इसके अतिरिक्त लोकशिक्षार्थ अनेक टीकाग्रन्थ और अनेक संग्रहग्रन्थ, यथा—कहावतरत्नाकर आदि प्रकाशित हुए हैं। सनातनधर्मका एक महाग्रन्थ हजारों पृष्ठों और आठ बृहत् खण्डोंमें धर्मकल्पद्रुम नामसे सनातन धर्मका 'इनसाइक्लोपीडिया (महाकोष) बनकर प्रकाशित हुआ है।

यद्यपि श्रीभारतधर्ममहामण्डलके शास्त्रप्रकाशके द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी, अमरभाषा संस्कृत, तथा अङ्गरेजी और हिन्दुस्तानकी अन्यान्य प्रान्तीय भाषाओंमें सैकड़ों ग्रन्थ बने हैं और प्रकाशित हो रहे हैं। परन्तु संस्कृत भाषामें जो मुख्य ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं और हो रहे हैं उनके नाम निम्नलिखित हैं—

(१) न्याय दर्शन (सरल संस्कृतवृत्ति सहित) (२) वैशेषिक दर्शन (सरल संस्कृतवृत्ति सहित) (३) योग दर्शन (सरल संस्कृत वृत्ति सहित) (४) 'सांख्य दर्शन' (सरल संस्कृत वृत्ति और हिन्दी भाष्य सहित)। (५) 'श्रीभरद्वाज कर्ममीमांसा दर्शन' (सरल संस्कृत तथा हिन्दी भाष्य सहित) (६) श्री जैमिनीयं कर्ममीमांसा दर्शन (सरल संस्कृतवृत्ति सहित) (७) 'दैवी मीमांसा दर्शन' जो वेदके उपासनाकाण्डकी मीमांसा है। सरल संस्कृतवृत्ति, विस्तृत संस्कृतभाष्य और हिन्दीभाष्य सहित। (८) वेदान्तदर्शन अर्थात् ब्रह्ममीमांसा दर्शन, जिसके अनेक भाष्य प्रचलित हैं, तौभी उसका एक समन्वय भाष्य बना है। (९) श्रीशम्भुगीता (हिन्दी अनुवाद सहित) (१०) श्रीविष्णुगीता (हिन्दी अनुवाद सहित) (११) श्रीशक्तिगीता (हिन्दी अनुवाद सहित) (१२) श्रीधीशगीता (हिन्दी अनुवाद सहित) (१३) श्रीसूर्यगीता (हिन्दी अनुवाद सहित)। ये पञ्चसगुणउपासनाके पाँच गीता ग्रन्थ हैं। सब श्रेणीके उपासकोंके कल्याणके लिए—(१४) श्रीगुरुगीता (हिन्दी अनुवाद सहित)। सब श्रेणीके साधुसन्यासियोंके कल्याणार्थ (१५) संन्यासगीता (हिन्दीअनुवाद सहित), सब श्रेणीके संन्यासियोके उपकारार्थ (१६) श्रीसंन्यासधर्मपद्धति। योगमार्गके उपयोगी (१७) 'मन्त्रयोग संहिता'। (१८) हठयोग संहिता (१९) लययोग संहिता (२०) राजयोग संहिता। (२१) श्री मधुसूदन संहिता। पुराण समझनेके लिए (२२) पुराणरहस्य, कर्मकाण्ड समझनेके लिये (२३) 'श्रीदत्तात्रेय कर्मरहस्य', दर्शन शास्त्रकी शृंखला समझने के लिये (२४) 'श्रीदत्तात्रेयदर्शनादर्श' और धर्मके सार्वभौम रूपको और उसके विस्तृत अङ्गोंको समझनेके लिये (२५) श्रीदत्तात्रेयधर्ममीमांसा है, ये सब ग्रन्थ संस्कृतमें हैं। कलियुगके अभी केवल पांच हजार अड़तालीस वर्ष बीते हैं, आशा है, कि ये ग्रन्थ कलिके अन्त तक आर्य जातिकी रक्षा करते हुए जगत् हितकर धर्मकी सेवा करते रहेंगे। धर्मके सर्वव्यापक और सर्वहितकारी स्वरूपका यथार्थ रहस्यका भारतद्वीपवासी अग्रजन्मा ब्राह्मणगण ही अनुभव कर सके हैं। वेद और शास्त्रोंमें विश्वधारक धर्मको जगज्जननी भुवनेश्वरी जगद्धात्रीके रूपसे वर्णन किया गया है। श्रीजगदम्बाकी जो अलौकिक अचिन्तनीय शक्तिने ब्रह्माण्डसे लेकर पिण्ड पर्यन्त और नाना लोकोंसे लेकर एक परमाणु पर्यन्त जड़-चेतनात्मक

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यावत् सृष्टिको धारण किया है, उसी अलौकिक दैवी शक्तिको पूज्यपाद महर्षियोंने 'धर्म' शब्दसे अभिहित किया है। वस्तुतः श्रीजगदम्बाके रजोगुणसे सृष्टि होती है और तमोगुणसे उसका विलय होता है। दोनोंके मध्यस्थित सत्व गुणके द्वारा सृष्टिकी रक्षा होती है। वह सत्वगुण ही धर्मका आध्यात्मिक स्वरूप है। उस धर्मकी आधिदैविक मूर्त्तिके स्वरूपका तन्त्र आदि शास्त्रोंमें ऐसा वर्णन है कि सत्वगुणमयी जगद्धात्री देवी रजोगुणमय सिंह पर विराजमान है और उस सिंहने अनायास तमोगुणरूपी मत्त हाथीको वशीभूत कर उस पर एक पैर रक्खा है। धर्मका आधिभौतिक स्वरूप जड़चेतनात्मक विश्वमें मूर्तिमान् है। यही कारण है कि ब्रह्माण्डसे लेकर पिण्ड पर्यन्त और जड़राज्यसे लेकर चेतन राज्य पर्यन्त उसका स्वरूप सर्वत्र सब स्थानोंमें जाज्वल्यमान रहता है। एक प्रस्तरखण्ड जब बनता है तो उसके परमाणु रजोगुणसे आकर्षित हो जाते हैं। जब प्रस्तरखण्ड नाशको प्राप्त होता है तो तमोगुणके प्रभावसे उसके परमाणु बिखर कर मिट्टीमें मिल जाते हैं। परन्तु जबतक वह प्रस्तरखण्ड अपने स्वरूपमें विद्यमान रहता है, तबतक सत्वगुणकी अवस्था प्रस्तरखण्डके धर्मकी परिचायक होती है। इसी प्रकार जीवोंके वासोपयोगी लोकसमूह यथार्थरूपमें जबतक विद्यमान रहते हैं, ग्रह नक्षत्र आदि जबतक अपने स्वरूपमें रह कर अपनी अपनी कक्षाओंमें भ्रमण करते रहते हैं, तबतक धर्मकी धारिका शक्तिही उनके अस्तित्वकी रक्षा किया करती है। अग्निका तेज और उसकी उष्णता शक्ति जब तक विद्यमान है तब तक अग्निका धर्म और अग्निका अस्तित्व सिद्ध है। उस धर्मका अभाव होते ही वह कोयला या राख में परिणत हो जाता है। यही प्रत्येक जड़ पदार्थ, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, उसके वास्तविक स्वरूप को जो शक्ति धारण किये रहती है, वही जगद्धात्री जड़ राज्य में धर्म कहाती है। इसी प्रकार चेतनराज्य में वही विश्वधारक धर्मशक्ति क्रमशः जीव में सत्वगुण बढ़ाती हुई, उद्भिज से स्वेदज, स्वेदज से अण्डज और अण्डज से जरायुज योनियों में क्रमशः अग्रसर करके उसको मानव पिण्ड का अधिकारी बना देती है, मानवपिण्डधारी पूर्णावयव जीव पांचों कोषों से पूर्ण होकर धर्माधर्म का अधिकारी बन जाता है। मानव पिण्डधारी जीव ही पापपुण्य भोग का अधिकारी होने से स्वर्ग, नरक, प्रेत लोक आदि लोकों में जाने आने का माध्यम बन जाता है। इसी जन्म–मृत्यु के चक्र को आवागमन चक्र कहते हैं। वर्णाश्रमधर्मी आर्यजाति में ही षोडश कलाओं से पूर्ण आर्यधर्म का विकाश है। वर्तमान देश-काल-पात्र के उपयोगी यह धर्ममीमांसाग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। आशा है, भगवान् दत्तात्रेय प्रभु की कृपा से यह ग्रन्थ सम्पूर्ण मनुष्यसमाज को सन्मार्ग दिखाने में समर्थ होगा हिन्दू जातिका वर्तमान देशकालपात्र के अनुसार महान् अभाव दूर करने के अभिप्राय से संस्कृत भाषा में यह ग्रन्थ बना है। साथ ही साथ इसका हिन्दीअनुवाद भी दिया जाता है।

श्रीभगवान् की कृपा से यह ग्रन्थ ऐसा होगा कि राजा, प्रजा, हिन्दू, अहिन्दू और विद्वान्मात्र, धर्मका स्वरूप, हिन्दू धर्म के अंग और इसके सब विषयों को अच्छी तरह समझ सकेंगे। प्रत्येक प्रधान प्रधान विषय वैदिक और स्मार्त प्रमाण और दार्शनिक विवेचन से पूर्ण रहेगा। धर्मसिन्धु, निर्णयसिन्धु, रघुनन्दनजीका अष्टाविंशतितत्त्व, शूलपाणिजीका निबन्धग्रन्थ इत्यादि ग्रन्थोंमें ऐसे विषयों का अभाव है, जो इस ग्रन्थ में रहेगा। इसमें सनातनधर्म क्या है ? इत्यादि इस समयके उपयोगी नाना शंकाओंका समाधान करके इस ग्रन्थको पूर्णाङ्ग बनाया गया है। इसकी विषयसूचीका दिग्दर्शन नीचे कराया जाता है। इस ग्रन्थके तीन स्कन्ध होंगे।

(१) विश्वधारक धर्मतत्त्व—यह प्रथम स्कन्धका प्रथम अध्याय है। इसमें सृष्टिप्रवाहका अनादि अनन्त स्वरूप और उसके सम्बन्धसे धर्मका नित्यत्व बताया गया है।

(२) देशधर्म-तत्त्वः—यद्यपि देश भी अनन्त है, परन्तु अपने ब्रह्माण्डके सम्बन्धसे इस दूसरे अध्यायमें ब्रह्माण्डका स्वरूप बताकर देश और धर्मका सम्बन्ध दिखाया गया है।

(३) काल-धर्म-तत्त्व—यद्यपि दशों दिशाओंके देशकी तरह काल भी अनन्त है परन्तु इस तीसरे अध्याय में कालका विवेचन करके और उसके विभागोंका वर्णन करके धर्मका सम्बन्ध बताया गया है।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(४) सृष्टि-धर्मतत्त्व—इस अध्यायमें वेदोक्त तथा पुराणोक्त सृष्टितत्त्व व्यवस्थित रूपसे कहा गया है और साथही साथ सृष्टि कैसे नीचेकी ओर गिरती है और वर्णाश्रमबन्ध उसको कैसे रोकता है इस सम्बन्धसे धर्मका स्वरूप दिखाया गया है।

(५) मानव-धर्मतत्त्व—इस पाँचवें अध्यायमें उद्भिज आदि सृष्टिके अनन्तर मानवपिण्डकी सृष्टिका रहस्य और मनुष्यकी क्रमोर्द्ध्वगति बताकर धर्मका सम्बन्ध दिखाया गया है।

(६) साधारणधर्मतत्त्व—इस अध्यायमें धर्मका वह साधारण स्वरूप दिखाया गया है जो साधारण रूपसे जगत्के सब धर्म और सब मनुष्योंका हितकारी है।

(७) असाधारणधर्मतत्त्व—इस अध्यायमें वह धर्मरहस्य बताया गया है जो पूर्वजन्मार्जित संस्कार या योग-शक्ति आदिके द्वारा असाधारण शक्तिसम्पन्न ही जीव कर सके। जैसा कि महर्षि विश्वामित्रका एक जन्ममें क्षत्रियसे ब्राह्मण होना, द्रौपदी के पाँच पति होनेपर भी उसका सती रहना, इत्यादि।

(८) आपद्धर्मतत्त्व—इस अध्यायमें आपत्कालका धर्म बताया गया है, जिसमें अधर्मभी धर्म हो सकता है।

(९) विशेषधर्मतत्त्व—इसमें विशेषधर्मकी महिमा यथा वैदिकधर्म और अवैदिकधर्म, पुरुषधर्म स्त्रीधर्म आदिका रहस्य कहकर हिन्दू जातिके विशेषधर्म वर्णाश्रमधर्मका वर्णन किया गया है।

(१०) आर्यानार्यधर्मतत्त्व—इसमें आर्य अनार्य जातिका विवेचन, दोनोंकी संस्कृति आदिका वर्णन करके हिन्दूधर्मके सोलह अंगोंका दिग्दर्शन कराया गया है।

ऊपरलिखित दश अध्यायोंमें इस ग्रन्थका प्रथम स्कन्ध समाप्त होता है और ऊपर लिखित दशों अध्यायोंका पाठ करनेसे धर्मका यथार्थ स्वरूप विदित हो जाता है। इसके अनन्तर द्वितीय स्कन्ध प्रारम्भ होता है, जिसमें निम्न-लिखित सोलह अध्यायोंमें हिन्दूधर्मका विस्तारित स्वरूप वर्णन किया गया है।

(११) सदाचार निर्णय—इस अध्यायमें हिन्दू जातिके आचारोंका दिग्दर्शन कराया गया है।

(१२) सद्विचार निर्णय—इसमें आर्यजाति कैसे अपने विचारोंको आत्मोन्मुख रखती है उसका वर्णन तथा शिखासूत्रधारण आदिका विज्ञान वर्णन किया गया है।

(१३) सतीधर्मनिर्णय—त्रिलोकपवित्रकारी और आर्यजातिको पवित्र रखनेवाला सतीत्वधर्मका विज्ञान इस अध्यायमें कहा गया है।

(१४) वर्णधर्म निर्णय—रजोवीर्यशुद्धिमूलक अलौकिक विज्ञानसे पूर्व जन्मसे वर्णधर्म कैसा सम्बन्ध रखता है, सो कहा गया है।

(१५) आश्रमधर्म निर्णय—प्रवृत्तिरोधक, अन्तमें निवृत्तिपोषक और अभ्युदयनिःश्रेयकारी चारों आश्रमोंका धर्म इस अध्यायमें कहा गया है।

(१६) दैवीजगत् निर्णय—हमारा यह मृत्युलोक एक ब्रह्माण्डका बहुत ही छोटा अंश है, बाकी सब देवलोक हैं। उस देवलोककी दैवी शृङ्खलाका वर्णन इस अध्यायमें किया गया है।

(१७) अवतारवाद निर्णय—देवताओंके तथा असुरोंके अवतारोंका रहस्य और भगवदवतारोंका विज्ञान इस अध्याय में किया गया है।

(१८) योग, भक्ति और उपासनानिर्णय—इस अध्यायमें हिन्दू जातिके उपासनाविज्ञानका विस्तृत वर्णन है।

(१९) मूर्त्तिपूजा और पीठविज्ञान निर्णय—मूर्त्तिपूजाका विज्ञान तथा हिन्दूजाति कैसे पीठमें सर्वव्यापक दैवी सत्ताकी पूजा करती है, उसका रहस्य और उसका विस्तारित स्वरूप कहा गया है।

(२०) शुद्धाशुद्धविवेक निर्णय—इस अध्यायमें शुद्धाशुद्धविचार का और स्पर्शास्पर्श विचारका रहस्य कहा गया है।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(२१) यज्ञ और महायज्ञ निर्णय—इस अध्यायमें नाना प्रकारके यज्ञोंका रहस्य और पंचमहायज्ञ आदि महायज्ञोंका रहस्य कहा गया है।

(२२) वेद और शास्त्र निर्णय—वेदकी नित्यता, वह सृष्टिके आदिमें कैसे सुनाई देता है, हिन्दूजाति कितने प्रकारकी पुस्तकें मानती है और किस रीतिसे हिन्दूशास्त्रको पढ़ना चाहिये, उसका दिग्दर्शन इस अध्यायमें किया गया है।

(२३) कर्मविज्ञान और संस्कार निर्णय—इस अध्यायमें कर्मका विज्ञान संस्कारका विज्ञान और उसके भेदोंका वर्णन किया गया है।

(२४) जन्मान्तरवाद और आवागमनचक्र निर्णय—इस अध्यायमें जीवके जन्मान्तरतत्त्वका विज्ञान, उसकी गति और जीव कैसे स्वर्ग नरक आदि भोगकर फिर इस मृत्युलोकमें आता है। श्राद्ध आदिसे कैसे परलोकगामी आत्माको सहायता मिलती है और दायभागकी व्यवस्था इसकी सहायता के लिये कैसा उपयोगी है इत्यादि विषयोंका वर्णन किया गया है।

(२५) ईश्वरतत्त्व निर्णय—इस अध्याय में सगुण और निर्गुण ईश्वरतत्व का निर्णय किया गया है।

(२६) मुक्तितत्त्व निर्णय—इस अध्यायमें सप्तवैदिकदर्शन विज्ञानके अनुसार और विभिन्न आचार्योंके मतोंके अनुसार मुक्तितत्त्वका विवेचन किया गया है।

इन ऊपर लिखित २६ अध्यायोंके द्वारा हिन्दूधर्मका पूर्णस्वरूप विदित हो जाता है और दूसरा स्कन्ध समाप्त होता है। तदनन्तर निम्नलिखित अध्यायोंमें हिन्दुधर्मके सम्बन्धसे सब श्रेणीकी शङ्काओंका समाधान किया गया है और तीसरा स्कन्ध प्रारम्भ होता है।

(२७) सर्वधर्मसमन्वय विचार—यह तृतीय स्कन्धका पहला अध्याय होता है। इसमें वैदिकधर्मके सम्प्रदायोंका समन्वय है और अवैदिक धर्मके साथ वैदिक धर्मका समन्वय यथासम्भव किया गया है। जिससे आर्यधर्मका महत्त्व प्रकाशित होता है।

(२८) दर्शनशास्त्रसमन्वय विचार—इसमें वैदिक सप्तदर्शनोंका समन्वय तथा अवैदिक नास्तिक और आस्तिक दर्शनोंके विचारोंका समन्वय, अज्ञानभूमि और ज्ञानभूमिके अनुसार बताया गया है।

(२९) वैदिक और तान्त्रिक क्रियासमन्वय विचार—इस स्कन्धके इस तीसरे अध्यायमें वैदिक-कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्डके साथ तान्त्रिक कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्डका जो विरोध प्रतीत होता है उसका समन्वय किया गया है।

(३०) वेद और शास्त्र-भाषासमन्वय विचार—इस अध्यायमें वेदके, पुराणके और तन्त्र आदि शास्त्रोंके वर्णन समझनेमें जो जटिलता उत्पन्न होती है उसका समन्वय विचार किया गया है।

(३१) वैदिक और अवैदिक मतसमन्वय विचार—इस अध्यायमें हिन्दूधर्मके अन्तर्गत जो नाना सम्प्रदाय और नाना पन्थ हैं जिनमें आर्यधर्मके सब अङ्गोंकी निष्ठा नहीं पायी जाती, उनके विषयमें समन्वय करके पथप्रदर्शन किया गया है।

(३२) भगवन्नाममहिमाकीर्त्तन विचार—इसमें नामगान, लीलागान और विनयगान आदिका विचार किया गया है।

(३३) शरीरनैरोग्य और चिकित्सा विचार—इसमें आर्यसंस्कृतिके अनुसार तुलनात्मक गवेषणा की गयी है।

(३४) पाप और प्रायश्चित्त विचार—निबन्धग्रन्थों और मूलस्मृतियोंके अनुसार वर्त्तमान देशकाल-पात्रके उपयोगी विचार किया गया है।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(३५) अरिष्ट और उसकी निवृत्तिके लिये अनुष्ठान आदिका विचार—इसमें दार्शनिक और वैज्ञानिक युक्तिसे विचार किया गया है।

(३६) तप और नाना व्रतानुष्ठान विचार—इसमें एकादशी आदि विशेष व्रतों और उपवासोंका भी विचार किया गया है।

(३७) अनार्यदेश अर्थात् भारतखण्डके अन्यत्रकी यात्रा आदिका विचार—वर्तमान देशकाल-पात्रानुसार किया गया है।

(३८) यान विचार—अर्थात् इस अध्यायमें रेल, जहाज, आकाशयान आदिकी यात्रासम्बन्धके विचार किये गये हैं।

(३९) असवर्णसृष्टि विचार—अर्थात् वर्णधर्मके विरुद्ध सृष्टिका विचार वर्तमान देशकाल पात्रानुसार किया गया है।

(४०) विवाहसंस्कार विचार और विवाहके भेद—इस अध्यायमें हिन्दूधर्मशास्त्रके अनुसार सब विवाहपद्धति और उसके वैज्ञानिक विचार किये गये हैं।

(४१) कामजसन्तति विचार—हिन्दूधर्ममें सन्तानोत्पत्ति धर्मरक्षाके लिये की जाती है अतः धर्मविरुद्ध सन्ततिके सम्बन्धमें वर्तमान समयमें जिन विचारोंकी आवश्यकता होती है सो इस अध्यायमें किया गया है।

(४२) व्रात्यसंस्कार विचार—वर्तमान समयमें द्विजातियोंमें ठीक ठीक संस्कार और समय पर संस्कार होना प्रायः बन्द हो गया है, अतः इस अध्यायमें आपद्धर्मके अनुसार व्रात्यसंस्कारका विचार किया गया है।

(४३) दायभागसिद्धान्त विचार—परलोकगामी आत्माके लिये दायभागकी व्यवस्था बांधी गई है। इस व्यवस्थाके नष्टभ्रष्ट करनेका भी यत्न हो रहा है। अतः निबन्धग्रन्थों तथा स्मृतियोंकी सहायतासे दायभाग व्यवस्थाका स्पष्टीकरण किया गया है।

(४४) पीठशुद्धि और पीठसंस्कार विचार—इसके सम्बन्धसे मन्दिरप्रवेश आदिका विचार किया गया है।

(४५) श्राद्धतत्त्वविचार—इसमें श्राद्ध तर्पण आदिका देशकालपात्र के अनुसार वर्णन और परलोक सम्बन्धी हानिलाभका विचार किया गया है।

(४६) धर्मान्तर ग्रहण विचार—इस अध्यायमें अनार्य जातिकी शुद्धि आदिका भी विचार किया जायगा।

(४७) आर्यसंस्कृति विचार—इस अध्यायमें समाजनीति, राजनीति, युद्धनीति आदिका भी विज्ञान सम्मिलित है।

(४८) स्त्रीका पुरुषान्तरग्रहण विचार—अर्थात् पतिके जिन्दा रहते या मरने पर हिन्दूजातिमें पुरुषान्तर ग्रहणकी व्यवस्था कहांतक हो सकती है।

(४९) पुरुषका बहुविवाह विचार—पुरुषके लिये एकसे अधिक विवाह और बहुविवाह कहांतक शास्त्रोक्त है इसपर विचार किया गया है।

(५०) अध्ययन-अध्यापन विचार—वर्तमान शिक्षाप्रणाली और प्राचीन हिन्दूशिक्षाप्रणालीकी तुलनात्मक गवेषणा भी इस अध्यायमें की गई है।

(५१) पूज्यापूज्य विचार—हिन्दूशास्त्रोंमें गुरुजनोंकी पूजाकी व्यवस्था अति उत्तम है और पूज्योंकी श्रेणी और पूज्योंका अधिकार भी अलग अलग बाँधा गया है, उसके अनुसार विचार इस अध्यायमें है।

(५२) अशौच विचार—इसमें मृताशौच आदिका भी वर्णन है।

(५३) तीर्थ और तीर्थपुरोहित विचार—वर्तमान देशकालपात्रके अनुसार तीर्थोंके सुधार आदिका भी शास्त्रोक्त विचार इस अध्यायमें है।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(५४) **गोसेवा विचार**—इसमें गोमेध आदि यज्ञों और मधुपर्क आदिमें गोदानका विचार भी सम्मिलित है और पीठविज्ञानके अनुसार गोजातिकी महिमा बतायी गई है।

शास्त्रोंमें पुस्तकोंके पाँच भेद पाये जाते हैं। उनके नाम ये हैं—ब्रह्माण्डपुस्तक, पिण्डपुस्तक, नादपुस्तक, विन्दुपुस्तक और अक्षरमयपुस्तक जो लिखनेमें आती है। नादमयपुस्तक ही वेद है, जो शब्द रूपसे नित्य है और अन्य पुस्तकें भाव रूपसे नित्य हैं। यही हिन्दू शास्त्रोंका सिद्धान्त है। इस कल्पमें जितने वेद प्रकाशित हुए थे, वे ११८० शाखाओंमें विभक्त थे। इतनी संख्यामें मन्त्र भाग, ब्राह्मण भाग और उपनिषद् भाग विभक्त थे। इस समय वेदका १००० वाँ हिस्सा भी नहीं मिलता है। इसी प्रकार शास्त्रोंका भी बड़ा भारी अंश लुप्त हो गया है। तो भी शास्त्र अब भी बहुत मिलते हैं, परन्तु वेदसम्मत शास्त्रसमूह अब भी इतना विस्तृत है और उसका फैलाव इतना अधिक है कि, उसका सारसंग्रह करके सिद्धान्त निश्चित करनेमें बड़ी कठिनता होती है। दूसरी ओर इस समयका देश, काल और पात्र इतना विपरीत हो गया है कि, मनुष्योंकी बुद्धि प्रायः अर्थ-काम की ही ओर चला करती है। मोक्षका सिद्धान्त तो लोग भूल गये हैं और धर्मको एक गौण पदार्थ मान रहे हैं। हिन्दू जातिका ध्येय एकमात्र धर्मकी ओर है, उसके शास्त्रसमूह धर्मको लक्ष्य करके अपना अपना पुरुषार्थ प्रगट करते हैं। वेदके आश्रयपर शास्त्र समूह आगे बढ़ते हैं। वह वेद इस समय सहस्रांश भी नहीं मिलता। वेद और शास्त्रोंके रहस्यसे अनभिज्ञ, पश्चिमी शिक्षाके प्रभावसे दृष्टिहीन, अहम्मन्य, हिन्दू समाजके नेतृवृन्द ऐसे उच्छृङ्खल हो गये हैं कि जिनके मनमें जो आता है, उसीको प्रगट करके धर्माचार्य बननेका साहस प्रगट किया करते हैं। केवल पूज्यपाद महर्षियों द्वारा प्रवर्त्तित संस्कृतिके प्रभावसे ही आजकल सनातन धर्मका अस्तित्व बचा हुआ है। 'राजा कालस्य कारणम्' इस न्यायके अनुसार राजानुशासन धर्म रक्षाके विरुद्ध है और हिन्दूप्रजा कुसंग और कुशिक्षाके प्रभावसे धर्म विमुख हो गई है। इस समय जगत्‌भरमें जो शिक्षा प्रणाली प्रचलित है, उसमें पदार्थविज्ञान (सायन्स) के ज्ञानकी प्रधानता है। जैसे शिल्प (आर्ट) द्वारा प्राकृतिक राज्यकी नकल की जाती है; वैसेही पदार्थ विज्ञान (सायन्स) के द्वारा जड़मय प्राकृतिक राज्य पर आधिपत्य स्थापन किया जाता है। साधारण दृष्टि से पदार्थविज्ञान (सायन्स) के अनुशीलन में एक से एक चमत्कार देखने में आता है, परन्तु वह चमत्कार जड़मय प्राकृतिक राज्यका है, इसमें सन्देह नहीं। इस कारण सत्‌शिक्षा ग्रहण और सन्मार्गप्राप्तिके लिए केवल जड़मय पदार्थ विज्ञानके अनुशीलनसे लक्ष्यकी सिद्धि नहीं हो सकती है। पदार्थ-विज्ञानमय (साइन्टिफिक) शिक्षाके साथही अन्तर्जगत्‌में प्रवेश करानेवाली जड़राज्यसे परे चेतनराज्यमें पहुँचानेवाली और अन्तमें श्रीभगवान्‌के चिन्मय चरणोंके दर्शन करानेवाली दार्शनिक शिक्षा जबतक मनुष्यको नहीं दी जायगी तबतक मनुष्यको न सन्मार्ग मिलेगा, न शान्ति मिलेगी और न उसका कल्याण ही हो सकेगा। जिस शिक्षाप्रणालीमें परमात्माकी ओर अग्रसर होनेका अवसर प्राप्त हो और जिनके आश्रयसे जीवन यात्रामें धर्मज्ञान बढ़े, एवं शान्ति मिले, वही सच्ची शिक्षा है। जड़मय पदार्थवादकी शिक्षा बहुशाखासे युक्त है। जगद्‌गुरु भारतखण्ड (हिन्दुस्थान) के पूज्यपाद महर्षियोंने जिस प्रकार दर्शनशास्त्रकी उत्तम रीतिसे छानबीन की है, वैसी भारतवर्ष (दुनिया) के और किसी मनुष्य जातिके द्वारा नहीं हो सकी है। पूज्यपाद महर्षियोंने दर्शन-सम्बन्धी राज्यके दो भेद किये हैं। (१) ज्ञान-जननी विद्या-सेवित राज्य और (२) अज्ञान-जननी अविद्यासेवित राज्य। पूज्यपाद महर्षियोंने जो दर्शन शास्त्रोंमें क्रमोन्नतिवादका विस्तारित वर्णन किया है, उसके अनुसार उन्होंने प्रमाणित करके दिखाया है कि, जीव उद्भिज पिण्डसे आगे बढ़कर क्रमशः स्वेदज पिण्ड, अण्डज पिण्ड और अन्तमें जरायुज पशु योनिमें पहुंच जाता है। तदनन्तर पूर्णावयव मानवपिण्डमें पहुँचकर मनुष्य बन जाता है। इन चारों पहलेके पिण्डोंके असम्पूर्ण होनेके कारण उन चारोंमें अविद्या सेवित चार श्रेणीकी अज्ञानभूमिके अधिकार यथाक्रम पाये जाते हैं। कर्ममीमांसादर्शनने इस दार्शनिक सिद्धान्तको

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भलीभांति प्रमाणित करके दिखाया है। प्रथम अवस्थामें मानवपिण्डमें पहुँचकर उसको तीन श्रेणीके अविद्या-सेवित तीन अज्ञान प्रसूत तीन दर्शनोंका अधिकार यथाक्रम प्राप्त होता है। वेही अविद्या सेवित तीन अज्ञान भूमिके तीन दर्शन यथाक्रम हैं। (१) देहात्मवादकी दार्शनिक भूमि (२) देहातिरिक्त आत्मवाद की दार्शनिक भूमि और (३) आत्मातिरिक्त शक्तिवादकी दार्शनिक भूमि। ये तीनों मत पहले भी मिलते थे और आजकलके पश्चिमी दर्शन तो सब प्रायः इन्हीं तीनों भूमियोंके अन्तर्गत समझे जाते हैं। आध्यात्मिक क्रमोन्नति सिद्धान्तके अनुसार जीव चार जड़राज्यकी योनियोंसे आगे बढ़कर जब मनुष्य बनता है तब उसको अज्ञान राज्यकी अविद्यासेवित ये तीन अवनत भूमियां प्राप्त होती हैं। जिनका ऊपर दिग्दर्शन कराया गया है। इन्हीं तीन अज्ञान भूमियोंके अन्तर्गत प्रायः पाश्चात्य सभी दर्शनोंके अधिकार देखनेमें आते हैं। इसके बाद वैदिक सात ज्ञानभूमियोंका अधिकार प्रारम्भ होता है। क्रमशः श्रीभगवान्‌की कृपासे अन्तमें मनुष्य सप्तज्ञान भूमियोंके अधिकारको प्राप्त कर लेता है। इस प्रकारसे तीन अवैदिक और सात वैदिक दर्शन सब समेत दस श्रेणीके दर्शन सिद्धान्त होते हैं। यही वेद और शास्त्रोंका तात्पर्य है। इन दशों अधिकारोंके दर्शनोंका यथाक्रम सिद्धान्त विशदरूपसे सर्वसाधारणके समझने योग्य पुस्तकाकारमें प्रकाशित किया गया है और ऐसी भाषामें प्रकाशित किया गया है कि, साधारण बुद्धिके लोग भी समझ सकेंगे। इससे जगन्मात्रका परम मंगल होगा। सब दर्शन शास्त्रोंका जो विद्वद्‌जन श्रद्धा पूर्वक अनुशीलन और मनन करेंगे तो वे देखेंगे कि इनमें दर्शन मार्ग नीचेसे ऊपर तक सब एक तत्वसे युक्त है और श्रीभगवान्‌का चरण-कमल इस मार्गका अन्तिम लक्ष्यस्थल है। इस समयमें हिन्दूप्रजाको सहायता देनेके लिये ऐसे धर्मग्रन्थकी आवश्यकता है, जिसमें धर्म सम्बन्धी ज्ञान और विज्ञान इस तरहसे प्रकाशित किया जाय, जिससे सबके समझमें धर्मका रहस्य आजाय। इस लिये इस ग्रन्थके पहले स्कन्धके दश अध्यायोंके अध्यन श्रवण और मनन करनेसे विद्वज्जन धर्मका रहस्य तो अच्छी तरह समझ ही सकेंगे और साधारण प्रजा भी इससे बहुत कुछ लाभ उठा सकेगी। वर्त्तमान समयमें हिन्दू धर्म क्या है और हिन्दू धर्मके कितने अंग है, इस विषयके ज्ञानका अभाव सर्वत्र देखनेमें आता है। इस कारण श्रीजगद्‌गुरु पूज्यपादकी कृपासे सोलह कलाओंसे पूर्ण आर्यधर्म अर्थात् हिन्दूधर्मके सोलह अंगोंका सरल बोध्य विस्तृत वर्णन इस ग्रन्थके दूसरे स्कन्धमें दिया गया है। जिसका अध्ययन अध्यापन प्रत्येक हिन्दूगृहस्थके यहाँ होना चाहिये। इस ग्रन्थके तीसरे स्कन्धमें नाना शंकाओंका समाधान दार्शनिक युक्ति और शास्त्रीय प्रमाण द्वारा किया गया है। अन्य युगोंमें विश्वास और श्रद्धाके प्रभाव से महाजनोंपर और उनके बातोंपर प्रजा श्रद्धालु हुआ करती थी। परन्तु वर्त्तमान देश, काल और पात्र कुशिक्षा और कुसंगके प्रभावसे इतने प्रभावित हो गये हैं कि, उनके हृदयसे अपनेसे बड़ों पर सम्मान बुद्धि, अपने पूर्वजोंका महत्वज्ञान तथा वेद और शास्त्रों परसे श्रद्धा तो प्रायः जातीही रही है। इस कारण इस समय उनकी बुद्धिको समाहित करके दार्शनिक युक्तिके द्वारा उनके अन्तःकरणको पूर्व अवस्थामें लानेके प्रयत्नकी आवश्यकता है। प्राचीन कालमें वर्णाश्रमकी व्यवस्था ठीक रहनेके कारण और प्रजाके हृदयमें सात प्रकारके वृद्धोंपर यथायोग्य आदर और सम्मान बुद्धि रहनेसे हिन्दू प्रजा निरंकुश होने नहीं पाती थी। इस कारण दार्शनिक युक्तिके द्वारा उनकी बुद्धिको अन्तर्जगत्‌की ओर खींचनेकी इतनी आवश्यकता नहीं होती थी। इस समय वैदिक सप्त दर्शन सिद्धान्तोंका अधिकसे अधिक प्रचार करके ऐसे ग्रन्थोंके प्रकाशनकी आवश्यकता समझकर श्री गुरुदेवकी कृपासे यह ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। जिससे आशा है कि जगत्‌का कल्याण होगा। इति शुभम्।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

❀ श्रीविश्वनाथो जयति ❀

श्रीदत्तात्रेयधर्ममीमांसा

धर्मविज्ञाननामकः प्रथमः स्कन्धः

विश्वधारकधर्मतत्त्वनिरूपणनामकः प्रथमोऽध्यायः

मंगलाचरणम्

वेदान्तवेद्यं विबुधैकवन्द्यं, सर्गस्थितिप्रत्यवहारबीजम् ।
प्रणोदकं सर्वधियां तदेकं, जगद्गुरुं ब्रह्म परं नमामि ॥ १ ॥

यस्मिंश्च सर्वे यत एव सर्वे, सर्वेऽपि यत्सर्वत एव यच्च ।
तत्सच्चिदानन्दमयं परेशं, ब्रह्म क्षरातीतमहं नमामि ॥ २ ॥

अध्यात्मरूपादधिदैवरूपात्, तथाधियज्ञादधिभूतरूपात् ।
द्वैतं तथाऽद्वैतमुभे दधानं, लीलामयं तं भगवन्तमीडे ॥ ३ ॥

धीशं सूर्यमथाम्बिकां हरिहरौ, रूपाणि पञ्चावहन्
यो नित्यं सगुणः कृतार्थयति सन्मार्गानुगान् साधकान् ।
यो बुद्धेर्वरतेजसः क्रमगताच्छक्तेश्चितः सत्सतः
साहाय्यादवधार्यते स भगवान् पञ्चात्मको नम्यते ॥ ४ ॥

जो वेदान्तके द्वारा जानने योग्य, विशिष्ट विद्वानों अथवा देवताओंके एकमात्र वन्दनीय हैं, उत्पत्ति, स्थिति और लयके कारण हैं और सबकी बुद्धियोंके प्रेरक होनेसे प्रधान एवं प्रसिद्ध जगद्‌गुरु हैं, उन परब्रह्मको प्रणाम है ॥ १ ॥ जिसमें सब है, जिससे सब है और जो सब है तथा जो सर्वत्र है। उस सच्चिदानन्दमय, वाणीसे परे परब्रह्म परमेश्वरको मैं प्रणाम करता हूं ॥ २ ॥ अध्यात्म, अधिदैव, अधियज्ञ और अधिभूतरूपसे जो द्वैत एवं अद्वैत दोनों रूपोंको धारण किये हुए हैं, उस लीलामय भगवान्‌की स्तुति करता हूं ॥ ३ ॥ जो सगुणरूपमें धीश, सूर्य, जगदम्बिका, विष्णु और शिव इन पाँच रूपोंको धारण करके सन्मार्गके अनुगामी साधकोंको नित्य ही कृतकृत्य

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सृष्टेर्महत्त्वमथ यस्य विभूतिरूपैर्देवर्षिसङ्घपितृसङ्घनृभूतसङ्घैः ।
संस्थापयन्ति नरदेवमुनीन्द्रवन्द्यं देवाधिदेवमनिशं तमहं नमामि ॥ ५ ॥

दत्तात्रेयगुरुं समस्तनिगमज्ञानैकवारां निधिं
व्यासाचार्यमनेकशास्त्ररचनानैपुण्यसन्मन्दिरम् ।
धर्माधीशजगन्नियामकयमं तं कालराजं मनु-
मिन्द्रं निर्जरराजमञ्जनिसुतं तं वीरराजं भजे ॥ ६ ॥

तं नारायणमेकमेव निखिलोपास्यं जगन्मङ्गलं
भक्त्योपासकराजनारदमुनिं वन्दे जगत्पावनम् ।
देवीं ताञ्च सरस्वतीं भगवतीं विद्यां जगन्मातरं
ज्ञानानन्दमयं च कृष्णमनिशं पूर्णावतारं भजे ॥ ७ ॥

यो नो धियो नोदयते सुकार्ये, यो भूर्भुवः स्वः परितोऽश्नुते च ।
ध्येयं बुधैस्तत्सवितुर्वरेण्यं, देवस्य भर्गः प्रणमामि नित्यम् ॥ ८ ॥

करते हैं और जो यथाक्रम बुद्धि, उत्तमतेज, शक्ति, चित् और श्रेष्ठ सत्की सहायतासे धारण किये जाते हैं, उन पञ्चरूपात्मक प्रभुको प्रणाम है ॥ ४ ॥ जिनकी विभूतियाँ, देवसंघ, पितृसंघ, नृसंघ और भूतसंघरूपसे इस सृष्टिका महत्त्व स्थापित करती हैं, उन नरेन्द्र, देवेन्द्र और मुनीन्द्रोंसे वन्दनीय देवाधिदेवको मैं सर्वदा प्रणाम करता हूं ॥ ५ ॥ समस्त वेदोंके ज्ञानके एकमात्र सागर गुरु-दत्तात्रेय, अनेक शास्त्रों के रचना-कौशल के सुन्दर मन्दिर आचार्य व्यास, जगत्कार्यनियामक धर्म-राज यम, कालराज मनु, देवराज इन्द्र और वीरराज अञ्जनिकुमार हनुमान्‌को मैं भजता हूं ॥ ६ ॥ जो एकमात्र सर्वोपास्य जगन्मङ्गलकारक हैं, उन नारायणको, भक्तिके द्वारा उपासकराज जगत्पवित्र-कारी नारदको, जगन्माता विद्यास्वरूपिणी उस भगवती सरस्वती देवीको और ज्ञानमय तथा आनन्दमय पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्णको मैं भजता हूं ॥ ७ ॥ जो हमारी बुद्धियोंको सत्कार्यमें प्रेरित करता है और "भूर्भुवः स्वः" तीनों लोकोंमें चारों ओर व्याप्त है, उन जगत्प्रेरक देवके विद्वानोंके ध्यान करने योग्य सर्वश्रेष्ठ तेजको नित्य प्रणाम करता हूं ॥ ८ ॥

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जीवत्रितापहारी करुणालयः स्मरणगामी जगद्गुरुः श्रीभगवान् दत्तात्रेयप्रभुः संसारश्रेयोनिमित्तं जीवानां परमात्मपदप्राप्तये मार्गद्वयमतिप्रशस्तमुपादिदेश । एको योगिनां मार्गो द्वितीयश्च भक्तानां मार्ग इति । तत्र प्रथमो ज्ञानाज्ञानविवेकमूलको द्वितीयो धर्माधर्म-विचार मूलक इति । प्रथमपथपथिका योगिमार्गावलम्बिनः साधका एतदनुभवन्ति—"यदियं जगच्चक्रसृष्टिः सच्चिदानन्दमयादद्वितीयाद् ब्रह्मणः प्रकृतिदेशकालपञ्चमहाभूतादिक्रमेण दृश्यप्रपञ्चतामुपेत्य ब्रह्माण्डपिण्डरूपेण प्रादुर्भवति। पुनश्च कालप्रवाहपराधीना समयान्तरे विलोमक्रमेण समस्तापि उत्तरोत्तरं पूर्वस्मिन् स्वादिकारणेऽन्तर्हिता सच्चिदानन्दे ब्रह्मणि संलीयते । एवं सृष्टिलयकार्यं भूयो भूयः प्रवर्तत इति"। इत्थमात्मज्ञानमासाद्य ज्ञाननिर्धूतनिखिलबन्धनास्ते मुक्तिपदं प्राप्नुवन्तः समुद्रे आकाशपतितजलबिन्दुवद् द्वैतभावद्योतके नामरूपे विहाय परस्मिन् ब्रह्मणि शाश्वतिकमद्वैतभावं भजन्ते । इति प्रथममार्गावलम्बिनामनुभवः । सचायं निगमागमतन्त्रपुराणादिप्रतिपादितः सर्वजनविदितः सर्वतन्त्रस्वतन्त्रः सिद्धान्तः । द्वितीयभक्तमार्गानुगामिनः साधकास्तु "ब्रह्माण्डसमूहोऽनाद्यनन्तोऽतश्च प्रवाहरूपतो ब्रह्माण्डपिण्डात्मिका सृष्टिरप्यनाद्य-

---

जीवोंके तीनों तापोंको हरनेवाले, करुणालय, स्मरणगामी, जगद्गुरु श्रीभगवान् दत्तात्रेय प्रभुने संसारके कल्याणके निमित्त, परमात्माके चरणोंमें जीवोंके पहुँचनेके लिये, दो अति प्रशस्त मार्ग का उपदेश किया है। (१) एक योगियोंका मार्ग (२) दूसरा भक्तोंका मार्ग। उनमें पहला मार्ग ज्ञान और अज्ञानके विवेकमूलक है और दूसरा मार्ग धर्म और अधर्मके विचारमूलक है। प्रथम पथके पथिक योगियोंके मार्गका अवलम्बन करनेवाले साधक ऐसा अनुभव करते हैं कि—"यह जगच्चक्रसृष्टि सच्चिदानन्दमय अद्वितीय ब्रह्मसे प्रकृति, देश, काल, प्रपञ्च, महाभूत आदिकी यथाक्रम उत्पत्ति होकर दृश्य प्रपञ्चरूपी ब्रह्माण्ड पिण्डात्मक सृष्टि होती है। फिर समयान्तरमें विलोम क्रमसे वह सारी सृष्टि एक दूसरेमें उत्तरोत्तर पूर्व पूर्व अपने कारणोंमें यथाक्रम लीन होती हुई सच्चिदानन्द ब्रह्ममें जाकर सदाके लिये लय हो जाती है। इस प्रकार सृष्टि और प्रलयका कार्य बराबर हुआ करता है।" वे इस प्रकार आत्मज्ञान प्राप्त कर ज्ञानके द्वारा सारे भव-बन्धनोंको काट कर मुक्तिपदको प्राप्त करते हुए सब उपाधियोंसे रहित होकर, समुद्रमें आकाश-पतित जल-विन्दुके समान परमात्मामें पहुँच कर द्वैतभावप्रकाशक नामरूपको छोड़कर अद्वैतसत्तामें सदाके लिये विलीन हो जाते हैं। यह प्रथम मार्गवालोंका अनुभव है और यह निगमागम तन्त्र पुराणों द्वारा प्रतिपादित सभी जनोंको विदित सर्वतन्त्रस्वतन्त्र सिद्धान्त है। दूसरे भक्तमार्गके पथिक ऐसा अनुभव करते हैं कि—"ब्रह्माण्डसमूह अनन्त है। इस कारण ब्रह्माण्डपिण्डात्मिका सृष्टि भी प्रवाहरूपसे अनादि और

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नन्ता। तस्मात् तस्य गोलोकस्य स्थितिर्नित्या विद्यते, यत्र नित्यधाम्नि गोलोके श्रीभगवान् कृष्णो नित्यं विराजते, यदीया प्रकृतिः पञ्चधा विभक्ता सती अनाद्यनन्तां सृष्टिधारां सुरक्षति" इत्यनुभवन्ति।

तत्रैव द्वितीयमार्गानुगामिषु भक्तप्रवरेषु ज्ञानिभक्तानामयमनुभवोऽस्ति यद्—"अनाद्यनन्तसृष्टिप्रवाहेऽस्मिन्संस्थितानामनन्तकोटिब्रह्माण्डानां नायकः सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण एव विद्यते। तस्य पञ्चसु प्रकृतिषु तिस्रः प्रकृतयः पृथक्पृथक् ब्रह्माण्डसृष्टिकर्तुर्भगवतो ब्रह्मणः शक्तिरूपेण स्थिता भगवती सावित्री, तत्स्थितिकर्तुर्भगवतो विष्णोश्च शक्तिरूपेण स्थिता भगवती लक्ष्मीर्भगवती सरस्वती चेह विराजन्ते। आनन्ददायिनी परमाह्लादिनी भगवती राधैव तेन श्रीकृष्णेन सह सदा स्थिता सृष्टिप्रवाहस्य अनाद्यन्तमिदं धाराचक्रं सदैव प्रवर्तयति। तस्येष्टदेवी भगवती दुर्गा तु धर्मरूपतामासाद्य सम्पूर्णस्यैव ब्रह्माण्डसमूहस्य रक्षां करोति। सैव हि धर्मरूपिणी सती अनाद्यनन्तस्य धर्मप्रवाहस्याधिदैवी शक्तिरभिधीयते। प्रत्येकब्रह्माण्डस्य पृथक्-पृथक् नेतारो भगवान् ब्रह्मा, भगवान् विष्णु र्भगवान् शिवश्च तया धर्मरूपिण्या भगवत्या दुर्गादेव्यैव सुरक्षिताः सन्तः स्वस्वाधिकारानुरूपं रजोगुणस्य, सत्त्वगुणस्य, तमोगुणस्य च

अनन्त है। इसी कारण उस गोलोककी स्थिति नित्य विद्यमान है; जिस नित्यधाम गोलोकमें भगवान् श्रीकृष्ण सदा विराजमान रहते हैं। उनकी प्रकृति पाँच रूपसे विभक्त होकर अनादि अनन्त सृष्टिधाराकी बराबर रक्षा किया करती है। यह दूसरे भक्तिमार्गियोंका अनुभव है।

उन द्वितीय मार्गानुगामी भक्त प्रवरोंमें ज्ञानिभक्तोंका यह अनुभव है कि—"अनादि अनन्त सृष्टिप्रवाहमें स्थित अनन्तकोटिब्रह्माण्डोंके नायक सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं, उनकी पांच प्रकृतियोंमें तीन प्रकृति अलग अलग सब ब्रह्माण्डोंके सृष्टिकर्ता भगवान् ब्रह्माकी शक्तिरूपसे सावित्री और स्थितिकर्ता भगवान् विष्णुकी शक्तिरूपसे भगवती लक्ष्मी और भगवती सरस्वती विद्यमान रहती हैं। आनन्ददायिनी परमाह्लादिनी भगवती राधा भगवान् आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके साथ सर्वदा विद्यमान रह कर सृष्टि प्रवाहकी अनादि अनन्त धाराका प्रवर्त्तन करती हैं। और उनकी इष्ट देवी भगवती दुर्गा धर्मरूपको धारण करके सम्पूर्ण सृष्टि प्रवाहकी रक्षा करती हैं। वही धर्मरूपिणी है और वही अनादि अनन्त धर्म प्रवाहकी अधिदैव शक्ति है। प्रत्येक ब्रह्माण्ड के अलग अलग नेता भगवान् ब्रह्मा, भगवान् विष्णु और भगवान् शिव उन्हीं धर्मरूपिणी भगवती दुर्गा देवीके द्वारा सुरक्षित रहकर अपने अधिकारके अनुसार रजोगुण, सत्त्वगुण और

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यथायोग्यं कार्यकलापं सम्पादयन्ति। तस्या एवाज्ञाधीनः प्रत्येकब्रह्माण्डे पृथक्पृथक् भगवान् धर्मराजो यमो जीवानां सदसत्कर्मानुसारं कर्मसञ्चालनस्य कर्मभोगप्रदानस्य च सुव्यवस्थां सम्पादयन् विराजते। एवं दैवजगतः सर्वेऽपि देवपदाधिकारिणोऽस्या एव धर्मरूपिण्या महाशक्तेः सुव्यवस्थानुसारं स्वस्वाधिकृतकार्य्यं कुर्वन्तः प्रत्येकब्रह्माण्डे सामञ्जस्यं सुरक्षन्ति। यदि कदाचित्सामञ्जस्यरक्षायां बाधा भवति तदा सैव दयामयी सर्वशक्तिमयी भगवती दुर्गा तां बाधां दूरीकर्तुमाविर्भवति।" यथा च दुर्गासप्तशतीगीतायां प्रमाणीकृतम् उपलभ्यते—"इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति। तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्"। इत्यादिना। सैव भगवती दुर्गा साक्षाद्धर्मरूपिणी विद्यते। अत्रायं निष्कर्षः, प्रथमो योगिमार्ग आत्मबुद्धिप्रसादजो निवृत्तिमूलकः। द्वितीयो भक्तिमार्गस्तु भगवद्भक्तिप्रसादजो धर्मानुकूलप्रवृत्तिपुरस्सरो निवृत्तिपोषको विज्ञेयः। तत्र प्रथममार्गतः सांख्ययोगानुगामिनी, द्वितीयतस्तु कर्मयोगानुगामिनी निष्ठोत्पद्यते।

धर्मस्य विश्वधारकस्वरूपप्रतिपादनात् पूर्वं धर्माधिष्ठानसर्वशक्तिमयपरमात्मविषया श्रुतिरुपस्थाप्यते, यथा—"सर्वं ब्रह्ममयं प्रोक्तं सर्वं ब्रह्ममयं जगत्। सर्वमात्मैव

तमोगुणका यथायोग्य कार्य्य किया करते हैं। वे उनकी ही आज्ञाके आधीन रह कर प्रत्येक ब्रह्माण्डमें पृथक्पृथक् भगवान् धर्मराज यम जीवोंके सत् और असत् कर्मोंके अनुसार कर्मोंका सञ्चालन और कर्मभोग प्रदानकी सुव्यवस्था करते रहते हैं। इस प्रकार दैवी जगत्के सभी देव पदाधिकारी गण इन्हीं धर्मरूपिणी महाशक्तिकी सुव्यवस्थाके अनुसार अपना कार्य्य करके प्रत्येक ब्रह्माण्डमें सामञ्जस्यकी रक्षा करते हैं। यदि कभीं उस सामञ्जस्यकी रक्षामें बाधा उपस्थित होती है तो वही कृपामयी सर्व शक्तिमयी भगवती दुर्गा उस बाधाको दूर करनेकेलिये प्रगट होती हैं; जैसा कि श्रीदुर्गा सप्तशती गीतामें प्रमाण मिलता है कि—"जब जब दानवोंके द्वारा धर्म पर तथा राष्ट्रपर बाधा उपस्थित हुआ करेगी। तब तब मैं प्रगट होकर धार्मिक जगत्के शत्रुओंका उन्मूलन किया करूंगी।" वेही भगवती दुर्गा साक्षात् धर्मरूपिणी हैं। यहाँ यह निष्कर्ष है कि,—प्रथम योगिमार्ग आत्मबुद्धिप्रसादजन्य निवृत्तिमूलक है और दूसरा भक्तिमार्ग भगवद्भक्तिप्रसादसे उत्पन्न और धर्मानुकूलप्रवृत्तिपुरस्सर निवृत्तिपोषक सिद्धान्त है। प्रथम मार्गसे सांख्ययोगानुगामिनी निष्ठा और दूसरेसे कर्मयोगानुगमिनी निष्ठा उत्पन्न होती है।

धर्मके विश्वधारक स्वरूपकी मीमांसा करनेसे पहले धर्मके अधिष्ठाता सर्व शक्तिमान् परमात्माविषयकश्रुति कही जा रही है "जो कुछ है सब ब्रह्म ही है। समस्त जगत् ही ब्रह्ममय है। सभी आत्मा

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शुद्धात्मा सर्वं चिन्मात्रमद्वयम् ॥ नित्यनिर्मलरूपात्मा ह्यात्मनोऽन्यन्न किञ्चन । अणुमात्रलसद्रूपमणुमात्रमिदं जगत् ॥ अणुमात्रशरीरं वा ह्यणुमात्रमसत्यकम् । अणुमात्रमचिन्त्यं वा चिन्त्यं वा ह्यणुमात्रकम् ॥ ब्रह्मैव सर्वं चिन्मात्रं ब्रह्ममात्रं जगत्त्रयम् । आनन्दं परमानन्दमन्यत् किञ्चिन्न किञ्चन ॥ चैतन्यमात्रमोङ्कारं ब्रह्मैव सकलं स्वयम् । आत्मनोऽन्यत्तुषं नास्ति सर्वमात्ममयं जगत् ॥ ब्रह्ममात्रमिदं सर्वं ब्रह्ममात्रमसन्न हि । ब्रह्मणोऽन्यतरन्नास्ति ब्रह्मणोऽन्यज्जगन्न च ॥ ब्रह्मणोऽन्यत् तृणं नास्ति ब्रह्मणोऽन्यत्पदं नहि । सच्चिदानन्दमद्वैतं सच्चिदानन्दमव्ययम् ॥ सच्चिदानन्दमात्रं हि सच्चिदानन्दनामकम्" इति । श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदि भगवताऽपि व्याहृतम्, यथा—"ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहममृतस्याव्ययस्य च । शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च" इति । श्रीमद्भगवतो धर्माधिष्ठातृत्वात्, धर्मनियामकत्वाच्च धर्मस्य भगवद्रूपत्वमिति महर्षिभरद्वाजकृतकर्ममीमांसायां प्रतिपादितं यथा—"सच्चिदेकं तत्" "भेदप्रतीतिरौपाधिकत्वात्" "कर्मकारणयोरनन्यत्वम्" "कार्यं कार्यत्वात्" "नियन्तृत्वात्तत्वं धर्मस्य" इत्यादि ।

शुद्धात्मा सभी चिन्मात्र अद्वैत है । नित्य और निर्मल स्वरूप परमात्मा है एवं परमात्मासे अलग कुछ भी नहीं है । वह अणु स्वरूप है और समस्त जगत् ही अणुमात्र है । शरीर भी अणुमात्र है और अणुमात्र होते हुए भी असत्य है । वह अणुमात्र और अचिन्त्य है । अथवा सभी चिन्मात्र ब्रह्म है । त्रिजगत् ब्रह्ममय है । परमानन्द स्वरूप परमात्माके सिवाय और कुछ भी नहीं है । समस्त चैतन्य मात्र स्वयं ओंकार स्वरूप ही है । तुष (भुस्सी) भी आत्मासे अतिरिक्त नहीं है और अधिक क्या कहा जाय, सब जगह आत्मस्वरूप ही है । यह सब दृश्यमान जगत् ब्रह्ममय है । ब्रह्मसे पृथक् और कोई वस्तु नहीं है सभी ब्रह्म मात्र है, उसके सिवाय असत् कुछ नहीं है । ब्रह्मके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है । ब्रह्मसे पृथक् जगत् भी नहीं है । ब्रह्मसे अतिरिक्त तृण भी नहीं है, ब्रह्मके अतिरिक्त कोई स्थान नहीं है और वह परमानन्द सच्चिदानन्द स्वरूप अद्वैत है एवं सच्चिदानन्दमय अव्यय है और वह सच्चिदानन्दमय होनेसे सच्चिदानन्द नामसे पुकारा जाता है ।" गीतोपनिषद्में श्रीभगवान्ने स्वयं कहा है—"अविनाशी और अव्यय स्वरूप ब्रह्मका प्रतिष्ठान मैं हूं और शाश्वत धर्म एवं ऐकान्तिक सुखका स्थान भी मैं ही हूं" (अस्ति रूपसे वे सत् हैं, इसी कारण वे नित्य और ज्ञान सत्ता रूपसे चित् स्वरूप हैं; क्योंकि चित्सत्ताके विना विश्वके अस्तित्वकी प्रतीति हो ही नहीं सकती) । श्रीभगवान्के धर्माधिष्ठाता होनेसे और धर्मके नियामक होनेसे धर्म भी भगद्रूप है । इस विषयमें महर्षि भरद्वाज कृत कर्ममीमांसा दर्शन शास्त्रमें ऐसा कहा है—कि 'वह सच्चिन्मय एक है ।' 'वह उपाधिके कारण द्वैतरूप में प्रतीत होता है ।' 'नहीं तो कर्म और कारण रूपसे वे दोनों एक ही हैं ।' 'कार्य सम्बन्धसे वह कार्य कहाता है ।' 'और धर्मनियामक है, इस कारण वह भगवद्रूप है ।'

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अत्र धर्मस्य विश्वधारकत्वं व्याख्यायते । "दार्शनिकयुक्तिप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः" इति सिद्धान्तमुपजीव्यैव विषय एष विशदीक्रियते । तत्र तावत् प्रथमं दार्शनिकयुक्तिवादतस्तदनु प्रमाणपुञ्जतो वस्तुस्थितिर्मीमांस्यते । तथाहि,—यथाग्निस्तस्य दाहिकाशक्तिश्च न परस्परं विभिन्नः, तथैव विश्वात्मा विश्वपालको जगत्पिता जगद्धारकः सर्वशक्तिः श्रीपरमात्मा तदीया जगद्धात्री धर्ममयी महाशक्तिश्च मिथो न कञ्चन भेदमश्नुतः । अपि तु शक्तिशक्तिमतोरभेदात् विश्वधारकयोर्धर्मपरमात्मनोरुभयोर्नास्ति किञ्चित्परमार्थतः पार्थक्यम् । धर्मस्य जगद्धातृत्वं परमात्मनोऽभिन्नत्वञ्च श्रुतयः स्मृतयश्च नितान्तं परिपुष्णन्ति । यथा—"त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः अतो धर्माणि धारयन्" इति ऋक्श्रुतिः । "मातरिश्वनो धर्मोऽसि विश्वधाऽसि" इति शुक्लयजुःश्रुतिः । "धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति धर्मेण पापमपनुदति धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद् धर्मं परमं वदन्ति ।" इति नारायणोपनिषद् । "धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः । यः स्याद्धारणसंयुक्तः स धर्म्म इति निश्चयः ॥" इति स्मृतिः । "या

यहाँ 'धर्म विश्वका धारक है' इसकी व्याख्याकी जा रही है । 'दार्शनिक युक्ति और प्रमाणके द्वारा किसी भी वस्तुकी सिद्धि की जाती है ।' इस सिद्धान्तके अनुसार यह विषय स्पष्ट किया जायगा । उसमें भी पहले दार्शनिक युक्तिसे फिर प्रमाणोंसे इस विषयका यथार्थ विवेचन किया जायगा । जिस प्रकार अग्नि और उसकी दाहिका शक्तिमें परस्पर भेद नहीं है, उसी प्रकार विश्वात्मा, विश्वपालक, विश्वपिता, विश्वधारक, सर्वशक्तिमान् श्रीपरमात्मा और धर्मरूपिणी उनकी जगद्धात्री महाशक्तिमें परस्पर कुछ भी अन्तर नहीं है । प्रत्युत शक्ति और शक्तिमान्में अभेद होनेसे विश्वधारक धर्म और परमात्मा इन दोनोंमें वस्तुतः कुछ भी भेद नहीं है । धर्मका विश्वधारक स्वरूप और उसकी परमात्माके साथ अभिन्नता इन दोनों विषयोंको श्रुतियाँ और स्मृतियाँ भलीभाँति परिपुष्ट करती हैं । जैसा कि वेदों और स्मृतियोंमें कहा है—"भगवान् विष्णुने तीनबार पाद प्रक्षेप करते हुए सारे विश्वको धर्मसे धारण किया ।" (ऋग्वेद) "धर्म विश्व तथा वायुका धारक है ।" (यजुर्वेद) "धर्म समस्त जगत्का आधार है, लोकमें धर्मात्मा पुरुषके पास प्रजा दौड़कर जाती है, धर्मसे पाप दूर होता है, धर्ममें सब कुछ प्रतिष्ठित है; इसलिए धर्मको सर्वश्रेष्ठ कहते हैं ।" (नारायणोपनिषद्) "धारण करनेसे ही इसका नाम धर्म है । धर्म ही प्रजाओंको धारण करता है । जो विश्वधारक शक्तिसे युक्त है, वही धर्म है ।" (स्मृति) । 'जो

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बिभर्ति जगत्सर्वमीश्वरेच्छा ह्यलौकिकी। सैव धर्मो हि सुभगे नेह कश्चन संशयः।" इति तन्त्रम्। "ब्राह्मणा नयते नूनं सर्वलोकहितप्रदः। ब्रह्माण्डपिण्डरूपायाः सृष्टेश्च धारको महान्॥ मानवान् धर्म एवाऽयं कैवल्याभ्युदयप्रदः। संरक्ष्याज्ञानभूमिभ्यो ज्ञानभूमौ निरन्तरम्॥ ददद्वाभ्युदयं सम्यक् सम्प्रापय्यान्तिमां क्रमात्। ज्ञानभूमिं ततो दत्ते निःश्रेयसमहो परम्॥ अहमेवास्मि धर्मस्य स्थितिस्थानं द्विजर्षभाः! धर्माकृतिर्ममैवास्ते शक्तिरेव सनातनी॥ विराट्सृष्टेः प्रवाहस्य धारणं कृतवत्यहो।" इति स्मृतिः। कर्ममीमांसादर्शनमपि धर्मस्य जगद्धारिकां शक्तिं सत्त्वेन सम्बन्धञ्चे विघृणोति। यथा—'धारको धर्मः' 'सत्त्वतमोभ्यां धर्माऽधर्मनिर्णयः' 'तमोरजस्साम्ये तद्विकाशः स्थितिमूलकत्वात्' 'तस्माद् ब्रह्माण्डधारकः।' इत्यादि। शास्त्रेष्वपि प्रतिपादितं, यथा—'परिव्याप्नोति धर्मस्य शक्तिरेषैव धारिका। परमाणुभ्य आनूनं पूर्णां ब्रह्माण्डविस्तृतिम्॥ शक्तेः संधारिकाया मे धर्मस्यैव प्रभावतः। सूर्येन्द्वादिग्रहाः सर्वे तथा नक्षत्रमण्डलम्॥ उपग्रहादयोऽप्येवं विराड्देहे ममानिशम्। स्वस्वकक्षामुपाश्रित्य भ्रमन्ते हि समन्ततः॥ सृष्टे रक्षाञ्च कुर्व्वन्ति साहाय्यं ददतो मिथः। देवासुरेण युद्धेन दैव्याः सृष्टेः पवित्रताम्॥ सम्पादयन्तो धर्मस्य धारिका शक्तिरुत्तमा। प्रतिष्ठापयते

अलौकिक ईश्वरेच्छा समस्त जगत्को धारण करती है, हे सुभगे! वही धर्म है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।' (तन्त्र) 'हे ब्राह्मणों! सर्वलोक हितकर, ब्रह्माण्ड एवं पिण्डात्मक सृष्टिका धारण, अभ्युदय तथा मोक्ष देनेवाला धर्म ही मनुष्योंको अज्ञानभूमिसे हटाकर ज्ञानभूमिमें अग्रसर करके भलीभांति ऐहिक एवं पारलौकिक अभ्युदय प्रदान करता हुआ, अन्तिम ज्ञानभूमि पर पहुँचा कर निःश्रेयस (मोक्ष) प्रदान करता है। हे ब्राह्मणों! मैं ही धर्मका आधार हूं, मेरी ही धर्मरूपिणी सनातनी शक्ति है। वही विराट्सृष्टिके प्रवाहको धारण करती है।' (स्मृति) कर्ममीमांसादर्शन भी धर्मकी जगद्धारिका शक्तिके विषयमें और सत्त्वगुणसे धर्मके सम्बन्धके विषयमें कहता है कि—'धारण करनेवाला धर्म है' 'सत्त्वगुण तथा तमोगुणसे धर्म एवं अधर्मका निश्चय होता है' 'स्थितिमूलक होनेसे तमोगुण और रजोगुणकी समतामें धर्मका विकास होता है' 'इसलिये वह धर्म ब्रह्माण्ड धारक है।' शास्त्रोंमें भी कहा है—'यही धर्मकी धारिका शक्ति परमाणुसे लेकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर्यन्त व्याप्त है। इसी मेरी धर्मकी धारिका शक्तिके प्रभावसे सूर्य चन्द्र आदि ग्रह उपग्रह एवं नक्षत्रमण्डल आदि मेरे विराट् देह ब्रह्माण्डमें अपनी अपनी कक्षामें स्थित रहकर रात दिन चारो ओर परिभ्रमण करते हैं और परस्पर एक दूसरेकी सहायता करते हुए सृष्टिकी रक्षा करते हैं। धर्मकी उत्तम धारिका शक्ति ही देवासुर संग्रामसे दैवीसृष्टिकी पूर्ण पवित्रता

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देवान् स्व-स्व-लोकेऽसुरांस्तथा"॥इति॥ यदा धर्मस्य धारिका शक्तिः सत्त्वेन सम्बध्नाति, तदा सा जगद्धात्री धर्ममयी महाशक्तिः पिण्डं ब्रह्माण्डं च सत्त्वगुणगरिम्णा कथं धत्ते इति विचार्य्यते उदाह्रियते च यथा—जडे जगति शुष्के काष्ठे पाषाणखण्डे वा रजसा सम्भूय परमाणवः काष्ठाकृतिं पाषाणखण्डं वा जनयन्ति। तमसा विप्रकृष्टे च परमाणुसंघे काष्ठत्वं पाषाणत्वं च यथाक्रममुभयोर्विनश्यति। तत्परमाणवोऽपि मृदमाविशन्ति। रजस्तमसोरन्तराले सत्त्वमवतिष्ठते, तत्रैव सत्त्वमयी धर्मस्य धारिका शक्तिरुज्जृम्भते। सैव काष्ठत्वं पाषाणत्वं च नियमयति। ततस्तदीया दशा सुरक्षिता सन्तिष्ठते। तत्र न किमपि परिवर्तनं जायते। तथैव ब्रह्माण्डे एकस्मिन् रजस्तमसोराकर्षण-विकर्षणयोः साम्ये ग्रहोपग्रहा राशितारादयश्च सर्वे स्व-स्व-कक्षामभितो बंभ्रम्यन्ते। न ततश्च्यवन्ते प्रलयं वा न समुपगच्छन्ति। इयमेव धर्मस्य धारिका शक्तिरस्ति, या ब्रह्माण्डं तत्स्वरूपे संस्थापयति। जीवलोके सैव धर्मस्य धारिका शक्तिः सत्त्वं गुणं सम्वर्ध्य यथाक्रममुद्भिज्जात् स्वेदजे, स्वेदजादण्डजे ततो जरायुजे तस्मान्मनुष्ययोनौ च सात्त्विकीं क्रमाभिवृद्धिं विदधाना जीवप्रवाहमुन्नतेरध्वानं निरन्तरमधिरोहयति। इत्थं जड़चेतनात्मके जगति पिण्डे

सुरक्षित रखती हुई अपने अपने लोकमें देवताओं और असुरोंको स्थापित करती है।" जब सत्त्वगुणसे ही धर्मकी धारिका शक्तिका सम्बन्ध है तो यह विचार करनेकी बात है कि पिण्डमें, ब्रह्माण्डमें और सृष्टिप्रवाहमें वह शक्ति कैसे काम करती है। जैसेः—जड़ जगत्में एक सूखी लकड़ी अथवा एक पत्थरके टुकड़ेमें रजोगुणके द्वारा परमाणु इकट्ठा होकर लकड़ीकी और पत्थरके टुकड़ेकी सूरत पैदा हुई थी। उनमें तमोगुणके उदय होनेसे उनका लकड़ीपन और पत्थरपन नष्ट हो जायगा और उनके परमाणु सब मिट्टीमें मिल जाएँगे। इन दोनों रजोगुण और तमोगुणकी अवस्थाके बीचकी जो अवस्था है, वही सत्त्वगुणकी अवस्था है। इसी सत्त्वगुणकी अवस्थामें धर्मकी धारिका शक्तिके द्वारा लकड़ीमें लकड़ीपन और पत्थरमें पत्थरपन बना रहता है और उसकी दशामें परिवर्तन नहीं होता। इसी प्रकार एक ब्रह्माण्डमें जबतक रजोगुणमूलक आकर्षणशक्ति और तमोगुणमूलक विकर्षणशक्ति इन दोनोंका सामञ्जस्य बना रहता है तो ग्रह उपग्रह राशि तारा आदि सब अपने अपने पीठकी कक्षामें तबतक चलते रहते हैं और प्रलयके गर्भमें नहीं पहुँचने पाते। यही धर्मकी धारिका शक्ति है जो ब्रह्माण्डको अपने स्वरूपमें बनाये रखती है। यही धर्मकी धारिका शक्ति जीवलोकमें क्रमशः सत्त्वगुण बढ़ाकर उद्भिज से स्वेदज योनियोंमें, स्वेदजसे अण्डज योनियोंमें, अण्डजसे जरायुज योनियोंमें और जरायुज योनियोंसे मनुष्ययोनियोंमें क्रमशः सत्त्वगुणकी क्रमाभिवृद्धि करती हुई जीवधाराको निरन्तर उन्नतिकी ओर प्रवाहशालिनी बनाती है। इस प्रकारसे जड़ और चेतन राज्योंमें, पिण्ड और

३

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्माण्डे च केवला सत्त्वमयी धर्मशक्तिरेव परितः सृष्टिं परिपाति। स्मर्यते च—"धर्माधारास्थिता सृष्टिः स एवास्या नियामकः। केवलं धर्ममेवैकमाश्रित्य जीवजातयः॥ अग्रेसरा भवन्तीमा मां प्रत्येव न संशयः। ममानुशासनं धर्म इति तत्त्वविदो विदुः॥ जगन्नियामिका शक्तिर्धर्मरूपाऽस्ति या मम। तया ह्यनन्तब्रह्माण्डान्यनन्ता लोकराशयः॥ ऋषयः पितरो यूयं स्वस्वस्थाने स्थिताः सदा। रक्षन्ति सृष्टिमखिलामिति जानीत सत्तमाः। धर्मे धारणरूपा या शक्तिरस्ति दिवौकसः। तयैव स्वस्वकक्षायामिमे सर्वे स्थिताः सदा॥ ग्रहनक्षत्रप्रमुखा लोका ब्रह्माण्डकानि च। तयैव पितरो यूयमृषयश्च तथाऽसुराः॥ रक्षन्तः पदमर्य्यादां स्वीयाँल्लोकानवन्त्यलम्। यदा स्वधर्माच्च्यवथ विप्लवो जायते तदा॥ अत्यन्तं येन लोकेषु नित्यं सीदन्ति प्राणिनः। अनन्तकोटिब्रह्माण्डयुक्तसृष्टिप्रवाहकः॥ मत्स्थितः केवलं धर्ममेवैकमवलम्ब्य हि। वर्त्तते धर्म एवातो विश्वधारक ईरितः॥" इति।

अनाद्यनन्तस्य परमात्मनस्तदीया धारिका धर्ममयी महाशक्तिश्च अनाद्यनन्ता विद्यते शक्तिशक्तिमतोरभेदात्। अत्र शंकते—साद्यन्ते पिण्डे ब्रह्माण्डे च विद्यमाना तस्य परात्मनो

ब्रह्माण्डमें एकमात्र सत्त्वगुणमयी धर्मशक्ति ही सृष्टिकी रक्षा करती है॥ स्मृतियोंमें लिखा है—"सृष्टि धर्मके आधार पर स्थित है। सृष्टिका नियामक धर्म ही है और एकमात्र धर्मको ही अवलम्बन करके ये जीवगण मेरी ओर ही अग्रसर होते हैं, इसमें सन्देह नहीं। मेरा अनुशासन धर्म है, ऐसा तत्त्वज्ञ समझते हैं। मेरी जगन्नियामिका शक्तिरूप धर्मसे अनन्त ब्रह्माण्डसमूह, अनन्तलोकसमूह और ऋषि, देवता, पितृगण अपने अपने स्थानपर सदा स्थित रहकर सम्पूर्ण सृष्टिकी रक्षा करते हैं। हे श्रेष्ठ देवगण! इसको जानों। हे देवगण! मेरी धर्मकी धारिका शक्ति द्वारा ही सब ब्रह्माण्ड और सब ग्रह नक्षत्र आदि लोकसमूह अपनी अपनी कक्षामें सदा स्थित रहते हैं और उसीके द्वारा ऋषि, पितृ, आपलोग और असुरगण भी अपनी अपनी पदमर्य्यादाकी रक्षा करते हुए संसारकी रक्षामें भली भांति प्रवृत्त रहते हैं। आपलोग जब स्वधर्मसे च्युत होते हो तभी जगत्में विप्लव उपस्थित होता है। जिससे लोकोंमें प्राणिमात्र नित्य अनन्त क्लेश पाते हैं, मुझमें स्थित अनन्तकोटि ब्रह्माण्डयुक्त सृष्टिप्रवाह एकमात्र धर्मका अवलम्बन करके ही स्थित है, इसी कारण धर्म विश्वधारक कहा गया है।"

श्रीपरमात्मा अनादि और अनन्त हैं, इस कारण उनकी धारिका शक्ति भी, शक्ति और शक्तिमान् में अभेद होनेसे, अनादि और अनन्त है। परन्तु यह शंका हो सकती है कि जब पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों सादि सान्त हैं तो उनमें रहनेवाली परमात्माकी

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जगद्धात्री महाशक्तिः कथमनाद्यनन्ता ? इतिचेन्न मीमांसादिदर्शनशास्त्रेषु सृष्टिप्रवाहस्य नित्यत्वेनानाद्यनन्तत्त्वाभिधानात् । पूज्यपादश्रीमदङ्गिरोविरचितदैवीमीमांसादर्शनशास्त्रे त्रिविधा सृष्टिर्वर्णिता आध्यात्मिकी आधिदैविकी आधिभौतिकी चेति । तत्राध्यात्मिकी सृष्टिरनाद्यनन्ता प्रतिपादिता । यथा—"अनाद्यनन्ताऽऽध्यात्मिकी सृष्टिः" इति । स्मर्य्यते च—'योऽध्यात्मिकोऽयं पुरुषः सोऽसावेवाऽधिदैविकः । यस्तत्रोभयविच्छेदः पुरुषो ह्याधिभौतिकः ॥ एकमेकतराभावे यदा नोपलभामहे । त्रितयं तत्र यो वेद स आत्मा स्वाश्रयाश्रयः । अधिदैवमथाध्यात्ममधिभूतमिति प्रभुः । अथैकं पौरुषं वीर्य्यं त्रिधाऽभिद्यत तच्छृणु ॥" इति । श्रुतौ च—"अस्य ब्रह्माण्डस्य समन्ततः स्थितान्येतादृशान्यनन्तकोटिब्रह्माण्डानि सावरणानि ज्वलन्ति । चतुर्म्मुखपञ्चमुखषण्मुखसप्तमुखाष्टमुखादिसंख्याक्रमेण सहस्रावधिमुखान्तैर्नारायणांशैः रजोगुणप्रधानैरेकैकसृष्टिकर्तृभिरधिष्ठितानि विष्णुमहेश्वराख्यैर्नारायणांशैः सत्त्वतमोगुणप्रधानैरेकैकस्थितिसंहारकारकैरधिष्ठितानि महाजलौघमत्स्यबुद्बुदानन्तसंघवद् भ्रमन्ति ।" इति । स्मर्य्यते चापि "तेजसा षोड़शांशोऽयं कृष्णस्य परमात्मनः । आधारः सर्वविश्वानां महाविष्णुश्च प्राकृतः ॥ प्रत्येकलोमकूपेषु

जगद्धात्री महाशक्ति भी क्या सादि सान्त है ? इस शंकाके समाधानमें दर्शन शास्त्रका सृष्टि प्रकरण समझने योग्य है । पूज्यपाद महर्षि अङ्गिराकृत दैवीमीमांसा दर्शन शास्त्रमें तीन प्रकारकी सृष्टि वर्णित है । आध्यात्मिकी सृष्टि, आधिदैविकी सृष्टि और आधिभौतिकी सृष्टि, इनमें अध्यात्मसृष्टि अनादि एवं अनन्त है । जैसाकि "आध्यात्मिकीसृष्टि अनादि अनन्त है" इत्यादि । ऐसा स्मृतियोंमें भी लिखा है कि "जो आध्यात्मिक पुरुष है वही आधिदैविक है, वहां जो दोनोंका विच्छेद है वही आधिभौतिक पुरुष है । दोके अभावमें एककी प्राप्ति असम्भव है । अतः जो तीनोंको जानता है वही आत्मस्वरूप प्रतिष्ठ है । भगवान्ने एक ही पौरुष्य वीर्यको अध्यात्म अधिदैव और अधिभूतरूपसे त्रिधा विभक्त करके तीन प्रकारकी सृष्टि की है ।" श्रुतियोंमें कहा है कि—"इस ब्रह्माण्डके चारों ओर स्थित इसी प्रकारके अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड अपने आवरणोंके साथ विराजमान हैं । जो चार मुखवालेसे लेकर सहस्रमुखवाले नारायणके अंशसे उत्पन्न रजोगुणप्रधान एक एक सृष्टिके निर्माता असंख्य ब्रह्मा, सत्त्वगुण प्रधान एक एक सृष्टिके रक्षक असंख्य विष्णु एवं तमोगुण प्रधान एक एक सृष्टिके संहारक असंख्य महेश्वरोंसे अधिष्ठित हैं, और महान् समुद्रमें अनन्त मत्स्य और बुद्बुदके समूहके समान परिभ्रमण कर रहे हैं ।" स्मृति शास्त्रमें भी लिखा है कि—"परमात्मा श्रीकृष्णके तेजके षोड़शांश अखिलब्रह्माण्डाधिनायक यह स्वयम्भू भगवान् महाविष्णु हैं और जिस श्रीकृष्णके प्रत्येकरोमकूपमें

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विश्वानि निखिलानि च। अद्याऽपि तेषां संख्याश्च कृष्णो वक्तुं न हि क्षमः॥संख्या चेद्रजसामस्ति विश्वेषां च कदाचन। ब्रह्मविष्णुशिवादीनां तथा संख्या न विद्यते॥ प्रतिविश्वं हि सन्त्येवं ब्रह्मविष्णुशिवादयः। पातालब्रह्मलोकान्तं ब्रह्माण्डं परिकीर्त्तितम्॥" इत्यादि। दैवीमीमांसा-दर्शनेऽपि—'ब्रह्मतच्छक्त्यो रभेदः शक्तिशक्तिमतोरभेदात्॥' स्मर्य्यते च—"स एव क्षोभको ब्रह्मन्! क्षोभ्यश्च पुरुषोत्तमः। स सङ्कोचविकाशाभ्यां प्रधानत्वेऽपि च स्थितः॥ केचित्तां तप इत्याहु-स्तमः केचिज्जड़ं परे। ज्ञानं मायां प्रधानञ्च प्रकृतिं शक्तिमप्यजाम्॥ साऽथ वै तस्य संस्रष्टुः शक्तिः सदसदात्मिका। माया नाम महाभाग! ययैदं निर्म्ममे विभुः॥ योगेनाऽऽत्मा सृष्टिविधौ द्विधारूपो बभूव सः। पुमाँश्च दक्षिणार्द्धाङ्गो वामार्द्धो प्रकृतिः स्मृता॥ सा च ब्रह्मस्वरूपा च नित्या सा च सनातनी। यथाऽऽत्मा च तथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिका स्थिता॥ तस्येच्छयाप्यहं देव! सृजामि सकलं जगत्। स मां पश्यति विश्वात्मा तस्याहं प्रकृतिः शिवा॥ या विद्येत्य-भिधीयते श्रुतिपथे शक्तिः सदाऽऽद्या परा। सर्वज्ञा भवबन्धभेदनिपुणा सर्वाशये संस्थिता॥ शक्तिशक्तिमतोर्भेदं वदन्ति परमार्थतः। अभेदं चानुपश्यन्ति योगिनस्तत्वचिन्तकाः॥ यथैव स्पन्दपवनौ नाम्ना भिन्नौ न सत्तया। तथैवमात्मप्रकृती नाम्ना भिन्ने न सत्तया॥

अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड हैं, जिनकी संख्या करनेमें आजतक वही भगवान् कृष्ण स्वयंभी समर्थ नहीं हुए। धूलिके कणोंकी गणना होना सम्भव है परन्तु अखिल ब्रह्मण्डोंकी गणना करना नितान्त असम्भव है। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश पृथक् पृथक् हैं। पातालसे लेकर ब्रह्मलोक तक ब्रह्माण्ड है।" दैवी मीमांसा दर्शनमें कहा है—"शक्ति और शक्तिमान्में अभेद होनेसे ब्रह्म तथा उसकी शक्तिमें भेद नहीं है।" स्मृतियोंमें भी लिखा है—"हे ब्रह्मन्! वही पुरुषोत्तम क्षोभक है और क्षोभ्य है। वही सङ्कोच और विकाशके द्वारा प्रधानत्वपद पर स्थित है। उसीको कोई तप, कोई तम, कोई जड़, कोई ज्ञान, कोई माया, कोई प्रधान, कोई प्रकृति और कोई अजन्मा शक्ति कहते हैं। वही इस स्रष्टाकी सत् और असत् रूपिणी माया नामकी शक्ति है, जिसके द्वारा प्रभुने विश्वका निर्म्माण किया। वह परमात्मा योगबलसे सृष्टिके विधानमें दो रूपमें हुआ। विभक्त दक्षिणाङ्ग पुरुष और वामाङ्ग प्रकृति कही गयी। वह प्रकृति नित्य सनातनी ब्रह्मरूपिणी है। जिस प्रकार आत्मा है उसी प्रकार उसकी शक्ति है। जैसा कि अग्निमें दाहिका शक्ति है। उसीकी इच्छासे समस्त विश्वका सर्जन करता हूं। जो आद्या नामसे अभिहित होती है। वह सबको जाननेवाली, सर्वान्तर्यामिनी शक्ति भवबन्धनसे छुड़ानेमें सर्वथा समर्थ है। शक्ति और शक्तिमान्में भेद है, ऐसा लोग कहते हैं। परन्तु यथार्थतः उनमें भेद नहीं है। इस लिए तत्वज्ञ लोग उन दोनोंमें अभेद देखते हैं जैसे वायु और कम्पन में। गोलोक और वैकुण्ठ लोक

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नित्यौ गोलोकवैकुण्ठौ प्रोक्तौ शश्वदकृत्रिमौ। प्रत्येकं लोमकूपेषु ब्रह्माण्डं परिनिश्चितम्॥ एषां संख्यां न जानाति कृष्णोऽन्यस्यापि का कथा। प्रत्येकं प्रतिब्रह्माण्डं ब्रह्मविष्णुशिवादयः॥" इति। स्मृत्यन्तरे यथा—"कोटिकोटचयुतानीह चाण्डानि कथितानि तु। तत्र तत्र चतुर्वक्त्रा ब्रह्माणो हरयो भवाः॥ असंख्याताश्च रुद्राश्च असंख्याताः पितामहाः। हरयश्च ह्यसंख्याता एक एव महेश्वरः॥ब्रह्माण्डा भान्ति दुर्दृष्टे व्योम्नि रेणुकणा यथा॥"अन्यत्रापि "मम प्रकृतिसम्भूतसंसारस्य सुरर्षभाः। सृष्टिः प्रवाहरूपेणानाद्यनन्ता प्रकीर्तिता॥ अपि ब्रह्माण्डसंघस्यानन्तत्वे प्रकृतिर्मम। प्रतिब्रह्माण्डमेवासौ सृष्टिस्थितिलयान्खलु॥ स्वयं करोति दुर्ज्ञेया जीवैर्मद्वशवर्तिनी। ब्रह्मविष्णुमहेशानां रूपेणाऽहं सहायवान्॥ सृष्टिस्थितिलये वर्त्ते प्रतिब्रह्माण्डमेव हि। स्व-स्व-शक्त्याश्रयान्नूनं त्रय एते हि हेतवः॥ सृष्टिस्थितिलयानां वै भवन्ति सुरसत्तमाः। ब्रह्मा मच्छक्तिमाश्रित्य जीवकर्मानुसारतः॥ तथा स्वाभाविकं कर्म्मप्रवाहं प्रकृतेः सुराः। आश्रित्य तनुते नित्यं स्थावरं जङ्गमं जगत्॥ उद्भिदः स्वेदजस्याथ ह्यण्डजस्य तथासुराः। जरायुजस्य मर्त्यानां पितॄणां भवतां तथा॥ तत्वज्ञानोपदेष्टॄणामृषीणां चैव सर्वशः।

नित्य हैं। उनके (परमात्मा श्रीकृष्णके) एक एक रोम कूपमें अगणित ब्रह्माण्ड हैं, प्रत्येक ब्रह्माण्डमें चतुर्मुख ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर हैं, जो असंख्य हैं, जिनकी गणना स्वयं कृष्ण भगवान् भी नहीं कर सकते, दूसरेकी तो कथा ही क्या है।" अन्य स्मृति में भी कहा है कि—"हे देवि! करोड़ों करोड़ों तथा लाखों ब्रह्माण्ड कहे जाते हैं, वहाँ वहाँ प्रत्येक ब्रह्माण्डमें चार मुखवाले ब्रह्मा, विष्णु और शंकर हैं, इस प्रकार असंख्य रुद्र, असंख्य ब्रह्मा, और असंख्य विष्णु हैं, केवल महेश्वर ही एक हैं। जैसे अनन्त अणु आकाशमें घूमते रहते हैं, उसी प्रकार इस अदृश्य महाकाशमें अनन्त ब्रह्माण्ड हैं।" और भी लिखा है—"हे देवगण! मेरी प्रकृतिसे उत्पन्न इस संसारकी सृष्टि प्रवाह रूपसे ही अनादि अनन्त कही गयी है। ब्रह्माण्ड समूहके अनन्त होने पर भी प्रत्येक ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति स्थिति और लय जीवोंके द्वारा दुर्ज्ञेया यह मेरी प्रकृति मेरे वशमें रहकर स्वयं ही करती है। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूपसे सृष्टि, स्थिति और लयमें सहायक रहता हूं। हे श्रेष्ठ देवगण! वे ही तीनों अपनी अपनी शक्तिको आश्रय करके ही उत्पत्ति, स्थिति और लयके कारण होते हैं। हे देवगण! ब्रह्मा मेरी शक्तिका आश्रय लेकर जीवोंके पूर्व कर्मके अनुसार तथा प्रकृतिमें स्वाभाविक कर्म प्रवाहका अवलम्बन करके स्थावरजङ्गमात्मक संसारका सदा विस्तार करते हैं। हे देवगण! उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज, जरायुज, मनुष्य, पितृ, देवता, और तत्त्वज्ञानोपदेशक ऋषियोंकी इन सब प्रकारकी

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मैव कुरुते सृष्टिं महामायाप्रभावतः॥" इति। मीमांसायां मीमांसितं यत् श्रुतिस्मृति शास्त्रसमुच्चये त्रिविधा भाषा समीरितोपलभ्यते। यथा योगं युञ्जाना समाधिभाषा, परोक्षरहस्यमयी लौकिकी भाषा, कथासन्दर्भिता परकीयभाषा चेति। तत्र परोक्षरहस्यमयी लौकिकी भाषा श्रीविष्णुभागवते परमहंससंहितायां भगवत्पूर्णावतारेण श्रीकृष्णचन्द्रेण निजवदनारविन्दतः स्वत एव सम्यग् विवेचिता यथा—"वेदा ब्रह्मात्मविषयास्त्रिकाण्डविषया इमे। परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम्॥ शब्दब्रह्मसुदुर्बोधं प्राणेन्द्रियमनोमयम्। अनन्तपारं गम्भीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत्॥" इति। तस्माद् वेदशास्त्रेषु रहस्यपूर्णभाषया वर्णनमवलोक्यते। यथा—पूर्णावतारस्य भगवतः श्रीकृष्णचन्द्रस्य नैमित्तिकरासलीला विष्णुभागवते वर्णिता तथैव अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायकस्य परमात्मनः श्रीकृष्णस्य नित्यलीलामयमहारासवर्णनं देवीभागवते लोकोत्तरचमत्कृतिजनकमास्ते। ततोऽनाद्यनन्तसृष्टिप्रवाहरहस्यमनन्तब्रह्माण्डमयश्रृङ्गारलीलायाः महारासमहोत्सवस्य च तत्त्वं किञ्चिदवगन्तुं शक्यते। तत्रेत्थं वर्णितम्—अनन्तकोटिब्रह्माण्डाधीश्वरो गोलोकवासी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रः स्वतः स्वीयां प्रकृतिमुद्भाव्य तां पञ्चधा विभेजे। ताश्च पञ्च श्रीदुर्गा, श्रीराधा, श्रीसावित्री, श्रीलक्ष्मी,

---

सृष्टिको ब्रह्माजी ही महामायाके प्रभावसे करते हैं। मीमांसाशास्त्रमें लिखा है कि वेद और शास्त्रोंमें योगयुक्त समाधिभाषा, परोक्ष तथा रहस्यमय लौकिकी भाषा और गाथा गुम्फित परकीय भाषा इस प्रकारसे तीन भाषाएँ पायी जाती हैं। परमहंस संहितारूपी श्रीविष्णुभागवतमें भगवान्के पूर्णावतार श्रीकृष्णचन्द्रजीने निजमुखकमलसे परोक्ष तथा रहस्यमय भाषाके विषयमें ऐसा कहा है कि वेद ब्रह्मात्मविषयक है तथा त्रिकाण्डमय है। ऋषिगण परोक्षवादी होते हैं अर्थात् रहस्यमय शब्दोंसे कहते हैं। और मुझे भी परोक्ष वर्णन ही प्रिय है। प्राण, इन्द्रिय और मनोमय शब्द ब्रह्म भी अति दुर्ब्बोध और समुद्रकी तरह अपार गम्भीर और दुस्तर है। इसी कारण वेद और शास्त्रोंमें रहस्यपूर्ण भाषाका प्रयोग करनेकी रीति प्रचलित है। पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीकी नैमित्तिक रासलीला विष्णुभागवतमें जैसी वर्णित है उसी ढंगपर अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक गोलोकवासी परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णके नित्यलीलामय महारासका वर्णन देवीभागवतमें अति चमत्कार रूपसे वर्णित है। उससे अनादि अनन्त सृष्टिप्रवाहका अस्तित्व और अनन्त ब्रह्माण्डमय अद्भुत श्रृङ्गारलीला तथा महारास महोत्सवका औपनिषदिक रहस्य कुछ कुछ समझमें आता है। देवाधिदेव अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक भगवान् गोलोकवासी श्रीकृष्णचन्द्रने अपनेसे अपनी प्रकृतिको अलग करके पाँच भागमें विभक्त किया था। उनका नाम श्रीदुर्गा, श्रीराधा, श्रीसावित्री, श्रीलक्ष्मी, और

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीसरस्वती, इति पञ्चनामधेयैः प्रसिद्धाः । एता एव धर्ममयी जगद्धात्री श्रीदुर्गादेवी, परमाह्लाद-दायिनी श्रीराधादेवी, वेदजननी श्रीसावित्रीदेवी, ऐश्वर्यप्रदायिनी श्रीलक्ष्मीदेवी विद्यारूपिणी श्रीसरस्वतीदेवी च दार्शनिकैरुच्यन्ते । यदानाद्यनन्तः सृष्टिप्रवाहस्तदास्य शक्तिपञ्चकस्य सदा सद्भावोऽपि स्वाभाविक एव ।" अपरं च तत्रोपवर्णितम्—"सर्वशक्तिः परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णः सावित्रीं भगवते ब्रह्मणे, लक्ष्मीं सरस्वतीं च भगवते विष्णवे प्रायच्छत् । परमाह्लादिनीं श्रीराधादेवीं सृष्टिलीलाविवृद्धये स्वयमाददे । धर्ममयीं जगद्धात्रीं श्रीदुर्गादेवीं च स्वकीयामिष्ट-देवीमकल्पयत् । वेदभाष्यरूपपुराणानामपूर्वरहस्य वर्णनेनानेन सृष्टेरनाद्यनन्ततां रासमहोत्सव-तत्त्वञ्च ज्ञानिभक्ता अवबोद्धुं शक्नुयुः । शास्त्रसमुच्चये यद्यप्याधिदैविकी ब्रह्माण्डसृष्टिराधि-भौतिकी पिण्डसृष्टिश्च सादिसान्ते साधितेऽस्तः किञ्चाध्यात्मिकी सृष्टिस्तु नित्या अनाद्यनन्ता च निर्दिष्टा प्रवाहरूपत्वात् । यथा विनष्टेऽप्येकस्मिन्मानवपिण्डेऽगणितमनुष्यपिण्डाः तिष्ठन्त्येव,

---

श्रीसरस्वती हैं। इन्हींको दर्शनकारोंने जगद्धात्री धर्मरूपिणी श्रीदुर्गादेवी, परम आह्लाद-दायिनी श्रीराधादेवी, वेदजननी श्रीसावित्रीदेवी, ऐश्वर्य्य प्रदायिनी श्रीलक्ष्मीदेवी और विद्यारूपिणी श्रीसरस्वतीदेवी कहा है। जब सृष्टिप्रवाह अनादि अनन्तरूपसे प्रवाहित होता है तो इन पाँचो शक्तियोंका उसमें सदा बना रहना स्वाभाविक है।" और भी वहाँ लिखा है कि, परमात्मरूपी सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णने श्रीसावित्रीजीको भगवान् ब्रह्माके लिये अर्पण किया। भगवान् विष्णु के लिये लक्ष्मीदेवी और सरस्वतीदेवीको अर्पण किया* । परमाह्लादप्रदायिनी श्रीराधादेवीको लीलाविस्तारके लिये स्वयं ग्रहण किया, और जगद्धात्री धर्मरूपिणी श्रीदुर्गादेवीको अपनी इष्टदेवी बनाया। अतिचमत्कारपूर्ण वेदकेभाष्यरूपी पुराणके इस रहस्यमय वर्णनका ध्यान पूर्वक विचार करनेसे सृष्टिप्रवाहकी अनन्तता और रास महोत्सवका चमत्कार ज्ञानी भक्तगण सुगमतासे हृदयङ्गम कर सकेंगे। शास्त्रोंमें आधिदैविक ब्रह्माण्ड सृष्टि और आधिभौतिक पिण्डसृष्टि दोनोंको सादि सान्त सिद्ध करने पर भी आध्यात्मिक सृष्टिको अनादि अनन्त बताया है। इसका कारण यह है कि प्रवाहरूपसे सृष्टि अनादि अनन्त है। जैसे एक मनुष्यके मर जानेपर और उसका मनुष्यपिण्ड नष्ट हो जाने पर भी अगणित मनुष्य पिण्ड स्थायी रहते हैं। उसी प्रकार एक ब्रह्माण्डके नष्ट होजानेपर भी

---

* अनाद्यनन्त नित्य सृष्टिप्रवाहका वर्णन यहां किया गया है, लयकी चर्चा अनावश्यक होनेसे भगवान् शङ्करका कोई उल्लेख नहीं है। ब्रह्माण्ड अनन्त है और प्रवाह रूपसे नित्य है। अतः ये तीन शक्तियां भी श्रीसावित्री, श्रीलक्ष्मी और श्रीसरस्वती नित्य हैं।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तथैवैकस्मिन् ब्रह्माण्डे विलीनेऽप्यनन्तकोटिब्रह्माण्डसमूहाः स्व-स्वरूपेऽवतिष्ठन्ते। अनाद्यनन्ताः किल कालदिग्देशाः। यथा वातायनरन्ध्रानुप्रविष्टे सूर्यकिरणकदम्बे दृश्यमानास्त्र्यणुका असंख्या अवलोक्यन्ते, तथा सर्वशक्तिमय्या मातुः प्रकृतेर्गर्भान्तराविष्टा अनन्तकोटिब्रह्माण्डास्तदीयमनिर्वचनीयं महिमानमुद्घोषयन्ति। श्रीदेवीभागवतेऽनन्तकोटिब्रह्माण्डनायकस्य भगवतः श्रीकृष्णस्य सगुणं स्वरूपं परिकल्प्य गोलोकेऽनेकगोपगोपीपरिवेष्टितस्य तस्य परमाह्लादप्रदायिनीमानन्दमयीं राधां च तदीयां शक्तिमाकलय्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरत्रिदेवानां सरस्वतीप्रभृतिदेवीनां च समक्षे नैकासु राधाकृष्णयुगलमूर्तिषु नित्यरासलीलामहोत्सवस्य दिव्यं दृश्यं प्रदर्श्य समाधिगम्यं महारासस्वरूपमुपवर्णितमास्ते। तत्र रासमहोत्सवे सृष्टिसंहारकस्य जीवेभ्यो ज्ञानप्रदस्य सदाशिवस्य भगवतः केवलमेतदेव कृत्यमुपवर्णितमुपलभ्यते, यदेष सदाशिवः संगीत-तन्त्र शास्त्र-निर्मातृत्वात् तत्र नित्य-रासमहोत्सवे स्वीयैर्मधुरैः संगीतैः सर्वान् विमोहितवान्, तन्त्र-शास्त्रमाविर्भावयितुं च स्वीकृतवान्। यदा गोलोकधाम सर्वथैव नित्यमस्ति, तदा सृष्टिसंहर्त्तुः प्रभोः सदाशिवस्य तत्र वर्णनबाहुल्यं नोपयुज्यते। परोक्षलौकिकभाषा-रहस्य-तत्त्वमेतद् भावुका ज्ञानिनो भक्ता

अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड अपने स्वरूपमें विद्यमान रहते हैं। काल अनादि अनन्त है और दशों दिशाओंका देश भी अनादि अनन्त है। जैसे सूर्यकी किरणोंमें देखने योग्य त्रसरेणु अगणित दिखाई देते हैं, उसी प्रकार सर्वशक्तिमयी प्रकृति माताके गर्भमें अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड रहकर उसकी अनिर्वचनीय महिमाका प्रचार करते रहते हैं। देवी भागवतमें अनन्त कोटि ब्रह्माण्डके नायक भगवान् श्रीकृष्णको सगुण ब्रह्मरूपसे मानकर गोलोकमें उनको अनन्त गोप-गोपियोंसे सेवित और परमाह्लाद प्रदायिनी आनन्दमयी राधाको उनकी शक्ति बताकर तथा ब्रह्मा विष्णु शिव सरस्वती आदि देव देवियोंके सम्मुख राधाकृष्णरूपी अनन्त युगलमूर्त्तियोंमें नित्य रास महोत्सवका अलौकिक दृश्य दिखाकर महारास महोत्सवका समाधिगम्य स्वरूप बताया गया है। उस रास महोत्सवमें सदाशिव जो जगल्लयकारी हैं, और जीवके ज्ञान प्रदाता हैं, उनका स्थान केवल इतना ही बताया गया है कि, तन्त्र शास्त्रके और संगीत शास्त्रके बनानेवाले होनेसे इस नित्य महारास महोत्सवमें उन्होंने केवल मधुर संगीत सुनाकर सबको मोहित किया था और तन्त्र शास्त्र प्रकट करना स्वीकार किया था। जब नित्य गोलोक धाम सदा बना ही रहता है तो वहाँ सृष्टिलयकर्त्ता भगवान् सदाशिवका वर्णन इससे अधिक करनेकी आवश्यकता नहीं है। इस परोक्ष तथा रहस्यमय लौकिकी भाषाका तात्पर्य भावुक ज्ञानी भक्त-

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एव ज्ञातुं प्रभवेयुः। इत्थमनन्तब्रह्माण्डसृष्टिलीलामयं समाहितधीरधीगम्यं च महारासमहोत्सवस्वरूपमस्ति। यस्य क्षणिकं दृश्यं पूर्णावतारो भगवान् श्रीकृष्णो बाल्ये ब्रजलीलायां प्रदर्श्य स्वभक्तान् कृतार्थयामास, तस्य च रहस्य पूर्ण विज्ञाने निःशेषमवगते सर्वे सुधीरा अवगन्तुमीशते, यत् प्रवाहमय्या आध्यात्मिकसृष्टेरनाद्यनन्तत्वात् सर्वशक्तिर्भगवानिव भगवती जगद्धात्री-धर्मशक्तिरपि सर्वदैव सृष्टिप्रवाहं परिरक्षति। त एतदपि ज्ञातुं पारयन्ते यत् कथं हि धर्मशक्तिर्नित्येति। तथाहि—यदा श्रीपरमात्मा अनादिरनन्तश्च वर्तते, तदा तदीया जगद्धात्री धर्मशक्तिरपि नूनमनाद्यनन्ता विद्यत, इत्यत्र नास्ति काचिद् विप्रतिप्रत्तिः। इदमेव विश्वधारकधर्मस्य दार्शनिकस्वरूपम्। शाश्वतधर्मस्य व्यापकनित्यस्वरूपं ज्ञानचक्षुषा समीक्ष्य तस्य नित्यात्मरूपमवबोद्धव्यम् तदीयाङ्गोपाङ्गानि चानुष्ठेयानि।

इति श्रीमद्भगवद्दत्तात्रेयकृपया श्रीदत्तात्रेयधर्ममीमांसाग्रन्थस्य
विश्वधारकधर्मतत्व नामकः प्रथमोऽध्यायः समाप्तः।

अथ देशधर्मतत्त्वनामको द्वितीयोऽध्यायः।

शक्तिशक्तिमतोरभेदाद् ब्रह्मणि तत्प्रकृतौ च यथा नास्ति भेदस्तथैव देश-

गण अच्छी तरह समझ सकते हैं। इस प्रकारसे अनन्त ब्रह्माण्डसृष्टि लीलामय और समाधिबुद्धिगम्य महारासमहोत्सवका स्वरूप है। जिसका क्षणिक दृश्य पूर्णावतार श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी बृजलीलामें भक्तोंको दिखाकर उनको कृतकृत्य किया था। इस रहस्यपूर्ण विज्ञानको अच्छी तरह समझने पर बुद्धिमान् व्यक्तिमात्र ही समझ सकेंगे कि सृष्टिप्रवाहरूपी आध्यात्मिक सृष्टि अनादि अनन्त होनेसे सर्वशक्तिमान् भगवान्की तरह उनकी जगद्धात्री रूपिणी धर्मशक्ति सदा सृष्टिकी रक्षा किया करती है और यह भी समझ सकेंगे कि धर्मकी महाशक्ति कैसे नित्य है। श्रीपरमात्मा जब अनादि अनन्त हैं तो उनकी जगद्धात्रीरूपिणी धर्मशक्ति भी अनादि अनन्त है। यही विश्वधारक धर्मका दार्शनिक तत्त्व है। शाश्वत धर्मके सर्वव्यापक नित्य स्वरूपको ज्ञानदृष्टिके सम्मुख रखकर धर्मका नित्य स्वरूप समझना चाहिये और धर्मके प्रत्येक अङ्ग और उपाङ्गोंका आचरण करना चाहिये।

इस प्रकारसे श्रीभगवान् दत्तात्रेयकी कृपासे श्रीदत्तात्रेयधर्ममीमांसा ग्रन्थका
विश्वधारक धर्मतत्त्व नामक प्रथम अध्याय समाप्त हुआ।

अथ देशधर्मतत्त्वनामक द्वितीय अध्याय।

जैसे शक्ति और शक्तिमानमें अभेद होनेके कारण ब्रह्म और ब्रह्मप्रकृतिमें भेद नहीं है, वैसे ही देश

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कालावप्यनाद्यनन्तत्वात् सगुणब्रह्मण एव स्वरूपतामश्नुतः। नास्ति देशकालयोः सगुणब्रह्मणः सकाशात् कोऽपि भेद इत्यर्थः।अनन्तकोटिब्रह्माण्डस्य सृष्टिप्रवाहो यथानाद्यनन्तस्तस्य सादिसान्तत्वे नैवानुभूयेते, तथैव देशरूपात्मिका दश दिशोऽप्यनाद्यनन्ता एव, तासां सादिसान्तत्वे नैवानुभूयेते। किन्तु प्रत्येकब्रह्माण्डसृष्टिमीमांसावसरे तत्सम्बन्धतो देशविचारावसरे च तत्तद्ब्रह्माण्डसम्बन्धी देशः ससीमः फलतः सादिः सान्तश्चेति प्रत्येतुं शक्यते। तथाहि—दैवीमीमांसादर्शने "आधिदैविकाऽऽधिभौतिकसृष्टिः सादिसान्ता ततो ब्रह्माण्डपिण्डे नश्वरे"। इति ब्रह्माण्डरूपिण्याधिदैविकी सृष्टिः जीवपिण्डरूपाऽधिभौतिकी सृष्टिश्चेत्युभे अपि सादिसान्ते विनश्वरे च स्तः। ब्रह्माण्डमेकं कदोत्पद्यते कदा वा विलीयते चेति त्रिकालद्रष्टारो महर्षयः शास्त्रेषु समाधिभाषया व्याजह्रुः। एवमेवैकस्य जीवपिण्डस्य सादित्वं सान्तत्वञ्च प्रत्यक्षसिद्धमेव। श्रुतिश्चात्र प्रमाणम् "यथापूर्वमकल्पयद्दिवञ्च पृथिवीञ्चाऽन्तरिक्षमथो स्वः।" "तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते।" "अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम्।" "यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च तथाऽक्षरात्सम्भवतीह विश्वम्।" "रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश'।

और काल अनादि और अनन्त होनेके कारण वे दोनों सगुणब्रह्मके ही स्वरूप हैं। अर्थात् सगुणब्रह्मसे देशकालका कोई भेद नहीं है। जैसे अनन्तकोटि ब्रह्माण्डके अनादि अनन्त सृष्टिप्रवाहका आदि और अन्त अनुभवमें नहीं आता है वैसे ही देशरूपी दशो दिशाओंका आदि अन्त नहीं जाना जाता है। परन्तु प्रत्येक ब्रह्माण्डकी सृष्टि पर विचार करने से और उसके सम्बन्धमें देशका विचार करने से ब्रह्माण्डसम्बन्धी देशकी सीमा बाँधी जा सकती है। इसी कारण दैवीमीमांसादर्शनमें कहा है कि—"ब्रह्माण्डरूपी आधिदैविक सृष्टि और जीवपिण्डरूपी आधिभौतिक सृष्टि ये दोनों ही सादि सान्त हैं और दोनों नश्वर हैं।" एक ब्रह्माण्ड कबसे उत्पन्न हुआ और कब वह ब्रह्माण्ड प्रलयके गर्भमें चला जायगा इसका त्रिकालदर्शी महर्षियोंने शास्त्रोंमें समाधि भाषासे वर्णन किया है। और इसी प्रकार एक जीवपिण्डका भी आदि अन्त दिखाई देता है यह प्रत्यक्ष ही है। श्रुतिमें भी कहा है—"आकाश, पृथ्वी, अन्तरिक्ष ये सभी पूर्वकल्पके अनुसार भगवान उत्पन्न करते हैं। परमात्माकी तपस्या द्वारा मिथुनीभाव प्राप्त होने पर प्रथम अन्न अर्थात् अव्याकृत प्रकृति उत्पन्न होती है। पश्चात् क्रमशः प्राण, मन, सत्य, लोक और कर्ममें अमृतफल की प्राप्ति होती है। जैसे मकड़ी स्वयं जाल फैलाती है और समेट लेती है वैसे ही अक्षर ब्रह्मसे यह सृष्टि पैदा होती है और उसीमें लीन हो जाती है। परमात्मा अनेक रूपोंको धारण इस लिये करता है कि उसकी सत्ता पर सबको विश्वास हो। ईश्वर अपनी मायाके आश्रयसे साकार अनेक रूप धारण करता है। सतरह तत्त्वका सूक्ष्मरूपभी वही धारण करता है।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"यथाऽक्षराद्विविधाः सौम्य भावाः। प्रजायन्ते यत्र चैवाऽपियन्ति।" इति। यथा मानवपिण्ड मातृगर्भतः समुत्पद्यते समुत्पन्नश्च प्रारब्धकर्मणा जात्यायुर्भोग-प्रकृतिप्रवृत्तिशक्तिसंस्कारादीननुसृत्य जीवति म्रियते च, तद्वदेकस्य ब्रह्माण्डस्यापि यथाकाल-मुत्पत्तिस्थितिप्रलयाः प्रायशः सम्भवन्ति। श्रुतिस्मृतिषु समुपवर्णिता सृष्टिर्ह्यस्मद्ब्रह्माण्डसम्ब-न्धिनी विज्ञेया। यत्र तत्र पुराणादिषु समुपलभ्यमानाः सृष्टिप्रभेदाः कल्पान्तरमन्वन्तरभेदतो विराट्पुरुषरहस्यमयवर्णनविवक्षया वा विज्ञेयाः। श्रुतयो हि शब्दरूपतो नित्या, श्रुतिसम्मताः स्मृतयोऽपि भावरूपतो नित्या एव, आर्षसंहितास्तु स्मृतयः सन्त्येव, वेदभाष्यस्वरूपाणि पुरा-णानि वेदविज्ञानप्रकाशकदर्शनशास्त्राणि च स्मृतय एव सन्ति। सृष्टिविज्ञानं लोकलोकान्तर-रहस्यं वा कथं समधिगम्यते इत्यस्य साधनपद्धतिर्योगदर्शने निभाल्यते। तथाहि पूज्यपादपतञ्जलिः—"देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।" "तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।" "तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः"। "त्रयमेकत्र संयमः।" "तज्जयात्प्रज्ञा-लोकः।" "तस्य भूमिषु विनियोगः।" इत्याह। स्मृतावप्युक्तम्—"संयमश्चैकतत्त्वश्च

हे सौम्य! उसी अक्षरसे अनेक भाव पैदा होते हैं और उसीमें लीन होते रहते हैं।" जैसे मनुष्यपिण्ड माताके गर्भसे उत्पन्न होता है और माताके गर्भसे निकलकर पूर्व प्रारब्धके अनुसार जाति, आयु, भोग, प्रकृति, प्रवृत्ति, शक्ति और संस्कारके अनुसार जीवित रहता है और फिर मर जाता है। उसी प्रकार एक ब्रह्माण्डकी भी उत्पत्ति, स्थिति और लय यथा सम्भव हुआ करते हैं। वेदोंमें तथा शास्त्रोंमें जो सृष्टि प्रकरण का वर्णन है वह हमारे ब्रह्माण्डके सम्बन्धसे पाया जाता है। मन्वन्तर सृष्टि और कल्प कल्पान्तर सृष्टि के सम्बन्धसे सृष्टि प्रकरणके वर्णनमें कहीं कहीं तारतम्य भी पाया जाता है। उसको कल्पान्तर सृष्टिके भेदसे अथवा विराट पुरुषके रहस्यमय वर्णन रूपसे समझना चाहिये। जैसे हमारे वेद शब्द रूपसे नित्य हैं, वैसे वेद सम्मत स्मृति समूह भी भाव रूप से नित्य हैं। आर्ष संहितायें तो स्मृति हैं ही, वेदभाष्य-रूप पुराणशास्त्र भी तथा वेदके ज्ञानके प्रकाशक दर्शनशास्त्र भी सब स्मृति स्वरूप ही हैं। कैसे सृष्टि का पता लगाया जाता है, कैसे लोक लोकान्तर का रहस्य समझा जाता है, उसकी साधनप्रणाली योग-दर्शनमें पायी जाती है कि—"अन्तर्जगतके विशेष विशेष स्थानोंमें चित्तको स्थिर करना धारणा है वहाँ ध्येयाकार चित्तवृत्तिकी स्थिरतासे ध्यानकी प्राप्ति होती है। वही ध्यान जब ध्येय मात्र स्फूर्तियुक्त होकर स्वरूप शून्य सा प्रतीत होने लगे तो उसे समाधि कहते हैं। इन तीनोंका एकमें संमिलित होना ही संयम कहाता है। उसकी जय से प्रज्ञा का प्रकाश होता है। योगकी भूमियोंमें संयमका प्रयोग होता है।" स्मृतिमें भी कहा है—"हे निष्पाप देवतागण! मैंने जो संयम और एक तत्त्वरूपी

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शक्तिद्वयमलौकिकम् । पुरो वा वर्णितं देवाः ! मया सम्यक्तयाऽनघाः ॥ जायते संयमस्तत्र धारणाभूमितो ध्रुवम् । ध्यानभूम्यास्तु भो देवाः ! एकतत्त्वं प्रजायते ॥ त्रयं हि धारणाध्यानसमाधीति क्रियात्मकम् । दृश्याश्रयात्प्रयुक्तं सन्निर्जराः ! संयमो भवेत् ॥ यदा त्वात्मानमुद्दिश्य त्रयमेतत्प्रयुज्यते । एकतत्त्वं तदोदेति ह्येषा वैदान्तिकी श्रुतिः ।।" इति । यदि साधकश्चतुर्दशभुवनज्ञानं कर्त्तुमिच्छेत्तर्हि सूर्ये धारणाध्यानसमाधिरूपसंयमाद् भवितुमर्हति । यथा योगदर्शने—"भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ।" इति । यदस्माकमेतद्ब्रह्माण्डविषयकं ज्ञानं पूज्यपादैर्महर्षिभिः धारणाध्यानसमाधियुक्तसंयमेनालौकिकं ज्ञानमासाद्य विभिन्नेषु तत्तच्छास्त्रेषु समुपवर्णितम् । तच्च वर्णनवैचित्र्यं यद्येकीकृत्य समन्वयबुद्ध्या मीमांस्येत तदाऽस्माकं ब्रह्माण्डस्वरूपं तत्सम्बन्धिदेशस्वरूपञ्च सम्यगभ्युपगन्तुं पार्येत । यत्र कुत्रचित्तु तेषु वर्णनेषु यदि परस्परविरोधो दृश्यते तदा नत्वत्र सिद्धान्तविरोधः प्रत्युत भावविरोध एवावगन्तव्यः । भगवद्भिर्व्यासादिमहर्षिभिः शास्त्रेषु चतुर्दशलोकास्तदवान्तरदेशविभागाश्च बहुशो विवेचिता वर्णिताश्च सन्ति । तथाहि योगदर्शनभाष्ये व्यासवाक्यानि—"ततः प्रस्तारः सप्तलोकास्तत्रावीचेः प्रभृति मेरुपृष्ठं यावदित्येवं भूर्लोको मेरुपृष्ठादारभ्याध्रुवात् ग्रहनक्षत्रताराविचित्रोऽन्तरिक्षलोकस्ततपरः

अलौकिक दो शक्तियोंका वर्णन किया है । हे देवतागण ! उसमें संयम धारणा भूमिसे और एक तत्त्व ध्यान भूमिसे निश्चय प्रकट होता है । धारणा ध्यान और समाधि ये तीनों क्रियायें जब इन दृश्य के अवलम्बनसे प्रयुक्त होती हैं तब एक तत्त्वका उदय होता है, यही उपनिषद का रहस्य है ।" योगदर्शन में और भी लिखा है कि यदि चतुर्दश भुवनोंका ज्ञान प्राप्त करना हो तो धारणा ध्यान समाधि को सहायतासे सूर्य में संयम करनेसे सब भुवनों का पता लग सकता है जैसे—"सूर्यमें संयम करनेसे भुवनों का ज्ञान होता है ।" हमारे इस ब्रह्माण्डका ज्ञान पूज्यपाद ऋषियोंने धारणा ध्यान समाधियुक्त संयमके द्वारा अलौकिक ज्ञान प्राप्त करके विभिन्न शास्त्रोंमें जो लिखा है ! वे सब वर्णन एकत्रित करके यदि समन्वय विचारके द्वारा मीमांसा किया जांय तो हमारें ब्रह्माण्डका स्वरूप और ब्रह्माण्डव्यापी देशका स्वरूप अच्छी तरह समझमें आ सकता है । कहीं कहीं वर्णनमें विरोध यदि दिखाई दे तो समझना चाहिये कि उनके सिद्धान्त विरोध नहीं है भाव विरोध है । भगवान व्यास ने तथा अन्य महर्षियों ने शास्त्रों में चतुर्दशभुवन और उनके अवान्तर देशों का अनेक प्रकारसे विवेचन तथा वर्णन किया है । उसे भगवान वेदव्यासजीने योगदर्शनभाष्यमें इस प्रकारसे लिखा है । "इसके बाद सात लोकों का विस्तार है । वहां पर वीची नामक लोकसे लेकर मेरुके पृष्ठ तक भूर्लोक और मेरु पृष्ठसे ध्रु व तक, ग्रह नक्षत्र तथा ताराओंसे युक्त अन्तरिक्ष (भुवर्लोक) है । इसके बाद

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वर्लोकः पञ्चविधो *माहेन्द्रस्तृतीयलोकः चतुर्थः प्राजापत्यो महर्लोकस्त्रिविधो ब्राह्मस्तद् यथा–जनलोक तपोलोकः सत्यलोक इति। ततो महातलरसातलातलसुतलवितलतलातलपातालाख्यानि सप्त पातालानि।" इति। अस्मादाश्रयीभूतं ब्रह्माण्डमिदं चतुर्दशभुवनभेदैर्भिद्यमानमिति पूज्यपादभगवद्व्यासवर्णनाभिप्रायः। अन्योन्यं वेभिद्यमानेषु चतुर्दशसु लोकेषु नानाविधा जीवा यथा चतुर्विधसंघा मनुष्यासुरदेवादयः सहजमानवदेवपिण्डधारिणो निवसन्ति। ब्रह्माण्डस्यैतस्य विशालानां तत्तद्भुवनानां मानवपिण्डतः सादृश्यमस्ति। सिद्धान्तस्यास्य स्वरूपं संक्षेपतः प्रमाणयन्ति किल वैदिकदर्शनानि। सृष्टिप्रवाहरूपाया आध्यात्मसृष्टेरनाद्यनन्तत्वं, ब्रह्माण्डसृष्टिरूपाया आधिदैवसृष्टेः प्रमाणितं सादिसान्तत्वञ्च दैवीमीमांसाऽपरनामकेनाङ्गिरसदर्शनेन। तद्धि दर्शनशास्त्रं ब्रह्माण्डचित्रस्य ज्ञानगोचरीकरणाय समष्टिव्यष्टिसम्बन्धेन ब्रह्माण्डस्याङ्गप्रत्यङ्गं मानवपिण्डवदित्थं वर्णयति। तथाहि—"ब्रह्माण्डं मानवपिण्डवत् समष्टिव्यष्टिसम्बन्धात्।" शिरो ब्राह्मः स्वर्गः।" "प्राजापत्यः कण्ठम्।" "माहेन्द्रो हृदयम्।" "भौमो नाभेरूर्ध्वम्।" "तदधो विलाख्यः।"

पाँच प्रकारके स्वर्ग हैं। जिसमें तीसरा माहेन्द्र स्वर्ग नामक स्वर्गलोक है। चौथा प्राजापत्य स्वर्ग नामक महर्लोक है। इसके बाद तीन प्रकारका ब्राह्म स्वर्ग है, जिसमें जनलोक तपोलोक तथा सत्यलोक है। इसके बाद अर्थात् भूलोकके नीचे महातल, रसातल,अतल, सुतल, वितल, तलातल और पाताल नामक सात पाताल लोक हैं।" भगवान् वेदव्यासके इस वर्णन द्वारा यह सिद्ध हुआ कि हमारा ब्रह्माण्ड चौदह भुवनोंमें विभक्त है। वे चौदह भुवन अलग अलग लोक हैं, जिनमें नाना प्रकारके जीव यथा उद्भिज्जादि चतुर्विध भूतसंघ मनुष्य, असुर, देवता, आदि अर्थात् सहजपिण्डवाले जीव मानवपिण्ड वाले जीव और देव पिण्डवाले जीव वास करते हैं। इस ब्रह्माण्डके विशाल देशका सादृश्य भी मानवपिण्ड अर्थात् मनुष्य शरीरके साथ है। इसे वैदिक दर्शनशास्त्र भी संक्षेपसे प्रमाणित करते हैं। दैवी-मीमांसा नामक आङ्गिरस दर्शनने सृष्टि प्रवाह रूपी आध्यात्म सृष्टिको अनादि और अनन्त तथा ब्रह्माण्ड सृष्टि रूपी आधिदैव सृष्टिको सादि सान्त बताया है। यह दर्शन ब्रह्माण्डके अङ्ग प्रत्यङ्गको सर्वसाधारणकी समझमें आनेके लिये समष्टि और व्यष्टि सम्बन्धसे मानव पिण्डकी भाँति बतलाता है। जैसे "ब्रह्माण्ड समष्टि व्यष्टि सम्बन्धसे मानव शरीरकी तरह है।" "ब्राह्म स्वर्ग मस्तक रूपी उत्तमाङ्ग है।" "प्राजापत्य स्वर्ग कण्ठ है।" "माहेन्द्र स्वर्ग हृदय है।" "भौमस्वर्ग नाभिके ऊपरका देश है।" "विलस्वर्ग नाभिके

* सप्त पाताल विलस्वर्ग है भूर्भुवः ये दोनों भौमस्वर्ग हैं। स्वर्लोक माहेन्द्रस्वर्ग है। महर्लोक प्राजापत्य स्वर्ग है। इसके ऊपर के तीन लोक ब्राह्म स्वर्ग है। येही पञ्चविधस्वर्ग हैं।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"लोकालोकौ करौ ।" "पादपर्वतावङ्घ्री ।" "सुमेरुर्मेरुदण्डः ।" । इति मानवपिण्डस्वरूपस्य ब्रह्माण्डशरीरस्य शिरोभागरूपे जनतपस्सत्यात्मके ब्राह्मस्वर्गे, कण्ठरूपे महर्लोकात्मके प्राजापत्यस्वर्गे, हृदयरूपे स्वर्लोकात्मके माहेन्द्रस्वर्गे नाभेरुपरि स्थिते भूर्भुवर्लोकात्मके भौमस्वर्गे क्रमश उन्नताधिकारा दिव्यशरीरधारिणो विभिन्नश्रेणयो देवा निवसन्ति। प्राजापत्य स्वर्गरूपो महर्लोकश्च ब्रह्माण्डशरीरस्य कण्ठस्वरूपमस्ति। स्वर्लोको हृदयम् । भूर्भुवर्लोकौ च ब्रह्माण्डकायस्य नाभेरुपरितनौ लोकौ स्तः । सप्तपाताललोकास्तु नाभेरधस्था लोकाः सन्ति । दैवपर्वतरूपैर्ब्रह्माण्डपर्वतैः पादहस्तमेरुदण्डानाञ्च कल्पना ज्ञेया। एतेषु चतुर्दशसु भुवनेषु भूलोकोऽपि एकं भुवनमस्ति। तस्य वर्णनं स्मृतिशास्त्रेष्वेवं विद्यते । तथाहि—"जम्बूप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलिश्चापरो द्विज !। कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः॥ एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्तसप्तभिरावृताः । लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलैः समम् ॥ जम्बूद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्यसंस्थितः ।" इति समुद्ररूपैस्तत्तद्वातावरणैः पृथक् पृथग्वेष्टितेषु सप्तसु द्वीपेषु जम्बूद्वीपोऽस्मदाश्रयीभूतभूर्लोकस्य सप्तमो भागः। तत्र नव वर्षाणि, नरकप्रेतपितृलोकाश्च विराजन्ते। महाकालाम्बरीषरौरवमहारौरवकुम्भीपाकादिभेदा नरकलोकस्य प्रायशस्तत्तच्छास्त्रेषु समुपवर्णिता विलोक्यन्ते ।

नीचे के देश हैं।" लोकालोक पर्वत हाथ हैं।" "पाद पर्वत पैर हैं।" और "सुमेरु पर्वत मेरु दण्ड है।" अर्थात् मानव पिण्ड स्वरूप ब्रह्माण्ड शरीरके शिरोभाग रूपी जन,तप और सत्यलोक नामक ब्राह्मस्वर्गमें, कण्ठरूपी महर्लोक नामक प्राजापत्य स्वर्गमें, हृदय रूपी स्वर्गलोक नामक महेन्द्र स्वर्गमें और नाभि के ऊपर रहने वाले भूर् और भुवर् नामक भौमस्वर्गमें क्रमशः उन्नत अधिकारकी दिव्य शरीर वाली विभूतियाँ तथा अनेक श्रेणीके देवतागण वास करते हैं। प्राजापत्य स्वर्गरूपी महर्लोक ब्रह्माण्ड शरीर का कण्ठ है। स्वर्गलोक हृदय है। भूर्लोक, भुवर्लोक, दोनों ब्रह्माण्ड शरीरके नाभीके ऊपरके देश हैं। और सातो पाताल लोक नाभीके नीचेके देश हैं। और ब्रह्माण्डके पर्वत जा दैव पर्वतरूप हैं, उनसे पाद हाथ और मेरु दण्डको कल्पना की गई है । इन चतुर्दश भुवनोंमें भूलोक एक भुवन है। उसका वर्णन स्मृति शास्त्रोंमें इस प्रकारसे है "हे द्विज ! जम्बू प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और सातवाँ पुष्कर ये सातो द्वीप चारों ओरसे खारे पानी, इक्षुरस, मदिरा, घृत, दधि, दुग्ध और जलके सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। जम्बूद्वीप इन समस्त द्वीपोंके बीचमें है" इन सातों द्वीपोंमें जम्बू द्वीप हमारा द्वीप है, जो भूलोक का एक सातवाँ हिस्सा है। वे सब अलग अलग वातावरण समुद्रसे घिरे हुए हैं। जम्बू द्वीप में नव वर्ष हैं और पितृलोक प्रेतलोक और नरक लोक आदि भी उसीमें विराजमान हैं। नरकलोकके शास्त्रोंमें अनेक विभाग कहे गये हैं। उनके नाम भी अनेक हैं जैसे—महाकाल, अम्बरीष, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक इत्यादि ।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यथाहि मृत्युलोके बहुविधदण्डविधानार्थं राज्ञामनेकानि कारागृहाणि सन्ति। तथैव भगवतो धर्मराजस्य यमस्य पितृलोकाधीश्वरस्य तत्तत्पापियातनाविधानार्थं त्रिविधा नारकीया देवलोक-विभागा विज्ञेयाः। जम्बूद्वीपीयानां नवानामपि वर्षाणां वर्णनं स्मृतावुपलभ्यते। यथाहि विष्णु-पुराणे द्वितीयांशे द्वितीयाध्याये—"भारतं प्रथमं वर्षं ततः किम्पुरुषं स्मृतम्। हरिवर्षं तथैवा-न्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विज!। रम्यकं चोत्तरे वर्षं यस्यैवानु हिरण्मयम्। उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा॥ नवसाहस्रमेकैकमेतेषां द्विजसत्तम!। इलावृतं च तन्मध्ये सौवर्णो मेरु-रुच्छ्रितः॥ भद्राश्वं पूर्वतो मेरोः केतुमालश्च पश्चिमे। वर्षे द्वे तु मुनिश्रेष्ठ! तयोर्मध्ये इलावृतम्॥" इति। तेष्वष्टौ दिव्याः सूक्ष्मलोकाः केवलं नवमो भारतवर्षोऽपरनामको मृत्युलोक एव स्थूलः। तथाहि भागवते पञ्चमस्कन्धे—"तत्रापि भारतमेव वर्षं कर्मक्षेत्रमन्यान्यष्टवर्षाणि स्वर्गिणां पुण्य-शेषोपभोगस्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति।" इति। अन्यच्च विष्णुपुराणे प्रथमांशे द्वितीयाध्याये—"यानि किम्पुरुषादीनि वर्षाण्यष्टौ महामुने!। तेषां स्वाभाविकी सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः॥ विपर्ययो न तेष्वस्ति जरामृत्युभयं न च। धर्माऽधर्मौ न

जैसे मृत्युलोकमें राजाओंके कारागृह हैं वैसे ही यातना भोगके ये सब दैवी लोक हैं। जो पितृलोकके राजा भगवान् यम धर्मराजके आधीन हैं। जम्बू द्वीपके अन्तर्गत जो नव वर्ष हैं उनके नाम शास्त्रोंमें ऐसे पाये जाते हैं। विष्णुपुराणके द्वितीय अध्यायमें लिखा है कि "हे द्विज! मेरु पर्वतके दक्षिणकी ओर पहला भारतवर्ष है तथा दूसरा किम्पुरुष वर्ष और तीसरा हरिवर्ष है। उत्तरकी ओर प्रथम रम्यक फिर हिरण्मय और तदनन्तर उत्तर कुरुवर्ष है जो भारतवर्षके समान है। हे द्विजश्रेष्ठ! इनमें प्रत्येकका विस्तार नव नव हजार योजन है तथा इन सबके बीचमें इलावर्ष है, जिसमें सुवर्णमय मेरु पर्वत खड़ा हुआ है, मेरुके पूर्वमें भद्राश्ववर्ष और पश्चिममें केतुमालवर्ष है तथा हे मुनिश्रेष्ठ! इन दोनोंके बीचमें इलावृत्त वर्ष है।" स्मृति शास्त्रके इस वचन द्वारा जम्बू द्वीपके नवों वर्षोंका पता चलता है। इन नवों वर्षोंमें आठ वर्ष दिव्य सूक्ष्मलोक हैं और नवम भारतवर्ष केवल मृत्युलोक है। इसका प्रमाण भागवतके पञ्चम स्कन्धमें है—"वहां पर भी केवल भारत ही वर्ष कर्मभूमि है। अन्यान्य आठ वर्ष तो स्वर्गनिवासी पुण्यात्माओंके पुण्यफल भोगनेके स्थान हैं, जो भौम स्वर्ग कहे जाते हैं।" और भी विष्णुपुराणके प्रथम अंशके द्वितीय अध्यायमें लिखा है। जैसे:—हे महामुने किम्पुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं उनमें सुखकी बहुलता है और बिना प्रयत्नके स्वभावसे ही समस्त भोगोंकी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। उनमें किसी प्रकारका विपर्यय तथा जरा मृत्यु आदिका कोई भय नहीं है और न धर्म अधर्म

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तेष्वास्तां नोत्तमाऽधममध्यमाः ॥ न तेष्वस्ति युगावस्था क्षेत्रेष्वष्टासु सर्वदा।" इति अन्यच्च मत्स्यपुराणे ११४ अध्याये। "भरणात्प्रजननाच्चैव मनुर्भरत उच्यते। निरुक्तवचनैश्चैव वर्षं तद् भारतं स्मृतम् ॥ यतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यमश्चापि हि स्मृतः।" इति ॥ अस्माकं भूमण्डलाख्ये भारतवर्षे नव द्वीपाः शास्त्रेषु समुपवर्णिता उपलभ्यन्ते। ते भारतवर्षस्य प्राचीना विभागा वेदितव्याः। कल्पकल्पान्तरमन्वन्तर भेदेन भूभागविभेदः स्वाभाविक एव। सर्गादौ भारतवर्षस्य निम्ननिर्दिष्टा नव विभागा अभूवन्। तथाहि तत्रैव—"भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान् निबोधत। अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ॥ आयतस्तु कुमारीतो गङ्गायाः प्रवहावधिः। द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरन्तेषु सर्वशः ॥ यवनाश्च किराताश्च तस्यान्ते पूर्वपश्चिमे। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः ॥" इति। अन्यच्च विष्णुपुराणे द्वितीयांशे तृतीयाध्याये। "भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान् निशामय। इन्द्रद्वीपः कशेरुमान् ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ॥ नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः। अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ॥ चत्वारि भारते वर्षे

अथवा उत्तम, अधम, और मध्यम आदिका ही भेद है। इन आठ वर्षोंमें कभी कोई युग परिवर्तन भी नहीं होता।" मत्स्यपुराणके ११४ वें अध्यायमें लिखा है कि, "भरण और प्रजनन करने वाले होने से मनु भरत कहे जाते हैं और उनके सम्बन्ध से यह भारतवर्ष कहा गया है। जिससे स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है और यह लोक मध्यम लोक कहा गया है।" हमारे पृथ्वीरूपी भारतवर्ष के नव द्वीप शास्त्रोंमें कहे गये हैं। वे प्राचीन समयके भारतवर्षके खण्ड हैं। कल्प कल्पान्तर और मन्वन्तर भेदसे पृथ्वीके खण्डोंमें अनेक भेद हो जाते हैं। यह स्वभाव सिद्ध है। सृष्टिके आदिमें भारतवर्षके निम्नलिखित नव विभाग थे। जैसा कि वहाँ ही कहा है "समस्त भूमण्डल रूपी भारतवर्षके नव भेद (खण्ड) जानिये। उनमें सागरोंसे घिरा हुआ यह भारत नवम है। इसका आयाम (विस्तार) कन्या कुमारीसे गङ्गाके उद्गम स्थान (गङ्गोत्तरी) तक है। इसके पूर्व और पश्चिमके अन्तिम भागमें यवन किरात आदि म्लेच्छ जातियाँ चारों ओर रहती हैं और इस द्वीपके मध्यभागमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र जातियाँ रहती हैं।" और भी विष्णुपुराणके द्वितीय अंशके तृतीय अध्यायमें लिखा है कि "अब भारतवर्षके नव भेदों (खण्डों) का नाम सुनिये इन्द्रद्वीप, कशेरुमान्द्वीप, ताम्रवर्णद्वीप, गभस्तिमान्द्वीप, नागद्वीप, सौम्यद्वीप, गन्धर्वद्वीप, वरुणद्वीप, और यह नवाँ सागर संवृत भारतद्वीप हैं। हे महामुने! इस भारतवर्षमें

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

युगान्यत्र महामुने। कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चान्यत्र न क्वचित् ॥ तत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने। यतो हि कर्मभूरेषा ततोऽन्या भोगभूमयः" इति। मृत्युलोकाख्यभारतवर्षस्योत्तमाङ्गं भरतखण्डं, हिन्दुस्थानम्, आर्य्यावर्त्तो वा वृन्दारकवृन्देनापि बहुशो वन्दितम्, तथाहि स्मृतौ—"गायन्ति देवाः ! किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे। स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥ कर्माण्यसङ्कल्पिततत्फलानि संन्यस्य विष्णौ परमात्मभूते। अवाप्य तां कर्ममहीमनन्ते तस्मिंल्लयन्ते त्वमलाः प्रयान्ति ॥ जानीम नैतत् क्व वयं विलीने स्वर्गप्रदे कर्मणि देहबन्धम्। प्राप्स्याम धन्याः खलु ते मनुष्या ये भारते नेन्द्रियविप्रहीनाः ॥" इति। ब्रह्माण्डरूपस्य देशस्य वर्णनं श्रुतौ स्मृतिशास्त्रे च बहुत्र समुपलभ्यते। परन्तु तेषु तेषु यो हि वर्णनभेदः समुपलभ्यते तत्र बुद्धिभेदो न भवेदिति हेतोस्तन्मीमांसारूपेण कियद्दिग्दर्शनमिहावश्यकं प्रतिभाति। यथाहि—ध्रुवलोकस्थानविषये कुत्रचिदेवं लिखितं विद्यते यद् यावन्तो ग्रहनक्षत्रादयो दिव्यलोकाः सन्ति ते सर्वे भौमस्वर्गान्तर्गताः, अर्थात् भूर्भुवर्लोकान्तर्गता इति। तत्रैव सूर्यलोकोऽपि। यदा ध्रुवलोको दैव्या

सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये चार युग होते हैं, जो अन्यत्र कहीं भी नहीं हैं। हे महामुने ! उस जम्बूद्वीपमें यह भारतवर्ष सबसे श्रेष्ठ है। क्योंकि यह कर्मभूमि है, इसके अतिरिक्त अन्यान्य सभी भोगभूमियाँ हैं'। मृत्युलोक रूपी भारतवर्षके उत्तमाङ्ग भारतखण्डकी (हिन्दुस्तान या आर्यावर्तकी) प्रशंसा एवं वन्दना देवगण भी करते हैं। जैसा कि स्मृतियोंमें कहा है—"देवता जिसकी प्रशंसामें गान किया करते हैं कि वे लोग धन्य हैं जो भारतखण्डमें निवास करते हैं। जो भारतखण्ड स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) प्राप्तिका प्रधान साधन है और जहाँ देवभावसे च्युत होने पर मनुष्य जन्म ग्रहण करते हैं। और वे भारतखण्ड रूपी कर्मभूमिमें जन्म लेकर प्रारब्धातिरिक्त सञ्चित और क्रियमाण कर्मों को परमात्मस्वरूप विष्णु भगवान्में समर्पण कर पुण्य पापसे रहित होकर उस अनन्त भगवान्में लीन हो जाते हैं। स्वर्गस्थ देवता इस प्रकार से कहा करते हैं कि हमारा यह स्वर्गादि कर्म जब क्षीण हो जायगा तो हम कहां जन्म लेंगे, यह नहीं जानते हैं। वे लोग धन्य हैं, जो कर्मक्षम इन्द्रियोंके सहित भारतमें निवास करते हैं"। ब्रह्माण्डरूपी देशका वर्णन वेद और स्मृतिशास्त्रमें बहुत जगह आया है। परन्तु उन सब वर्णनोंमें जो वर्णनभेद पाया जाता है, उससे बुद्धि भेद न हो, इस कारण मीमांसा रूपसे कुछ दिग्दर्शन कराने की आवश्यकता है। जैसा कि ध्रुवलोकके स्थान के विषयमें ऐसा कहीं कहा है कि जितने ग्रहनक्षत्रादि दिव्य लोक हैं, वे सब भौम स्वर्गके अन्तर्गत हैं। अर्थात् भूर्लोक और भुवर्लोकके अन्तर्गत हैं। उसीमें सूर्य लोक भी है। ध्रुवलोक दैवी रज्जुके

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रज्ज्वा तमुपरितने भागे आकर्षति तदा उत्तरायणं भवति। यदा च शिथिलीकरोति तदा दक्षिणायनं भवतीत्येतद्वर्णनेन ध्रुवलोकस्य स्थितिर्भूर्भुवर्लोकयोरुपरि स्वर्गलोकस्य चाधः सिद्धयति, कुत्रचित्तु ध्रुवलोकः स्वर्गलोकस्योपरि स्थितोऽस्तीत्येतद्वर्णनमुपलभ्यते। ज्यौतिषशास्त्रे ध्रुवद्वयं स्वीक्रियते। तयोर्द्वयोर्मध्ये पृथ्वीस्थितिरङ्गीकृताऽस्ति। किन्त्वयं हि सर्ववादिसम्मतः सिद्धान्तोऽस्ति यद् ध्रुवलोकः सूर्य्यादिसर्वनक्षत्रलोकोपरि उत्तरस्यां दिशि स्थितोऽस्ति। यश्च रात्रौ स्वं परितः सप्तर्षिमण्डलं भ्रामयन् सर्वैर्दृश्यते। एवमेव वर्णनभेदः चन्द्रलोकविषयेऽपि समुपलभ्यते। तथाहि—क्वचिच्चन्द्रलोकः सूर्यलोकस्योपरि वर्णितो दृश्यते। क्वचिच्च तदध इति। शास्त्रेषु समुपलभ्यमानानामेवं विधानां मतभेदानां समाधानन्त्वेवं विज्ञेयं, यदस्माकं पूज्यपादा महर्षिगणा दिव्यदृष्टयस्त्रिकालदर्शिन आसन्। ते हि स्वकीयाभिर्योगयुक्ताभिः सूक्ष्मान्तर्दृष्टिभिः सर्वमपि ब्रह्माण्डं करामलकवत् प्रत्यक्षमिव पश्यन्ति स्म। अत एव पुराणादिशास्त्रेषु ते हि भूतभविष्यद्वर्तमानविचारङ्कुर्वन्त एव दैवमानवसृष्ट्योः दैवकुलपरम्पराया मानवकुलपरम्परायाश्चैकत्रैव वर्णनं कृतवन्तः। यथा हि राज्ञां सूर्यचन्द्रवंशयोर्वर्णनम्। ते हि विराट्पुरुषरूपेण चतुर्दशभुवनानां वर्णनं कृतवन्तः। एवम्भूतवर्णनविषयेष्वेव रूपान्तरं

द्वारा जब उसे ऊपरकी ओर खींचता है, तब उत्तरायण होता है। जब ढीला करता है, तब दक्षिणायन होता है। इस वर्णनसे ध्रुवलोकका भूर्लोक और भुवर्लोकसे ऊपर और स्वर्लोकसे नीचे होना पाया जाता है। और कहीं कहीं ध्रुवलोक स्वर्गलोकके ऊपर स्थित हैं, ऐसा पाया जाता है। ज्यौतिष शास्त्रमें दो ध्रुव माने गये हैं और उन दोनों के बीच में पृथ्वी को माना गया है। परन्तु यह तो निश्चय ही है कि ध्रुव लोक, सूर्य्यादि सब नक्षत्र लोकोंके ऊपर उत्तर दिशामें स्थित है, जो रातको सप्तर्षियोंको अपने चारों तरफ घुमाता हुआ सबको दिखाई देता है। इसीप्रकार चन्द्रलोकके विषयमें भी वर्णन भेद पाया जाता है। और कहीं कहीं चन्द्रलोकको सूर्यलोकके ऊपर बताया गया है। शास्त्रोंमें इस प्रकारके मतभेद का समाधान यह है कि हमारे पूज्यपाद महर्षिगण त्रिकालदर्शी थे, वे अपनी योगयुक्त अन्तर्दृष्टि द्वारा सारे ब्रह्माण्डको करामलकवत् अपने सामने देखा करते थे। यही कारण है कि पुराणादि शास्त्रोंमें उन्होंने भूत, भविष्यत्, और वर्त्तमानका विचार न करके दैवी सृष्टि और मानवी सृष्टि एवं दैवीकुलपरम्परा और मानवीकुलपरम्पराका एक साथ वर्णन किया है। जैसे कि राजाओंके सूर्यवंश और चन्द्रवंशका वर्णन है। उन्होंने कहीं विराट् पुरुषको लक्ष्य करके चतुर्दश भुवनोंका वर्णन किया है। ऐसे वर्णनोंके स्थानोंमें ही रूपान्तर हो गया है। जहाँ कहीं अलग

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दृश्यते । यत्र पृथक् पृथग् वर्णनं विद्यते, तत्र न भेदोपलब्धिः । अन्यच्चैतद् विचारणीयं यत् पूज्यपादमहर्षयो हि प्रत्येकवस्तुषु भावत्रयं पश्यन्ति स्म । यथा ग्रहनक्षत्रादिषु रूपत्रयं, तेषां शक्त्यनुसारेणाऽध्यात्मरूपस्य, तेषामधिदेवताऽनुसारेणाधिदैवरूपस्य, स्थूलपाञ्च-भौतिकरूपानुसारेणाधिभौतिकरूपस्य वर्णनमुपलभ्यते । एतद्भावत्रयात्मकविज्ञानानुसारेणैव रहस्यमय्या भाषया कुत्रचिदध्यात्मरूपेण, क्वचिच्चाधिदैवरूपेण, क्वचिच्चाधिभूतरूपेणैकस्यैव विषयस्य वर्णनतः शास्त्रेषु भेदाभासः प्रतीयते । वस्तुतस्तत्र न काचित् शङ्का कर्तुं योग्येति । ब्रह्माण्ड-देशस्य मानचित्रं यदा प्रत्यक्षीक्रियते तदा सिद्धान्तोऽयं प्रतिभाति यद् ब्रह्माण्डमिदं चतुर्दशलोकेषु विभक्तं दृश्यते । ये च लोकाश्चतुर्दशभुवनशब्देनापि कथ्यन्ते । तेषु चतुर्दशसु भुवनेषु भूर्लोकोऽयमस्माकं ब्रह्माण्डस्य चतुर्दशो भागस्तस्य च सप्त द्वीपाः । तेषु जम्बूद्वीपोऽप्येको द्वीपः, इत्यनेनैतन्निश्चीयते यद् जम्बूद्वीपोऽयं भूर्लोकस्य सप्तमो भाग इति । एषु सप्तस्वपि द्वीपेषु ह्रस्वदीर्घभेदोऽपि विद्यते । तत्र जम्बूद्वीपान्तर्गतानि नव वर्षाणि, पितृनरकप्रेतलोकादयोऽनेके लोकाश्च सन्ति । अतश्च भारतवर्षमिदं जम्बूद्वीपस्यैको लघीयान् भागः । यश्च मृत्युलोक इत्युच्यते । अन्ये च सर्वे देवलोकाः । देवा अपि भारतवर्षस्य महिम्नः स्तुतिं बहुधा गायन्तीति यदुक्तं तत्रेदं कारणं

अलग वर्णन किया है । उस वर्णनमें भेद नहीं हुआ है । और विचारनेकी बात यह है कि पूज्यपाद महर्षिगण हरेक वस्तुमें तीन तीन भाव देखा करते थे । जैसे ग्रह नक्षत्र आदिके तीन तीन रूप होते हैं । यथा उनकी शक्तिके अनुसार अध्यात्मरूप, उनकी अधिदेवताके अनुसार अधिदैवरूप और उनके स्थूल पाञ्चभौतिक रूपके अनुसार आधिभौतिकरूप । इस त्रिभावात्मक विज्ञानके अनुसार रहस्यमयी भाषा से कहीं अध्यात्मरूप से कहीं अधिदैव रूपसे कहीं अधिभूत रूपसे एकही विषयके वर्णनके कारण शास्त्रोंमें भेदसा प्रतीत होता है । वस्तुतः वह वर्णन शङ्का करनेके योग्य नहीं है । ब्रह्माण्डके देशका मानचित्र सामने रखने-पर यह निर्णय होता है कि ब्रह्माण्ड चतुर्दश लोकोंमें विभक्त है । जो लोक चतुर्दश भुवन शब्दसे कहे जाते हैं । उन चौदहो भुवनोंमें भूर्लोक हमारे ब्रह्माण्डका चौदहवाँ हिस्सा है । भूर्लोक के सात द्वीप हैं । उनमें जम्बूद्वीप एक द्वीप है । इससे निश्चय हुआ कि भूर्लोकका एक सातवाँ भाग जम्बूद्वीप है और इन सब द्वीपोंमें छोटाई बड़ाई है । जम्बूद्वीपके अन्तर्गत नव वर्ष हैं और पितृलोक, नरकलोक, और प्रेतलोक आदि अनेक लोक हैं । अतः जम्बूद्वीप का भरतवर्ष एक बहुत छोटासा हिस्सा है, जो मृत्युलोक है और बाकी सब देवलोक हैं । देवताओंने भी भारतवर्ष की बहुत कुछ महिमा कही है, ऐसा जो पहले कहा गया है, इसका यह कारण

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यतो ह्यत्र जीवानां कर्म कर्त्तुं स्वातन्त्र्यं विद्यते। अस्य भारतवर्षात्मकस्य मृत्युलोकस्योत्तमाङ्गं भारतखण्डमुच्यते। यस्यार्य्यावर्तो भारतद्वीपो हिन्दुस्थानमित्यादि पर्य्यायान्तरमस्ति। भगवान् मनुरपि पवित्रदेशमिमं प्रशशंस, तद्यथा—"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥" इति। इदन्तु स्वतः सिद्धं यदत्रैव भारतखण्डे ज्ञानविज्ञानकोशस्वरूपा वेदाः शास्त्राणि च प्रादुर्बभूवुः। इत एव तानि शास्त्राणि निर्गतानि येषामलौकिकालोकैर्निरन्तरमालोक्यन्ते भूमिवलयस्याशेषा देशाः। अत्रैव चतस्रो वर्णभूमयः सन्ति स्वरूपतः। अत्रैव दिव्यशक्तिशालीन्यो नद्यः प्रवहन्ति। अत्रैव संसारसर्वश्रेष्ठो हिमालयो गिरिराजो विराजते। येनेयं भारतखण्डभूमिः सुरक्षिता विद्यते। अत्रैव षण्णामपि ऋतूनां स्पष्टाऽविर्भावः। एतस्य सर्वेऽपि भूभागा एवं सन्ति, यत्र सर्वदैव सर्वेषामेव ऋतूनां यत्र क्वापि पृथग्रूपतः स्थितिर्भवत्येव। पावनोऽयं देशो विविधैस्तीर्थैर्देवपीठैश्च सदैव पवित्रतरो विराजते। ब्रह्माण्डस्य देवभूमिपदाधिष्ठिता देवगणा अस्यां कर्मभूमौ स्वकर्माभिवृद्धये इत्यत एव स्वजन्म ग्रहीतुमभिलषन्ति, यदियं भूमिः पवित्रतमा तथाऽभ्युदयमोक्षप्राप्तये सौविध्यजनिकेति। यद्यपि पूर्वाचार्य्यैः

है कि यहाँ जीवोंको कर्म करनेकी स्वाधीनता है। इस भारतवर्ष रूपी मृत्युलोकका उत्तमाङ्ग भारत खण्ड है। जिसको आर्य्यावर्त, भारतद्वीप, हिन्दुस्तान आदि नामोंसे अभिहित किया गया है। इस पवित्र भूमिके विषयमें भगवान् मनुने कहा है कि "इस भारतखण्डमें जन्मे हुए ब्राह्मणोंके सिखाये हुए सदाचारों और चरित्रोंको सीखकर भारतवर्ष अर्थात् समग्र मृत्युलोकके मनुष्यगण शिक्षा प्राप्त करेंगे।" और यह तो स्वतः सिद्ध है कि सब ज्ञानोंके भण्डार वेदोंका और शास्त्रोंका आविर्भाव इसी भूमिमें हुआ है। और इसी देशसे सब शास्त्र निकले हैं, जिनके द्वारा पृथ्वीके अन्य अन्य देशोंमें ज्ञान ज्योतिका विस्तार हुआ है। भारतखण्डमें चारों वर्णोंकी भूमियाँ हैं। यहाँकी नदियाँ सब दिव्यशक्तियुक्त हैं। पृथ्वीमें सबसे बड़े उन्नत पर्वतराज हिमालयके द्वारा यह भूमि सुरक्षित है। भारतखण्डमें छओं ऋतुओंका स्पष्ट आविर्भाव होता है। और इसके सब प्रान्त ऐसे हैं कि सब ऋतुएँ सब समय अपने स्वरूपमें कहीं न कहीं प्रतिष्ठित रहती हैं। यह पवित्र देश नाना तीर्थ स्थानों और पीठोंसे सदा पवित्र बना रहता है। ब्रह्माण्डके देव—भूमियों के देवपदधारीगण इस कर्मभूमिमें अपने कर्मोंकी उन्नति करनेके लिए जन्म लेनेकी इच्छा करते हैं कि यह भूमि पवित्र है और अभ्युदय तथा मोक्ष प्राप्ति करनेके लिए सुविधाजनक है। यद्यपि पूर्वाचार्योंने ऐसा कहा है कि

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् । उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥ माता च पार्व्वती देवी पिता देवो महेश्वरः। बान्धवाः शिवभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम् ॥" इत्युक्तम्। तथापि तेन सहैव तैः "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" इत्याद्यपि प्रयुक्तमेव। वैदिकदैवीमीमांसादर्शनेनापि "विभूतित्वात्सेव्याः पितृकालमहाकालाः" "मातृदेहजन्मभूमयश्च" इति सुस्पष्टं व्याख्यातम्। शास्त्रैः सिद्धमिदं यच्चतुर्द्दशभुवनेषु देशकालयोः पार्थक्यमस्तीति। सर्वेषु भुवनेषु देशकालपार्थक्यविषयवर्णनमलौकिकं पुराणशास्त्रेषु समुपलभ्यते। तथैवार्य्यावर्ताख्ये भारतखण्डेऽपि तत्तत्प्रान्तेषु देशकालप्रकृतिवैचित्र्यं प्रत्यक्षमेव। तथाहि—औदीच्यकाश्मीरादौ शैत्यम्, दक्षिणावर्त्तप्रदेशेषु औष्ण्यं विजृम्भते। सैकतमयमरुस्थलेषु जलप्राधान्यवङ्गदेशेषु च दृश्यते प्रकृतिवैचित्र्यम्। अतो देशकालप्रकृतिभेदमनुसृत्य धर्मपरिपालने भेदः स्वाभाविक एव। देशभेदेनाचारभेदो ह्यावश्यकः, परन्तु विचारभेदो न जायते। उदाहरणतो यथा ब्राह्मणस्य विहितेऽपि त्रिकालस्नानविधौ सर्वेषु देशेषु आचारोऽयं समानरूपेण तेन नहि प्रतिपालयितुं पार्य्यते। किन्तु धर्माधर्मविचारस्यापरिवर्तनत्वात् जलावगाहनस्नानस्य त्रिष्वपि कालेषु समानरूपतः

'उदारचरित महात्माओंके लिए सारी वसुधाके मनुष्यगण अपने आत्मीय कुटुम्ब हैं और सारा त्रिलोकही अपना स्वदेश है।' परन्तु साथही साथ यह भी कहा है कि 'जननी और जन्मभूमि स्वर्गसे भी बढ़कर है।' वेदके दैवीमीमांसा दर्शनने भी कहा है कि 'विभूति होनेसे पिता काल, तथा महाकाल सेवनीय हैं और इसी कारण माता स्वदेह और जन्मभूमि भी सेवनीय हैं।' शास्त्रोंसे यह भी सिद्ध है कि चतुर्दश-भुवनोंमें देश और कालका पार्थक्य है। सब भुवनोंमें देश और कालके पार्थक्यके विषयमें पुराण शास्त्रोंमें अनेक अलौकिक वर्णन पाये जावे हैं। उसी प्रकार भारतखण्डके नाना प्रान्तोंमें विभिन्न प्रकारकी प्रकृति दिखाई देती है। उत्तराखण्ड और काश्मीर आदि देशोंमें शीतकी प्रधानता और दक्षिणप्रान्तमें ग्रीष्मकी प्रधानता है। इसी प्रकार बालुकामय मरुदेश और जल-प्रधान पूर्वदेशकी प्रकृतिमें बहुत ही भेद है। इस कारण देश और प्रकृतिभेद होनेसे धर्माचरणमें भी कुछ कुछ भेद होना अवश्यम्भावी है। देशभेदसे आचारभेद अवश्य होता है, परन्तु विचारभेद नहीं होता है। उदाहरण रूपसे समझ सकते हैं कि ब्राह्मणके लिए त्रिकाल स्नानकी विधि होने पर भी सब देशोंमें इस आचारका पालन समान रूपसे नहीं हो सकता है, परन्तु धर्माधर्मका विचार अपरिवर्तनीय होनेके कारण अवगाहन स्नान तीनों कालमें सब जगह समान रूपसे न किये जाने परभी मार्जनस्नान,

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वत्र कर्तुमशक्यत्वेऽपि मार्जनस्नानभस्मस्नानमन्त्रस्नानादिरूपेण धर्माचारपालनं सुशक्यमेव। तथाहि स्नानविषये मन्त्रयोगसंहितायाम्—"स्नानमूलाः क्रियाः सर्वाः श्रुतिस्मृत्युदिता नृणाम्। तस्मात्स्नानं निषेवेत श्रीपुष्टयारोग्यवर्धनम्॥ मान्त्रं भौमं तथाऽऽग्नेयं वायव्यं दिव्यमेव च। वारुणं मानसं चैव सप्त स्नानं प्रकीर्तितम्। आपो हि ष्ठादिभिर्मान्त्रं भौमं देहप्रमार्जनम्। आग्नेयं भस्मना स्नानं वायव्यं गोरजः स्मृतम्॥ यत्तदातपवर्षेण स्नानं दिव्यमिहोच्यते। वारुणं चावगाहं स्यान्मानसं विष्णुचिन्तनम्॥" इति। देशभेदानुसारेण यद्धि धर्मसाधनेऽसौविध्यमुपतिष्ठति, तस्यापि निराकरणं सुशक्यमेव। एवं हि धर्माङ्गान्तरेऽपि विज्ञेयम्। एकमन्यदपि विमर्शितव्यमिह विद्यते। तद् यथा—जन्मभूमेर्महत्वरक्षणार्थं यो हि जन्मभूमिसमादरोपायो विहितो विद्यते, तत्राप्यार्यजातेर्विचारः पृथ्वीस्थसर्वजातिविचारेभ्योऽत्यधिकसमुन्नतस्समादरणीयश्चास्ति। तथाहि—आर्यजातिः सर्वमेव ब्रह्माण्डं स्वदेशं मन्यमाना तत्सेवार्थं पञ्चानां महायज्ञानां प्रतिदिनं नित्यकर्मरूपतयाऽनुष्ठानमाचरति। इत्यत एव ते पञ्चमहायज्ञाः केवलयज्ञशब्देन नोच्यन्ते, किन्तु पञ्चमहायज्ञशब्देनैवाभिधीयन्त इति। पञ्चमहायज्ञा ह्यार्यजातीनां नित्यकर्मतयाऽभिधीयन्ते। एभिर्हि समस्तब्रह्माण्डस्य सेवा

भस्मस्नान आदिसे धर्माचार पालन करनेमें वाधा नहीं हो सकती है। जैसाकि मन्त्रयोगसंहितामें कहा है—"मनुष्योंकी श्रुति, स्मृति प्रतिपादित सब क्रियायें स्नानमूलक हैं। इसलिये श्री, पुष्टि और आरोग्य की वृद्धिके लिये स्नानका आचरण करना चाहिये। मान्त्र, भौम, आग्नेय, वायव्य, दिव्य, वारुण और मानस इस प्रकार स्नान सप्त विध हैं। आपोहिष्ठादि मन्त्रसे मान्त्र स्नान होता है, देहको गमछे आदिसे प्रोक्षण करनेसे भौम स्नान होता है, भस्म लगाना आग्नेय स्नान कहलाता है, गौकी धूलि लगाना वायव्यस्नान है, सूर्यकी किरणके समय वर्षामें जो स्नान किया जाय, वह दिव्यस्नान है, जलसे स्नान करना वारुण कहलाता है और भगवान्का स्मरण करना मानसस्नान कहलाता है। देशभेदके अनुसार जो धर्मसाधनमें असुविधा होती है, उसका भी निराकरण हो सकता है। ऐसे ही और भी धर्माङ्ग समझने योग्य हैं। एक और विषय यह विचारणीय है कि जन्मभूमिके महत्वकी रक्षाकेलिये जो जन्मभूमिके आदर करनेकी विधि है, उसके लिये आर्यजातिका विचार पृथ्वीभरके और सब जातियोंसे बहुत आगें बढ़ा हुआ है। आर्यजाति समस्त ब्रह्माण्डको अपना देश मानकर ब्रह्माण्डकी सेवाके निमित्त पञ्च महायज्ञका नित्य आचरण करती है। पञ्च महायज्ञ केवल यज्ञ शब्दसे नहीं कहाते हैं, किन्तु पञ्चमहायज्ञ शब्दसे कहे जाते हैं। पञ्च महायज्ञ आर्यजातिका नित्यकर्म है। इसके द्वारा सारे ब्रह्माण्डकी सेवा

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सम्पद्यते। ऋषीणाम्, देवतानाम्, पितृणाम्, मनुष्याणाम्, चतुर्विधभूतसङ्घानाञ्चाभ्युदयः प्रजायते। धर्मस्य या हि धारिका शक्तिर्विद्यते, सा हि सर्वव्यापिका पूर्णाङ्गा चास्ति। इत्यत एव धर्मस्वरूपे परिवर्तनं नैव भवितुमर्हति। देशभेदेनाचारधर्मस्य भेदसम्भवेऽपि मूलधर्मे कदापि परिवर्तनं नैव भवितुमर्हति। यतो हि धर्मशक्तेः सर्वव्यापकतया नित्यत्वाच्च धर्मस्य मूलसिद्धान्ते नैव भेदो भवतीति देशधर्मतत्वाख्यस्यास्याध्यायस्य संक्षिप्तः सिद्धान्तः। इममेव सिद्धान्तं ज्ञानदृष्टौ कृत्वा धर्मसाधनमुचितमिति संक्षेपः।

इति श्रीमद्भगवद्दत्तात्रेयकृपया श्रीदत्तात्रेयधर्ममीमांसाग्रन्थस्य देशधर्मतत्वनामको द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः।

अथ कालधर्मतत्त्वनामकस्तृतीयोऽध्यायः

यथा हि जगत्सृष्टिरियं प्रवाहरूपतोऽनादिरनन्ताम्नायते, यथा च दशदिग्विभाग-देशोऽनादिरनन्तो गीयते, तथैव महाकालोऽप्ययमनाद्यनन्ततया श्रीमतो भगवतः परमेश्वरस्य साक्षाद्विभूतिरभिधीयते। सत्यप्येवं देशो यथैकब्रह्माण्डसम्बन्धतः सादिः सान्तश्च समाम्नायते, तथैव कालचक्रमपि ब्रह्माण्डस्यैकस्योत्पत्तिस्थितिप्रलयविचारणया

होती है और ऋषियोंका, देवताओंका, पितरोंका, चतुर्विध भूतसंघोंका और मनुष्यमात्रका अभ्युदय होता है। धर्मकी धारिका शक्ति सर्व व्यापक और पूर्णाङ्गसे युक्त है। अतः धर्मके स्वरूपमें परिवर्तन नहीं हो सकता है। देशके भेदसे सदाचार धर्ममें भले ही कुछ भेद हो जाय किन्तु मूल धर्ममें कुछ भी परिवर्तन नहीं हो सकता। क्योंकि धर्मशक्ति सर्व व्यापक और नित्य होनेसे धर्मके मौलिक सिद्धान्तमें भेद नहीं होता है। यही देश धर्मतत्वका संक्षिप्त सिद्धान्त है। इसी सिद्धान्तको ज्ञानदृष्टिके सामने रखकर धर्मसाधन करना उचित है।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् दत्तात्रेयकी कृपासे श्रीदत्तात्रेयधर्ममीमांसा ग्रन्थका देशधर्मतत्व नामक द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ।

अथ काल धर्मतत्व नामक तीसरा अध्याय

जैसे प्रवाहरूपसे सृष्टि अनादि अनन्त है और जैसे दशों दिशाओंका देश अनादि अनन्त है, वैसे महाकाल भी अनादि अनन्त होनेसे भगवान्‌की साक्षात् विभूति है। ऐसा होने पर भी जैसे देश एक ब्रह्माण्डके सम्बन्धसे सादि सान्त बताया गया है, वैसे ही काल भी एक ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति स्थिति और

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सादि सान्तश्च निगद्यते। श्रुतिस्मृतिपुराणादिष्वित्थमेवोक्तं दृश्यते। तथा हि श्रुतौ—"द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्त्ति चक्रं परियामृतस्य। अपुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्तशतानि विंशतिश्च तस्थुः" इति। स्मृतावपि "कालोऽयं भगवान् विष्णुरनन्तः परमेश्वरः। तद्वेत्ता पूज्यते सम्यक् पूज्यः कोऽन्यस्ततो मतः॥ लोकानामन्तकृत्कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः। स द्विधा स्थूलसूक्ष्मत्वान्मूर्तश्चामूर्त उच्यते॥ जन्यानां जनकः कालो जगतामाश्रयो मतः। पराऽपरत्वधीहेतुः क्षणादिः स्यादुपाधितः॥ स च कर्ता पदार्थस्य स्वरूपावस्थितस्य च। कैवल्यं परममहानविशेषो निरन्तरः॥ एवं कालोऽप्यनुमितः सौक्ष्म्ये स्थौल्ये च सत्तमे। संस्थानभक्त्या भगवानव्यक्तो व्यक्तभुग्विभुः॥ स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम्। सतो विशेषभुग्यस्तु स कालः परमो महान्॥ विधातृविहितं सर्गं न कश्चिदतिवर्तते। कालमूलमिदं सर्वं भावाभावौ सुखासुखे॥ कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः। संहरन्तं प्रजाः कालं कालः समयते पुनः॥ कालो हि कुरुते भावान् सर्वलोके शुभाशुभान्। कालः संक्षयते सर्वाः प्रजा विसृजते पुनः॥ कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि

लयके विचारसे सादि सान्त बताया गया है। श्रुतिमें ऐसा कहा है कि "सत्यात्मक आदित्यका बारह अरो खूँटों (राशियों) से युक्त चक्र स्वर्गके चारों ओर बारबार भ्रमण करता है और कभी भी पुराना नहीं होता है। हे अग्ने! इस चक्रमें पुत्र-स्वरूप सात सौ बीस (३६० दिन और ३६० रात्रियाँ) निवास करते हैं।" और स्मृतिमें भी कहा है—"यह कालही अनन्त स्वरूप भगवान् विष्णु माना गया है। इसी लिए उस कालके ज्ञाताकी सम्यक् प्रकारसे पूजा करनी चाहिये। उसके सिवाय दूसरा कौन पूज्य हो सकता है। लोकोंका अन्त करनेवाला काल (यमराज) दूसरा है। और यह गणनावाला काल दूसरा है। इसका ही सूक्ष्म स्थूल भेदसे या मूर्त्त अमूर्त्त भेदसे दो भेद माना गया है। सभी उत्पत्ति शील प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाला और जगत्का आधार स्वरूप काल ही है। वही जेठा और छोटा (ज्येष्ठ कनिष्ठ) इत्यादि व्यवहारका हेतु है। यद्यपि वह काल एक ही है तौ भी कल्पनाके भेदसे क्षण (मिनट) होरा (घण्टा) इत्यादि भेद उसके माने गये हैं। वही अपने स्वरूपमें विद्यमान सभी पदार्थोंका कर्ता है। और अपने आप विभु निरन्तर अविशेष कैवल्य रूपमें एकसा ही रहता है। प्रजाओंके संहारकरनेवाले कालको भी शमन कर देनेवाला काल ही भगवान् है। (अर्थात् महाप्रलयावस्थामें कालके व्यवहारको विलुप्त करके एक मात्र स्वयं महाकाल भगवान् ही शेष रह जाता है। कालका व्यवहार रहता ही नही है।) वही सब प्रजाओंका संहार करके फिर पैदा करता है। काल ही सब प्राणियोंके सोजाने पर साक्षीरूपसे जागता

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दुरतिक्रमः। कालः सर्वेषु भूतेषु चरत्यविकृतः समः॥" इति। इत्थं हि अनाद्यनन्तस्य कालस्य ब्रह्माण्डेनैकेन सम्बन्धं समवधार्य ब्रह्माण्डकालविषये यद्धि शास्त्रादिषु समुपलभ्यते तदेतदेव। तथाहि शक्तिरहस्ये—"चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते। पितामहसहस्राणि विष्णोरेका घटी मता॥ विष्णोर्द्वादशलक्षाणि निमेषार्धं महेशितुः। दश कोटयो महेशानां श्रीमातुस्त्रुटिरूपकाः॥" इति। पूर्वोक्तब्रह्माण्डसम्बन्धिकालगणनाकृते याहि कालपरिभाषा विहिताऽस्ति सा स्मृतिशास्त्रेष्वित्थं विद्यते तथाहि विष्णुपुराणे—"काष्ठा पञ्चदशाख्याता निमेषा मुनिसत्तम! काष्ठा त्रिंशत् कला त्रिंशत् कला मौहूर्तिको विधिः॥ तावत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्तैर्मानुषं स्मृतम्। अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः॥ तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे। अयनं दक्षिणं रात्रि र्देवानामुत्तरं दिनम्॥ दिव्यै र्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम्। चतुर्युगं द्वादशभिस्तद्विभागं निबोध मे॥ चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम्। दिव्याब्दानां सहस्राणि युगेष्वाहुः पुराविदः॥ तत्प्रमाणैः शतैः सन्ध्या पूर्वा तत्राभिधीयते। सन्ध्यांशश्चैव

रहता है। सभी भूतोंमें वह अविकृत रूपसे एकसा चला करता है। वह दुरतिक्रम माना गया है। ऐसे अनादि अनन्त महाकालका सम्बन्ध एक ब्रह्माण्डसे बांधकर जो ब्रह्माण्डके कालके विषयमें शास्त्रमें कहा है सो यही है। शक्ति रहस्यमें कहा गया है कि "एक हजार महायुगका भगवान् ब्रह्माका एक दिन होता है और भगवान् पितामह अर्थात् ब्रह्माके एक हजार दिनकी भगवान् विष्णुकी एक घड़ी कहलाती है। और भगवान् विष्णुकी बारह लक्ष घड़ीका भगवान् शङ्करका आधा निमेष होता है। और भगवान् शङ्करके दस कड़ोर निमेषार्धकी जगज्जननीकी एक त्रुटि होती है।" इस पूर्वकथित ब्रह्माण्ड सम्बन्धके कालकी गणनाके लिए जो कालका हिसाब बाँधा गया है, वह स्मृति शास्त्रमें इस प्रकारसे कहा गया है, "हे मुनिश्रेष्ठ! पन्द्रह निमेषको काष्ठा कहते हैं। तीस काष्ठोंकी एक कला तथा तीस कलाका एक मुहूर्त्त होता है। तीस मुहूर्तका मनुष्यका एक दिन रात कहा जाता है और उतने ही दिन रातका दो पक्षयुक्त एकमास होता है। छ महिनोंका एक अयन और दक्षिणायन तथा उत्तरायण दो अयन मिलकर एक वर्ष होता है। दक्षिणायन देवताओंकी रात्रि है और उत्तरायण दिन। देवताओंके बारह हजार वर्षोंके सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग नामक चार युग होते हैं। उनका अलग अलग विभाग मैं तुम्हे सुनाता हूँ। पुरातत्त्वके जाननेवाले सत्ययुग आदिका प्रमाण क्रमशः चार, तीन, दो और एक हजार दिव्यवर्ष बतलाते हैं। प्रत्येक युगके पूर्व उतने ही सौ वर्षकी संध्या बतायी जाती है और युगके पीछे उतने ही परिमाणवाले सन्ध्यांश होते हैं (अर्थात् सत्ययुग आदिके पूर्व क्रमशः चार तीन दो और एक सौ दिव्य वर्षकी सन्ध्याएँ और इतने ही वर्षके संध्यांश होते हैं) हे मुनिश्रेष्ठ! इन संध्या और सन्ध्यांशोंके बीचका जितना काल होता है। उसे ही सत्ययुग

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तत्तुल्यो युगस्यानन्तरो हि सः ॥ संध्यासन्ध्यांशयोरन्तर्यः कालो मुनिसत्तम ! युगाख्यः स तु विज्ञेयः कृतत्रेतादिसंज्ञितः ॥ कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चैव चतुर्युगम् । प्रोच्यते तत्सहस्रं च ब्रह्मणो दिवसं मुने ॥ ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन्मनवस्तु चतुर्दश । भवन्ति परिमाणञ्च तेषां कालकृतं शृणु ॥ सप्तर्षयः सुराः शक्रो मनुस्तत्सूनवो नृपाः । एककाले हि सृज्यन्ते संह्रियन्ते च पूर्ववत् ॥ चतुर्युगानां संख्याता साधिका ह्येकसप्ततिः । मन्वन्तरं मनोः कालः सुरादीनाञ्च सत्तम ! अष्टौ शतसहस्राणि दिव्यया संख्यया स्मृतम् । द्विपञ्चाशत्तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु ॥ त्रिंशत्कोटयस्तु सम्पूर्णाः संख्याताः संख्यया द्विज ! सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतानि महामुने ॥ विंशतिस्तु सहस्राणि कालोऽयमधिकं विना । मन्वन्तरस्य संख्येयं मानुषैर्वत्सरैर्द्विज ॥ चतुर्दशगुणो ह्येष कालो ब्राह्ममहः स्मृतम् । ब्राह्मो नैमितिको नाम तस्यान्ते प्रतिसञ्चरः ॥ तदाहि दह्यते सर्वं त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम् । जनं प्रयान्ति तापार्ता महर्लोकनिवासिनः ॥ एकार्णवे तु त्रैलोक्ये ब्रह्मा नारायणात्मकः । भोगिशय्यां गतः शेते त्रैलोक्यग्रासबृंहितः ॥ जनस्थैर्योगिभिर्देवश्चिन्त्यमानोऽब्जसम्भवः । तत्प्रमाणां हि तां रात्रिं तदन्ते सृजते पुनः ॥ एवन्तु ब्रह्मणो वर्षमेवं वर्षशतञ्च यत् । शतं हि तस्य वर्षाणां परमायुर्महात्मनः ॥

आदि नामवाले युग जानना चाहिए । हे मुने ! सत्ययुग त्रेता द्वापर और कलि ये मिलाकर चतुर्युग कहलाते हैं । ऐसे हजार चतुर्युगका ब्रह्माका एक दिन होता है । हे ब्रह्मन् ! ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं, उनका कालकृत परिमाण सुनो । सप्तर्षि, देवगण, इन्द्र, मनु और मनुके पुत्र राजा लोग (पूर्वकल्पानुसार) एक ही कालमें रचे जाते हैं और एक ही कालमें उनका संहार किया जाता है । हे सत्तम ! मानव कालके अनुसार इकहत्तर चतुर्युगसे कुछ अधिक कालका एक मन्वन्तर गिना जाता है । यही मनु और देवता आदिका काल है । इस प्रकार दिव्यवर्ष गणनासे एक मन्वन्तरमें आठलाख बावन हजार वर्ष बताए जाते हैं । तथा हे महामुने ! मानवी वर्ष गणनाके अनुसार मन्वन्तरका परिमाण पूरे तीस करोड़ सरसठ लाख बीस हजार वर्ष है, इससे अधिक नहीं । इस कालका चौदह गुना ब्रह्माका दिन होता है, उसके अनन्तर नैमित्तिक नामवाला ब्राह्म प्रलय होता है । उस समय भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक तीनो जलने लगते हैं और महर्लोकमें रहनेवाले सिद्धगण अतिसंतप्त होकर जनलोकको चले जाते हैं । इस प्रकार त्रिलोकीके जलमय होजाने पर जनलोकवासी योगियों द्वारा ध्यान किये जाते हुए नारायण रूप कमलयोनि ब्रह्माजी त्रिलोकीके ग्राससे तृप्त होकर दिनके बराबर ही परिमाणवाली उस रात्रिमें शेषशय्यापर शयन करते हैं और उसके बीत जाने पर पुनः संसारकी सृष्टि करते हैं । इसी प्रकार (पक्ष मास आदि) गणनासे ब्रह्माका एक वर्ष होता है । और फिर इसी प्रकार सौ वर्ष होते हैं । ब्रह्माके सौ वर्ष ही उस महात्मा (ब्रह्मा) की परमायु है । हे अनघ ! उन

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एकमस्य व्यतीतन्तु परार्द्धं ब्रह्मणोऽनघ। तस्यान्तेऽभून्महाकल्पः पाद्म इत्यभिविश्रुतः॥ द्वितीयस्य परार्द्धस्य वर्तमानस्य वै द्विज। वाराह इति कल्पोऽयं प्रथमः परिकीर्त्तितः"॥ इति। अस्यां कालगणनायां शङ्कासमाधानबुद्ध्येदमुच्यते यद् वस्तुतो भगवतो ब्रह्मदेवस्य रात्रिमध्ये प्रथमस्य स्वर्गलोकत्रयस्य सप्तानामसुरलोकानां च प्रलयः प्रजायते। द्वितीयो विषयोऽयमुच्यते यच्छास्त्रादौ कुत्रचिद्दिव्यवर्षाणां कुत्रचिन्मानववर्षाणां वर्णनं विद्यते। इत्यत एव हेतोः काल-निर्णये भ्रमो भवति। तन्नोचितम्। उपर्युक्तप्रमाणानुसारतः कालसंकलनायां भगवतो ब्रह्म-देवस्य भगवतो विष्णोर्भवतः सदाशिवस्य च दिनसङ्कलना कर्तुं शक्यते। तदनुसारतश्चैकस्य ब्रह्माण्डस्यायुःसकलनाऽपि भवितुमर्हति। वेदशास्त्रयोः प्रायः कालसङ्कलना ब्रह्मण आयुषोऽनुसा-रेणैव कृता विद्यते। अन्यच्च शास्त्रादौ कुत्रचिन्मानववर्षाणां क्वाऽपि दिव्यवर्षाणां सङ्कलना कृता दृश्यते। इत्यत एव क्वापि क्वापि स्थले शङ्कोपतिष्ठते। परमुपर्युक्तकालसङ्कलनारहस्याऽभ्यासेन शङ्काया अवसर एव नोदेति। पूज्यपादमहर्षीणां कथं त्रिकालज्ञानमुदपद्यत इत्यस्मिन् विषये योगदर्शनस्य विभूतिपादेऽभिहितम्, यथा—"परिणामत्रयसंयमादतीनागतज्ञानम्"। इति। योगसाधनपद्धतिर्योगदर्शनरयाऽस्मिन् पादे विशेषतो वर्णिता। पूज्याऽङ्घ्रिपङ्कजा महर्षयो देश-

ब्रह्माजीका एक परार्द्ध बीत चुका है। उसके अन्तमें पाद्म नामसे विख्यात महाकल्प हुआ था। हे द्विज! इस समय वर्तमान उनके दूसरे परार्द्धका यह वाराह नामक पहला कल्प कहा गया है।" इस कालगणनामें शङ्काका समाधान करनेके अभिप्रायसे कहा जाता है कि वस्तुतः भगवान् ब्रह्माजीकी रात्रिमें प्रथम तीनों स्वर्गलोक और सातो असुरलोक ये सभी नष्ट हो जाते हैं। दूसरा विषय यह है कि शास्त्रोंमें कहीं दिव्यवर्षोंका वर्णन है कहीं मानव वर्षोंका वर्णन है, इसी कारण कालके निर्णय करने के विषयमें लोग भ्रममें पड़ा करते हैं, सो नहीं पड़ना चाहिए। ऊपर कथित प्रमाणोंके अनुसार यदि हिसावकिया जाय तो भगवान् ब्रह्माजीका दिन भगवान् विष्णुजीका दिन और भगवान् सदाशिवजीके दिनका हिसाव लगाया जा सकता है और इसके अनुसार एक ब्रह्माण्डकी आयुका भी हिसाब लगाया जा सकता है। वेद और शास्त्रोंमें प्रायः कालका जो हिसाब दिखाया गया है। वह भगवान् ब्रह्माजी की आयुके अनुसार ही हिसाव दिखाया गया है। और शास्त्रोंमें कहीं मानव वर्षोंका हिसाब बताया गया है। इसी कारण कहीं कहीं शङ्का उपस्थित होती है। परन्तु ऊपर लिखित कालरहस्यको हृदयङ्गम करनेसे शंकाका अवसर नहीं रहता। पूज्यपाद महर्षियोंको कैसे त्रिकालका ज्ञान होता था, इसके विषयमें योगदर्शनके विभूति पादमें कहा है कि—योगकी संयम क्रियाके द्वारा धर्म, लक्षण औरअवस्था

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कालावभिलक्ष्य यां सङ्कल्पमन्त्ररीतिमवोचन्, तदीये विज्ञाने स्वरूपे च हृदयङ्गमे कृते दैवदेशकालयो रहस्यं प्रायो ज्ञातुं शक्यते। तदधो निर्दिश्यते। सनातनधर्मसिद्धान्तानुसारं सर्वेषामेव ज्ञानकाण्डकर्मकाण्डकर्मणां सर्वासाञ्चोपासनाकाण्डक्रियाणां प्रारम्भतः पूर्वं धर्मशास्त्रेषु संकल्पमन्त्रोच्चारणस्य कृते दृढा समाज्ञा विद्यते। संकल्पं विना कस्मिंश्चिदपि कार्ये साधकस्य प्रवृत्तिर्नैव भवति। संकल्पानुरूपैव कार्यसिद्धिरपि भवति। यथा यादृग्यस्य संकल्पो भवति तथा तादृश्येव तदीया फलावाप्तिरपि भवति। अतश्च दैवेन जगता सम्बन्धं संयोज्य स्वकर्मक्षेत्रसम्वर्धनाय शुभमभिप्रायमेतमभिलक्ष्य दैवसाहाय्यसमधिगमाय च संकल्पमन्त्रोच्चारणं सर्वस्मिन्नपि शुभे कर्मणि क्रियत इत्यार्यमर्यादापरम्परा जागर्ति। अद्यत्वे त्वव्यवस्थितरूपेणैव संकल्पमन्त्रोच्चारणप्रथा यत्र तत्र भारते प्रचलिता दृश्यते। परन्तु कर्मणः साफल्यावाप्तये संकल्पमन्त्रोच्चारणस्य कियती कीदृशी चावश्यकता विद्यत इत्येतत्प्रायो जनाः सम्प्रति विस्मृतवन्त एवावलोक्यन्ते। संकल्पमन्त्रद्वारा महता देशेन सुमहता च कालेन सह स्वात्मनः सम्बन्धं नियोज्य स्वसंस्कारशुद्धिः सम्पाद्यते। प्रथमतोऽनाद्यनन्तापरिमितब्रह्माण्डसम्भृतं सर्वव्यापकमपि देशं स्वीयस्यास्य ब्रह्माण्डकटाहस्य परिधौ सीमाबद्धं कृत्वा स्वान्तःकरणस्य

नामक तीनो परिणामोमें संयमसे भूत-भविष्यत् का ज्ञान होता है। योगकी साधनप्रणालीको योग दर्शनके इस पादमें विस्तारितरूपसे कहा गया है। प्राचीन कालमें पूज्यपाद महर्षियोने देश और कालको सामने रख कर जो संकल्प मन्त्रकी रीति बतलाई है, उसका विज्ञान और स्वरूप हृदयङ्गम करनेसे दैवी देश और दैवी कालके रहस्यका बहुत कुछ पता चल सकता है। सो निम्न लिखित है। सनातन धर्मके अनुसार सब ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्डकी क्रियायें और उपासना काण्डकी क्रियायें प्रारम्भ करनेके पहले संकल्प पाठ करनेकी दृढ़ आज्ञा है। विना संकल्पके साधककी किसी काममें प्रवृत्ति नहीं होती और संकल्पके अनुसार ही कार्यकी सिद्धि होती है। और जैसा जिसका संकल्प होता है वैसाही उसको फलकी प्राप्ति होती है। दैवी जगत्के साथ सम्बन्ध मिलाकर अपने कर्मक्षेत्रको विस्तृत करनेके लिये और इस शुभ अभिप्रायसे दैवी सहायता प्राप्त करनेके लिये संकल्प मन्त्रका पाठ किया जाता है। यही प्राचीन आर्य मर्यादा है। आज कल यों ही अस्त व्यस्त रूपसे संकल्प मन्त्रके पाठ करनेकी रीति जहाँ तहाँ चल गई है, परन्तु कर्मकी सिद्धिके लिये संकल्प मन्त्रकी कितनी बड़ी आवश्यकताहै, इसको प्रायः लोग भूल गये हैं। संकल्प मन्त्रमें महान् देश और महान् कालके साथ अपना सम्बन्ध मानकर संस्कारकी शुद्धि की जाती है। सबसे पहिले अनादि अनन्त तथा अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंसे भरा हुआ सर्वव्यापक देशको अपने इस ब्रह्माण्डकी सीमामें सीमाबद्ध

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विराट्स्वरूपेण सह सम्मेलनं विधीयते। ततश्चानाद्यनन्तात्मकेन महाकालेन सृष्टिकर्तुर्भगवतो ब्रह्मदेवस्यायुषा सम्बन्धं विधाय तदीयस्यैवायुष एककल्पस्थितिपरिमाणविभागं विभजताऽनाद्यनन्तं महान्तमपि कालं सीमाबद्धं कृत्वा स्वान्तःकरणसंस्कारो दृढीक्रियते। अन्तःकरणस्य संस्काराराशय श्चित्ताकाशात्मके पिण्डाकाशे तथा चिदाकाशात्मके च ब्रह्माण्डाकाशे तादृशा एवाङ्किता स्तिष्ठन्ति यादृशा हि सम्प्रति शब्दराशयो महाकाशे विकीर्णा यन्त्रसाहाय्यतो व्यवस्थितरूपेण स्थानान्तरे प्रकाशीभवन्ति। मानवा यत् किञ्चिदपि शारीरिकं वाचनिकं मानसिकं बौद्धं वा कर्म कुर्वन्ति तत्सर्वमेव संस्काररूपतश्चिदाकाशेऽङ्कितं भवति। तस्यैव सङ्कलनाङ्कुर्वन्तः कर्मनियामका देवा भगवन्तो यमधर्मराज-मनुप्रभृतयो देवपदासीनास्तस्यैव कर्मराशेः फलपरिणतिं यथासमयं यथादेशं च जीवसङ्घेभ्यस्तेभ्योऽतिदिशन्ति। कस्याश्चिदपि देवप्रतिमायाः पुरतः कस्मिंश्चन यज्ञमण्डपे वा समुपविष्टोऽथवा क्वापि रहसि एकाग्रतासीनः कश्चित्साधको यथाविधि कमपि मन्त्रं पठति, आहोस्वित् कस्यचन कार्य्यस्य प्रारम्भावसरे संकल्पं वचसा मनसा वा करोति, एतद्विज्ञानानुरूपमेव तत्सर्वमपि देवलोके समुपतिष्ठते । अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयकोशानां पृथक् पृथक् पञ्चैव स्तराः सन्ति। इमे पञ्चापि स्तरा मृत्युलोके यथा सन्ति तथैव देवलोकेऽपि विद्यन्ते। इत्थं

करके अपने अन्तःकरणको विराट् स्वरूपके साथ मिलाना पड़ता है। उसके बाद अनादि अनन्त महाकालको सृष्टिकर्ता भगवान् ब्रह्माकी आयुके साथ सम्बन्ध युक्त करते हुए उन्हींकी आयुके एक कल्पका हिसाब देकर महान् तथा अनादि अनन्त कालको सीमाबद्ध करके अपने अन्तःकरणके संस्कारको दृढ़ करना पड़ता है। अन्तःकरणके संस्कार समूह चित्ताकाश रूपी पिण्डके आकाश और चिदाकाश रूपी ब्रह्माण्डके आकाशमें वैसेही अङ्कित होते हैं जैसे शब्द अङ्कित होकर (रेडियो) यन्त्रकी सहायतासे स्थानान्तर में प्रकाशित होते हैं। मनुष्य जो कुछ शारीरिक, वाचनिक, मानसिक या बौद्धिक कर्म करता है वे सब संस्कार युक्त होकर चिदाकाशमें अङ्कित हो जाते हैं। इन्हींका हिसाब रखते हुए कर्मके नियन्ता भगवान् यम धर्मराज और भगवान् मनु आदि देवपदधारी गण जीवको कर्मके फलकी यथा समय व्यवस्था किया करते हैं। किसी देव प्रतिमाके सामने अथवा यज्ञमण्डपमें बैठ कर अथवा एकान्त स्थानोंमें साधक जो कुछ मन्त्र पढ़ेगा अथवा कार्य्यारम्भ करते समय संकल्प वचन और मनसे करेगा वह सब इसी विज्ञानके अनुसार देवलोकमें पहुँचता है। अन्नमय, प्राणमय मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोशके अलग अलग पाँच स्तर हैं। ये पाँचों स्तर मृत्युलोकमें भी हैं और देवलोकमें भी हैं।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हि पञ्चेमे कोशा मनुष्यदेवपिण्डयोरपि विद्यन्ते। एषां पञ्चानामप्यैक्यानुभवं साधारणमानवो नैव कर्तुमर्हति, किन्तु देवपदाधिकारिणः कर्तुमर्हन्ति। एत्यत एव हेतो र्देवा मानवानामन्तःकरणवृत्तं ज्ञातुं शक्नुवन्ति। एवं संकल्पमन्त्रस्य तात्पर्य्यार्थो देवलोके समुपसृत्य स्वानुरूपं फलं जनयति। इदं शास्त्रेषु निर्दिष्टमस्ति यत् केन प्रकारेण संकल्पेष्वनाद्यनन्तदेशस्यानाद्यनन्तकालस्य च सीमाबन्धनं विधाय तद्द्वारा स्वान्तःकरणसंकल्पस्य सिद्धिर्विधीयत इति। तस्य कियद् दिग्दर्शनं शास्त्रोक्तमहासंकल्पमन्त्रेण ज्ञातुं शक्यते। महासंकल्पमन्त्रो यथा—

"ॐ तत्सदद्य श्रीमन्महाभगवतः सच्चिदानन्दस्वरूपस्य श्रीमदादिनारायणस्याचिन्त्यापरिमितशक्त्याश्रितानामनन्ताकाशमध्ये परिभ्राम्यमाणानामनन्तकोटिब्रह्माण्डानामेकतमस्मिन्नव्यक्तमहदहङ्कारपृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाद्यावरणैरावृते, सकलजगद्धारकशक्तिमयाऽनन्तशेषफणिफणोपरि विराजमाने, ऐरावत-पुण्डरीक-वामन-कुमुदाञ्जन-पुष्पदन्त-सार्वभौम-सुप्रतीकाष्टदिग्गजविधृते, अस्मिन् महति ब्रह्माण्डकटाहकरण्डे प्रतिष्ठितस्य विलस्वर्गस्वरूपातल-वितल-सुतलतलातल-रसातल-महातल पातालाख्य सप्ताधोलोकस्योपरिभागस्थे भौमस्वर्गान्तर्गतभुवर्लोक-

पाँच कोष मनुष्य पिण्डमें भी हैं और देव पिण्डमे भी हैं। पाँचोकी एकताका अनुभव साधारण मनुष्य नहीं कर सकता है। परन्तु देवपदधारीगण कर सकते हैं। इसी कारणसे देवतागण मनुष्यके अन्तःकरणकी बातें जान जाते है। संकल्प मन्त्रका तात्पर्य्य इस प्रकारसे देवलोकमें पहुँचकर उसके अनुसार फलउत्पन्न करता है। शास्त्रोंमें, महासंकल्पमें किस प्रकारसे अनादि अनन्त देश और अनादि अनन्त कालको सीमावद्ध करके उनकी सहायतासे अपने संकल्पकी सिद्धि की जाती हैं, उसका कुछ दिग्दर्शन शास्त्रोक्तमहासकंल्प मन्त्रसे जाना जा सकता है। महासंकल्प मन्त्र यथा—

"ॐ तत्सत् श्रीमहाभगवान् सच्चिदानन्दस्वरूप आदि नारायणकी अचिन्त्य अपरिमेय शक्तिके ऊपर आश्रित रहनेवाले अनन्त आकाशके ऊपर कल्लोल करनेवाले अनन्त ब्रह्माण्डोंमें यह एक, तथा अव्यक्त महत्, अहङ्कार पृथ्वी जल तेज वायु, आकाश, प्रभृति आवरणोंसे आच्छादित, सम्पूर्ण जगत्की धारक शक्तिरूपी अनन्त शेषनागपर विराजमान ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अञ्जन, पुष्पदन्त, सार्वभौम, सुप्रतीक नामक आठ दिग्गजोंसे विधृत इस महाब्रह्माण्ड कटाहमें स्थित विल स्वर्गात्मक अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल और पाताल नामक सातो अधोलोकोंके ऊपर भागमें विद्यमान भौम स्वर्गके अन्तर्गत भुवर्लोक

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

माहेन्द्रस्वर्गात्मकस्वर्लोकप्राजापत्यस्वर्गात्मकमहर्लोकब्राह्मस्वर्गात्मकजनलोकतपोलोकसत्यलोकाख्यपट्लोकस्याधोभागस्थे लवणसुरासर्पिर्दधिक्षीरस्वादूदकाख्यसप्तसमुद्रवेष्टितजम्बूप्लक्षशाल्मलिकुशक्रौञ्चशाकपुष्करद्वीपविभक्ते भूर्लोके किम्पुरुषहरीलावृत्तरम्यकहिरण्मयकुरुभद्राश्वकेतुमालकर्मभूमिरूपभारतवर्षनामकनवसंख्यकवर्षैः पितृलोकनरकलोकप्रेतलोकादिना च बहुधा विभक्ते जम्बूद्वीपे, नानावर्णरूपकेशराचलशिखरशालिन्यां रत्नगर्भवसुन्धरायां सरोरुहकर्णिकायमानस्य हिमालयस्य दक्षिण दिग्भागे दाक्षिणात्यसमुद्रहिमालययोर्मध्ये प्रतिष्ठिते निखिलवेदोदितकर्मफलसाधनगङ्गासलिलवाहिनि प्राचीन-सन्न्याससिसम्पादिततपोराशिहुताशन-नाशितपापराशौ, अन्तःस्थितात्यन्तसन्तापसन्ततिकृतान्तवेदान्तवृत्तान्तैः श्रुतिस्मृतिविहितप्रायश्चित्तैश्च प्रक्षालितपापतया स्वान्तःशान्तिविधायकवेदज्ञमुनिगणचरणविहरणभूमौ, तत्तपश्चर्यामृतवर्षिणि, श्रीशैलहेमकूटकिष्किन्धागरुडाचलव्यङ्कटाचलहस्तिगिरिप्रभृतिपुण्यपर्वतगणविभूषिते समानरेखा-

---

तथा माहेन्द्रस्वर्गात्मक स्वर्गलोक, प्राजापत्य स्वर्गात्मक महर्लोक, ब्राह्म स्वर्गात्मक जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक नामक ऊपर रहनेवाले छः लोकोंके नीचे विद्यमान भूलोकमें लवणसमुद्र, इक्षु समुद्र, सुरा समुद्र, घृत समुद्र, दधि समुद्र, दुग्ध समुद्र और स्वादु जलवाला समुद्र, इन सातों समुद्रोंसे वेष्टित जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलिद्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाकद्वीप, पुष्करद्वीप नामक द्वीपोंसे विभक्त भूर्लोकमें किम्पुरुष, हरि, इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व, केतुमाल, कर्मभूमिरूपी भारत (भारतवर्षरूपी दुनिया) नामक नववर्षोंसे तथा पितृलोक, नरकलोक और प्रेतलोक आदि लोकोंसे विभक्त जम्बूद्वीपमें रङ्गविरङ्गके वर्णरूपी केशरयुक्त अचल शिखरशाली रत्नवीजगर्भा पृथ्वीमें कमलकर्णिका स्वरूप हिमालयके दक्षिण भागमें दक्षिण समुद्र और हिमालयके बीच विद्यमान, सम्पूर्ण वेदोंमें कहे गये कर्मोंके फलोंको सिद्ध करनेवाले गङ्गाजलसे सम्भृत, प्राचीन संन्यासियों द्वारा सम्पादित तपस्याराशिरूपी अग्नि द्वारा अशेषपापोंके नाश करने वाले अन्तःकरणमें बैठे हुये घोर सन्ताप समूहके लिये कृतान्त स्वरूप जो वेदान्तके वृत्तान्त हैं इनके द्वारा और श्रुति–स्मृति–पुराणोंमें विहित प्रायश्चित्तोंके द्वारा पापोंका नाश कर अन्तःकरणमें शान्तिका विधान करनेवाले वेदज्ञानी मुनिगणोंके चरणोंके विहारस्थान और उनके तपश्चरणरूपी अमृतकी वर्षा करनेवाले श्रीशैल, हेमकूट, किष्किन्धा, गरुड़ाचल, व्यङ्कटाचल, हस्तिगिरि प्रभृति पुण्यपर्वतोंसे शोभायमान, समरेखा

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्थितकुरुक्षेत्रादिमत्यां पृथ्वीमध्यरेखामधिष्ठितायामयोध्यामथुरामायाकाशीकाञ्च्यवन्तिकाद्वारावत्यादिमुक्तिक्षेत्रवत्यामस्यां मोक्षभूमौ पुण्ये भरतखण्डे भागीरथीप्रक्षालितोत्पत्यकविन्ध्याचलस्य, उत्तरदिग्विभागे सकलभूमण्डलशिरोवर्तिब्रह्मावर्त्तान्तर्गते (१) गिरजागिरजापतिराजिते, अविमुक्तवाराणसीक्षेत्रे, महाश्मशाने, असीवरुणयोर्मध्ये, आनन्दवने, गौरीमुखे, त्रिकण्टकविराजिते, श्रीमदन्नपूर्णादुर्गाकेदारेश्वरविश्वनाथभैरवढुण्डिराजादिदेवपीठपवित्रे, त्रिलोकपवित्रकारिण्या उत्तरवाहिन्या भगवत्या भागीरथ्याः परमपावने पश्चिमे तटे, परमसुन्दरतरुराजविराजिते, शैवशाक्तसौरवैष्णवगाणपत्यादिपरमभक्तगणविहरणस्वस्वोपास्यदेवमधुरनामकीर्त्तनपवित्रीकृतदिग्विभागे, परमानन्दनिकेतने, बुधजनमानसानन्दविधायिनि, श्रीकाशीधामनि, (२) श्रीमदनेककोटिब्रह्माण्ड(३)घटनाघटयितुरनन्तकोटिब्रह्माण्डनायकस्य भगवतः परमपुरुषस्य विराड्ब्रह्ममयशेषपर्यङ्कशायिनः श्रीविष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अनाद्यनन्तमहाकालचक्रे निरन्तरं परिबाभ्रम्यमाणस्य

पर स्थित कुरुक्षेत्र प्रभृति पृथ्वीकी मध्यरेखामें विद्यमान—अयोध्या, मथुरा, हरद्वार, काशी, काञ्ची, उज्जैन, द्वारिका प्रभृति मुक्तिक्षेत्रयुक्त मोक्षभूमि इस पवित्र भरतखण्डमें भागीरथीयुक्त विन्ध्याचलके उत्तर दिशामें सम्पूर्ण भूमण्डलके शिरोभूषण स्वरूप ब्रह्मावर्तके अन्तर्गत गिरिजा तथा गिरिजापति शिवजी से सुशोभित महाश्मशानस्वरूप इस अविमुक्त वाराणसीक्षेत्रमें अस्सी और वरुणाके बीचमें, आनन्द वनमें, गौरीजीके मुखस्थानमें, त्रिकण्टकसे शोभायमान, उत्तरवाहिनी भागीरथी गङ्गाजीके पश्चिम तटपर, श्रीअन्नपूर्णाजी, श्रीदुर्गाजी, श्रीकेदारेश्वरजी, श्रीविश्वनाथजी, श्रीकालभैरवजी, श्रीढुण्ढिराजगणेशजी प्रभृति देवपीठोंसे पवित्र त्रिलोकपावनी भगवती, भागीरथीके परमपावन तीरपर स्थित सुन्दर तरुलता विशिष्ट वनराजियोंसे विराजमान शिवभक्त, शक्तिभक्त, सूर्यभक्त, विष्णुभक्त, गणपतिभक्त प्रभृति अनेक भक्तगणोंके विहरण करनेसे तथा अपने अपने देवोंके मधुर नामोंके कीर्त्तनसे पवित्र हुए परम आनन्दके निकेतन स्वरूप विद्वानोंके मानसिक आनन्दको देनेवाले श्रीकाशीधाममें तथा अनेक कोटि ब्रह्माण्ड घटना करनेवाले अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक विराट् ब्रह्मरूपी शेषशय्या पर सोनेवाले परम पुरुष श्रीभगवान् विष्णुजीकी आज्ञासे परिवर्त्तित होनेवाले अनादि

१—सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् । तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते । तस्मिन्देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः । वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते । कुरुक्षेत्रञ्च मत्स्याश्च पाञ्चालाः सूरसेनकाः । एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः ।

२—श्रीकाशीक्षेत्रस्य कृते एवं विन्यासः, अन्यप्रदेशार्थं तु यथोचितं परिवर्तनं विधेयमेव । भरतखण्डात्मकस्य हिन्दुस्थानस्य नानाप्रदेशेषु स्वप्रान्तर्तीर्थादिसम्बन्धेन संकल्पमन्त्रोच्चारणपद्धतिः प्रचलिता वर्त्तते, तत्प्रान्तीयविद्वद्ब्राह्मणैस्तद्देशतीर्थनामादिकमत्र सन्निवेशनीयम् ।

३—अनेन अनाद्यनन्तस्य महाकालस्य भगवतो ब्रह्मणः सृष्टिकर्तुरायुषा सीमाबन्धनं क्रियते ।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्नाभिस्थानसरोरुहादुत्पन्नस्य सकलवेदनिधेः जगत्स्रष्टुः श्रीब्रह्मणः (४) व्यतीतप्रथमपरार्द्धे (अतीतपञ्चाशत्तमवर्षे) द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे प्रथमवर्षे प्रथममासे प्रथमपक्षे प्रथमदिवसे उदयात् त्रयोदशघटिकासु व्यतीतासु तदुपरितनघटिकायां, स्वायम्भुव-स्वारोचिषोत्तमतामस रैवत-चाक्षुषाख्येषु षट्सु मन्वन्तरेषु व्यतीतेषु सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे (५) सप्तविंशति-महायुगेषु व्यतीतेषु अष्टाविंशतितमेऽस्मिन् महायुगे पुरुहुतनामकेन्द्रसमये कृतत्रेता-

---

अनन्त महाकालके चक्रमें निरन्तर भ्रममाण और उनके नाभिस्थित कमलनालसे उत्पन्न सम्पूर्ण वेदोंके निधिस्वरूप जगत्के उत्पादक भगवान् ब्रह्माजीके [४]दो परार्द्धमें पहले परार्द्ध के (अर्थात् पचासवर्षके) वीत चुकने पर दूसरे परार्द्धमें, श्रीश्वेत वाराह कल्पमें, प्रथम वर्षमें, प्रथम मासमें, प्रथम पक्षमें, प्रथम दिवसमे उदयसे तेरह घड़ी बीत चुकनेपर स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष नामक छः मन्वन्तरोंके वीत चुकनेपर ऊपरकी घड़ीमें सातवें वैवस्वत [५]मन्वन्तरमें सत्ताइस महायुगोंके वीत चुकने पर अट्ठाइसवें महायुगमें पुरुहुत नामक इन्द्रके समयमें कृतयुग

---

(४) मानव वर्षस्य ३११०४०००००००००० तमेऽब्दे ब्रह्मणः पदेऽन्ये पदधारिणः समायान्ति । तथा ८६४००००००० मानववर्षाणां ब्रह्मणः एकं दिनं एका च रात्रिर्भवति । यो हि कल्प इत्युच्यते । "शतायुः सदानन्द एवं प्रदिष्टस्तदायुर्महाकल्पमित्युक्तमार्यैः । यतोऽनादिमानेष कालस्ततोऽहं न वेद्म्यत्र पद्मोद्भवा ये गतास्तान् । निजेनैव तु मानेन ह्यायुर्वर्षशतं स्मृतम् । तत्पराख्यं तदर्द्धं तु परार्द्धमभिधीयते" (सिद्धान्त शिरोमणिः) ।

(५) एकस्मिन् कल्पे चतुर्दश मन्वन्तराणि भवन्ति । प्रति मन्वन्तरमेव भगवतो मनोर्भगवत इन्द्रस्य सर्वेषामृषि संघानां देवसङ्घानां पितृसङ्घानाञ्च पदाधिकारिणां परिवर्तनं भवति । ३०६७२०००० वर्षाणामेकं मन्वन्तरं भवति । सत्यत्रेताद्वापरकलियुगानां चतुर्णामपि सम्मेलनत एको महायुगो भवति । तथाहि १७२८००० मानववर्षाणां सत्ययुगः, १२९६००० मानववर्षाणां त्रेतायुगः, ८६४००० मानववर्षाणां द्वापरयुगः, ४३२००० मानववर्षाणां कलियुगो भवति, इत्थंहि ४३२०००० मानववर्षाणां महायुगो भवति । ईदृशानामेव ७१ एकसप्ततिमहायुगानामेकं मन्वन्तरं भवति । चतुर्दशमन्वन्तराणामेकः कल्पः ।

---

(४) मानववर्ष ३११०४०००००००००० में ब्रह्माजीके पदपर दूसरे पदधारी आ जाते हैं। और ८६४००००००० मानववर्षोंका उनका एक दिन और रात होता है, जिसको कल्प कहते हैं।

(५) एक कल्पमें १४ मन्वन्तर होते हैं। प्रत्येक मन्वन्तरमें भगवान् मनु, भगवान् इन्द्र और सब ऋषिसंघ, देवसंघ और पितृसंघके पदधारी बदल जाते हैं। ३०६७२०००० वर्षोंका एक मन्वन्तर होता है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि इन चारों युगोंके मेलसे एक महायुग कहलाता है। अर्थात् १७२८००० मानववर्षोंका सत्ययुग १२९६००० मानव वर्षोंका त्रेतायुग ८६४००० मानववर्षोंका द्वापरयुग और ४३२००० मानववर्षोंका कलियुग होता है। इस प्रकार ४३२०००० मानववर्षोंका महायुग होता है ऐसे ही ७१ महायुगोंका १ मन्वन्तर होता है। १४ मन्वन्तरोंका १ कल्प होता है।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वापरेषु च गतेषु वर्त्तमाने कलियुगे मत्स्य-कच्छप-वराह-नृसिंह-वामन-परशुराम-राम-बलरामाख्येषु अष्टावतारेषु गतेषु भगवति श्रीकृष्णे तिरोहिते बौद्धावतारे वर्त्तमाने विक्रमशके बार्हस्पत्यमानेन (६) ···नाम संवत्सरे···अयने···ऋतौ···मासे···पक्षे···तिथौ···वासरे···नक्षत्रे···योगे ···करणे···राशिस्थिते सूर्य्ये···राशिस्थिते चन्द्रे···राशिस्थिते भौमे···राशिस्थिते बुधे···राशिस्थिते देवगुरौ गुरौ···राशिस्थिते···दैत्यगुरौ शुक्रे···राशिस्थिते शनौ···राशिस्थिते राहौ···राशिस्थिते केतौ एवं सर्वग्रहगुणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ···लग्ने···प्रवरः···गोत्रोत्पन्नोऽहं पुरुषोत्तमस्य श्रीभगवतस्तथा ब्रह्मशक्तेरनन्तकोटिब्रह्माण्डभाण्डोदर्य्याः श्रीजगदम्बायाश्च प्रीतये, ऋषिदेवपितृसम्वर्द्धनाय सर्वभूतमङ्गलाय जगत्कल्याणाय च संकल्पसिद्धि-शुभवासनया यागं

(सत्ययुग) त्रेतायुग द्वापरयुग नामक तीनो युगोंके वीत जाने पर वर्तमान कलियुगमें मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, वलराम, नामक आठ अवतारोंके वीत चुकने पर- भगवान् कृष्णके तिरोभावके अनन्तर वौद्धावतारमें वर्तमान विक्रम संवत्सरमें वार्हस्पत्यमानसे······नामक संवत्सरमें···अयनमें···ऋतुमें······मासमें······पक्षमें······तिथिमें दिनमें····· नक्षत्रमें······योगमें······करणमें······राशिस्थित सूर्यमें······राशिस्थित चन्द्रमें... राशिस्थित मङ्गलमें······राशिस्थित बुधमें·····राशिस्थित देवगुरु बृहस्पतिमें······राशिस्थित दैत्यगुरु शुक्रमें···राशिस्थित शनिमें·········राशिस्थित राहुमें······राशिस्थित केतुमें इस प्रकार ग्रहोंके गुणविशेषोंसे विभूषित शुभ पुण्य तिथिमें···लग्नमें···प्रवरवाला······गोत्रमें उत्पन्न मैं पुरुषोत्तम श्रीभगवान् और उनकी ब्रह्मशक्ति रूपिणी अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड-भाण्डोदरी श्रीजगदम्बाके प्रीत्यर्थ ऋषि देवता और पितरोंके सम्वर्द्धनके निमित्त सर्वभूतोंके कल्याण और जगत्के मङ्गलके निमित्त संकल्पसिद्धि-

---

(६) अत्र ये हि कालवाचका ज्यौतिषशब्दाः प्रयुक्ताः, तत्र वार्हस्पत्यमान-नक्षत्र-योग-करणादयो राशिस्थिताः सूर्य-चन्द्र-मङ्गल-बुध-बृहस्पति-शुक्र-शनि-राहु केतुनवग्रहा यज्ञेष्वेव समुच्चारणीया नित्यसंकल्पे तु नैतावान् विस्तारोऽपेक्ष्यते।

---

(६) इसमें ज्योतिषके जो काल सम्बन्धी शब्द है उसमें वार्हस्पत्यमान, नक्षत्र, योग, करण, राशिस्थितसूर्य, राशिस्थित चन्द्र, राशिस्थित मङ्गल आदि प्रयोग यज्ञ यागादिमें ही होता है सब जगह इतना विस्तार करना आवश्यक नहीं है।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करिष्ये (७)" इति। वर्णाश्रमविभागशालिन्यामार्यजातौ या हि संकल्पमन्त्राणां प्रसिद्धि र्विद्यते, तत्रोपर्य्युक्तसंकल्पमन्त्रोपरि मननकरणेन सादिसान्तब्रह्माण्डात्मकस्य देशस्य सादिसान्तब्रह्माण्डायुरात्मकस्य कालस्य च ज्ञानं सम्यक् बुधजनाः कर्तुं पारयिष्यन्ति। तैर्बुधजनैरवश्यमिदमवगन्तव्यम् यच्चतुर्दशानां भुवनानां च पृथक् पृथगवस्थितदेशविभागानुसारतस्तथा तदीयमहत्त्वस्य लाघवगौरवानुसारतश्च विभिन्नानां भुवनानां लोकानाञ्च कालेषु महदन्तरं जायते। पुराणशास्त्रेषु एतस्य बहुशः प्रमाणान्युपलभ्यन्ते। अतश्च पुराणीयतद्वर्णनपाठावसरे नापि शङ्कालेशावसर उत्थापनीयः। इत्यत एवेह मृत्युलोके यादृक्कालसंकलना क्रियते तत्र विषये देवलोकसम्बन्धीयकालसंकलनाऽनुसारं मनुष्यवर्षदिव्यवर्षयोर्मध्ये महदन्तरमायाति। अन्य-

की शुभवासनासे......यज्ञ कर रहा हूं।' वर्णाश्रम धर्मी आर्य्यजातिमें जो संकल्प मन्त्रकी प्रसिद्धि है। उसमें ऊपर लिखित संकल्पमन्त्रके मनन करनेसे सादि सान्त ब्रह्माण्डरूपी देश और सादि सान्त ब्रह्माण्डकी आयुरूपी कालका पता बुधजनोंको लग सकता है। उनको अवश्य यह समझना चाहिये कि चतुर्दश भुवनोंके अलग अलग अवस्थित देशके अनुसार और उनके महत्त्वके लाघव गौरवके अनुसार विभिन्न भुवनों और लोकोंके कालमें अवश्य बड़ा बड़ा अन्तर पड़ा करता है। पुराण शास्त्रोंमें इसका बहुधा प्रमाण मिलता है। इस कारण उन वर्णनोंके पाठ करने पर शङ्का करनेका अवसर नहीं है। यही कारण है कि इस मृत्युलोकमें जिस हिसाब से कालगणना की जाती है उसके साथ देवलोकके सम्बन्धी कालगणनाके अनुसार मनुष्य वर्ष और दिव्यवर्षमें बहुत बड़ा

(७) भक्तस्य यादृशी वासना भवति यादृशञ्च तदीयं प्रयोजनं भवति, स च तादृशमेव संकल्पं करोति। महामण्डले हि जगत्कल्याणकामनयैव यज्ञाद्यनुष्ठानं क्रियते, इत्यत एव तत्र सर्वशक्तेर्भगवतः प्रसन्नतापूर्वकं मृषिसङ्घ देवसङ्घ पितृसङ्घानां सम्बर्द्धनं त्रिष्वपि लोकेषु देवशक्तीनाम् विजयस्तथा धर्मस्य प्रतिष्ठा स्यादित्यादि विषयाणामिव प्राधान्यं कृत्वा संकल्पमन्त्रपाठो भवति। अन्येषां सकामसाधकानां यादृशी शुभवासना भवेत्, तैः तादृश एव संकल्पो विधेयः।

(७) भक्तकी जैसी जैसी वासना होती है और जिसका जैसा प्रयोजन होता है वह उसी तरहका संकल्प करलिया करता है। श्रीमहामण्डलमें तो जगत्कल्याणके लिये यज्ञादि होते हैं इस कारण उसमें सर्वशक्तिमान् भगवान् की प्रसन्नतापूर्वक ऋषिसंघ, देवसंघ और पितृसंघके सम्बर्द्धन त्रिलोकमें देवताओंकी शक्तिकी विजय और धर्मकी प्रतिष्ठा इत्यादि विषयोंकी प्रधानता देकर संकल्पमन्त्र पाठ किया जाता है। अन्य सकाम साधकोंकी जैसी शुभ वासना हो वैसा संकल्प करें।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

च्चोच्चलोकेषु इतोऽपि महदन्तरं समुपलभ्यते। इह भारतवर्षात्मकमृत्युलोके यद्यपि कालसंकलनैक-विधैव विद्यते। तथापि तस्य तत्तत्प्रान्तेषु देशेषु च सूर्यदेवस्योदयास्तावस्थायां कालभेदपातेनेह मृत्युलोके कालसंकलनाया वहुविधो भेद आपतति। अन्यच्च कालसंकलनाया ऋतुषु भेदपातेन कालस्वभावेऽपि भूयान् भेदः प्रतीयते। इत्यादिपूर्वोक्तकारणकलापतो धर्मस्वरूपनिरूपणेऽपि यत्किञ्चिद्भेदोपस्थितिः सम्भाव्यत एव। परन्तु मानवानां वाल्यतारुण्यवार्द्धक्यकालपरिणामानुसारेण यथा तदीयप्रकृतिप्रवृत्तिशक्तिसंस्कारादिषु विभेदः प्रतीयते, तथैव तदीयावस्थास्वेतासु तिसृष्वपि भेदप्रतीतिर्भवत्येव। तथापि धर्मस्य धारकशक्तौ तदीयाभ्युदयनिःश्रेयसकारिण्योरवस्थयोश्च न कोऽपि भेदः प्रतीयते। देशतारतम्यपारवश्याद् धर्माचारपालने यथायोग्यं कथं परिवर्तनमुपजायते, अपरिवर्तनीयो धर्मश्च कथं निरुह्यते, तदेतत्पूर्वस्मिन्देशधर्मतत्त्वनामकेऽध्याये समासतो व्याहृतम्। कालविचारतोऽपि धर्मस्य नित्यत्वं विविच्य धर्मविज्ञानानुकूलं यथा परिवर्तनं सम्भाव्यं चेत्तदवश्यं विधेयम्। किन्तु तदीयमौलिकसिद्धान्तो न परिवर्तनीयः। यथोदाह्रियते—त्रिकालसन्ध्यासाधने शास्त्रेषु कालस्य नियमो निरधारि। यथाशक्यं शास्त्रीयनियमानुसारमेव यथासमयं सन्ध्याऽनुष्ठेया।

अन्तर है। इसके अतिरिक्त उच्चलोकोंमें और भी बड़ा अन्तर पाया जाता है। इस भारत वर्ष रूपी मृत्युलोकमें यद्यपि कालका हिसाब एक ही तरह पर रहता है। परन्तु उसके विभिन्न प्रान्तोंमें और देशोंमें सूर्य्यदेवके उदय अस्तमें कालका कई तरहका भेद पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त कालके हिसाबसे ऋतुओंमें भेद पड़ जानेसे कालके स्वभावमें वहुत कुछ भेदप्रतीति हो जाती है। इन सव कारणोंसे जिसका कि कुछ दिग्दर्शन किया गया है, धर्मके स्वरूपमें भी कुछ हेर फेर दिखाई देना सम्भव है। परन्तु जैसे मनुष्यकी बाल्यावस्था, युवावस्था, और फिर वृद्धावस्थाके कालपरिणामके अनुसार मनुष्यकी प्रकृति प्रवृत्ति शक्ति और संस्कार आदिमें हेर फेर हुआ करता है, वैसे ही मनुष्यकी इन तीन अवस्थाओंमें भी भेद होता है। तथापि धर्मकी धारिका शक्ति और उसकी अभ्युदय-कारिणी और निःश्रेयस-कारिणी अवस्थामें भेद नहीं पड़ता है। देशके तारतम्यानुसार धर्मके आचारपालनमें यथासम्भव कैसे परिवर्त्तन होता है और अपरिवर्त्तनीय धर्मको कैसे निभाना पड़ता है सो इसके पहलेके देश धर्मतत्त्व नामक अध्यायमें संक्षेपसे कहा गया है। कालके विचारसे भी धर्मके नित्यत्व पर विचार करके धर्मके विज्ञानके अनुकूल जैसे परिवर्त्तन करनेकी आवश्यकता हो सो अवश्य करणीय है, परन्तु उसके मौलिक सिद्धान्तमें परिवर्त्तन होना उचित नहीं है। जैसे कि उदाहरणरूपसे कहा जाता है कि त्रिकाल सन्ध्याके साधन करनेमें शास्त्रोंमें कालका नियम बाँध दिया गया है। जहाँ तक सम्भव हो उस शास्त्रीय नियमके अनुसार यथा समय सन्ध्या करनी चाहिये;

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परन्तु तन्नियमपालने बाधोपतिष्ठेत चेत् तर्हि साधने किञ्चित्परिवर्तनं विधाय कालरक्षा कर्तव्या । यथा सन्ध्यासाधनसमये देश उपयुक्तो न भवेत् तदा कालमपरित्यज्यैव मानसं सन्ध्यानुष्ठानं सम्पादनीयम् । सनातनधर्मे सर्वेषु नित्यनैमित्तिककाम्यधर्मकार्य्येषु कालस्य विचारो नितान्तदार्ढ्येन निर्धारितः । इत्यत एव सनातनधर्मस्य कर्मोपासनादि-साधनेषु यथाज्योतिःशास्त्रं विचारप्राधान्यं निश्चितम् । ज्योतिःशास्त्रमपि श्रौतमेकमङ्गं विद्यते । अतः सर्वमेतद्रहस्यं ज्ञानचक्षुषा समीक्ष्य कालधर्मतत्त्वमवगन्तव्यम्, कालधर्मपालने च दृष्टिः प्रदेया । एतदेव कालधर्मतत्त्वस्य रहस्यमस्ति ।

इति श्रीमद्भगवद्दत्तात्रेयकृपया श्रीदत्तात्रेयधर्ममीमांसाग्रन्थस्य कालतत्त्वनामक स्तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ।

अथ सृष्टिधर्मतत्त्वनामकश्चतुर्थोऽध्यायः ।

महर्षयो हि निजयोग-शक्तिप्रभावतो यथैकब्रह्माण्डसम्बद्धयोर्देशकालयोः सादिसान्ततां

परन्तु उस नियम पालन करनेमें यदि बाधा उपस्थित हो तो साधनमें कुछ हेर फेर करके कालकी रक्षा करनी चाहिये। जैसे कि सन्ध्याके समय यदि साधनके देश आदि की असुविधा हो तो कालका त्याग न करके मानस सन्ध्यानुष्ठान करसकते हैं। सनातन धर्ममें सब नित्य, नैमित्तिक और काम्यरूपी धर्म कार्य्योंमें कालका विचार बहुत दृढ़ता पूर्वक रखा गया है। यही कारण है कि सनातन धर्मके कर्म उपासना आदिके साधनोंमें ज्योतिष शास्त्रके अनुसार विचारकी प्रधानता रखी गयी है और ज्योतिष शास्त्र वेदका एक अङ्ग माना गया है। अतः इन सब रहस्योंको ज्ञाननेत्रके सामने रखकर कालधर्म तत्त्वको समझना चाहिये और कालके पालन करनेमें ध्यान देना चाहिये। यही काल धर्म तत्त्वका रहस्य है।

इस प्रकारसे भगवान् दत्तात्रेयकी कृपासे श्रीदत्तात्रेय धर्म मीमांसा ग्रन्थका काल-धर्मतत्त्व नामक तृतीय अध्याय समाप्त हुआ।

अथ सृष्टिधर्मतत्त्वनामक चतुर्थ अध्याय।

एक ब्रह्माण्डके सम्बन्धसे जैसे देश और कालका आदि और अन्त पूज्यपाद महर्षियोंने अपनी

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ददृशुस्तथैवैते तदीय-सृष्टि-तत्त्वस्यापि सादिसान्ततामुपलभ्य बहुत्र शास्त्र-पुराणादिषु तां बहुधा वर्णयामासुः। सृष्टिरियं कथं प्रारभ्यते इत्यत्रापि विषये शास्त्रादिषु बहुधा विवेचितं विद्यते। तत्र दर्शन-शास्त्रे इत्थं तत्समन्वयो दृश्यते यदानन्द-विलासाविर्भावनार्थमेव सर्गोऽयमारभ्यते। सच्चिदानन्दस्वरूप एकोऽद्वितीयो योऽसौ परमेश्वरस्तत्र द्वैतभावात्मिकाया अस्याः सृष्टेः समुद्रेकविषये माण्डूक्यकारिकायामपि रमणीयो विमर्शो विलोक्यते। तथाहि—"विभूतिप्रसवं त्वन्ये मन्यन्ते सृष्टिचिन्तकाः। स्वप्नमायास्वरूपेति सृष्टिरन्यैर्विकल्पिता॥ इच्छामात्रं प्रभोः सृष्टिरिति सृष्टिविचिन्तकाः। कालात्प्रसूतिं भूतानां मन्यन्ते कालचिन्तकाः॥ भोगार्थं सृष्टिरित्यन्ये क्रीडार्थमिति चापरे। देवस्यैष स्वभावोऽयमाप्तकामस्य का स्पृहा॥" इति। अत एव श्रुतिरभिधत्ते—"यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति। यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि तथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्॥" इति। विभोः परमेश्वरस्य सत्ता सर्वव्यापिका विद्यते, अतस्तदीया शक्तिस्वरूपा प्रकृतिरपि सर्वव्यापिकेति सर्वशास्त्रसंमतः सिद्धान्तः।

योगशक्तिसे देखा है वैसे ही सृष्टिका भी आदि अन्त उन्होंने देख कर हमारे शास्त्रोंके नाना स्थानोंमें नाना प्रकारसे वर्णन किया है। सृष्टि क्यों प्रारम्भ होती है, इसके विषयमें भी शास्त्रोंमें कई प्रकारके वर्णन पाये जाते हैं, जिनका समन्वय दर्शनशास्त्रोंमें इस प्रकार है कि—आनन्दविलासके प्रकट करनेके लिये सृष्टि प्रकट होती है। सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा, जो एक और अद्वितीय हैं, उनमें द्वैतभावापन्न सृष्टि-उत्पन्न होनेके विषयमें माण्डूक्यकारिकामें एक सुन्दर विचार है; यथा—"सृष्टिके विषयमें कोई कहते हैं कि, परमात्माने अपनी विभूतिको प्रकट करनेके लिये सृष्टि रची है। दूसरेकी उक्ति है कि, जिस प्रकार विना विचारे ही स्वप्न अकस्मात् उत्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार जगत् भी अकस्मात् उत्पन्न हुआ है। तीसरा कोई कहता है कि, जगत् माया का विकाशमात्र है। चौथें की राय है कि, परमात्माकी इच्छा ही सृष्टिका कारण है। कालचिन्तनशील लोग कालसे ही भूतोंकी उत्पत्ति बताते हैं। कोई भोगार्थ और कोई परमात्माके क्रीड़ार्थ ही सृष्टिकी उत्पत्ति कहते हैं, परन्तु ये सब कल्पनायें हैं। क्योंकि आप्तकाम परमात्माको उक्त कोई भी स्पृहा स्पर्श नहीं कर सकती है, सृष्टि केवल स्वभावसे ही उत्पन्न होती है, इसमें कारण कुछ भी नहीं है।" इसी लिये वेदमें कहा है कि—"जिस प्रकार ऊर्णनाभ (मकड़ा) विना प्रयोजन ही तन्तुओंको फैलाता और सिकोड़ता रहता है, जिस प्रकार पृथ्वीमें बिना कारण ही ओषधि समूह उत्पन्न होते रहते हैं और जिस प्रकार जीवित पुरुषके केशलोम स्वतः ही निर्गत होते रहते हैं, उसी प्रकार अक्षर पुरुष ब्रह्मसे विश्वसमूह स्वयं ही उत्पन्न होते रहते हैं।" विभु परमात्माकी सत्ता सर्वत्र विद्यमान है, इसलिये उनकी शक्ति स्वरूपिणी

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सा च प्रकृतिः स्पन्दनात्मिका। यतो हि त्रिगुणात्मिकायास्तस्याः स्पन्दनात्मकः स्वभाव एव। परमात्मनश्च चित्सत्तायाः सर्वव्यापकतया जडात्मिकायां प्रकृतावेवंविध-स्वाभाविक-स्पन्दनस्य कृते सदैवावसरो विद्यते। इत्थञ्च ब्रह्मणश्चित्सत्ताश्रयेण स्पन्दनात्मिकायां ब्रह्मशक्तिस्वरूपायां महाप्रकृतौ स्वाभाविकसंक्षोभात्मक-स्पन्दनानुसारेणानन्तसृष्टिप्रवाहाविर्भावः स्वाभाविक एव। तत्र कारणान्तरस्य कस्यचिदपि नास्त्यपेक्षेति निर्विवादसिद्धम्। अतिगम्भीरस्यास्य विज्ञानस्यावगतयेऽयं सुखबोध्यो दृष्टान्तप्रकारः प्रदर्श्यते। यथा मातापित्रो रजोवीर्यसंम्मिश्रणतो गर्भे जीवस्य स्वपूर्वार्जितप्रारब्धकर्मवशतो भोगायतनं मानवपिण्डशरीरमुपजायते तथैव प्रलयगर्भे विलीय स्थितस्यैकब्रह्माण्डस्य पुनर्यदा सर्गः प्रजायते, तदा तत्र ब्रह्मणः सत्ता, तच्छक्तिरूपायास्तत्प्रकृतेश्च प्रभावः, समष्टिजीवानां कर्म चेति त्रितयं कारणं ज्ञेयम्। एवं हि कालमहिम्ना प्रलयगर्भे विलीय स्थितानामन्यान्यब्रह्माण्डानां पुनः सृष्टौ तदीयसमष्टिप्रारब्धकर्मसमूहबलमेव कारणम्। एवमेव हि अनाद्यनन्तसृष्टिप्रवाहः प्रवाहितस्तिष्ठति, परमात्मनस्तत्र काऽपि निजेच्छा न भवति निदानम्। यथोक्तं विष्णुपुराणे—"निमित्तमात्रमेवासीत् सृज्यानां सर्गकर्मणि। प्रारब्धकारिणीभूता यतो वै सृज्यशक्तयः॥ निमित्तमात्रं

प्रकृति भी सर्वत्र विद्यमान है यह सर्व शास्त्र संमत सिद्धान्त है। प्रकृति स्पन्दन-धारिणी है, अर्थात् त्रिगुणानुसार स्पन्दित होते रहना प्रकृतिका स्वभाव है और परमात्माको चित्सत्ताके सर्वव्यापी होनेसे जड़ प्रकृतिमें इस प्रकारकी स्वाभाविक स्पन्दन-क्रियाके लिये सदा ही अवकाश है। अतः ब्रह्मकी चित्सत्ताके आश्रयसे स्पन्दन-धर्मिणी ब्रह्म-शक्तिरूपिणी महाप्रकृतिमें स्वाभाविक स्पन्दनानुसार अनन्त सृष्टिका विकाश होना स्वाभाविक ही है, इसमें कारणान्तरकी कोई भी अपेक्षा नहीं होती है। इस अति गम्भीर विज्ञानको समझनेके लिये इस प्रकारका सिद्धान्त करना सुगम बोध्य होगा, कि जैसे पिताके वीर्य और माताके रजके सम्मिश्रण द्वारा जीवमें पूर्व जन्मार्जित कर्मोंके फलसे भोगायतन रूप मानव पिण्डकी उत्पत्ति माताके गर्भमें होती है, उसी प्रकार प्रलयके गर्भमें पहुँचे हुए एक ब्रह्माण्डकी पुनः सृष्टि होती है। उसमें ब्रह्मसत्ता तथा ब्रह्मप्रकृतिका प्रभाव और समष्टि जीवोंके कर्म ये ही तीन कारण हैं। इसी तरह अन्यान्य ब्रह्माण्ड भी जो काल प्रभावसे प्रलयके गर्भमें चले गये थे, उनकी समष्टि प्रारब्ध-कर्मसमूहके बलसे ही पुनः सृष्टि होती है और इस प्रकारसे अनादि अनन्त सृष्टि प्रवाह जारी रहता है। परमात्माकी अपनी ओरसे कोई भी इच्छा इसका कारण नहीं है। विष्णुपुराणमें कहा है—"सृष्टिक्रियामें परमात्मा निमित्तमात्र है। वस्तुओंकी निज निज प्रकृति ही महाप्रकृति द्वारा प्रेरित होकर सर्ग कार्यको सम्पादन करती है। ईश्वरकी निमित्तकार-

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मुक्त्वैकं नान्यत् किञ्चिदवेक्ष्यते। नीयते तपसां श्रेष्ठ! स्वशक्त्या वस्तु वस्तुताम् ॥' इति। ऋक्श्रुतौ च समुदीरितं विद्यते—"तम आसीत् तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्। तुच्छयेनाभ्व पिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिमा जायतैकम्॥" इति। छान्दोग्योपनिषदि-चापि प्रतिपादितम्—"सदेव-सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाऽद्वितीयम्। आत्मा वा इदमेवैक एवाग्र आसीन्नान्यत्किञ्चन मिषत्॥" इति ततः कथं सृष्टिरजायतेति प्रश्नस्योत्तरे श्रुतिराह—"सोऽकामयत बहु स्याम् प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत, यस्य ज्ञानमयं तपः, तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते॥" इति। इत्थञ्च ज्ञानमयतपोऽनन्तरं तत्र ब्रह्मणि द्वैतरूपस्येश्वरभावस्योद्रेकोऽभिनिविशते। ततश्च प्रलयविहीनायां ब्रह्माण्डप्रकृतौ अव्याकृतावस्थातो व्याकृतावस्था प्रजायते। इत्थं हि एकस्याद्वितीयस्य परमात्मन इच्छया तच्छक्तिरूपायाः प्रकृतेर्विकाशो जायते। तदनन्तरञ्च त्रिगुणात्मिकायाः प्रकृतेर्गुण-स्पन्दनतः क्रमेण ब्रह्माण्डसृष्टिविकाशो जायते। सृष्टेः क्रमविकाशविषये पुराणेषु दार्शनिक-विज्ञानप्रमाणितमित्थं वर्णनमुपलभ्यते, तथाहि—"गुणसाम्यात्ततस्तस्मात्तत्क्षेत्राधिष्ठितान्मुने! गुणव्यञ्जनसंभूतिः सर्गकाले द्विजोत्तम॥ प्रधानतत्त्वमुद्भूतं महान्तं तत्समावृणोत्

णताके सिवाय इसमें और किसी की भी अपेक्षा नहीं है। हे तपस्वियोंमें श्रेष्ठ अपनी शक्तिसे ही वस्तु अपने रूपमें लायी जाती है।" ऋग्वेदमें कहा है कि—"प्रलय कालमें समस्त ब्रह्माण्डमें प्रगाढ़ तम था, प्रकृति ब्रह्ममें विलीन थी, सर्वत्र तमसे आच्छादित था और कुछ भी नहीं था।" छान्दो-ग्योपनिषदमें लिखा है—कि "सृष्टिके पहले अद्वितीय ब्रह्म एक ही था, व्यापारवान् और कोई भी वस्तु नही थी।" इसके वाद सृष्टि कैसे हुई, इस प्रश्नके उत्तरमें श्रुतिने कहा है—"परमात्माने इच्छा की कि मैं एकसे बहुत हो जाऊँ और प्रजाओंकी सृष्टि करूँ। इस प्रकार इच्छा करके परमात्माने तप किया। उनका तप ज्ञान रूप ही है। साधारण तपश्चर्या नहीं है। फिर तपसे ब्रह्म अर्थात् प्रकृति परिणामिनी हुई और उससे अन्नकी उत्पत्ति हुई।" इस प्रकार ज्ञानमय तपके अनन्तर ब्रह्ममें द्वैतरूपी ईश्वर भावका अभिनिवेश हुआ। जिससे प्रलय-विलीन ब्रह्माण्ड प्रकृतिमें अव्याकृतसे व्याकृतावस्थाकी सूचना हुई। इस तरहसे अद्वितीय परमात्माकी इच्छासे उनकी शक्ति रूपिणी प्रकृतिका विकाश होता है और तदनन्तर त्रिगुणमयी प्रकृतिके गुणस्पन्दन द्वारा क्रमशः ब्रह्माण्ड सृष्टिका विकाश होता है। सृष्टिके क्रम विकाशके विषयमें पुराणोंमें इस प्रकारसे वर्णन पाया जाता है, यह वर्णन दार्शनिक विज्ञानसे भी सिद्ध है। "हे द्विजश्रेष्ठ! सर्ग कालके प्राप्त होने पर गुणोंकी साम्यावस्थारूप प्रधान जब विष्णुके क्षेत्ररूपसे अधिष्ठित हुआ तो उससे महत्तत्त्वकी उत्पत्ति हुई। उत्पन्न हुए महान्को प्रधानतत्त्वने आवृत किया, महत्तत्त्व

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सात्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधा महान् ॥ प्रधानतत्त्वेन समं त्वचा वीजमिवावृतम् । वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः ॥ त्रिविधोऽयमहङ्कारो महत्तत्वादजायत । भूतेन्द्रियाणां हेतुस्स त्रिगुणत्वान्महामुने ॥ यथा प्रधानेन महान् महता स तथावृतः । भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दतन्मात्रकन्ततः ॥ ससर्ज शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दलक्षणम् । शब्दमात्रन्तथाकाशं भूतादिः स समावृणोत् ॥ आकाशस्तु विकुर्वाणः स्पर्शमात्रं ससर्ज ह । वलवानभवद् वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः ॥ आकाशं शब्दमात्रन्तु स्पर्शमात्रं समावृणोत् । ततो वायुर्विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह ॥ ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते । स्पर्शमात्रन्तु वै वायू रूपमात्रं समावृणोत् ॥ ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह । सम्भवन्ति ततोऽम्भांसि रसाधाराणि तानि च । रसमात्राणि चाम्भांसि रूपमात्रं समावृणोत् । विकुर्वाणानि चाम्भांसि गन्धमात्रं ससर्जिरे ॥ सङ्घातो जायते तस्मात्तस्य गन्धो गुणो मतः । तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रं तेन तन्मात्रता स्मृता ॥ तन्मात्राण्यविशेषाणि

सात्विक राजस और तामस भेदसे तीन प्रकारका है। किन्तु जिस प्रकार बीज छिलकेसे समभावसे ढँका रहता है, वैसे ही यह त्रिविध महत्तत्त्व प्रधान तत्त्वसे सब ओर से व्याप्त है, फिर महत्तत्त्वसे हीं वैकारिक (सात्त्विक) तैजस (राजस) भूतादि रूप तामस तीन प्रकारका अहंकार उत्पन्न हुआ। हे महामुने ! यह त्रिगुणात्मक होनेसे भूत और इन्द्रिय आदिका कारण है। प्रधानसे जैसे महत्तत्त्व व्याप्त है वैसे ही महत्तत्त्वसे वह (अहङ्कार) व्याप्त है। भूतादि नामक तामस अहङ्कारने विकृत होकर शब्द तन्मात्रा और उससे शब्द गुण वाले आकाशकी रचना की। उस भूतादि नामक अहंकारने शब्द तन्मात्रारूप आकाशको व्याप्त किया। फिर शब्द तन्मात्रारूप आकाशने विकृत होकर स्पर्श तन्मात्राको रचा। उस स्पर्श तन्मात्रासे वलवान् वायु हुआ, उसका गुण स्पर्श माना गया है। शब्द-तन्मात्रारूप आकाशने स्पर्शतन्मात्रा वाले वायुको आवृत किया। फिर (स्पर्शतन्मात्रारूप) वायुने विकृत होकर रूपतन्मात्राकी सृष्टि की। उस (रूपतन्मात्रा) से तेज उत्पन्न हुआ। उसका गुण रूप कहा जाता है। स्पर्शतन्मात्रारूप वायुने रूपतन्मात्रा वाले तेजको आवृत किया। फिर (रूपतन्मात्रामय) तेजने भी विकृत होकर रसतन्मात्राकी रचना की। उस (रसतन्मात्रा) से रस गुणवाला जल हुआ। रसतन्मात्रावाले जलको रूपतन्मात्रामय तेजने आवृत किया। (रसतन्मात्रारूप) जलने विकारको प्राप्त होकर गन्धतन्मात्राकी सृष्टि की। उससे पृथ्वी उत्पन्न हुई। जिसका गुण गन्ध माना जाता है। उन उन आकाशादि भूतोंमें तन्मात्रा है [अर्थात् केवल उनके गुण शब्दादि हीं हैं]

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ह्यविशेषास्ततो हि ते । न शान्ता नापि घोरास्ते न मूढाश्चाविशेषिणः ॥ भूततन्मात्रसर्गोऽयमहङ्कारात्तु तामसात् । तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश ॥ एकादशं मनश्चात्र देवा वैकारिकाः स्मृताः । त्वक् चक्षुर्नासिका जिह्वा श्रोत्रमत्र च पञ्चमम् ॥ शब्दादीनामवाप्त्यर्थं बुद्धियुक्तानि वै द्विज । पायूपस्थौ करौ पादौ वाक् च मैत्रेय पञ्चमी ॥ विसर्गशिल्पगत्युक्ति कर्म तेषाञ्च कथ्यते । आकाशवायुतेजांसि सलिलं पृथिवी तथा ॥ शब्दादिभिर्गुणैर्ब्रह्मन् संयुक्तान्युत्तरोत्तरैः । शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः ॥ नानावीर्याः पृथग्भूतास्ततस्ते संहतिं विना । नाशक्नुवन्प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः ॥ समेत्यान्योऽन्यसंयोगं परस्परसमाश्रयाः । एकसंघातलक्ष्याश्च सम्प्राप्यैक्यमशेषतः ॥ पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च प्रधानानुग्रहेण च । महदाद्या विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते ॥ तत्क्रमेण विवृद्धं सज्जलबुद्बुदवत्समम् । भूतेभ्योऽण्डं महाबुद्धे महत्तदुदकेशयम् ॥ प्राकृतं ब्रह्मरूपस्य विष्णोः स्थानमनुत्तमम् । तत्राव्यक्तस्वरूपोऽसौ

इस लिये वे तन्मात्रा [गुणरूप] ही कहे गये हैं। तन्मात्राओंमें विशेष भाव नहीं हैं। इस लिये उनकी अविशेष संज्ञा है। वे अविशेष तन्मात्रायें शान्त, घोर, अथवा मूढ़ नहीं हैं [अर्थात् उनका सुख दुःख या मोहरूपसे अनुभव नहीं हो सकता] इस प्रकार तामस अहङ्कार से यह भूततन्मात्रारूप सर्ग हुआ। इन्द्रियाँ तैजस अर्थात् राजस अहङ्कार से और उनके अधिष्ठाता दशदेवता वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहङ्कारसे उत्पन्न हुए कहे जाते हैं। इस प्रकार इन्द्रियोंके अधिष्ठाता दशदेवता और ग्यारहवाँ मन वैकारिक (सात्त्विक) हैं। हे द्विज ! त्वक्, चक्षु, नासिका, जिह्वा, और श्रोत्र ये पाँचो बुद्धिकी सहायतासे शब्दादि विषयों को ग्रहण करने वाली पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। हे मैत्रेय ! पायु (गुदा) उपस्थ (लिङ्ग) हस्त, पाद, और वाक् ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इनके कर्म (मल मूत्रका) त्याग, शिल्प, गति, और वचन वतलाये जाते हैं। आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी ये पाँचो भूत उत्तरोत्तर क्रमशः शब्द स्पर्श आदि पांच गुणोंसे युक्त हैं। ये पाचों भूत शान्त घोर और मूढ़ हैं अर्थात् सुख दुःख मोह युक्त हैं। अतः ये विशेष कहलाते हैं। इन भूतोंमें पृथक् पृथक् नाना शक्तियाँ हैं। अतः वे परस्पर पूर्णतया मिले विना संसार की रचना नहीं कर सकते। इस लिये एक दूसरेके आश्रयसे रहने वाले और एकही संघात की उत्पत्तिके लक्ष्यवाले महत्तत्त्वसे लेकर विशेष पर्य्यन्त प्रकृतिके इन सभी विकारोंने पुरुषसे अधिष्ठित होनेके कारण परस्पर मिलकर सर्वथा एक होकर प्रधान तत्त्व के अनुग्रहसे अण्डकी उत्पत्ति की। हे महाबुद्धे ! जलके बुलबुलेके समान क्रमशः भूतोंसे बढ़ा हुआ वह गोलाकार और जल पर स्थित महान अण्ड ब्रह्म (हिरण्यगर्भ) रूप विष्णुका अति

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्यक्तरूपो जगत्पतिः ॥ विष्णुर्ब्रह्मस्वरूपेण स्वयमेव व्यवस्थितः। मेरुरुल्वमभूत्तस्य जरायुश्च महीधराः ॥ गर्भोदकं समुद्राश्च तस्यासन् सुमहात्मनः। साद्रिद्वीपसमुद्राश्च सज्योतिर्लोकसंग्रहः। तस्मिन्नण्डेऽभवद्विप्र ! सदेवासुरमानुषः ॥ वारिवह्न्यनिलाकाशैस्ततो भूतादिना बहिः। वृतं दशगुणैरण्डं भूतादिर्महता तथा ॥ अव्यक्तेनावृतो ब्रह्मंस्तैः सर्वैः सहितो महान्। एभिरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतै र्वृतम् ॥ नारिकेलफलस्यान्तर्बीजं बाह्यदलैरिव। जुषन् रजोगुणं तत्र स्वयं सर्वेश्वरो हरिः ॥ ब्रह्मा भूत्वाऽस्य जगतो विसृष्टौ संप्रवर्त्तते। सृष्टं च पात्यनु युगं यावत्कल्पविकल्पना ॥ सत्त्वभृद् भगवान् विष्णुरप्रमेयपराक्रमः ॥ तमोद्रेकी च कल्पान्ते रुद्ररूपी जनार्दनः। मैत्रेयाखिलभूतानि भक्षयत्यतिदारुणः ॥ भक्षयित्वा च भूतानि जगत्येकार्णवीकृते। नागपर्य्यङ्कशयने शेते च परमेश्वरः ॥ प्रबुद्धश्च पुनः सृष्टिं करोति ब्रह्मरूपधृक्। सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्। स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः' इति ॥

उत्तम प्राकृत आधार हुआ। उसमें वे अव्यक्त स्वरूप जगत्पति विष्णु व्यक्त हिरण्यगर्भ रूपसे स्वयं ही विराजमान हुए। उन महात्मा हिरण्यगर्भ का सुमेरु उल्व (गर्भ को ढ़कने वाली झिल्ली) अन्य पर्वत जरायु (गर्भाशय) तथा समुद्र गर्भाशयस्थ रस था। हे विप्र ! उस अण्डमें ही पर्वत और द्वीपादिसे सहित समुद्र, ग्रहगणसे सहित सम्पूर्ण लोक तथा देव असुर और मनुष्य आदि विविध प्राणिवर्ग प्रगट हुए। वह अण्ड पूर्व पूर्व की अपेक्षा दश दश गुण अधिक जल, अग्नि, वायु, आकाश और भूतादि अर्थात् तामस अहङ्कारसे आवृत है। तथा भूतादि महत्तत्व से घिरा हुआ है। और इन सबके सहित वह महत्तत्त्व भी अव्यक्त प्रधानसे आवृत है। इस प्रकार जैसे नरियलके फलका भीतरी बीज बाहरसे कितने ही छिलकोंसे ढ़का रहता है। वैसे ही यह अण्ड इन सात प्राकृत आवरणोंसे घिरा हुआ है। उसमें उपस्थित हुए स्वयं विश्वेश्वर भगवान विष्णु ब्रह्मा होकर रजोगुणका आश्रय लेकर इस संसार की रचनामें प्रवृत्त होते हैं। तथा रचना हो जाने पर सत्त्व गुण विशिष्ट अतुल पराक्रमी भगवान् विष्णु उसका कल्पान्त पर्य्यन्त युग युगमें पालन करते हैं। हे मैत्रेय ! फिर कल्पका अन्त होने पर अति दारुण तमःप्रधान रुद्ररूप धारण करके वे जनार्दन विष्णु ही समस्त भूतोंका भक्षण कर लेते हैं। इस प्रकार समस्त भूतोंका भक्षण कर संसार को जलमय करके वे परमेश्वर शेष शय्यापर शयन करते हैं। जगने पर ब्रह्मा रूप होकर वे फिर जगत् की रचना करते हैं। वह एकही भगवान् जनार्दन जगत् की सृष्टि स्थिति और संहार के लिये ब्रह्मा, विष्णु, और शिव इन तीन संज्ञाओं को धारण करते हैं।" यही ब्रह्म और

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अयमेव ब्रह्मणस्तत्प्रकृतेरघटनघटनापटीयस्या जगद्धात्र्या महामायायाश्च प्रभावतः त्रिगुणविकारं द्वारीकृत्य पाञ्चभौतिकब्रह्माण्डपिण्डात्मकसमष्टिव्यष्टिसर्गस्वरूपस्य दार्शनिकदिङ्निर्देशः। अस्याः सृष्टेर्दार्शनिकदृष्ट्या स्थूलसूक्ष्मकारणभेदेनैव त्रयो विभागा उच्यन्ते। तान्येव विभागत्रयाणि अन्नमयप्राणमय-मनोमयविज्ञानमयानन्दमयाख्यपञ्चकोशसंज्ञया पञ्चधा विभज्यन्ते। त्रिगुणात्मकस्यास्य विश्वस्य यथास्थूलसूक्ष्मकारणशरीरात्मना त्रीण्यङ्गानि व्यापकानि सन्ति तथैव पञ्चकोशा अपीमे सर्वव्यापका उच्यन्ते। मानुष्यां दैव्यां च सृष्टौ सर्वत्रैव पञ्चापि कोशा व्यापृताः सन्ति। मानवपिण्डेषु चान्तर्दृष्टिसम्पन्ना विद्वांसस्तु स्थूलसूक्ष्मकारणशरीराणां पञ्चकोशानाञ्च स्थितिप्रमाणं स्वयमनुभवितुमर्हन्ति। पञ्चकोशानां दैवे जगति मृत्युलोके च समानरूपेण व्यापकतया मानवपिण्डकर्मणां सङ्कलनादिकं सर्वमेव दैवे जगति त्वरितमुपतिष्ठते। उपर्य्युक्ताधिभौतिकसृष्टिप्रकरणवर्णनन्तु वेदशास्त्र-पुराणादिषु बहुधा विभिन्नरूपतः प्रतीयते, किन्तु पर्य्यालोचनया सर्वस्यापि सारांश एक एवास्ति। सृष्टिसम्बन्धविमर्शे दैवस्य जगतः सृष्टिसारांशोऽयमवगन्तव्यो यत् ब्रह्माण्डस्य सृष्टिवेलायां मातृगर्भतो जरायुजाच्छन्नमनुष्यपिण्डवदेव ब्रह्माण्डगोलकः सृष्टेरादावुपजायते। तत्र ब्रह्मविष्णुशिवाख्यया मूर्त्तित्रयाविर्भावोऽपि जायते। तत्र प्रथमं ब्रह्मदेवो मानसीं सृष्टिमेव तनुते। तत्र

उनकी प्रकृति अघटितघटनापटीयसी जगद्धात्री महामायाके प्रभावसे त्रिगुण विकारद्वारा पाञ्चभौतिक ब्रह्माण्ड और पिण्डरूपात्मक समष्टि और व्यष्टि सृष्टि स्वरूपका दार्शनिक दिग्दर्शन है। इस सृष्टिके दार्शनिक दृष्टिसे स्थूल सूक्ष्म और कारण इस प्रकारसे तीन विभाग माने गये हैं और इन्हीं तीनों विभागों को अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय और आनन्दमय इन पाँचकोषोंके नामसे पाँच भागों में भी विभक्त किया जाता है। त्रिगुणात्मक विश्वका जैसे स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर रूपसे तीनों अङ्ग व्यापक हैं, ऐसे ही पञ्चकोश भी सर्व व्यापक हैं। मानुषी सृष्टि और दैवी सृष्टिमें सब जगह पञ्च कोश व्यापक हैं। मानव पिण्डमें स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर और पञ्चकोशों का प्रमाण अन्तर्दृष्टि सम्पन्न व्यक्ति को मिल सकता है। पञ्चकोशके दैवी जगत् और मृत्युलोकमें समान रूपसे व्यापक होनेसे मानव पिण्डके कर्म आदिका सब हिसाब दैवी जगत्में पहुंच जाता है। ऊपर कथित आधिभौतिक सृष्टि प्रकरण का वर्णन वेद और शास्त्रोंमें नाना प्रकारसे आया, है किन्तु सबका सारांश एक ही है। साथ ही साथ सृष्टिका सारांश यह है कि जैसे माताके गर्भमें जरायुजसे घिरा हुआ मनुष्य पिण्ड उत्पन्न होता है, वैसे ही सृष्टिकी आदि अवस्थामें ब्रह्माण्डका अण्ड गोलक उत्पन्न होता है। उसमें श्रीब्रह्मा श्रीविष्णु श्रीशिव रूपी त्रिमूर्तिका आविर्भाव होता है। ब्रह्माजी

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तदीयप्रथमसृष्टेः सर्वपूर्णतया पूर्णज्ञानशालिनां सनकसनन्दनसनातनादीनामेव पूर्णावयवा दैवी सृष्टिः पूर्वं प्रादुर्भवति। ते हि सनकादय आध्यात्मिके जगति पूर्णोन्नतिशालितया रजोगुणलेशसम्पर्क-शून्यतया च मानसीमपि सृष्टिं कर्तुं नेच्छन्तीति शास्त्रादिषु उक्तमस्ति। तथाहि--महाभारते समाम्नायते--"आदिदेवसमुद्भूता ब्रह्ममूलाक्षयाव्यया। सा सृष्टिर्मानसी नाम धर्मतन्त्र-परायणा॥ प्रजापतिरिदं सर्वं मनसैवासृजत्प्रभुः। तथैव देवा ऋषयः तपसा प्रतिपेदिरे" इति॥ पुराणरहस्येऽप्येतदेव निश्चितं यत्--"भगवतो ब्रह्मणः प्रादुर्भावेन सहैव महतः सृष्टिरारभ्यते। तदानीमेव विराड्ब्रह्मणोऽन्तःकरणमुत्पद्यते, यद्धि एकस्य ब्रह्माण्डस्य समष्टिरूपमन्तः-करणमुच्यते। तस्य च महत्तत्त्वमुपादानं भवति। ब्रह्मा च तस्याधिदैवत्वेन प्रख्याप्यते। ततश्च सनकसनन्दनप्रभृतीनां पूर्णावयवानां देवानां सृष्टिर्जायते। ततश्च प्रजापतिनाम्नां देवानां सृष्टिःसमुद्भवति। तदनन्तरं तैरेव मानस्याः सृष्टेर्विस्तारो विधीयते। ततश्च दम्पतिसंयोग-जन्याथा मैथुनसृष्टेरुद्गमो भवति, या हि वैजी सृष्टिरित्यपि संज्ञायते। इत्थमेव सृष्टिविस्तारो विजृम्भते"। इति। सृष्टेर्धाराद्वयं स्वाभाविकं विद्यते। एका जडात्मिका द्वितीया चेतनात्मिके-ति। जड़ं हि चेतनसाहाय्यमन्तरा कार्य्यकृन्न भवति। उभयमपि सहैव निसर्गतः

मनसी सृष्टि करते हैं उनकी पहली सृष्टि पूर्ण होनेके कारण पूर्णज्ञानसे युक्त सनक सनन्दन सनातन आदिकोंकी पूर्णावयय दैवी सृष्टि पहले हाती है। उन लोगोंने आध्यात्मिक जगत्में पूर्णोन्नति शील होनेके कारण और रजोगुणके लेश मात्रसे भी सम्पर्क शून्य होनेके कारण मानसी सृष्टि भी करना नहीं चाहा। यह शास्त्रोंमें लिखा है। महाभारतमें लिखा है कि, "आदि देवसे पहले पहल सृष्टि उत्पन्न होती है। उसके मूलमे ब्रह्माजी प्रगट होते हैं। वह अक्षय और अव्यय मानसी सृष्टि कहलाती है। जो धर्म प्रधान ही होती है। प्रजापति ब्रह्माजीने पहले पहल मनसे ही इस संसारकी सृष्टि की। बादको तपस्या द्वारा देवता ऋषि की सृष्टि हुई।" पुराणरहस्यमे भी लिखा है "ब्रह्मदेवके प्रादुर्भावके साथ ही महत्तत्त्वकी सृष्टि हो जाती है। उसी समय विराड् ब्रह्मका अन्तःकरण उत्पन्न होता है। जिसको एक ब्रह्माण्डका समष्टि अन्तःकरण कहा जाता है। उसका मूल कारण महत्तत्त्व माना गया है। ब्रह्मा उसका अधिदेव कहे जाते हैं। उसके बाद सनक सनन्दन सनातन प्रभृति पूर्ण अवयव वाले देवोंकी सृष्टि होती है। उसके बाद प्रजापति नामक देवोंकी सृष्टि होती है। तब वे ही लोग मानसी सृष्टिका विस्तार करते हैं। उसके बाद स्त्री पुरुष संयोगज मैथुनी सृष्टिकी धारा चलती है। जिसे वैजी सृष्टि भी कहते हैं। इसी प्रकार सृष्टिका विस्तार होता रहता है।" सृष्टिके दो स्तर स्वाभाविक हैं। एक जड़ात्मक दूसरा चेतनात्मक। जड़ विना चेतनकी सहायताके कार्य्य नहीं कर सकता है। अतः

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रादुरभवत्। महत्तत्त्वेन सह देवादीनामप्युत्पत्तिः स्वाभाविक्येव। इत्यत एव प्राकृतिकस्पन्दनत एकतो जड़ात्मिकायाः सृष्टेरपरतश्च चेतनसृष्टेराविर्भावो जायते। चेतनसृष्टिर्हि दैवशक्तिसम्पन्ना भवति। जड़सृष्टेर्वर्णनन्तु शास्त्रादिषु यथोपलभ्यते तदत्रोपरि निर्दिष्टमेवास्ति। चेतनसम्बन्धिनी सृष्टिर्हि जीवमयी जायते। याहि शास्त्रादिषु पुरुषभावापन्नसृष्टिरप्युच्यते। जीवपुरुषशब्दौ पर्य्यायवाचकौ स्तः। अस्यैव चेतनमयस्तरस्य विषये वेदपुराणादिषु परोक्षभाषया विविधान्यत्यलौकिकानि वर्णनानि यत्र तत्रोपलभ्यन्ते। तेषां संक्षिप्तः सारोऽयमेवास्ति, यत् भगवतः स्रष्टृस्वरूपस्य ब्रह्मण इच्छया याहि प्रथमा दैवी सृष्टिरभूत् सा हि पूर्णा समजनि। तस्यां हि पूर्णावयवसृष्टौ प्रजापतिः सनकादीन् पूर्णावयवान् ससर्ज; तथाहि—"सनकश्च सनन्दश्च सनातनमथात्मभूः। सनत्कुमारञ्च मूनीन्निष्क्रियानूर्ध्वरेतसः।" इति। एते हि पूर्णज्ञानिन आत्मारामाश्चासन्निति ब्रह्मणः सृष्टिविवृद्ध्यर्थं प्राप्ताज्ञा अपि ते सृष्टिकर्म वर्द्धयितुं नाशक्नुवन्। अयमेव सृष्टेः प्रथमः स्तरः समाम्नायते। ततश्च ब्रह्मणो द्वितीयेच्छया यो हि सृष्टेर्द्वितीयः स्तरः समुत्पन्नः स एव हि प्रजापतिसृष्टिस्तरः समुद्घोष्यते। तेषां प्रजापतीनां संज्ञाऽप्यधो निर्दिष्टा विद्यते; तथाहि—"मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। भृगुर्वशिष्ठो दक्षश्च

दोनोंकी साथ ही साथ उत्पत्ति होना स्वाभाविक ही है। महत्त्व आदिके साथ ही साथ देवताओंका भी प्रगट होना स्वाभाविक है। इसकारण प्राकृतिक स्पन्दनसे एक ओर जड़सृष्टि और दूसरी ओर चेतनसृष्टि प्रकट हुई थी। चेतनसृष्टि सब दैवी शक्तियोंसे युक्त है। जड़ सृष्टिका वर्णन शास्त्रोंमें जैसा पाया जाता है सो ऊपर कहा गया है। चेतन सम्बन्धी सृष्टि जीवमयी हुई। जिसको शास्त्रोंमें पुरुष भावापन्न सृष्टि भी कहा गया है। जीव और पुरुष ये पर्य्याय शब्द हैं। इस चेतन स्तरके विषयमें परोक्ष भाषाके द्वारा वेद और पुराणादि शास्त्रोंमें नानाप्रकारसे अति अलौकिक वर्णन पाये जाते हैं। उनका सारांश यह है कि भगवान् सृष्टिकर्त्ता रूप ब्रह्माजीकी इच्छासे जो प्रथम दैवी सृष्टि हुई सो पूर्ण सृष्टि हुई। उस पूर्णावयव सृष्टिमें सनक सनन्दन सनातन और सनत्कुमार नामके चार निष्क्रिय तथा ऊर्ध्वरेता मुनीश्वर उत्पन्न हुए। ये पूर्ण ज्ञान युक्त होनेके कारण और आत्माराम होनेके कारण भगवान् ब्रह्माजी की सृष्टि बढ़ाने की आज्ञा होने पर भी उनसे सृष्टिकार्य आगे बढ़ न सका। यह सृष्टि का प्रथम स्तर है। इसके बाद श्री भगवान् ब्रह्माजीकी दूसरी बार इच्छा करनेसे जो सृष्टि का दूसरा स्तर उत्पन्न हुआ वह प्रजापतियों का स्तर माना गया। उनके नाम ये हैं—"मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वशिष्ठ, दक्ष और

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दशमस्तत्र नारदः" ॥ इति। इमे हि देवाः प्रजापतयोऽभिधीयन्ते। अत एव ते स्वीयमानसशक्तिबलेन सर्वप्रकारकानपि जीवान्सर्गादौ ससृजुः। तदानीं हि देवपिण्डमानवपिण्डसहजपिण्डधारिणश्चतुर्विधाश्चापि केचन भूतसंघा जातास्तेऽपि पूर्णावयवा एव जज्ञिरे। फलतो ये केऽपि स्त्रीपुंसादयः समुद्भूतास्ते सर्व एव पूर्णावयवा जज्ञिरे। अयं हि सृष्टेस्तृतीयस्तरो ज्ञेयः। सर्वेषां जीवानां पूर्णावयवत्वात् पुनः स्त्रीपुरुषसंयोगजा या मैथुनी सृष्टिः समारब्धा सा सर्वापि बैजी सृष्टिरेवाभूत्। इत्थश्च सृष्टिप्रवाहः प्रवर्द्धितः समजनि। अयं हि सृष्टेश्चतुर्थः स्तरः। भगवतो ब्रह्मणो मानसी सृष्टिः। ततः प्रजापतीनां मानसी सृष्टिः। तदनन्तरं देवदानवमानवचतुर्विधभूतसंघादीनां सृष्टिः जाता। तदानीं ये केऽपि मानवा जज्ञिरे ते सर्वेऽपि पूर्णावयवाः समुद्भूताः। अतश्च तदानीं मनुष्यसृष्टेः पूर्णावयवतया सर्वेऽपि मानवा ब्राह्मणा एव समुत्पन्नाः यथा चोक्तं-महाभारते "न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्। ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्" इति। प्राथमिक्यां हि सृष्टौ चतुर्णां वर्णानां प्रार्थक्यं नासीत्। सर्वं हि जगत्तदानीं ब्राह्मणमयमेवासीत्। इयं हि मानवी सृष्टिर्मनुष्याणां पूर्णतया ब्राह्मणमयी एव समजनि। यतो हि सृष्टेरस्मिन् स्तरे सत्त्वगुणस्यैव पूर्णविकाशत्वात्, मानवानां पूर्णावयवत्वाच्च सर्वे ब्राह्मणा एव प्राथमिक्यां सृष्टौ संजज्ञिरे। किञ्चित्कालानन्तरमुत्तरोत्तरं सृष्टिस्तरपातात्

दसवें नारद जी।" ये सब देवता प्रजापति कहाते हैं। इन्होंने अपनी मानस शक्तिसे सब श्रेणी की जीवसृष्टि को सृजन किया। उस समय देव पिण्डधारी और सहजपिण्डधारी चतुर्विधभूत संघ जो कुछ उत्पन्न हुआ सब पूर्णावयव उत्पन्न हुआ अर्थात् स्त्री पुरुष आदि जो कुछ उत्पन्न हुए सो सब पूर्णावयव उत्पन्न हुए। यह सृष्टि का तीसरा स्तर है। फिर स्त्री पुरुषके सङ्गसे मैथुनी सृष्टि हुई और सृष्टिप्रवाह बढ़ने लगा। यही सृष्टि का चौथा स्तर है। भगवान् ब्रह्माजी की मानस सृष्टि तदनन्तर देव, दानव, मानव, चतुर्विध भूतसंघ आदि की सृष्टि हुई। उस समय जो मनुष्य जनमे वे सब पूर्णावयव हुए। इस कारण उस समय मनुष्य सृष्टिके पूर्णावयव होने के कारण सब मनुष्य ब्राह्मण हुए। यथा श्रीमहाभारतमें लिखा है कि, "प्रथम सृष्टिमें चातुर्वर्ण्य की पृथकता नहीं थी समस्त जगत् ब्राह्मणमयही था। बाद कर्मसे अलग २ हुआ।" मनुष्यों की सृष्टिके पूर्ण होनेके कारण सब ब्राह्मण हुए। क्योंकि सृष्टिके स्तरमें सत्त्वगुणका पूरा विकाश रहने के और मनुष्य के पूर्णावयव होने के कारण सब ब्राह्मण हुए। कुछ कालके अनन्तर सृष्टिका स्तर और नीचे गिरा

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुणकर्मसाङ्कर्य्यदोषेण चतस्रो जातयः क्रमेण सम्भूताः। तथाहि—सत्त्वगुणप्रधानाः ब्राह्मणाः, सत्त्वरजःप्रधानाः क्षत्रियाः, तमोरजःप्रधाना वैश्याः, तमःप्रधानास्तु शूद्राः। तदानीं ब्रह्मदेवः सृष्टिमिमामधोमुखीं वीक्ष्य निजमानसपुत्रं मनुं भगवन्तमिह संप्रेष्य वर्णाश्रमशृङ्खलां सुदृढीकारयामास। वर्णाश्रमशृङ्खलातोऽधो गच्छन् सृष्टिवेगः कथं निरुध्यत इति परोक्षभाषया श्रीशम्भुगीतायामौपनिषदवर्णनमुपलभ्यते। तथाहि—"अत्रैकोपनिषद्दृश्यमन्तिके वः स्वधाभुजः॥ गुह्यं प्रकाशयेऽत्यन्तमद्भुतं तत्प्रपश्यत॥ श्यामायाः प्रकृतेर्मे स्तो द्वे रूपे परमाद्भुते। यतः सैव जड़ा जीवभूता चैतन्यमय्यपि॥ अज्ञानपूर्णरूपेण जड़रूपं धरन्त्यसौ। सृष्टिं प्रकाशयेच्छश्वन्नात्र कश्चन संशयः॥ असौ चैतन्यपूर्णा च भूत्वा स्रोतस्विनी मम। स्वस्वरूपात्मके नित्यं पारावारे विशत्यहो॥ सरिन्निर्गत्य चिद्रूपा सा महाद्रेर्जड़ात्मकात्। उद्भिज्जे स्वेदजे चैवमण्डजे च जरायुजे॥ सलीलं खातरूपेऽलं प्रवहन्ती स्वधाभुजः। मर्त्यलोकाधित्यकायां निर्बाधं व्रजति स्वयम्॥ तस्या अधित्यकाया हि निम्नस्थाश्चैकपार्श्वतः। उपत्यका महत्यश्च विद्यन्ते गह्वरादयः॥ यत्र तस्याः पवित्रायास्तरङ्गिण्या जलं स्वतः। स्थाने स्थाने वहन्नित्यं निर्गच्छति स्वभावतः॥ अव्याहतश्च नीरन्ध्रमविच्छिन्नं निरापदम्।

और गुण कर्मसङ्कर जाति होजाने से क्रमशः मनुष्य सृष्टि चार तरहकी वन गई। सत्त्वगुण प्रधान ब्राह्मण, सत्वरजः प्रधान क्षत्रिय, रजःतमःप्रधान वैश्य और तमःप्रधान शूद्र। तब भगवान् ब्रह्माजीने सृष्टि को क्रमशः नीचे गिरती हुई देखकर अपने मानसपुत्र भगवान् मनुजीको भेजकर मनुष्यलोकमें वर्णाश्रम व्यवस्था वन्धवाई। वर्णाश्रम शृङ्खलाके द्वारा वह अधोगामी वेग कैसे रुकता है, उसका औपनिषदिक दृश्य श्रीशम्भुगीतामें परोक्षभाषाके द्वारा निम्नलिखित रूपसे वर्णित किया है कि "हे पितृगण! इस सम्बन्धसे मैं उपनिषद्का एक अद्भुत रहस्यपूर्ण दृश्य आपके सामने प्रगट करता हूं। देखो मेरी श्यामा प्रकृतिके दो रूप हैं। वही जड़रूपा है और वही जीवभूता चेतनमयी है। वह अज्ञानपूर्ण रूपमें जड़रूप धारण करके सदा सृष्टिको प्रकट करती है और चेतनमयी स्रोतस्विनी होकर मेरे स्वस्वरूप पारावारमें प्रवेश करती है। वह चिन्मयी नदी जड़मय महापर्वतसे निकलकर प्रथम उद्भिज, तदनन्तर स्वेदज, तदनन्तर अण्डज तदनन्तर जरायुज नामधारी खातमें सरलतासे वहती हुई मनुष्यलोकरूपी अधित्यका में पहुंचती है। उस अधित्यकाके नीचे महती उपत्यकायें और गह्वर आदि विद्यमान हैं। जिनमें उस पवित्र तरङ्गिणीका जल स्थान स्थान पर स्वतः ही वह जाया करता है। हे पितृगण! उस स्रोतको अप्रतिहत, निरन्ध्र और अविछिन्न

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्रोतस्तन्नितरां कृत्वा नदीधारां धरातले ॥ विधातुं सरलां सौम्यामष्ट वन्धाः स्वधाभुजः । धर्म्मा वर्णाश्रमा एव निर्मिता नात्र संशयः ॥ त्रिलोकपावनी दिव्या सा नदी सुगमं हितम् । पन्थानमवलम्ब्यैव परमानन्दलब्धये ॥ मयि नित्यं प्रकुर्वाणा प्रवेशं राजतेतराम् । नैवात्र विस्मयः कार्य्यो भवद्भिः पितृपुङ्गवाः ॥ निर्ज्जरा निखिलास्तस्यां नद्यामानन्दपूर्वकम् । सर्वदैवावगाहन्ते लभन्तेऽभ्युदयञ्च ते ॥ उभयोस्तटयोस्तस्याः समासीना महर्षयः । ब्रह्मध्याने सदा मग्ना यान्ति निःश्रेयसं पदम् ॥ यूयं दार्ढ्याय वन्धानां तेषाञ्चैव निरन्तरम् । रक्षितुं तान् प्रवर्त्तध्वे पार्श्वेषामुपस्थिताः ॥ भवतामत्र कार्य्ये च विश्वमङ्गलकारके । सदाचारिद्विजाः सन्ति सत्यो नार्य्यः सहायिकाः" इति ॥ भगवता शम्भुना हि स्वमुखतः पितृगणमङ्गलकामनया प्रकाशितेनानेन दार्शनिकतत्त्वेन बुद्धिमतां मानवानामिदं ज्ञानं स्पष्टमेवोपजायते यद्-वर्णाश्रमधर्ममर्य्यादया हि सृष्टिविकाशस्याधोगामी स्रोतःप्रवाहः कीदृङ् निरुध्यते, कथं च आर्यजातेः शाश्वतिकाऽभ्युदयसम्पादनपूर्विका चिरजीवित्वरक्षा क्रियत इति । उपर्य्युक्त-वर्णनप्रस्तावेन बुधानां चेतसि दैवमानससृष्टिसमन्विताया ब्रह्माण्डसृष्टेः किञ्चित्स्वरूप-प्रकाशस्तु भवत्येव । यद्यपि सृष्टितत्त्वविज्ञानमिदमतिगहनं विद्यते, शास्त्रेष्वपि परोक्ष-भाषया बहुत्र विविधभेदविधयैवातिदुर्विज्ञेयवर्णनमुपलभ्यते, तथापि समाहितमनसा सम्यक्

रखकर नदीकी धाराको धरातलपर सरल रखने के लिये वर्ण और आश्रमके आठ बन्ध रखे गये हैं । उसी कारण वह अलौकिक त्रिलोक पावनी नदी सरल पथको अवलम्बन करके मुझमें परमानन्द प्राप्तिके हेतु प्रवेश करती है । हे पितृगण ! उसमें आपलोग विस्मित न होवें । देवतागण उस नदीमें आनन्द-पूर्वक अवगाहन करके अभ्युदयको प्राप्त होते हैं और ऋषिगण उस नदीके दोनों तटों पर समासीन तथा ब्रह्मध्यानमें मग्न होकर निःश्रेयसपदको प्राप्त होते हैं । आपलोग निरन्तर उन बन्धोंको सुदृढ़ रखने के लिये उनके पास रहकर उनकी रक्षा करने में प्रवृत्त हैं और आपके इस जगन्मङ्गलकर शुभकार्य्यमें सदाचारी ब्राह्मणगण और सती नारीयाँ सहायक हैं" । इस प्रकार भगवान् शम्भुके निजमुखसे पितरोंके मङ्गलार्थ जो यह दार्शनिक तत्त्व प्रकाशित हुआ है उससे बुद्धिमान् व्यक्ति अच्छी तरह समझ सकते हैं कि सृष्टिका जो निम्नगामी स्रोत है उसको रोकनेके लिये और आर्य्यजातिको चिरजीवी बनानेके लिए वर्णाश्रमधर्म किस प्रकारसे सृष्टिका रक्षक है । दैवी सृष्टि और मानसी सृष्टि सहित ब्रह्माण्ड सृष्टिका कुछ स्वरूप ऊपरके वर्णनसे बुध जनोंकी समझमें आसकता है । यद्यपि यह विज्ञान अति गम्भीर है और शास्त्रोंमें प्रायः परोक्षभाषामें ही यह दुर्विज्ञेय वर्णन नाना प्रकारसे किया गया है ; परन्तु पूर्वापर

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूर्वापरपर्य्यालोचनत इदन्तु स्फुटीभवत्येव यदेकस्य ब्रह्माण्डस्य सृष्टिः प्रारम्भावस्थायां पूर्णावयवैव जायते। पश्चात्तु अधोमुखी क्रमशोऽधोऽधः पतन्ती स्वाङ्गविहीना भूत्वा शिथिलायत इति। इत्यत एवात्र भारतवर्षात्मकमृत्युलोके प्रथमतश्चतुष्पादात्मकधर्मसमन्वितः सत्ययुगो जायते। ततश्च पादत्रयात्मकधर्मशाली त्रेतायुगः, ततश्च पादद्वयरूपधर्मवान् द्वापरयुगोऽन्ते चैकपादधर्मयुक् कलियुगः प्रादुर्भवतीति। सृष्टेः प्रादुर्भावावस्थायामिह मृत्युलोके सर्वप्रथमा मानवसृष्टिः कुत्र जातेति वर्णनप्रसङ्गः पञ्चमवेदात्मके महाभारते प्राप्यते। तथाहि "भारतवर्षात्मकेऽस्मिन् मृत्युलोके इह भारतखण्डे हिन्दुस्थान-संज्ञकाऽपरपर्य्याये तत्रापि काश्मीरप्रान्ते वितस्वा-शाखानद्या देविकायास्तीरे सर्वप्रथमब्राह्मणशरीररूपेण मानवसृष्टिः प्रारब्धा। ततश्च सेयमार्यसृष्टिश्चातुर्वर्ण्यात्मना सर्वत्रैव भारतखण्डे वितस्तार, तदनन्तरं शनैः शनै र्भारतखण्डतो वहिरपि विस्तृतिं जगाम, तत्र देशेषु आर्य्यसदाचारं विहायानार्य्यतामपि स्वाधोगमनस्वभावादेवागता। अस्याः सृष्टेरधोगमनस्वभावं निरोद्धुं देवलोके समये-समये देवासुरसंग्रामो जायते। तत्र देवासुरसंग्रामे कथं देवगणा विजयमासाद्यासुरान् पराजयन्ते, कथञ्च जगद्धात्री भगवती श्रीजगदम्वा स्वानुग्रहेण तत्र सृष्टिसामञ्जस्यमादधातीत्यादि वर्णनं मार्कण्डेयपुराणे सप्तशतीगीतायाञ्चोपलभ्यते। भगवतो वेदव्यासस्य वर्णनानुसारं

ध्यानपूर्वक पर्य्यालोचना करने से यही समझमें आवेगा कि एक ब्रह्माण्डकी सृष्टिके आदिमें सृष्टि पहले पूर्णावयव होती है। तदनन्तर सृष्टि नीचेकी ओर गिरकर अङ्गहीन होती जाती है। इसी कारण इस भारतवर्षरूपी मृत्युलोकमें प्रथम चारपाद धर्मसे युक्त सत्ययुग, तदनन्तर तीनपाद धर्मसे युक्त त्रेतायुग, तदनन्तर दोपाद धर्मसे युक्त द्वापर युग और अन्तमें केवल एकपाद धर्मसे युक्त कलियुग प्रगट हुआ करता है। सृष्टिके आदिमें मनुष्यसृष्टि इस मृत्युलोकमें कहाँ सबसे पहले प्रकट हुई थी; उसका वर्णन भी पञ्चमवेदरूपी महाभारतमें पाया जाता है कि भारतवर्षरूपी मृत्युलोकमें भारतखण्डरूपी हिन्दुस्तानके काश्मीर प्रान्तमें वितस्तानदीकी शाखा देविका नामक नदीके तीरपर पहले मनुष्य सृष्टि ब्राह्मण शरीरमें हुई थी। वह आर्य्यसृष्टि क्रमशः चतुर्वर्णको धारण करके समस्त भारत खण्डमें फैली थी और तदनन्तर मनुष्य सृष्टि भारतखण्डके बाहर फैली थी और सदाचार छोड़कर अनार्य्य बनगई थी। क्योंकि सृष्टिका स्वभाव है कि वह नीचेकी ओर गिरा करती है। देवलोकमें भी इस नीचेकी गिरावको रोकनेके लिये समय समय पर देवासुर संग्राम हुआ करता है। देवासुर संग्राममें कैसे देवतागण विजयी हो जाते हैं और फिर कैसे जगद्धात्री श्रीजगदम्बाकी कृपासे सृष्टि सामञ्जस्यकी रक्षा होती है, उसका वर्णन सप्तशती गीतामें पाया जाता है। भगवान् व्यासके कथनानुसार ऊपरके चारलोक अर्थात्

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महर्जनतपस्सत्यलोकाश्चत्वारोऽपि स्थायिलोकाः, अलौकिका उच्यन्ते। तत्रेन्द्रियजयिनो महात्मानो महर्लोके निवसन्ति, इन्द्रियमनसोरुभयोरपि वशीकारं कृत्वा संयमपराः श्रेष्ठप्राणिनो जनलोके, इन्द्रियमनोबुद्धिषु त्रितत्त्वेष्वपि आधिपत्यं कुर्वाणा योगिनस्तपोलोके, इन्द्रियमनोबुद्धिप्रकृतिषु चतुर्ष्वपि तत्त्वेषु स्वामित्वं जुषाणा महात्मानः सत्यलोके निवसन्तीति सर्वसम्मतः शास्त्रसिद्धान्तः। एषु चतुर्ष्वपि लोकेषु विशेषपरिवृत्तिर्न जायते। यो हि कालकर्मप्रभावतः परिवर्त्तनं जायते तद्धि चाधोलोकेष्वेव दशसु लोकेषु प्रजायते। तत्रापि सत्यत्रेताद्वापरकलियुगानां प्रभावस्तु केवलमस्माकं मृत्युलोक एव प्रजायते नान्यत्र। तत्र सर्वत्रैव भारतवर्षे मानवाः कर्मकरणे स्वतन्त्रा इति सर्वमेव भारतवर्षात्मकं वसुधातलं कर्मभूमिरुच्यते। तत्रापि तस्योत्तमाङ्गरूपोऽयं भारतखण्डो हिन्दुस्थानापरपर्य्यायो मोक्षभूमिस्समाम्नायते। यतो हि मोक्षप्राप्तिसाधनं सर्वमपीहैव पूर्णतयोपलभ्यते। इत्यत एवेयं धर्म्मभूमिः पुण्यभूमिरित्यादिनाम्नाऽप्यभिधीयते। भगवतो देवानामृषीणाञ्चावतारा इहैव भारतखण्डभूम्यां जायन्ते। स्वभावक्रमेणैव सृष्टिरधोगामिनी विद्यते। तस्या अधःपातनिरोधायेहैव पुण्यभूमौ वर्णाश्रमधममर्य्यादा दृश्यते। सृष्टेरधःपातं निरोद्धं यथाशक्यं वर्णाश्रमधमव्यवस्थां सुरक्षितां विधाय

महर्लोक जनलोक तपोलोक और सत्यलोक ये स्थायी अलौकिक लोक हैं। इन्द्रियोंका संयम करनेवाले श्रेष्ठजीवगण महर्लोकमें बसते हैं। इन्द्रिय और मनपर आधिपत्य करनेवाले श्रेष्ठप्राणी जनलोकमें बसते हैं। इन्द्रियमन औरबुद्धिपर आधिपत्य करनेवाले योगी तपोलोकमें बसते हैं तथा इन्द्रिय मन बुद्धि और प्रकृति इन चारों को जय करनेवाले महात्मा सत्यलोकमें निवास करते हैं। अतः इन चारों लोकोंमें विशेष परिवर्त्तनकी सम्भावना नहीं है। जो परिणाम काल और कर्मके प्रभावसे होता है वह सब प्रधानतः नीचेके दश लोकोंमें होता है और सत्य त्रेता द्वापर और कलियुग इन चारों युगोंका परिणाम तो केवल हमारे इस मृत्युलोकमें ही होता है। सारे भारतवर्षमें मनुष्योंको कर्म करने में स्वाधीनता है। इसलिये सारा भारतवर्षरूपी दुनियाँ कर्मभूमि कहाती है और उसका उत्तमाङ्ग भारतखण्डरूपी हिन्दुस्तान मोक्षभूमि कहाता है। क्योंकि मोक्ष प्राप्तिके जो कारण हैं वे सब पूर्णतया इसी भूमिपर प्राप्त होते हैं। इस कारण यह धर्मभूमि और पुण्यभूमि भी कहाती है। भगवान्का अवतार और ऋषियों का अवतार इसी पुण्यभूमिमें हुआ करता है। स्वाभाविक नियमके अनुसार सृष्टि जो नीचेकी ओर गिरा करती है, उसको रोकने के लिये वर्णाश्रम धर्मबन्धरूपी व्यवस्था इसी पुण्यभूमिमें दिखाई पड़ती है। सृष्टिके नीचेकी ओर अधः पतनको बचानेके लिये जहाँ तक सम्भव हो वर्णाश्रम धर्मकी

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मनुष्यजातावाध्यात्मिकोन्नतिप्रवाहः सुदृढ़ो भवेदित्यत्र विज्ञजनैर्यतितव्यम्। अयमेवालौकिको धर्मतत्त्वविमर्शः सृष्टिधर्मविचारतया प्रोक्तो विज्ञेयः।

इति श्रीभगवद्दत्तात्रेयानुग्रहोपलब्धायामस्यां दत्तात्रेयमीमांसायां
सृष्टिधर्मतत्त्वनिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥

अथ मानवधर्मतत्त्वनामकः पञ्चमोऽध्यायः।

वेदशास्त्रसमुच्चये धर्मसाधनस्यान्तिमलक्ष्यरूपतः स्वातन्त्र्येण द्विविधा विचारसरणिः परिदृश्यते।' तत्रोभयेऽपि साम्प्रदायिका मुक्तिमेवान्तिमं लक्ष्यं निश्चिन्वन्ति। तत्रैकः सम्प्रदायः सालोक्यसामीप्यादिसंज्ञां सगुणामैश्वर्यशालिनीं मुक्तिमभिमनुते। अपरो निर्वाण-कैवल्यात्मिकां मुक्तिमाम्नाति। इत्थमादिमो वैष्णवसम्प्रदायः। द्वितीयो योगि-सम्प्रदायः। इति शास्त्रज्ञै र्निर्णीयते। वैष्णवैरुपासकैरुद्गीयते यन्नश्वरब्रह्माण्डात् परमूर्द्ध्वमेकं नित्यस्थितमव्ययमक्षरं गोलोकधाम विद्यते। तत्र सालोक्यादि-मोक्षाधिकारिण उन्नतात्मानो वैष्णवा अनन्तकालपर्यन्तं परमानन्द-सन्दोहमुपभुञ्जते। द्वितीयस्तु योगि-सम्प्रदायगत आत्मनिष्ठो

व्यवस्थाको सुरक्षित करके मनुष्य जातिमें आध्यात्मिक उन्नतिका प्रवाह सुदृढ़ रहे इसका यत्न विज्ञजन-मात्रको करना चाहिये। सृष्टि धर्मके विचारसे धर्मतत्त्वका यही अलौकिक दार्शनिक स्वरूप है।

इस प्रकारसे भगवान् दत्तात्रेयकी कृपासे प्राप्त श्रीदत्तात्रेय धर्ममीमांसा ग्रन्थका
सृष्टि धर्मतत्त्वनामक चौथा अध्याय समाप्त हुआ।

अथ मानव धर्म तत्त्वनामक पाँचवाँ अध्याय।

वेद और शास्त्रोंमें धर्मसाधनके अन्तिम लक्ष्य रूपसे दो प्रकारकी स्वतन्त्र-स्वतन्त्र विचार-धारायें देखनेमें आती हैं। दोनों सम्प्रदायके लोग मुक्तिपर अन्तिम लक्ष्य अवश्य ही रखते हैं, परन्तु एक सम्प्रदाय सालोक्य सामीप्य आदि सगुण तथा ऐश्वर्यपूर्ण मुक्ति मानता है और दूसरा सम्प्रदाय निर्वाण कैवल्य मुक्तिको मानता है। पहली श्रेणीके मतको वैष्णवमत कहते हैं और दूसरी श्रेणीके मतको योगीमत कहते है। ऐसा भी शास्त्रोंमें पाया जाता है। वैष्णव सम्प्रदायके उपासक वैष्णवोंका यह कहना है कि, नाशवान् ब्रह्माण्डसे परे एक नित्यस्थित गोलोक धाम है। सालोक्य आदिमुक्तिके अधिकारी उन्नत आत्मायें इस गोलोक धाममें जाकर अनन्त काल पर्यन्त परमानन्द सुखको भोगा

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

योगिवर्गो दर्शनशास्त्रद्वारेणेदं साधयति, यदेकः परमात्मैव कार्यकारणरूपतो विद्यते । सम्पूर्णाऽपीयं सृष्टिस्तत एवाविर्भवति । तदाश्रयेणैव तिष्ठति । तस्मिन्नेव च निलीयते । इत्यतश्च त एतन्मन्यन्ते यज्जीवा हि आत्मज्ञानाश्रयेणास्मिन्नेव काये जीवन्मुक्तिपदं प्राप्तुमर्हन्ति शरीरविच्छेदे च निर्वाणपदमधिगत्य समुद्र आकाश-पतित-जल-बिन्दुवत् तन्मयतामुपगच्छन्ति । एतदेव तेषां निःश्रेयसपदमुच्यते । अस्य ग्रन्थस्य विश्वधारक-धर्मतत्त्वाख्ये प्रथमेऽध्याये यद्धि अनाद्यनन्तस्य सृष्टिप्रवाहस्य वर्णनमुपलभ्यते, यच्च तेनैव सह धर्मस्य नित्यत्वं संसाधितं दृश्यते, तथाऽनन्तब्रह्माण्डानां रक्षकस्य रासमहोत्सवकर्तुस्तद्द्रष्टुश्च राधानाथस्य श्रीमतो भगवतः श्रीकृष्णचन्द्रस्य रासमहोत्सवलीलाया दिग्दर्शनं कारितं विद्यते । तदेव लक्ष्यीकृत्य वैष्णवाचार्याणां राद्धान्तो निश्चीयते । अनन्तकोटिब्रह्माण्डाधीश्वरस्य राधानाथस्य महारासेश्वरस्य भगवतः श्रीकृष्णचन्द्रस्य रासगतःस्वानुभवोऽतिचमत्कारपूर्णो विद्यते । महारासलीलायां तस्य पञ्चप्रकृतीनां वर्णनं विद्यते । याभिः सह तस्य भगवतो विष्णोश्च सम्बन्ध उपलभ्यते । परन्तु महारास-महोत्सवेन प्रलयसम्बन्धाभावात् प्रलयकर्तुस्तथात्मज्ञानोपदेशेन जीवत्राणकर्तुर्भगवतः शिवस्य केवलमियदेव वर्णनमुपलभ्यते, यदिह महारासमहोत्सवे तेन सङ्गीतनादश्रवणं कारयित्वा

करती हैं। दूसरे योगिमत सम्प्रदायके आत्मनिष्ठयोगी लोग दर्शन शास्त्र द्वारा यह सिद्ध करते हैं कि एक परमात्मा ही कार्य रूपसे और कारण रूपसे विद्यमान है। सम्पूण सृष्टि उन्हींसे प्रगट होती है, उन्हींके आश्रयसे विद्यमान रहती है और उन्हींमें लय हो जाती है। इसलिये वे मानते हैं कि जीव आत्मज्ञानके आश्रयसे इसी शरीरमें जीवन्मुक्ति पदको प्राप्त कर सकता है और शरीरके अन्त होनेपर निर्वाण पदको प्राप्त करके समुद्रमें आकाशपतित जलविन्दुके समान लय हो जाता है। यही उनका निःश्रेयस पद है। इस ग्रन्थके विश्वधारक धर्मतत्त्व नामक प्रथम अध्यायमें जो अनादि और अनन्त सृष्टिप्रवाहका वर्णन किया गया है और उसके साथ धर्मका नित्यत्वसिद्ध किया गया है और साथ ही साथ अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंके रक्षक, रास महोत्सव के कर्ता और द्रष्टा राधानाथ श्रीभगवान् कृष्णचन्द्रकी रासमहोत्सव लीलाका दिग्दर्शन कराया गया है; उसीको लक्ष्य करके वैष्णवाचार्योंका प्रयास पाया जाता है। अनन्त कोटिब्रह्माण्डके अधीश्वर राधानाथ महारासेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रके रास का स्वानुभव अति चमत्कारपूर्ण है। महारासलीलामें उनकी पाँच प्रकृतियोंका वर्णन है। जिनके साथ उनका तथा भगवान् ब्रह्मा और भगवान् विष्णुका सम्बन्ध पाया जाता है; परन्तु महारास महोत्सवमें प्रलयका सम्बन्ध न रहने से प्रलय कर्ता और आत्म ज्ञानके उपदेशसे जीवत्राण कर्ता भगवान् शिवका केवल इतना ही वर्णन पाया जाता है कि उन्होंने इस रासमहोत्वमें संगीत

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वथा सर्वत्र आनन्दवर्द्धनं विहितमिति। महारासमहोत्सवस्यौपनिषदो भावः परमानन्दप्रदो विद्यते। तदनन्तरमस्य ग्रन्थस्य देशधर्मतत्त्वाख्यस्य द्वितीयाध्यायस्य कालधर्मतत्त्वनामकस्य तृतीयाध्यायस्य, सृष्टिधर्मतत्त्वनामकस्य चतुर्थाध्यायस्य विज्ञानानुशीलनेन धर्मस्य सर्वव्यापकं सर्वजीवहितकरं नित्यसिद्धस्वरूपं साधु समनुभवितुमर्हन्ति धर्मजिज्ञासवो महानुभावा इति। अपरतश्च योगविज्ञानमन्तारो योगिसम्प्रदायानुगामिनो विद्वांसः स्वानुभवेन वैदिकसप्तदर्शनपुष्टेनेदं संसाधयन्ति यद् जीवानां समुत्पत्तिरनादिर्विद्यते। तथा ते च जीवाः प्रकृतेः स्वाभाविकसंस्कारानुसारमुद्भिज्जस्वेदजाण्डजजरायुजादियोनितः समुपसर्पन्तः प्रकृतिमातुरनुकम्पया सर्वव्यापकस्य धर्मस्य धारिकायाः शक्त्याः साहाय्येनावसाने मनुष्ययोनौ समुपतिष्ठन्ते। तत्र चोपस्थाय पापकर्मणः पुण्यकर्मणश्चाधिकारिणो भवन्ति। ततश्च पापकर्मणो हेयतां पुण्यकर्मणश्चोपादेयताम्प्रजानन्तः सप्ताज्ञानभूमीः समतिक्रम्योत्तरोत्तरम् एकस्याः पश्चादपरस्यां गच्छन्तः क्रमेण सप्तापि ज्ञानभूमीरतिक्रमन्तोऽवसाने मुक्तिपदं सम्प्राप्य परमात्मचरणारविन्दमाश्रयन्ति। इमामेव क्रमोन्नतिमाश्रित्योत्तरोत्तरमग्रे सम्वर्धनस्य यो हि क्रमः शास्त्रकारैर्विहितः, स एव मानवधर्मः कथ्यते। उक्तञ्च स्मृतिशास्त्रेषु "धारिका

सुनाकर इस महोत्सवका आनन्दवर्धन किया था। महारासमहोत्सवका औपनिषदिक भाव परमानन्दप्रद है। तदनन्तर इसग्रन्थके देशधर्मतत्त्व नामक दूसरे अध्याय कालधर्मतत्त्व नामक तीसरे अध्याय और सृष्टिधर्मतत्त्व नामक चौथे अध्यायके विज्ञानको हृदयङ्गम करनेसे धर्मका सर्वव्यापक सर्वजीवहितकारी और नित्य सिद्धस्वरूपका अनुभव धर्म जिज्ञासुओं को अच्छी तरह प्राप्त हो सकता है। दूसरी ओर योग विज्ञानके माननेवाले योगीमत सम्प्रदायके विद्वानोंका स्वानुभव वैदिक सप्तदर्शनोंसे पुष्ट होकर यह सिद्ध करता है कि, जीवकी उत्पत्ति अनादि है और जीव प्रकृतिके स्वाभाविक संस्कारके अनुसार उद्भिज, स्वदेज अण्डज और जरायुज योनियोंमें होकर प्रकृति माताकी कृपासे और सर्वव्यापक धर्मकी धारिका शक्तिकी सहायतासे अन्तमें मनुष्ययोनिमें पहुंच जाता है। और मनुष्ययोनिमें पहुँचकर वह पाप कर्म करने और पुण्य कर्म करनेका अधिकारी बन जाता है। और क्रमशः पापको हेय और पुण्यको उपादेय समझता हुआ सप्त अज्ञान भूमियोंमें होकर अन्तमें एकके बाद एक इस प्रकारसे सातों ज्ञान भूमियोंको अतिक्रमण करता हुआ अन्तमें मुक्ति पदको प्राप्त करके परमात्माके चरणारविन्दमें मिल जाता है। इसी क्रमोन्नतिको प्राप्त करके क्रमशः आगे बढ़ते रहनेकाजो क्रम है, वही मानवधर्म कहाता है। इस विषयमें

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शक्तिरेवासौ धर्मस्य विप्रपुङ्गवाः। क्रमादुन्नमयन्ती वै मानवानुत्तरोत्तरम् ॥ कृत्वाधिकारिणो ज्ञानभूमेरन्ते च तानहो। कैवल्यपदवीं तेभ्यः प्रदत्ते च शनैः शनैः ॥ सर्वेषां रक्षको धर्मः सर्वजीवहितप्रदः। निखिलव्यापकश्चास्ति सर्वेभ्योऽभ्युदयप्रदः" ॥ इति। तन्त्रान्तरे चाऽपि "या बिभर्ति जगत्सर्वमीश्वरेच्छा ह्यलौकिकी। सैव धर्मो हि सुभगे नेह कश्चन संशयः॥ उन्नतिं निखिला जीवा धर्मेणैव क्रमादिह। विदधानाः सावधाना लभन्तेऽन्ते परं पदम्" ॥ इति। मानव-धर्म-विषये पूज्यपादमहर्षिभरद्वाजकृतकर्ममीमांसादर्शनेऽभिहितम्—"मानवधर्मश्चतुर्विधो विशेषासाधारणाऽऽपत्साधारणभेदात्" इति। एतेषां चतुर्णामपि धर्माणां विस्तृतं वर्णनमग्रिमेषु चाध्यायेषु समागमिष्यति। इतः प्राक्तने सृष्टिधर्मतत्वनामकेऽध्यायेऽस्मिन्नपि चाध्याये या हि शङ्काऽध्ययनतः समुदेतुमर्हति तस्याः समाधानमिहोच्यते। इतः पूर्वाध्याये साधु संसाधितं यत् सृष्टिरियं स्वभावत एवाधो गच्छतीति। अस्मिंश्चाध्याये साधितं यत्सृष्टिरियं क्रमश उपरि गच्छतीति। इत्येवं परस्परं विरोधिन्याः शङ्काया अवश्यं समाधानं कर्तव्यम्। तत्र समाधानमिदमेवास्ति, यत् समष्टिसृष्टिर्यस्याः पूर्वाध्याये वर्णनं विद्यते, सा ह्यधोगामिनीत्यत्र नास्ति सन्देहः। इत्यत एव सत्ययुगात्त्रेतायास्ततश्च द्वापरस्य ततोऽपि कलियुगस्याविर्भावो जायते। इत्यत एव सर्वप्रथमं पूर्णावयवानां

स्मृति शास्त्र कहता है कि "हे विप्रश्रेष्ठो! यह धर्मकी धारिका शक्ति ही मनुष्योंकी क्रमशः उत्तरोत्तर उन्नति कराकर ही और अहो! अन्तमें उनको ज्ञानभूमिका अधिकारी बनाकर शनैः शनैः कैवल्य पद प्रदान करती है। धर्म, व्यापक सर्व जीव हितकारी सर्व रक्षक तथा सबको अभ्युदयप्रद है। जो अलौकिकईश्वरेच्छा सारे जगत्का पालन करती है, वही धर्म कहाती है। इसमें सन्देह नहीं। धर्मसे ही निखिल जीव सावधानीसे क्रमशः उन्नति करते हुए अन्तमें परम पदको भी प्राप्त करलेते हैं।" मानव धर्मके विषयमें पूज्यपाद महर्षि भरद्वाज कृत कर्म मीमांसा दर्शनमें कहा कि "विशेष असाधारण, साधारण आपद् भेदसे मानव धर्म चतुर्विध है।" इन चारों धर्मोंका विस्तारित वर्णन आगेके अध्यायोंमें अवेगा। इससे पहलेका अध्याय अर्थात् सृष्टि धर्मतत्त्व नामक अध्याय और इस अध्यायको पाठ करनेसे जो शंका उत्पन्न हो सकती है उसका समाधान किया जाता है। इससे पहले अध्यायमें यह सिद्ध किया गया है कि सृष्टि क्रमशः स्वभावसे ही नीचेकी ओर गिरती है। और इस अध्यायमें यह सिद्ध किया गया है कि सृष्टि क्रमशः ऊपरकी ओर चलती है। इस परस्पर विरोधी शङ्काका अवश्य ही समाधान होना चाहिये। समाधान यह है कि समष्टि सृष्टि जिसका वर्णन पहले अध्यायमें आया है, वह नीचेकी ओर गिरती है इसमें सन्देह नहीं। इसी कारण सत्यसे त्रेता, त्रेतासे द्वापर और द्वापर से कलियुगका आविर्भाव होता है। इसी कारण प्रथम पूर्ण अवयव

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सनकसनन्दनादिपरमहंसानां सृष्टिर्भवति। येषाञ्चित्ते सृष्टिङ्कर्तुमिच्छैव नोदेति। ते हि सदैवात्मारामास्तिष्ठन्ति। ततश्च प्रजापतीनां सृष्टिर्भवति। ते हि मानसीं सृष्टिं कर्तुं समर्था भवन्ति। ततश्चेह मानवलोके सर्वेऽपि ब्राह्मणाः समुत्पद्यन्ते। तदनन्तरञ्च कर्मसांकर्य्यमासाद्य सृष्टिस्ततोऽप्यधोऽध एव गच्छति। तदैव भगवान् मनुरागत्य वर्णाश्रमधर्मसेतुबन्धं विदधाति। यतश्च सृष्टिस्ततोऽप्यधो न गच्छेदिति। यतश्च वर्णाश्रमच्युतो ह्यार्यगण आर्यावर्तदेशात् बहिर्गत्वाऽनार्यतां म्लेच्छताञ्च गच्छति। यो ह्ययं क्रमोऽस्ति, स हि समष्टिसृष्टिक्रमः। अस्य ह्यधोगामिनः पतनस्य वर्णाश्रमधर्म एव निरोधकोऽस्ति। अन्यतश्च यो हि व्यष्टिसृष्टिक्रमो विद्यते, तस्य हि गतिरूर्ध्वगा विद्यते। तद्गतेरूर्ध्वगामी क्रमोऽस्मिन्नध्याये वर्णितो विद्यते तत्र सर्वप्रथमं जीवानामुत्पत्तिविज्ञानमवगन्तुं शक्यम्। पूज्यपादमहर्षिश्रीमदङ्गिरोविरचितदैवीमीमांसादर्शने सृष्टिप्रकरणरहस्यं विशदतया वर्णितमस्ति। तत्र पूज्यपादो महर्षिर्जीवसृष्टिविषयेऽभिहितवान् यद् "चिज्जड़ग्रन्थिर्जीवः" इति। सूत्रस्यास्य भाष्यकर्तुरयमभिप्रायोऽस्ति, यत् प्रकृतिपुरुषशृङ्गारद्वारोत्पन्नायां सृष्टिलीलायां प्रवाहद्वयं दृश्यते। एकश्चोर्ध्वगामी चेतनप्रवाहो द्वितीयश्चाधोगामी जड़प्रवाह इति। प्रकृतेस्त्रिगुणचाञ्चल्यमेव सृष्टिधारायाः कारणमस्ति। अतो यावत् किमपि वस्तु धारायामस्यान्तिष्ठति तावत् तदस्यैव परिवर्तननियमस्याधीनं

सनक सनन्दन आदि परमहंसों की सृष्टि होती है। जिनके चित्तमें सृष्टिकी इच्छा तक नहीं होती वे सदा आत्माराम रहते हैं। उसके बाद प्रजापतियों की सृष्टि होती है। वे मानस सृष्टिकरनेमें समर्थ होते हैं। उसके बाद मनुष्य लोकमें सब ब्राह्मण उत्पन्न होते हैं। तदनन्तर कर्म संकर सृष्टि और भी नीचेकी ओर गिरती है। तब भगवान् मनु आकर वर्णाश्रम धर्मका बन्ध बाँधते हैं। जिससे सृष्टि और न नीचे गिरे। क्योंकि वर्णाश्रमधर्मसे च्युत आर्यगण आर्यावर्तसे बाहर जाकर अनार्य और म्लेच्छ बन जाते हैं। यह जो क्रम है, वह समष्टि सृष्टिका क्रम है। इसी नीचेके गिराव को वर्णाश्रम धर्म रोका करता है। परन्तु दूसरी ओर व्यष्टि सृष्टिका जो क्रम है, उसकी गति ऊपरकी ओर है। उस गतिका उद्र्ध्वगामी क्रम इस अध्यायमें कहा गया है। सबसे पहले जीवकी उत्पत्तिका विज्ञान समझने योग्य है। पूज्यपाद महर्षि अङ्गिराकृत दैवी मीमांसा दर्शनमें सृष्टि प्रकरणका रहस्य विशद रूपसे वर्णित हैं। पूज्यपाद महर्षिने जीव सृष्टिके विषयमें ऐसा कहा है कि चित् एवं जड़की ग्रन्थिका नाम जीव है। इस सूत्रके भाष्यकारकी सम्मति यह है कि प्रकृति और पुरुषके शृङ्गारद्वारा उत्पन्न सृष्टि लीलामें दो प्रवाह दिखाई देते हैं। एक उर्ध्वगामी चेतन प्रवाह और दूसरा अधोगामी जड़ प्रवाह। प्रकृतिका त्रिगुण चाञ्चल्य सृष्टिधाराका कारण होनेसे जब तक कोई वस्तु इस धारामें

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तिष्ठति। इत्यतश्च जड़चेतनयोरेवमुन्नताऽवनता च गतिः स्वतःसिद्धेत्यत्र नास्ति सन्देहलेशः। उदाहरणत एवं ज्ञातुं शक्यते यज्जीवो हि अनन्तयोनिषु भ्रममाण उर्द्ध्व-गामिन्याः प्राकृतिकचेतनधारायाः अवलम्बनेन क्रमशः समुन्नतिं लभमानोऽवसाने क्रमोन्नतिपरां काष्ठां प्राप्नोति। ततश्च जीवन्मुक्तो भवतीति क्रमः। जडांशश्चाधोगामिन्यां प्रकृतिधारायां अवहमानः क्रमशोऽवनतिं प्राप्नुवन् तस्याः परां काष्ठां समधिगच्छति। चेतनधारायाः परा काष्ठा ब्रह्मस्वरूपमेवास्ति, यत्र हि प्रकृतेः पृथक् सत्ता सच्चिदानन्दसत्तायामेव विलीना तिष्ठति। एतत्सिद्धान्तानुसारेण चेतनप्रवाहः प्रकृते रजस्तमोराज्यमतिक्रम्य सत्त्वराज्ये समुपस्थितोन्नतिपरां काष्ठामवलम्ब्य प्रकृतेस्त्रिगुणमयराज्यं समतिक्रम्य व्यापकचेतनसत्तायां विलीनो भवतीत्येतद्धि मुक्तिरहस्यं विद्यते। यथा हि जीवन्मुक्तस्य महापुरुषस्यान्तःकरणम्। तस्य हि अन्तःकरणे चेतनसत्ता पूर्णं विकाशं प्राप्य प्रकृत्यवच्छेदं परित्यजन्ती व्यापकचेतने विलीना भवति। अन्यतश्चाधोगामिन्या जड़प्रकृतेर्जडदेहो मृत्योः पश्चाद्देहारम्भकचेतनशक्तेरभावेन क्रमशो विनष्टो भवति। यया प्राणशक्त्या देहान्तर्गतो हि परमाणुसमूहः सङ्घीभूय स्थूलशरीरं निर्मितवान्, तस्याः प्राणशक्तेरभावात् तत्र परमाणुसमूहे आकर्षणात्मिकायाः शक्तेर्नाशेन विकर्षणात्मिका शक्तिराविर्भवति। तदनुसारेण देहगतः

रहती है, तब तक उसको इसी परिवर्तन नियमके अधीन रहना होता है। इस कारण चेतन और जड़की इस प्रकारकी उन्नत और अवनत गति स्वतः सिद्ध है, इसमें सन्देह नहीं। उदाहरण स्थलपर समझ सकते हैं कि जीव अनन्तयोनियोंमें भ्रमण करता हुआ उर्ध्वगामिनी प्राकृतिक चेतन धाराका अवलम्बन करके क्रमशः उन्नति लाभ करते करते अन्तमें उन्नतिकी परा काष्ठाको प्राप्त होता है। और तब जीवन्मुक्त हो जाता है। और जडांश अधोगामिनी प्रकृति धारामें पड़कर क्रमशः अवनति प्राप्त होते होते उसकी परा काष्ठाको प्राप्त करता है। चेतन धाराकी परा काष्ठा ब्रह्मस्वरूप है। जहाँ प्रकृतिकी पृथक् सत्ता सच्चिदानन्द सत्तामें विलीन है। इस सिद्धान्तके अनुसार चेतन प्रवाह प्रकृतिके रजस्तम राज्यको अतिक्रम करके सत्व राज्यमें उपस्थित होता हुआ, उन्नतिकी परा काष्ठा में प्रकृतिके त्रिगुणमय राज्यको अतिक्रम करके व्यापक चेतन सत्तामें विलीन होता है, यही मुक्तिका रहस्य है। यथा-जीवन्मुक्त महापुरुषका अन्तःकरण। उनके अन्तःकरणमें चेतन सत्ता पूर्ण विकाशको प्राप्त होकर प्रकृतिका अवच्छेद परित्याग करती हुई व्यापक चेतनमें विलीन होती है। दूसरी ओर अधोगामिनी जड़प्रकृतिका जड़देह मृत्युके पश्चात् देहारम्भक चेतन शक्तिके अभावसे क्रमशः नष्ट हो जाता है। जिस प्राण शक्ति द्वारा देहान्तर्गत परमाणुसमूहने एकत्रित होकर स्थूलशरीरका निर्माण किया था उसी प्राण शक्तिके अभाव हो जानेसे परमाणु समूहमें आकर्षणात्मिका शक्ति नष्ट होती है।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परमाणुसमूहः परस्परं विच्छिन्नो भवति। तथा जड़प्रकृतेरधोगतिर्हि तमोऽभिमुखी प्रवृत्तिर्निगद्यते। प्रकृतिर्हि परिणामिनी चञ्चला च विद्यते। अतश्च चेतनप्रवाहः क्रमोन्नतो भूत्वा सत्त्वराज्यमतिक्रममाणस्त्रिगुणमय्याः प्रकृतिमातुर्धारातो निस्तीर्णो भूत्वा परिणामशून्यः स्थिरश्च भवति, किन्तु जडप्रवाहो नियतपरिणामिन्याः प्रकृतेः सदैवान्तर्गतः तदधीनश्च भवतीति स परिणामशून्यः स्थिरश्च नैव भवितुमर्हति। उदाहरणतो यथा जडप्रकृतेरन्तिमाः सीमाः प्रस्तरादयो जड़ाः पदार्थाः सन्ति। इयमेव हि प्रकृतौ तमोगुणस्य परा काष्ठोच्यत इति ज्ञेयम्। यथा हि समुद्रतरङ्गो घातप्रतिघातरूपतस्तीराभिमुखङ्गतस्तीरप्रत्याहतः सन् ततोऽग्रे संसर्तुं स्थानमलभमानः पुनः समुद्राभिमुखमेव प्रत्यावृत्तो जायते, तथैव प्रकृतेर्निम्नगः प्रवाहः क्रमशो निम्नतरतामधिगच्छन् तमोगुणस्य परां काष्ठां प्राप्तोऽग्रे स्थानाभावात् पुनस्तमोगुणभावतः सत्त्वगुणाभिमुखमुपसर्पति फलतो जडभावतश्चैतन्याभिमुखमायाति स्वभावत एवेति ज्ञेयम्। इदानीन्तमोऽवस्थातो सत्त्वाऽवस्थां प्रत्यावृत्तः स हि प्राकृतिकः प्रवाहः किञ्चिदुन्नतो भूत्वा तमोगुणबहुलताया मलिनताया अपगमे स्वल्पायाः सत्वगुणजन्यस्वच्छताया आविर्भावमासादयते। यथा हि सूर्यदेवस्य सर्वत्रैव रश्मिविस्तारे सत्यपि मलिनादर्शः प्रतिबिम्बग्रहणे-

---

और विकर्षणात्मिका शक्तिका आविर्भाव होता है, उसीके अनुसार देहगत परमाणु समूह परस्पर विच्छिन्न हो पड़ते हैं। एवं इस जड़ प्रकृतिकी अधोगति, अर्थात् तमकी ओर गति, होती है। प्रकृति परिणामिनी एवं चञ्चला है। इस कारण चेतन प्रवाह क्रमोन्नत होकर सत्त्वराज्यको अतिक्रमण करता हुआ, त्रिगुणमयी प्रकृति माताकी धारासे निस्तार पाकर परिणामशून्य और स्थिर होता है। किन्तु जड़प्रवाह नियत परिणामिनी प्रकृतिके सदैव अन्तर्गत और अधीन होनेसे परिणामशून्य और स्थिर हो नहीं सकता है। उदाहरणस्थल पर ऐसा समझना चाहिये कि जड़ प्रकृतिकी अन्तिम सीमा प्रस्तरादि स्थावर पदार्थ हैं, यही प्रकृतिमें तमोगुणकी परा काष्ठा है, ऐसा जानना चाहिये। जिस प्रकार समुद्रके तरङ्ग घात प्रतिघातसे तीरकी ओर बढ़ते हुए जब समुद्रके तीरमें आकर लगते हैं, तब आगे बढ़नेका स्थान न होनेसे पुनः समुद्रकी ओर प्रत्यावृत्त होते हैं, उसीप्रकार प्रकृतिका जो निम्नगामी प्रवाह क्रमशः निम्नता प्राप्त होते-होते तमोगुणकी परा काष्ठाको प्राप्त होता है। वही प्रवाह आगे स्थान न पाकर पुनः तमोगुणसे सत्त्व गुणकी ओर अर्थात् जड़से चेतनकी ओर नैसर्गिक रूपसे अग्रसर होता है। इस समय तमसे सत्त्वकी ओर प्रत्यावृत्त उक्त प्राकृतिक प्रवाह की कुछ उन्नति होनेसे तमोगुण बहुल मलिनताके हटनेपर सत्त्वगुणजन्य स्वल्प स्वच्छताका अविर्भाव होता है। जिस प्रकार सूर्यदेवके सर्वत्र किरणच्छटाका विस्तार करनेपर भी मलिन दर्पण प्रतिबिम्ब-

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नैव समर्थो भवति। परन्तु यदा हि तस्य मालिन्यमपगच्छति तदैव तत्र व्यापकस्य सूर्यप्रकाशस्य प्रतिबिम्बं पतति। तथैव सर्वव्यापकस्यापि आत्मनश्चित्सत्तायाः सर्वत्र समतास्थितावपि तामसिकप्रवाहस्य मालिन्यहेतोस्तमोगुणबहुलप्रस्तरादिषु तस्या विकाशो नैव भवितुमर्हति। किन्तु परिवर्तनधाराया नियमानुसारेण प्राकृतिकप्रवाहस्तमोगुणस्य पराकाष्ठातः सत्त्वगुणाभिमुखः सन्नणुमात्रमपि स्वच्छत्वमुन्नतत्वञ्चोपैति तदैव तत्र स्वच्छे सूक्ष्मे च प्रकृतिकेन्द्रे व्यापकस्य परमात्मनः प्रतिबिम्बमापतति। इदमेव हि उद्भिज्जीवानां चिज्जडग्रन्थिरिति कथ्यते। इदमेव हि प्रतिबिम्बं लोके जीवसंज्ञां प्राप्नोति। अयमेव हि चिज्जड़ग्रन्थिर्यः प्रथममुद्भिद्राज्ये प्रादुर्भूतः, स एव हि क्रमशः उद्भित्तः स्वेदजयोनौ ततश्चाण्डजायां ततो जरायुजायां त्रिगुणात्मिकायाः प्रकृतेः स्वाभाविकपरिणामानुसारेण क्रमविकाशमुपेत्य चेतनराज्येऽग्रेसरति। इयमेव हि जीवस्य स्वाभाविकी क्रमोन्नतिरस्माकं शास्त्रानुसारतश्च जीवत्वस्य क्रमविकाश उच्यते। उक्तं हि शास्त्रेषु—"स्थावरे लक्षविंशत्यः कृमिजं रुद्रलक्षकम्। जलजं नवलक्षञ्च पक्षिजं दशलक्षकम् ॥ पश्वादीनां लक्षत्रिंशच्चतुर्लक्षञ्च वानरे। ततो हि मानुषा जाताः कुत्सितादेर्द्विलक्षकम् ॥" इति एतस्येदन्तात्पर्यं विद्यते यदुद्भिद्योनिगतक्रमविकाशस्य द्वाराणि विंशतिलक्षात्मिका उद्भिद्योनीरतिक्रम्य दैवसाहाय्यबलेन जीवाः स्वेदजयोनिस्तरमुपसर्पन्ति। तत्राप्येकादश-

---

ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होता है, परन्तु जिस समय ही उस दर्पणकी मलिनता दूरकी जाय उसी समय उसमें व्यापक सूर्यका प्रतिबिम्ब पड़ता है, उसी प्रकार सर्व व्यापक आत्माकी चित् सत्ताकी सर्वत्र समता होनेपर भी तामसिक प्रवाहके मालिन्यके कारण उक्त सत्ताका विकाश तमोगुण बहुल प्रस्तर आदिमें हो नहीं सकता है। किन्तु जब परिवर्तन धाराके नियमके अनुसार प्राकृतिक प्रवाह तमोगुणकी परा काष्ठासे थोड़ा भी उन्नत और सत्त्वगुणाभिमुख होनेसे स्वच्छ होता है तभी उस स्वच्छ और सूक्ष्म प्रकृतिके केन्द्रमें व्यापक परमात्मा प्रतिबिम्बित होते हैं। यही उद्भिज्ज जीवोंकी चित् और जड़की ग्रन्थि है, एवं यह प्रतिबिम्ब ही संसारमें जीवसंज्ञाको प्राप्त होता है। यही चित् जड़की ग्रन्थि जो आदिमें उद्भिद् राज्यमें प्रगट हुई थी। वही ग्रन्थि क्रमशः उद्भिज्जसे स्वेदज, स्वेदजसे अण्डज, और अण्डजसे जरायुज योनियोंमें त्रिगुणात्मक प्रकृतिके स्वाभाविक परिणामके अनुसार क्रम विकाशको प्राप्त होकर चेतन राज्यमें अग्रसर होती है, यही जीवकी स्वाभाविक क्रमोन्नति है। और यही हमारे शास्त्रोंके अनुसार जीवत्वका क्रम विकाश है। शास्त्रोंमें कहा है, कि "उद्भिज्ज योनिकी संख्या बीस लाख कृमिज अर्थात् स्वेदज योनिकी संख्या ग्यारह लाख अण्डज योनि

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लक्षात्मकतद्योनिद्वाराण्यतिक्रम्यानेककालानन्तरं क्रमशोऽण्डजयोनिस्तरमुपतिष्ठन्ते। तत्र चोनविंशतिलक्षात्मक तद्योनिद्वाराण्यतिक्राम्यन्तो जीवाः करुणामय्याः प्रकृतिमातुः स्वाभाविकानुकम्पया जरायुजयोनिस्तरमधितिष्ठन्ति। तत्रापि च चतुस्त्रिंशल्लक्षात्मकतद्योनिद्वाराण्यतिवर्तमाना जीवा अवसाने पूर्णावयवां मनुष्ययोनिं दैवसाहाय्येन प्राप्नुवन्ति। तत्रापि प्रथमावस्थायां मनुष्ययोनिर्नैव पूर्णावयवा सम्पद्यते। तत्रासभ्या बर्बरकिरातादिपशुप्रायावस्थाः सन्ति। तासां संख्या लक्षद्वयात्मिकाऽस्तीति महर्षिभिः पूज्यपादैरभिहितं विद्यते। इत्येवं जीवाश्चतुरशीतिलक्षात्मकचतुर्विधभूतसंघेषु उत्तरोत्तरमग्रे वर्द्धमाना अन्ते च लक्षद्वयात्मिकायां निम्नकोटिगायां मनुष्ययोनौ क्रमोन्नतिं कुर्वाणा आर्यजातिमुपेत्य विश्राम्यन्ति। त्रिकालदर्शिभिः पूज्यपादैर्महर्षिभिरभिहितमिदमेव जीवानां क्रमोन्नतिवादविज्ञानम्। महर्षिभरद्वाजप्रणीतकर्ममीमांसादर्शने विज्ञानमिदमेवमुपक्रान्तम्। तथाहि "उद्भिज्जादाजरायुजं चतुष्कोपक्रमोन्मेषः" इति। फलतोऽन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयैः पञ्चभिः कोशैराच्छन्नेषु जीवेषु, अन्नमयकोशस्य विकाश उद्भिद्योनौ, अन्नमयप्राणमययोः कोशयोः स्वेदजयोनौ, अन्नमय-

---

(जलज और पक्षिज) की संख्या उन्नीस लाख, और जरायुजोंमें पशुयोनिकी संख्या चौंतीस लाख है। पश्चात् मनुष्ययोनिमें कुत्सित योनि दो लाख है। इसका तात्पर्य यह है कि उद्भिज्ज योनियोंके क्रम विकाशके बीस लाख द्वार पार होनेके बाद दैवी सहायता से जीव स्वेदज योनियोंके स्तरमें पहुंच जाते हैं। वहाँ ग्यारह लाख द्वार पार होकर जीव अनेक कालके बाद क्रमशः अण्डज योनिके स्तरमें पहुंचता है। वहाँ उन्नीस लाख द्वारोंको पार करता हुआ कृपामयी प्रकृति माताकी स्वाभाविक कृपासे जीव जरायुज योनिके स्तरमें पहुँचता है और वहाँ चौंतीस लाख द्वारोंको पार करता हुआ अन्तमें पूर्णावयव मनुष्य योनिमें देवताओंकी सहायतासे पहुंचाया जाता है। प्रथम अवस्थामें मनुष्ययोनि भी ठीक पूर्णावयव नहीं होती है। उसमें असभ्य बर्बर और पशुप्राय अवस्थायें हैं। उनकी संख्या त्रिकाल दर्शी महर्षियोंने दो लाख बताई है। इस प्रकारसे जीव ८४ लाख चतुर्विध भूतसंघोंमें आगे बढ़ता हुआ और अन्तमें दो लाख निम्नश्रेणीके मनुष्य योनिमें क्रमोन्नति करता हुआ आर्य जातिमें आ पहुँचता है। त्रिकाल दर्शी पूज्यपाद महर्षियोंका बताया हुआ यही जीवका क्रमोन्नति वादका विज्ञान है। महर्षि भरद्वाजके कर्ममीमांसा दर्शनमें इस विज्ञानको इस प्रकारसे समझाया है कि "उद्भिज्जसे जरायुज पर्यन्त चार कोषोंका क्रम विकाश होता है।" अर्थात् जीव जो अन्नमय कोष, प्राणमय कोष मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोश इस प्रकार पाँच कोशोंसे ढका रहता है उनमेंसे अन्नमय कोषका विकाश उद्भिज्जमें होता है। अन्नमय और प्राणमय इन दोनों कोषों-

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राणमयमनोमयानां कोशानामण्डजयोनौ, अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानां कोशानां जरायुजयोनौ विकाशो जायते । ततश्चानन्तरम् अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयानां पञ्चानामपि कोशानां विकाशो मनुष्ययोनौ सम्पद्यते । यथोक्तं कर्ममीमांसादर्शने- "सर्वविकाशोऽन्तिमे" इति । अन्तिमे पिण्डे मनुष्ययोनौ सर्वस्यैव कोशस्य विकाशो भवतीति सूत्रार्थः । अन्यच्चोक्तन्तत्रैव "क्षित्येकाश्रयत्वमुद्भिदः" इति । उद्भिद्गतो हि जीवः प्राधान्येन पृथ्वीमेवाश्रित्य तिष्ठतीत्यर्थः । यतो हि प्रत्यक्षमेवेदं दृश्यते यदुद्भिन्मूलं प्राधान्येन पृथ्वीसमाश्रयणमेव करोति । अन्यच्चाप्युक्तम्—"स्वेदजो जलाग्निवाय्वाकाशाश्रयः" इति । यतो हि स्वेदजा जीवाः प्रायोऽतीन्द्रिया भवन्ति । ते च सर्वत्रैव व्यापृतास्तिष्ठन्ति । गुणभेदेन च तेऽनेकविधाश्च भवन्ति । यथोक्तन्तत्रैव "गुणभेदादनेकधा" इति । गुणभेदेन स्वेदजानामनेकाः श्रेणयः सन्ति । वैज्ञानिकयन्त्रैः स्वेदजसृष्टीनां बहवो भेदा उपलब्धास्ते प्रसिद्धा एव । एवं हि तस्मिन्नेव दर्शने दार्शनिकयुक्त्या संसाधितं यद् "उद्भिदेककलः" इति । उद्भिदि एकस्याः कलाया विकाशो जायते ॥ "स्वेदजो द्विकलः" स्वेदजेषु जीवेषु द्वयोः कलयोर्विकाशो जायते । 'अण्डजस्त्रिकलः' अण्डजयोनौ तिसृणाम् कलानां विकाशो ज्ञेयः । 'चतुष्कलो जरायुजः' जरायुजयोनौ चतस्रः कला विकशिता भवन्ति । उक्तदर्शने एतदपि संसाधितं

का विकाश स्वेदजमें होता है । अन्नमय प्राणमय मनोमय इन तीनोंका विकाश अण्डज योनियोंमें होता है । और अन्नमय प्राणमय मनोमय और विज्ञानमय इन चार कोषोंका विकाश जरायुज योनियोंमें होता है । और तत्पश्चात् अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इन पाँचों कोशोंका विकाश मनुष्य योनिमें होता है । जैसा—कर्म मीमांसा दर्शनमें कहा है कि "अन्तिममें सब कोषोंका विकाश होता है ।" और भी कहा है कि "उद्भिज्ज प्रधानतया पृथ्वीको आश्रय करके रहता है ।" क्योंकि ऐसा प्रत्यक्ष है कि उद्भिज्जकी जड़ प्रधानतः पृथ्वीको आश्रय करती है । और भी कहा है कि "स्वेदज जल अग्नि वायु और आकाशको आश्रय करके रहता है ।" स्वेदज जीव प्रायः अतीन्द्रिय होते हैं और वे सब जगह व्याप्त रहते हैं । और वे "गुणभेदसे अनेक श्रेणीके होते हैं" ऐसा वहाँ कहा है । वैज्ञानिक यन्त्रोंसे स्वेदज सृष्टिका बहुत कुछ भेदका पता लगा है । जो कि प्रसिद्ध ही है । इसी प्रकार उक्त दर्शन शास्त्रमें दार्शनिक युक्तिसे सिद्ध किया है कि "उद्भिज्जमें एक कलाका विकाश होता है । स्वेदज जीवोंमें दो कलाओंका विकाश होता है । अण्डज योनियोंमें तीन कलाओंका विकाश हो जाता है । जरायुज योनिमें चार कलाओंका विकाश होता है ।" उक्त दर्शन शास्त्रने यह भी सिद्ध

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यद् गुणत्रयानुसारेण जीवः क्रमोन्नतावग्रे सम्प्रवर्द्धमानो जरायुजयोनौ गुणभेदानुसारतो गोसिंहवानरयोनिषु कस्यामप्येकस्यां सम्भवन् मनुष्यो भवति । यथोक्तं तत्रैव 'तत्र गोसिंहमर्कटतो मानवो गुणभेदात्' इति । तस्मिन्नेव दर्शने एतदपि प्रमाणितं यद् जीवकला ह्यग्रे प्रवर्द्धमाना यदा सा मनुष्ययोनावुपैति, तदा तस्यां स्वाभाविकरूपत-श्चिच्छक्तेः पञ्चापि कलाः प्रकाशन्ते' यथोक्तम्—'पञ्चकलः सः' इति । एवं मानव-पिण्डधारी-जीवो धर्माधर्माधिकारवान् जायते, धर्मशक्तिसाहाय्यबलेन च क्रमशः समुन्नमन्नसौ पूर्णकलत्व-मङ्गीकरोति । तथाहि कर्ममीमांसानां 'तद्धर्मसम्बन्धत्वात्पूर्णकलत्वमस्य' इति । चित्कला-विषयेऽत्र स्मृतिशास्त्रे जगज्जननी महाशक्तिर्देवानुद्दिश्येत्थं व्याजहार । तथा हि—'व्याप्याप्यस्यां कलारूपाज्जगत्यां सर्वतः सुराः । अद्वितीयाऽहमेकास्मि शुद्धा बुद्धा च शाश्वती ॥ सीमा नास्त्येव भो देवाः! कलाविश्लेषणस्य मे । शक्तेर्मय्यवतिष्ठन्ते कलाः षोडश सर्वदा । अतोऽहं सर्वशक्ती-नामस्म्याधारस्वरूपिणी ॥ कलारूपैः कलापूर्णा शक्तिः सा मेऽश्नुते जगत् । तस्यास्तासां कला-नान्तु वित भेदाननेकश ॥ ममैवैका कलाशक्तेरुद्भिज्जेषु विकाशते । स्वेदजेषु कलाद्वैतमण्डजेषु कलात्रयम् ॥ चतस्रश्च कला भान्ति जरायुजगणेऽखिले । पञ्चकोषप्रपूर्णत्वान्मर्त्येषु प्रायशोऽमराः ॥ आ कलापञ्चकादष्टकला नूनं चकासति । नवारभ्य कला यावत् षोडशं मे यथायथम् ॥

किया है कि "तीन गुणोंके अनुसार जीव क्रमोन्नतिमें आगे बढ़ता हुआ जरायुज योनिमें गुण भेदके अनुसार गो योनि, सिंह योनि, वानर योनियोंमें किसी एकसे होकर मनुष्य होता है।" जैसा कि कहा है और उक्त दर्शन शास्त्रने यह प्रमाणित किया है कि जीवकला आगे बढ़ती हुई जब मनुष्य योनिमें पहुंचती है तो उसमें स्वाभाविक रूपसे चित् शक्तिकी पाँच कला प्रकाशित हो जाती है। तब वह धर्माधर्मका अधिकारी होता है। और धर्मशक्तिकी सहायतासे वह उन्नत जीव पूर्ण कलत्वकी प्राप्ति करता है। चित्कलाके विषयमें स्मृति शास्त्रमें जगज्जननी महाशक्तिने देवताओंसे कहा है, कि—"हे देवता गण ! मैं कला रूपिणी होकर इस जगत्में व्याप्त होनेपर भी एक अद्वितीय शुद्धबुद्ध और नित्य हूं। मेरी कलाओंके विश्लेषणकी सीमा नहीं है। मुझमें शक्तिकी षोडश कला सर्वदा विद्यमान है। इसलिये मैं इन शक्तियोंकी आधार स्वरूप हूं। कलाओंसे पूर्ण वही मेरी शक्ति कलारूपसे जगत्में परिव्याप्त है। उस शक्तिकी उन कलाओंके अनेक भेद हैं सो जानो। मेरी शक्तिकी एक कलाका उद्भिज्जमें, स्वेदजमें दो कलाओंका अण्डजमें तीन कलाओंका और सब जरायुजोंमें चार कलाओंका विकाश होता है। हे देवगण। पञ्चकोषके पूर्ण अधिकारी होनेके कारण मनुष्योंमें पाँच कलाओंसे लेकर आठ कलाओं तकका विकाश होता है। और साधारणतः नाना केन्द्रोंसे अविर्भूत मेरे अवतारोंमें नवसे

Bharat Dharma Maha Mandal, Varahasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संविकाशश्यावतारेषु नानाकेन्द्रोद्भवेषु च । कुत्रचिन्मे प्रपूर्यन्तेऽवतारे पूर्णसंज्ञके ॥ मच्छक्तेः षोडशानान्तु कलानामस्ति पूर्णता । मदाज्ञारूपधर्मेऽतो ज्ञेयो धर्मः सनातनः ॥ अस्म्यतः सर्वधर्माणामाश्रयस्थलमुत्तमम् । स्थूलसूक्ष्मात्मकं विश्वं समस्तं सचराचरम् ॥ मदादेशात्मको धर्मो नित्यमेव बिभर्ति सः । धर्मशक्तेर्हि मे पूर्णा कला षोडशसंख्यकाः ॥ आर्यजातीयधर्मेषु विद्यन्ते विबुधर्षभाः । आर्यजातिरतोऽन्यासामस्त्याद्यः शिक्षको गुरुः ॥ आर्यधर्मोऽन्यधर्माणां जनकः पालकोऽस्ति च । नात्र कश्चन सन्देहो विद्यतेऽदितिनन्दनाः इति । इत्थं हि मानवे पञ्चकोषाणां विकासोऽतएवासौ हसति । यतोहि हासः किलानन्दमयकोष-विकाशलक्षणो भवति, तदुक्तं कर्ममीमांसायाम् —"हास्यलक्षणः पञ्चकोषविकाशो मानवे" इति । स्मर्यते चात्र—उन्नतिं निखिला जीवा धर्मेणैव क्रमादिह । विदधानाः सावधाना लभन्तेऽन्ते परं पदम् इति । वैशेषिकदर्शने महर्षिः कणादोऽप्याह —"यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः" इति । महर्षिर्वेदव्यासोऽपि– 'मानुषेषु महाराज धर्माऽधर्मौ प्रवर्तितौ । न तथाऽन्येषु भूतेषु मनुष्य-रहितेष्विह ॥ उपभोगैरपि त्यक्तं नात्मानं सादयेन्नरः । चाण्डालत्वेऽपि मानुष्यं सर्वथा तात शोभनम् ॥ इयं हि योनिः प्रथमा यां प्राप्य जगतीपते । आत्मा वै शक्यते त्रातुं कर्मभिः

लेकर सोलह कलाओंका यथावश्यक विकाश होकर किसी पूर्णावतारमें षोडश कलाएँ पूर्ण विकशित होती हैं । मेरी शक्तिकी षोडश कलाओंकी पूर्णता मेरी आज्ञा रूपी धर्ममें विद्यमान है । इसी कारण धर्मको सनातन जानना उचित है । इसीलिये मैं सब धर्मोंका उत्तम आश्रय स्थल हूं । और इसीसे मेरा आज्ञारूपी धर्म ही स्थूलसूक्ष्मात्मक तथा स्थावर जङ्गमात्मक समस्त जगत्का सर्वदा धारक है । मेरी धर्मशक्तिकी पूरी षोडश कलायें आर्यजातिके स्वधर्ममें विद्यमान हैं, इसीलिये आर्यजाति जगत्की अन्यान्य जातियोंकी आदि शिक्षक तथा गुरु है । और आर्यधर्म अन्यान्यधर्मोंका जनक तथा पालक है । हे देवतागण ! इसमें सन्देह नहीं है ।" इस प्रकार मनुष्यमें पाचों कलाओंका विकाश होता है । हँसना ही आनन्दमय कोशके विकाशका चिन्ह है । मनुष्यमें पाँच कोषके विकाशके लक्षणके विषयमें कर्ममीमांसा दर्शन शास्त्रने कहा है कि "मनुष्यमें पांच कोषोंका विकाश है इसलिये यह हँसना जानता है ।" हँसना आनन्दमय कोष विकाशका लक्षण है । स्मृति शास्त्रमें कहाहैकि "धर्मकी सहायतासे जीवक्रमशः उन्नत होता जाता है । और अन्तमें उन्नतिकी परा काष्ठाको सावधान होकर प्राप्तकरके परमपदको प्राप्त कर लेता है ।" महर्षि वेदव्यासजीने कहा है–"हे राजन् मनुष्यमें ही धर्म और अधर्मकी व्यवस्थाकी गई है । मनुष्यसे अतिरिक्त अन्य जीवोंमें नहीं है । मनुष्य उपभोग रहित शरीरको भी घृणित न समझे, क्योंकि हे तात ! मनुष्ययोनिमें चाण्डालका शरीर होना भी उत्तम ही है । हे भूपते ! यह मनुष्य योनि ही श्रेष्ठ है । जिसको पाकर शुभकर्मोंके द्वारा आत्माको

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शुभलक्षणैः॥ कथन्न विप्रणश्येम योनितोऽस्या इति प्रभो। कुर्वन्ति धर्मं मनुजाः श्रुतिप्रामाण्यदर्शनात्॥ यो दुर्लभतरं प्राप्य मानुष्यं द्विषते नरः। धर्मावहन्ता कामात्मा भवेत्स खलु वञ्च्यते॥" इति। भगवान् मनुरपि—'भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः। बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः॥ ब्राह्मणेषु तु विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः। कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः॥ इति' एवं किल जीवश्चतुर्विध-भूतसंघशरीराणि—कुत्सितासभ्य-मानववपूंषि च षडशीतिलक्षात्मकानि द्वाररूपाण्यतिक्रामन्नग्रे सरंश्चावसाने विग्रहमार्यजातीयमासादयति। तत्र क्रमश आश्रमांश्चतुरोऽतिक्रामन्नन्ते ज्ञाननिष्ठसन्यासी भूत्वा ब्रह्मपदमाप्नोति। स्वस्वरूप-ब्रह्मपदप्राप्तिरेव जीवसमुन्नतेश्चारितार्थ्यम्। तदानीं पूर्वनिबद्धश्चिज्जडग्रन्थिर्भिद्यते तेन चिज्जड़योरुभयोर्विमुक्तिः। यथा चोक्तं कर्ममीमांसायाम्—"तद्भेदनादुभयमुक्तिः" इति। सांख्यदर्शनविज्ञानेनापि सर्वथैतदेव विज्ञानं स्पष्टं प्रतिबोधितम्—प्रकृतिपुरुषभेदज्ञानान्मुक्तिरिति। गीतोपनिषदि भगवता श्रीकृष्णेनापि समर्थितं, तथाहि—'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।' इति। धर्मस्य धारिकायाः

रक्षा की जा सकती है। इस योनिसे किसी भी प्रकार हमारा भ्रंश न हो इसी बुद्धिसे मनुष्य श्रुति प्रमाण से प्रमाणित धर्मका आचरण करता है। जो मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ मनुष्यत्वको प्राप्तकरके उससे द्वेष करता है वह धर्मकी हानि करने वाला कामात्मा मनुष्य योनिसे वञ्चित हो जाता है।" और मनु ने कहा है कि—"भूतोंमें प्राणी श्रेष्ठ हैं और प्राणियोंमें भी बुद्धिजीवी प्राणी श्रेष्ठ है। बुद्धिमान् प्राणियोंमें मनुष्य श्रेष्ठ है और मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है, ब्राह्मणोंमें विद्वान् श्रेष्ठ और विद्वानोंमें कृतबुद्धि श्रेष्ठ हैं। कृतबुद्धियोंमें कर्ता श्रेष्ठ और कर्ताओंमें ब्रह्मवादी श्रेष्ठ हैं।" इस प्रकारसे जीव चतुर्विध भूत संघकी और असभ्य कुत्सित मनुष्योंकी ८६ लाख योनि रूपी दर्वाजोंको अतिक्रमण करता हुआ और आगे बढ़ता हुआ आर्य मनुष्य होता है। और क्रमशः चारों आश्रमोंको अतिक्रमण करता हुआ अन्त में पूर्ण ज्ञानी संन्यासी होकर ब्रह्मपद को प्राप्त करता है। स्व-स्वरुप रूपी ब्रह्म पदको प्राप्त करना ही जीवकी उन्नतिकी चरितार्थता है। उस समय जो पहले से चिज्जड़ग्रन्थि बँधी थी वह खुल जाती है। इस कारण मीमांसा शास्त्रमें कहा है कि चित् और जड़की जो ग्रन्थि बंधी थी "वह ग्रन्थि खुल जानेसे चित् और जड़ दोनोंकी मुक्ति समझनी चाहिये।" सांख्य दर्शनका विज्ञान भी, इसी विज्ञान को और भी अच्छी तरह समझाता है कि प्रकृति पुरुषके भेदज्ञानसे मुक्ति होती है। श्रीगीतोपनिषद्में श्रीभगवान् ने कहा है कि "जब परब्रह्मपरमेश्वरके दर्शन हो जाते हैं। अर्थात् ब्रह्मज्ञान हो जाता है, तब हृदयग्रन्थि खुल जाती है, सब संशय मिट जाते हैं और सब उसके शुभाशुभ

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शक्तेः साहाय्येन सत्वगुणक्रमविकासमनुसृत्य प्रकृतिमातुरनुकम्पया यदा जीवो मानवयोनिमासादयति तत्र धर्माधर्मविवेकशक्तिश्चाप्नोति तदा तत्रेयमेव तस्य क्रमोन्नतिगतिः यथा सर्वथाऽऽबाधिता स्यात्, गतागतचक्रे परिभ्राम्यन्नपि स निजामाध्यात्मिकीं समुन्नतिं कुर्यात्तदेव हि मानवधर्मस्वरूपम् । मानुषं जन्म लब्धवाञ्जीवः येन कर्मकलापेन निम्नगतिको न भवेत्, क्रमोन्नतिमेव कुर्वन् स्यात्, तादृक् शरीरवचोमनोबुद्धिजनितक्रियासमूहो मानवधर्मशब्दवाच्यो भवतीति नास्त्यणीयानपि सन्देहलेशोऽत्र । मानवपिण्डधारिणः समुत्पन्ना जीवाः कथं समुन्नतिङ्कर्तुमर्हन्तीत्येतद्विषये भगवान् गणपतिः स्वयमेव महर्षीन् प्रोवाच । तथाहि स्मृतौ--"विद्यास्वरूपिणीं नित्यां परां सिद्धिं मदाश्रयाम् । तत्त्वज्ञानसुनिष्णाता महापौरुष्यशालिनः ॥ दिव्यदृष्ट्या निरीक्षन्ते ज्ञानिनो ज्ञानभूमिषु । तत्वज्ञाः शान्तचेतस्काः साधकास्तु यथायथम् ॥ क्रमादग्रे सरन्तीह सप्तसु ज्ञानभूमिषु । मम विद्यास्वरूपायाः परसिद्धेस्तथातथम् । उत्तरोत्तरमत्यन्तं स्पष्टं रूपस्य दर्शनम् ॥ प्राप्नुवन्तो निमज्जन्ति परमानन्दसागरे । अहं ज्ञानस्वरूपोऽस्मि नूनं विज्ञवरा द्विजाः ॥ तटस्थश्च स्वरूपश्च द्विविधं ज्ञानमीरितम् । ज्ञाता ज्ञानं तथा ज्ञेयमेषां भानैः समन्वितः ॥ यत्र त्रिपुटिसम्बन्धो विद्यते विप्रपुङ्गवाः । ज्ञानं स्यात्तत्तटस्थाख्यं

कर्म नष्ट हो जाते हैं।" धर्मकी धारिका शक्ति के द्वारा और सत्त्व गुणके क्रम विकाश के द्वारा प्रकृति माताकी कृपासे जीव जब मनुष्य योनिमें पहुंच जाता है और मनुष्य योनिमें धर्म और अधर्म इन दोनोंके विचार करनेकी शक्ति प्राप्त कर लेता है, तब मनुष्यमें यही क्रमोन्नतिकी गति अबाध बनी रहे, और मनुष्य आवागमन चक्रमें घूमता हुआ भी आध्यात्मिक उन्नति करता रहे यही मानव धर्म कहा गया है। मनुष्य जन्म प्राप्त जीव जिससे पुनः नीचेकी ओर गिरने न पावे, और क्रमशः उन्नति ही करता रहे, ऐसे शारीरिक वाचनिक मानसिक और बौद्धिक क्रिया समूह मानव धर्म शब्द वाच्य होंगे। इसमें सन्देह ही नहीं है। मानव पिण्डधारी उन्नत जीव कैसे निरन्तर उन्नति कर सकता है, इसके विषयमें स्मृति शास्त्रमें भगवान् गणपतिजीने महर्षियोंसे कहाहै कि नित्या और विद्यास्वरुपिणी मेरी पर सिद्धिका दर्शन ज्ञानभूमियोंमें तत्वज्ञाननिष्ठ ज्ञानी महापुरुषों को दिव्य दृष्टिसे हुआ करता है और इस संसारमें शान्त चित्त तत्वज्ञानी साधक क्रमशः जैसे २ सप्तज्ञान भूमियोंमें अग्रसर होते जाते हैं, वैसे वैसे उत्तरोत्तर मेरी विद्यारूपिणी परासिद्धिके स्वरूपका अत्यन्त स्पष्ट दर्शन प्राप्त करते हुए परमानन्द सागरमें निमग्न होते जाते हैं। हे विज्ञवर ब्राह्मणों! मैं ज्ञानस्वरूप ही हूँ और ज्ञान दो प्रकारका कहागया है, एक तटस्थज्ञान और दूसरा स्वरूपज्ञान। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों!

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वरूपज्ञानकारणम् ॥ ज्ञानेऽस्मिंश्च तटस्थाख्ये स्वरूपस्य द्विजोत्तमाः । सच्चिदानन्दभावानामनुभूतिः पृथक् पृथक् ॥ स्यादतस्तत्र सम्पूर्णं दृश्यजातं प्रतीयते । यत्र त्रिपुटिसम्बन्धलेशमात्रं न विद्यते ॥ सच्चिदानन्दभावानामनुभूतिः पृथङ् न च । यत्राप्येतत् त्रयन्तिष्ठेद् भावेऽद्वैते निरन्तरम् ॥ उदेति निश्चितं तत्र स्वरूपज्ञानमुत्तमम्" इति । सत्त्वगुणवर्द्धको धर्मविकाशो हि सहैव सात्विकगुणस्य क्रमाभिव्यक्त्या स्वत एव जीवमुद्भिज्जतो मानवशरीरं प्रापयतीति मीमांसयोपर्युक्तया सिद्ध्यति, तदनन्तरं जीवो धर्माधर्मविवेकयोग्यतामासादयति, तदानीं यं कमप्यधिकारं सम्प्रदायं जातिधर्मं वा स्वीकुर्वतो मनुष्यस्य सत्त्वगुणवर्द्धकानि समस्तान्यपि शारीरिक-वाचनिक-मानसिक बौद्धिककर्माणि मानवधर्मेऽन्तर्भवन्ति । मानवधर्मस्य परिपालनेन तदीयां धारिकामभ्युदयनिःश्रेयसकरीञ्च शक्तिमाश्रित्य जीवः क्रमेणाध्यात्मिकीं समुन्नतिं विदधाति । स्थूलगतिसूक्ष्मगतिभेदेनाध्यात्मिक्या उन्नतेर्भेदद्वयमवधेयम् । स्थूलगतिमनुसृत्य जीवोऽसभ्यसेवितानार्यजुष्टावस्थातः सभ्यामार्याञ्च दशामाश्रयन् शूद्र-वैश्य-क्षत्रिय-ब्राह्मणवर्णं क्रमशोऽधिकुर्वन् कुटीचर-बहूदक-हंस-परमहंसपदवीं क्रमेण भजमानो जीवन्मुक्तिपदमा-

जहाँ ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेयोंके भानसे युक्त त्रिपुटिका सम्बन्ध है वही स्वरूपज्ञानका कारणभूत तटस्थज्ञान है। हे ब्राह्मणों! इस तटस्थ ज्ञानमें सत् चित् और आनन्द भावोंका स्वरूप पृथक् पृथक् अनुभूत होता है। इस कारण उस अवस्थामें सम्पूर्ण दृश्य-समूह प्रतीत होता है। जहाँ त्रिपुटी सम्बन्धका लेशमात्र नहीं है, जहाँ सत्, चित् और आनन्द भावका स्वतन्त्र अनुभव नहीं है और जहाँ ये तीनों ही अद्वैत भावमें निरन्तर स्थित हैं वहीं उत्तम स्वरूप ज्ञानका उदय होता है। उपरिलिखित मीमांसासे यह सिद्ध हुआ कि सत्वगुणवर्द्धक धर्म विकाश सत्वगुणके क्रमाभिव्यक्तिके साथ उद्भिज योनिसे लेकर जीवको अपने आप ही मनुष्य योनिमें पहुंचा देता है। यह उपर्युक्त मीमांसासे सिद्ध ही है। तदनन्तर जीव धर्म और अधर्मको समझने लायक हो जाता है। उस समय मनुष्य चाहे किसी अधिकारका हो, चाहे किसी सम्प्रदायका हो, अथवा किसी जाति और धर्मका हो, उसमें सत्वगुणवर्द्धक जो जो शारीरिक वाचनिक मानसिक और बौद्धिक कर्म बनेंगे, वह सब मानव धर्मके अन्तर्गत है। मानव धर्मका पालन करते हुए क्रमशः धर्मकी धारिका शक्ति और धर्मकी अभ्युदयकारिणी और निःश्रेयसकारिणी शक्तिको अवलम्बन करके जीव क्रमशः आध्यात्मिक उन्नति करता रहता है। उस आध्यात्मिक उन्नतिकी दो गतियाँ हैं। एकस्थूल गति और एक सूक्ष्म गति। स्थूलगतिके अनुसार मनुष्य असभ्यसे सभ्य और अनार्यसे आर्य अवस्थाको प्राप्त करके तदनन्तर शूद्रसे वैश्य, वैश्यसे क्षत्रिय, क्षत्रियसे ब्राह्मण, ब्राह्मणसे कुटीचर, कुटीचरसे बहूदक,

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साद्य शिवत्वं प्रपद्यते। स्मर्यते चात्र--"गुरुर्मनुष्यजातेस्तु ह्यार्यजातिर्मता शुभा। आर्यजाते-र्ब्राह्मणा हि ब्राह्मणानामुदासिनः॥ ब्राह्मणेषु तपोवृद्धाः श्रेष्ठास्तत्र प्रकीर्तिताः। तेष्वपि ज्ञान-वृद्धा ये तत्राऽपि तत्त्वदर्शिनः॥ तत्त्वदर्शिषु ये युक्ता आत्मारामाश्च तेषु वै। न्यासिषु क्रमशः श्रेष्ठाः कुटीचरबहूदकौ॥ हंसः परमहंसश्च यद्यप्येते तथापि ह। आत्मारामत्वमेवैषां लक्ष्यमत्र प्रकीर्तितम्"। इति सप्तानामपि ज्ञानभूमीनामज्ञानभूमीनाञ्च सम्बन्धे यदलौकिकमौपनिषदतत्त्व-मुपवर्णितं स्मृतिशास्त्रे, तदवगत्या चित्कलाविकाशस्याध्यात्मिकक्रमोन्नतेश्च सम्यग् रहस्यम-वबोद्धुं विज्ञाः प्रभविष्यन्ति। यथा च स्मृतौ भगवतो वचनम्--"हे विज्ञानविदो विप्राः नन्वज्ञानस्य सप्तभिः। प्रपूर्णं सप्तभिः सम्यक् तथाज्ञानस्य भूमिभिः॥ नूनमास्ते महाकाशगो-लकं परमाद्भुतम्। तस्य निम्नस्तराः सप्त सप्तच्छायाप्रपूरिताः॥ उच्चैः सप्तस्तराः सप्तज्योति-र्भिश्चैव पूरिताः। अधश्छायास्तराः सन्ति चत्वारो हि समष्टितः॥ चतुर्धा भूतसंघानां चिदा-काशेन पूरिताः। स्तरा अज्ञानभूमीनान्तत उर्ध्वं गतास्त्रयः॥ ज्ञानभूमिस्तराः सप्त तथा दश-विधानमून्। धृत्वाऽधिकारान् सम्पूर्णान् पिण्डान् दैवांश्च मानवान्॥ व्याप्नुवन्ति न सन्देह-स्तस्माद्विज्ञानवित्तमाः। एतद्दशविधेष्वेवाधिकारेष्वखिला हिताः॥ निम्ननिम्नतरा एवमुच्चैरु-

बहूदकसे हंस और हंससे परमहंस रूपी जीवन्मुक्ति पदको प्राप्त करके जीव शिवत्वको प्राप्त करता है। इस विषयमें स्मृतिशास्त्रमें कहा है कि "समस्त मनुष्यजातिकी गुरु आर्यजाति है। आर्य जाति-के गुरु ब्राह्मण और ब्राह्मणों के गुरु सन्यासी हैं। ब्राह्मणोंमें तपोवृद्ध श्रेष्ठ कहे गये हैं। तपोवृद्धोंमें ज्ञानवृद्धश्रेष्ठ और ज्ञानवृद्धों में तत्वदर्शी श्रेष्ठ है। तत्वदर्शियों में जो व्यक्ति आत्मा में युक्त हैं वे श्रेष्ठ और उनमें भी आत्माराम श्रेष्ठ है। सन्यासियों में कुटीचक बहूदक हंस और परमहंस क्रमशः श्रेष्ठ हैं इन सब का आत्माराम हो जाना ही अन्तिम लक्ष्य है।" स्मृति शास्त्रमें सप्त अज्ञानभूमि और सप्त ज्ञानभूमिके सम्बन्धसे एक अलौकिक औपनिषदिक तत्वका वर्णन किया है। उसके समझनेसे चित्कला विकास और आध्यामिक क्रमोन्नतिका रहस्य अच्छी तरह विज्ञजनोंकी समझमें आ सकता है। श्री भगवान्ने कहा है—हे विज्ञानविद् ब्राह्मणों! सप्त अज्ञानभूमि और सप्त ज्ञानभूमिसे ही भलीभाँति पूर्ण परमाद्भुत महाकाशगोलक है, उस गोलकके नीचेके सात स्तर सप्तच्छायासे पूर्ण हैं और ऊपरके सात स्तर सप्त ज्योतिसे ही पूर्ण हैं, नीचे चार छाया स्तर चतुर्विध भूतसंघके समष्टि चिदाकाशसे पूर्ण हैं। उसके ऊपरकी तीनअज्ञानभूमियोंके स्तर तथा सात ज्ञानभूमियोंके स्तर ये दश स्तर दशविध अधिकारोंको धारण करके समस्त मानव और दैवपिण्डमें व्याप्त हैं। इस कारण हे विज्ञानविद्वरों। इन दशों अधिकारोंमें ही निम्नसे निम्नतर और उच्चसे उच्चतम सब हितकर दार्शनिक अधिकार सम्मि-

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

च्चतमास्तथा। दार्शनिकाधिकारा हि सन्ति सम्मिलिता ध्रुवम् ॥ अघट्यघटनायां सा प्रकृतिर्मे पटीयसी। मत्तो व्यक्ता महाकाश-गोलकेऽत्र प्रकाशते ॥ ऊर्ध्वगा सप्तभूमिर्वै सा विद्या रूपतोऽश्नुते। अविद्यारूपतो विप्राः सप्तभूमीश्च निम्नगाः ॥ सप्तच्छायाभिरेताभिर्ज्योतिर्भिः सप्तभिस्तथा। परिपूर्णं महाकाश-गोलकं मे जड़ात्मिका ॥ बिभर्ति प्रकृतिर्नित्यं नूनमाधाररूपतः। अहन्तस्योपरिष्टाच्च सन्तिष्ठे शुद्धचिन्मयः" इति। ब्रह्मप्रकृतेः स्वाभाविकं कर्मप्रवाहमनुसृत्य जीवश्चतुर्विधभूतसंघस्य विविधा योनीः क्रमशोऽतिक्रामन्नग्रे सरति। तदानीं भगवत्याः प्रकृतिमातुः कृपैव जीवसमुन्नतेर्निदानम्। तदानीं गतावत्रोद्भिज्जायाः स्वेदजायां, ततोऽप्यण्डजायां ततश्चापि जरायुजायां योनौ जीवस्थूलशरीरक्रमविकाशः स्वाभाविकसंस्कारेण स्वत एव बोभूयते। जीवः पूर्णावयवो भूत्वा प्रविशति मानवयोनौ, तत्र च स्वाधीनताप्राप्त्या सम्पद्यते खलु पुण्यपापाधिकारवान्। धर्माधर्माभ्यामिमामवस्थाद्वयीमाश्रयन्नसौ जन्ममृत्युरूपगतागतचक्रे परिभ्राम्यन् धर्मसाहाय्येन क्रमशः सत्त्वगुणमभिवर्धयन् सर्वोन्नतामवस्थां प्रपद्यते। मनुष्ययोनावागत्य जीवः स्वाधीनतामुपेत्यास्वाभाविकान् संस्कारसमूहान् संगृह्णन् तिष्ठति। एतस्य विस्तृतं वर्णनं कर्ममीमांसादर्शने विद्यते। अन्यतश्च स्वस्मिन् चित्कलायाः क्रमशो विकाशतः सप्तापि अज्ञानभूमीरतिक्रामन् ज्ञानभूमिमधिरोहति। तत्राप्युत्तरोत्तरं सप्तानामपि ज्ञानभूमीनां

लित हैं यह निश्चय है। मेरी वह अघटनघटनापटीयसी प्रकृति मुझसे व्यक्त होकर इस महाकाश गोलकमें प्रकाशित है। हे विप्रों! वही विद्या रूपसे ऊपरकी सप्तज्ञानभूमियोंमें और अविद्या रूपसे नीचेकी सप्त अज्ञानभूमिकाओंमें परिव्याप्त है। इन सप्तच्छाया और सप्तज्योतियोंसे पूर्ण महाकाश गोलकको आधार रूपसे मेरी जडा प्रकृति नित्य ही धारण कर रही है। और मैं शुद्ध चिन्मय होकर उसके ऊपर स्थित हूँ। ब्रह्मप्रकृतिके स्वाभाविक कर्मप्रवाहके अनुसार जीव चतुर्विधभूतसंघकी योनियोंमें क्रमशः आगे बढ़ता है उस समय प्रकृतिमाताकी कृपा ही जीवकी उस उन्नतिका कारण है। उस गतिमें उद्भिजसे स्वेदज, स्वेदजसे अण्डज, और अण्डजसे जरायुज योनियोंमें जो स्थूल शरीरकी क्रमोन्नति होती है, वह अपने आप ही स्वाभाविक संस्कार द्वारा होती है। जीव पूर्णावयव होकर मनुष्ययोनिमें पहुँचता है। वहाँ उसको स्वाधीनता मिलनेके कारण वह पुण्य और पापका अधिकारी बनता है। वह धर्म और अधर्मके द्वारा इन दो अवस्थाओंको प्राप्त करता हुआ और जन्ममृत्युरूपी आवागमनचक्र में घूमता हुआ क्रमशः धर्मकी सहायतासे सत्वगुणकी अभिवृद्धि करके उन्नतसे उन्नत अवस्था प्राप्त करसकता है। मनुष्ययोनिमें आकर जीव स्वाधीनता प्राप्त करलेनेसे और स्वाभाविक संस्कार समूह संग्रह करता रहता है। इसका विस्तारित वर्णन कर्ममीमांसादर्शनमें है। दूसरी ओर अपनेमें चित्कलाके क्रमविकाशके अनुसार सप्त अज्ञानभूमिको अतिक्रमण करके ज्ञानभूमिमें पहुँचता है

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्रमविकाशाधिकारानर्जयन्नन्ते भगवच्चरणसरसीरुहे निलीयते। इत्थं हि जीवभावस्य क्रमाभिव्यक्तेः स्तरद्वयमस्ति, तत्र प्रथमाधिभौतिकी क्रमाभिव्यक्तिः, या हि चतुर्विधेषु भूतसंघेषु स्वाभाविकसंस्कारेण नियमतो भवति। द्वितीया च ज्ञानाज्ञानभूमावुभयत्र भवति। या चाध्यात्मिकक्रमाभिव्यक्तिर्निगद्यते, शङ्कासमाधानार्थं बुधजनैरेवमवधेयं यदाधिभौतिकक्रमोन्नतिगतिः स्वाभाविकी, आध्यात्मिकक्रमोन्नतिगतिरस्वाभाविकीति। प्रथमा क्रमोन्नतिगतिः स्वाभाविकत्वात् शरीरसापेक्षा, किन्तु द्वितीया क्रमोन्नतिरस्वाभाविकत्वात् शरीरनिरपेक्षा, किन्त्वियमसाधारणे धर्मेऽन्तर्भवतीत्यवगन्तव्यम्। एतद् विषयकं वर्णनमग्रेऽसाधारणधर्मतत्त्वनामकेऽध्याये वक्ष्यते। शास्त्रेषु सप्त ज्ञानभूमयोऽज्ञानभूमयश्च या वर्णितास्तासु प्रथमाश्चतस्रोऽज्ञानभूमीः प्रकृतिमातुरनुकम्पातो जीवः कथमतिक्रामतीति निरूपितमेव। चतसृष्वप्येतासु क्रमशः सत्त्वगुणाभिवृद्धिरुत्तरोत्तरं सम्पद्यमाना चकास्ति। पञ्चम्या अज्ञानभूमेर्विकाशोऽनार्यमानुषेषु। यतस्ते देहात्मवादे बद्धादरा दृश्यन्त इति शास्त्रे प्रतिपादितमस्ति। षष्ठ्यामज्ञानभूमौ मनुष्यो देहातिरिक्तमात्मवादमभिमन्यते, एतदतिरिक्तायां सप्तम्यामुत्तमाऽज्ञानभूमौ मनुष्य आत्मातिरिक्त-

---

और ज्ञानभूमिमें उत्तरोत्तर सात ज्ञानभूमियोंके क्रम विकाशके अधिकारोंको प्राप्त करता हुआ अन्तमें श्रीभगवान्के चरणोंमें पहुँचजाता है। इस तरह जीवभावकी क्रमाभिव्यक्तिके दो स्तर हैं, एक आधिभौतिक, जो चतुर्विधभूतसंघमें स्वाभाविक संस्कार के द्वारा नियमित रूपसे होती है और दूसरी क्रमाभिव्यक्ति अज्ञानभूमियोंमें और ज्ञानभूमियोंमें होती है, जो आध्यात्मिक क्रमाभिव्यक्ति कहाती है। बुधजनोंके शङ्कासमाधानके लिये यह समझने योग्य है कि आधिभौतिक क्रमोन्नतिकी गति स्वाभाविक है, और आध्यात्मिक क्रमोन्नतिकी गति अस्वाभाविक है। प्रथम क्रमोन्नतिकी गति स्वाभाविक होनेसे शरीर सापेक्ष्य है। किन्तु द्वितीय क्रमोन्नतिकी गति अस्वाभाविक होनेसे शरीरसापेक्ष्य न होनेपर भी असाधारण धर्मके अन्तर्गत समझने योग्य है। जिसका वर्णन आगे असाधारण धर्मतत्त्वनामक अध्यायमें आवेगा। शास्त्रोंमें जो सात अज्ञानभूमि और सातज्ञानभूमियोंका वर्णन है, उसमेंसे पहली चार अज्ञानभूमियाँ तो प्रकृतिमाताकी कृपासे जीव कैसे अतिक्रमण करता है सो पहले कहागया है। इन चारोंमें उत्तरोत्तर सत्त्वगुणकी क्रमशः अभिवृद्धि बनी रहती है। पञ्चम अज्ञानभूमिका विकाश अनार्य मनुष्योंमें होता है। शास्त्र कहता है कि पञ्चम अज्ञानभूमिमें अनार्य जाति देहात्मवादकी पक्षपाती होती है। उसके बादकी अज्ञानभूमिमें मनुष्य देहातिरिक्त आत्मवादको मानता है। और उसके अतिरिक्त सप्तम उत्तम अज्ञानभूमिमें मनुष्य आत्मातिरिक्त

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शक्तिवादमङ्गीकुरुते । अर्थतः सप्तमीमज्ञानभूमिमाश्रयन् मानव आत्मव्यतिरिक्तामेकामलौकिकीं शक्तिमनुभवति । जडविज्ञानवेदिनः सर्वेऽपि मतमिदमेव परिपुष्णन्ति । तदनन्तरं किल भगवदनुकम्पया जगद्धात्र्या धर्मरूपिण्या जगन्मातुः साहाय्यबलेन च बुद्धेः क्रमाभिव्यक्तिमधिगत्य समुन्नतो मानवो यदा सप्तज्ञानभूमीनामधिकारमासादयति, तदानीमेकैकमुत्तरोत्तरं सप्ताऽपि ज्ञानभूमीः क्रमशोऽधिरोहति । आध्यात्मिकी क्रमोन्नतिरियं वैदिकसप्तदर्शनविज्ञानसाहाय्यात् बुद्धेः क्रमाभिव्यक्तिमासादयता मानवेन समुपलभ्यते । मानवधर्मसाहाय्यबलेन च तेनान्तिमां ज्ञानभूमिमधिकुर्वता कृतकृत्येन मुक्तेन च भूयते । एवं हि यैः शारीरिकवाचनिकमानसिकबौद्धिककर्मभिः क्रमेणोर्द्ध्वगतिर्मानवानां सुस्थिरा क्रमबद्धा च स्यात्तान्येव कर्माणि मानवधर्मत्वेन शास्त्रकारैरङ्गीकृतानि सुतरां मनुतनुजनुषु सर्वव्यापिका ऊर्द्ध्वगतिरेव मानवधर्मतत्त्वस्य मौलिकं स्वरूपम् । विज्ञानमिदमुन्नता आर्या एव सम्यग् बोद्धुं प्रभविष्णवोऽतस्त एव भवन्ति जगद्गुरव इति ।

इति श्रीदत्तात्रेयधर्ममीमांसायां मानवधर्मतत्वनामकः पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ।

अथ साधारणधर्मतत्वनामकः षष्ठोऽध्यायः ।

मानवधर्मतत्त्वनामकेऽध्याये मानवधर्मस्य साधारणविशेषासाधारणापद्भेदेन चत्वार्यङ्गानि

शक्तिवादको मानता है । अर्थात् आत्माके अतिरिक्त एक अलौकिक शक्तिका अनुभव करता है। सबजड़ विज्ञानवाले व्यक्ति इसी मतको पुष्ट करते हैं। तदनन्तर श्रीभगवान्‌कीकृपासे और जगद्धात्री धर्मरूपिणी श्रीजगन्माता की सहायतासे बुद्धिकी क्रमाभिव्यक्ति प्राप्तकर समुन्नत होते हुए क्रमशः सात ज्ञानभूमियों के अधिकारको प्राप्तकरता है, और अन्तिम ज्ञानभूमिमें पहुँचकर मनुष्य मानवधर्मकी सहायतासे कृतकृत्य और मुक्त हो जाता है। इस प्रकारसे जिस शारीरिक वाचनिक मानसिक और बौद्धिक कर्मोंके द्वारा यह क्रमोर्ध्वगति बनी रहे, उसीको वेद और शास्त्रोंने मानवधर्म कहा है । यह सर्वव्यापक उर्ध्वगति ही मानवधर्मतत्वका मौलिक स्वरूप है । इस विज्ञानको उन्नत आर्यजाति अच्छी तरह समझती है । इसी कारण आर्यजाति जगद्गुरु कहाती है ।

इस प्रकारसे भगवान् दत्तात्रेयकी कृपासे श्रीदत्तात्रेय धर्ममीमांसा ग्रन्थका मानव धर्मतत्व नामक पञ्चम अध्याय समाप्त हुआ ।

अथ साधारणधर्मतत्वनामक छठा अध्याय ।

मानवधर्मतत्वमें मानव धर्मके साधारण विशेष असाधारण आपद् भेदसे चार अङ्गोंका

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वर्णितानि, तेष्वत्र साधारणधर्मस्य स्वरूपं निर्दिश्यते। मानवधर्मस्य चतुरङ्गेषु साधारणधर्मस्तथाविधमङ्गमास्ते, यत्किलार्याणामनार्याणां सभ्यानामसभ्यानाञ्च, किं बहुना सर्वविधाधिकारिणां मर्त्त्यानां कृते हितं विदधाति। साधारणधर्मस्य सर्वविधमङ्गजातं सर्वे जनाः न पालयन्तु नाम, किन्तु तदीयाङ्गोपाङ्गानां साहाय्यं त्वखिला पि धर्ममतावलम्बिन आश्रयन्ते। पूज्यपादमहर्षिभरद्वाजः 'कर्ममीमांसादर्शने' विशदमवोचत्, यत् साधारणधर्मः सर्वविधाधिकारिणो मानवानुपकरोति। सृष्टेस्त्रिभेदवत् तस्य त्रीण्यङ्गानीति। तथाहि तत्सूत्राणि "सर्वकल्याणसाधकः साधारणधर्मः,, "तदङ्गत्रैविध्यं त्रिभेदवत्" इति।

श्रीभगवता कृष्णेनाऽपि गीतोपनिषदि निजमुखारविन्दतो व्याख्यातम् "यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्। यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्" इति। मीमांसाशास्त्रे त्वित्थमुपवर्णितमुपलभ्यते, यत् सृष्टेस्त्रयो विभागा वर्तन्ते। ते चाध्यात्माधिदैवाधिभूतनामधेयैः प्रसिद्धाः। सृष्टेर्ज्ञानसम्बधो विभागोऽध्यात्म इत्युदीर्यते, तदीयः क्रियासम्बन्धसूचको विभागोऽधिदैव इति प्रोच्यते, तस्याश्च स्थूलपांचभौतिको विभागो ऽधिभूतनाम्ना प्रख्यायते। अध्यात्म-विभाग-सञ्चालन-नियामका ऋषयो विद्यन्ते। अधिदैवविभागप्रवर्तका देवाः सन्ति। अधिभूतविभागसञ्चालकाश्च पितरो वर्तन्ते। यथा-कार्य-

---

वर्णन आचुका है उनमें साधारण धर्मका स्वरूप बताया जा रहा है। मानवधर्मके चार अङ्गोंमें से साधारण धर्म वह है कि जो मनुष्य चाहे आर्य हो या अनार्य, चाहे सभ्य हो या असभ्य और चाहे किसी अधिकार का हो सब के लिये हितकारी होता है। साधारण धर्म के सब अङ्गसमूह को भले सब लोग पालन न कर सकें, परन्तु उसके अङ्गों और उपाङ्गों की सहायता संसार के सब धर्मावलम्बियों को लेनी पड़ती है। पूज्यपाद महर्षि भरद्वाज के कर्ममीमांसा दर्शन में कहा है कि साधारण धर्म सबका कल्याण करनेवाला है और यह भी कहा है कि सृष्टि के त्रिभेद के समान उसके तीन अङ्ग हैं। श्री भगवान् ने निज मुख से श्री गीतोपनिषद् में कहा है कि यज्ञ, दान और तप इन कर्मों को त्यागना नहीं चाहिये क्योंकि यज्ञ, दान और तप ये मानव समाज को पवित्र करनेवाले हैं ऐसी मनीषियोंकी सम्मति है। मीमांसाशास्त्र में ऐसा वर्णित है कि सृष्टि के तीन विभाग हैं यथा, आध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत। सृष्टि के ज्ञान सम्बन्धी विभाग को अध्यात्म क्रिया सम्बन्धी विभागको अधिदैव और स्थूल पांचभौतिक विभागको अधिभूत कहते है। अध्यात्म विभागके चालक ऋषि, अधिदैव विभागके चालक देवता और अधिभूत विभागके चालक पितृगण हैं।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मरूपिणी सृष्टिस्त्रिभिर्विभागैर्विभक्ता, तथैव सृष्टेर्नियन्ता धर्मोऽपि त्रिभिरङ्गैर्विभक्त आस्ते । सृष्टि-शृङ्खलाया विभागत्रयमनुसरन् जगद्धारकः साधारणो धर्मः कथं त्रिकाण्डविभक्तो धर्मकल्पद्रुमात्मना प्ररोहतीति । तदीयमौपनिषदं दृश्यं श्रीशक्तिगीतायां यथावदुपवर्णितमास्ते । तथाहि—"अहमेवास्मि भो देवाः ! धर्मकल्पद्रुमस्य च । बीजं मूलं तथाधारो नात्र कश्चन संशयः ॥ स्कन्धस्तस्य द्रुमस्यास्ते धर्मो वै विश्वधारकः । मुख्यं शाखात्रयं चास्य यज्ञो दानं तपस्तथा ॥ ब्रह्मार्थाऽभयदानानि देवाः ! त्रैगुण्ययोगतः । दानस्य प्रतिशाखाः स्युर्नवधा नात्र संशयः ॥ तपोऽपि त्रिविधं ज्ञेयं कायवाणीमनोभवम् । त्रैगुण्ययोगेनास्यापि प्रतिशाखा नवासते ॥ प्रतिशाखा अनेकाः स्युर्यज्ञशाखासमुद्भवाः । काम्याध्यात्माधिदैवाधिभूतनैमित्तनित्यकाः ॥ कर्मयज्ञप्रशाखाया भेदस्त्रैगुण्ययोगतः । त एवाष्टादशास्या हि प्रतिशाखा मनोहराः ॥ पितृदेवर्षिवृन्दानामवतारगणस्य च । पञ्चानां सगुणब्रह्मरूपाणां निर्गुणस्य च ॥ ब्रह्मणश्चासुरौघाणामुपास्तेः पञ्चभक्तितः । मन्त्रो हठो लयो राज एते योगेन च ध्रुवम् ॥ अस्या भेदाश्च चत्वारो भेदा एवं नवासते । एते भेदा नवैवाहो देवाः ! त्रैगुण्ययोगतः ॥ उपास्तेः प्रतिशाखाः स्युः संख्यया सप्तविंशतिः । श्रवणं मननञ्चैव

जिस प्रकार कार्य ब्रह्मरूपी सृष्टि के तीन विभाग हैं उसी प्रकार सृष्टि का नियन्ता रूपी धर्म भी तीन अङ्गों में विभक्त है सृष्टि शृङ्खला के तीन विभागो के अनुसार जगद्धारक साधारण धर्म भी कैसे तीन काण्डों में विभक्त होकर एक धर्म,काल्पद्रुम रूप से बना हुआ है उसका औपनिषदिक दृश्य श्री शक्तिगीता में वर्णित है कि हे अमरगण ! मैं ही धर्मककल्पद्रुम का वीज भी हूँ मूल भी हूँ और आधार भी हूँ इसमें कुछ सन्देह नहीं है। उस वृक्ष का स्कन्ध विश्व धारण धर्म ही है उसकी प्रधान तीन शाखायें हैं यथा–यज्ञ तप और दान, अर्थदान ब्रह्मदान और अभय दान के त्रिगुणात्मक होने से दान की नव प्रति शाखायें हैं। हे देवगण ! इसमें सन्देह नहीं है। शारीरिक तप वाचनिक तप, मानसिक तप के त्रिगुणात्मक होने से तपो धर्म की नव प्रतिशाखायें हैं। यज्ञ शाखा से उत्पन्न प्रतिशाखायें अनेक हैं। नित्य नैमित्तिक काम्य और अध्यात्म अधिदैव अधिभूत ये कर्मयज्ञ रूपी प्रशाखाओं के भेद हैं। इनके त्रिगुणात्मक होने से कर्मयज्ञ की मनोहर अठारह प्रतिशाखायें हैं। उपासना यज्ञ की आसुरी उपासना, ऋषि देवता और पितरों की उपासना अवतारों की उपासना, पञ्चसगुण ब्रह्मरूपों की उपासना और निर्गुण ब्रह्मोपासना ये पांच भक्ति सम्बन्धी भेद हैं। और योगके अनुसार उपासनाके मन्त्र हठ लय राज ये चार भेद हैं; इस प्रकारसे इन्हीं नौ भेदोंके त्रिगुणात्मक होनेसे हे देवगण ! उपासनाकी सत्ताईस प्रतिशाखायें हैं।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेषाङ्क की विषय-सूची

१—पाठकवृन्द से सविनय निवेदन— कवर का दूसरा पेज
२—आत्मनिवेदन। इसमें सूर्योदय की पूर्वावस्था और वर्तमान स्थिति का वर्णन तथा भविष्यत्कार्यप्रणाली का वर्णन है। १—३
३—आर्य-संस्कृति (नं० १)। इसमें वृद्ध-पूजा, स्त्रीजाति और पुरुषजाति का अधिकारभेद का वर्णन है। ३—४
४—सनातनधर्म व्यवस्था (नं० १) वर्तमान समय में जटिल प्रश्नों पर शास्त्रीय व्यवस्था। हलग्रहण विचार और बलपूर्वक म्लेच्छ बनाये गये हिन्दुओं का पुनः-संस्कार। ४—५
५—राजनीति-प्रसङ्ग (नं० १)। आर्य-संस्कृति के अनुसार हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की प्रशंसा, राष्ट्रिय ध्वजा पर कैसा चक्र होना चाहिये और नेतृवृन्दों को सत्परामर्श। ५—६
६—गोरक्षा। गोरक्षा के विषय में महामण्डल—मन्त्रिसभा की सम्मति। ६—७
७—श्रीभारतधर्म महामण्डल और उसके प्रकाशन विभाग के नियम। ७
८—बँगाल में धर्मरक्षा का प्रयत्न। ८—१५
९—वर्णव्यवस्था का रहस्य। श्री महामण्डल मन्त्रि सभा का मन्तव्य। १५—१६
१०—भारत में सच्चा प्रजातन्त्र स्थापित हो। श्रीमहामण्डल मन्त्रिसभा का निश्चय। १६—१७
११—सनातनधर्म व्यवस्था। (नं० २) यवनादि विधर्मियों का हिन्दू धर्म में प्रवेश, विधवा-पुरुषान्तर-परिग्रह, सगोत्र विवाहनिषेध, विवाह-विच्छेद, कन्या-विवाहकाल, समुद्र-यात्रा, देवमन्दिर-प्रवेश। १७—२१
१२—आपद्धर्म का सहारा। हिन्दूधर्म के १६ अङ्गों में आपद्धर्म के अनुसार धर्म का कैसे सहारा लिया जा सकता है, जिससे संस्कृति नष्ट न हो। २२—२४
१३—आचार्य-चरणों की सेवा। श्री भगवान् शङ्कराचार्य के चारों पीठों के सम्बन्ध में श्रीमहामण्डल की सेवा। २४—२७
१४—श्रीशारदा पुस्तकालय (श्रीमहामण्डल का पुस्तकालय है)। २७—२९
१५—ब्राह्मण जाति की सुरक्षा। २९—३०
१६—राजनीति-प्रसङ्ग (नं० २) धर्मलोप से अधःपतन। ३०—३१
१७—श्रीगङ्गाजी की सेवा (श्रीमहामण्डल द्वारा)। ३१—३२
१८—हिन्दू धर्म का स्वरूप। (मीमांसा दर्शन के अनुसार)। ३३—३५
१९—कर्म की प्रतिक्रिया (हिन्दू संस्कृति के अनुसार)। ३६
२०—आचार्य-पीठों की उन्नति और शारदामठ। ३७—३८
२१—स्पर्शास्पर्श-विवेक। (आर्य-संस्कृति के अनुसार)। ३८—३९
२२—अहिंसा-विज्ञान। (आर्य-संस्कृति के अनुसार)। ३९—४०
२३—गोत्र-प्रवर-महिमा। (वेद और शास्त्र के अनुसार)। ४०
२४—अखिल भारतीय धार्मिकाध्यात्मिक संस्कृत विश्वविद्यालय। ४१—४३
२५—धर्मप्रचार विभाग। ४३—४४
२६—हिन्दुस्थान का शास्त्रीय नाम। ४४—४५
२७—राजनीतिक तुलनात्मक गवेषणा (आर्यसंस्कृति के अनुसार)। ४५—४६
२८—मन्त्र, तन्त्र और यन्त्र। ४७—४९
२९—आर्य-संस्कृति की तुलनात्मक गवेषणा। ५०—५३

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Regd. No. A 156

३०—महामण्डल उपदेशक महाविद्यालय। ५३—५४
३१—श्रीकृष्णानन्द वेदविद्यालय। ५४
३२—मनुष्य जाति की निरङ्कुशता कैसे दूर हो ? ५५—५६
३३—काश्मीर और महामण्डल मन्त्रिसभा के विचार। ५६
३४—डा० काटजू साहब और संस्कृत भाषा। महामण्डल—मन्त्रिसभा का मन्तव्य। ५७
३५—वर्तमान समय में हिन्दूराज्य की असम्भावना (हिन्दूसंस्कृति के अनुसार)। ५७—५८
३६—आर्यसंस्कृति और पीठ-विज्ञान। ५८—५९
३७—राजनीतिक नेतृवृन्दों को सत्परामर्श। ६०—६१
३८—राजनीति-प्रसङ्ग (नं० ३)। नियन्त्रित शासन-पद्धति और धर्म ध्वंस न करो,—इसके विषय में। ६१—६२
३९—हिन्दूसंस्कृति के मौलिक लक्षण। ६२—६४
४०—वर्तमान समय की राजनीति (हिन्दू-संस्कृति के अनुसार)। ६५—६९
४१—शास्त्र-प्रकाशन-विभाग। ६९—७१
४२—राजनीतिक और धार्मिक नेताओं को चेतावनी। ७१—७४
४३—हिन्दूजाति की इतिहास लिखने की शैली। ७५—७६
४४—भगवान् आदिशङ्कराचार्य के आविर्भाव का समय। ७७—७८
४५—अद्वैतवादी और भक्त की मुक्ति का स्वरूप। ७९
४६—हिन्दू प्रजा का स्थिर विश्वास। ८०
४७—आर्य-संस्कृति का विशेषत्व (तुलनात्मक गवेषणा)। ८१—८४
४८—दृश्यादृश्य लोक। (लोक-लोकान्तरों का वर्णन)। ८५—८६
४९—महामण्डल नगर। ८७—८९
५०—स्त्री और पुरुष का अधिकार विज्ञान। ९०—९४
५१—आर्यमहिलाओं की संस्था। ९५
५२—शिक्षाशैली में सुधार की आवश्यकता। ९६—९८
५३—हिन्दी भाषा की सेवा। ९८—९९
५४—सामाजिक सुधार में सावधानता १००—१०१
५५—भगवत् अवतार और भगवान् रामचन्द्रजी का समय। १०१—१०४
५६—सामाजिक सुधार की परम आवश्यकता। १०४
५७—महामण्डल संवाद। १०५—१०८
५८—गोत्रप्रवरविवेक।

विदेशों में धर्म-सेवकों की मांग।

भारत द्वीप के बाहर अमेरिका, दक्षिण अमेरिका, आफ्रिका, दक्षिण आफ्रिका, फ़ीजी, जावा, सुमात्रा आदि महादेशों और उपनिवेशों में लाखों की संख्या में हमारे प्रवासी हिन्दू भाई बस गये हैं। वहां हमारी शाखा सभाएं भी स्थापित हैं। उनकी ओर से हमारे पास ऐसे कार्यकर्त्ताओं की मांग आती रहती है, जो वहां के हिन्दु भाइयों में धर्म प्रचार, शिक्षा प्रचार, धार्मिक संस्कार आदि का कार्य कर सकें। इन सब धर्म कार्यों के करने योग्य विद्वान् और चरित्रवान् पुरुषों की आवश्यकता है। जो सज्जन विदेशों में जाकर इस प्रकार की धर्म-सेवा करना चाहें, वे हमारे कार्यालय में पत्र द्वारा अपना नाम दर्ज करा दें। उचित सुभीते के साथ उन्हें उन द्वीपों में भेजा जा सकेगा।

कार्याध्यक्ष,
श्री भारतधर्म महामण्डल, काशी।

सम्पादक और प्रकाशक—पण्डित अवधेशप्रसाद द्विवेदी।
मुद्रक—पण्डित रामेश्वर पाठक, ताराप्रेस, बनारस।

Bharat Dharma Maha Mandal, Varanasi